हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जनवरी, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जनवरी, १९३८

संपादक - रामचंद्र टंडन

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४ -सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } जनवरी, १९३८ { अंक १

संत विष्णुपुरी जी और उन की 'भक्ति-रत्नावली'

[लेखक—श्रीयुत मंजुलाल मजमूदार, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

तिरहुत के श्री विष्णुपुरी

अपने ग्रंथ 'भक्ति-रत्नावली' में श्री विष्णुपुरी जी अपने विषय में केवल इतना कहते हैं कि वह परमहंस सन्यासी थे, और तिरहुत के निवासी थे।

हमें उन का वर्णन नाभा जी के 'भक्तमाल' (१७वीं सदी) में मिलता है। नाभा जी एक पर्यटक वैष्णव साधु थे, जिन्हों ने अपनी तीर्थयात्रा में भिन्न-भिन्न स्थलों पर एकत्र की हुई सूचना के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की थी।

नाभा जी और उन का 'भक्तमाल'

नाभा जी ने अपनी पुस्तक राजपूताने की हिंदी—अथवा पश्चिमी हिंदी—में लिखी। वह स्वयं अधिकतर राजपूताने में रहे।

'भक्तमाल' में १६० भक्तों की चर्चा है। उन्हीं में विष्णुपुरी जी का आ जाना स्वाभाविक है। सब भक्तों में प्रायः बीस औपाख्यानिक हैं, परंतु शेष ऐतिहासिक हैं। ऐसा जान पड़ता है कि नाभा जी भक्तों की कथा पौराणिक कथानकों से आरंभ कर के काल-क्रमानुसार ही देते हैं। जयदेव का वर्णन आने के अनंतर हमें ऐसा अनुभव होने लगता है कि अब हम दृढ़ ऐतिहासिक भूमि पर अवस्थित हैं। जयदेव के अनंतर श्रीधर आते हैं विल्वमंगल और ˚ और उन के

बाद ही विष्णुपुरी जी की चर्चा है। विष्णुपुरी जी का नाम पन्द्रहवीं सदी के मराठा संत ज्ञानदेव के पूर्व ही आ जाता है।

विष्णुपुरी जी के संबंध में छप्पय

'भक्तमाल' में विष्णुपुरी जी के विषय में जो छप्पय है वह बहुत स्पष्ट है—

भगवत धर्म उतंग आन धर्मंहि नहि देखा।
पीतलपट तर विगत निकष ज्यों कुंदन रेखा।
कृष्णकृपा कहि बेल फलित सतसंग दिखायो।
कोटि ग्रंथ को अर्थ तेरह विरचन में गायो।
मथि महासमुद भागौत तें भक्ति-रतन-राजी रची।
कलि जीव जँजाली कारणे विष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥

विष्णुपुरी जी निस्संदेह नाभा जी से, जो कि सत्रहवीं सदी में हुए है, पूर्व हुए होंगे। कारण यह कि 'भक्तमाल' में बहुत आरंभ में ही उन की चर्चा है और उस पुस्तक में स्थान पाने के लिए उन की ख्याति सत्रहवीं सदी में प्रतिष्ठित हो चुकी होगी।

विष्णुपुरी की तिथि

विष्णुपुरी जी की 'भक्ति-रत्नावली', जिसे संक्षेप में 'रत्नावली' भी कहते है, पन्द्रहवीं सदी के पूर्वभाग में कृष्णदास लौरिया द्वारा अनूदित हुई। इस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूल संस्कृत ग्रंथ इस से कुछ काल पूर्व ही रचा गया होगा। अतएव विष्णुपुरी जी का समय सन् १४०० ई० के आस-पास निर्धारित किया गया है।[1]

विष्णुपुरी जी के ग्रंथ का बँगला अनुवाद: १५वीं सदी

इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'भक्ति-रत्नावली' के रचनाकाल की तिथि, जो कि ग्रंथ की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में किसी श्रीधर की 'कांतिमाला' टीका के साथ प्राप्त हुई है और मूल के निम्न दो श्लोकों में दी गई है, मान्य नहीं :—

विष्णुपुरी जी के ग्रंथ की रचना के लिए १५५५ शकाब्द मान्य नहीं

---

[1] डाक्टर जे० एन० फर्कुहर 'आउटलाइन अव दि रेलिजस लिटरेचर अव इंडिया' १९२० पृष्ठ ३०२

वाराणस्यां महेशस्य सान्निध्ये हरिमंदिरे।
भक्तिरत्नावली सिद्धा सहिता कांतिमालया॥
५ ५ ५ १
महायज्ञ-शर-प्राण-शशाङ्क-गुणिते शके।
फाल्गुने शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सुमंगले॥

शक १५५५, १३५ वर्षों के जोड़ से संवत् १६९० वि० हो जाता है। यदि 'कांति-माला' टीका वाली 'भक्ति-रत्नावली' की यही रचना-तिथि है, और दोनों के लेखक एक ही हैं तो विष्णुपुरी जी के नाम के 'भक्तमाल' में आने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि 'भक्तमाल' की रचना संवत् १६८९ वि० में हुई थी। बाद में यह बतलाया जायगा कि शकाब्द १५५५ श्रीधर की टीका की रचना-तिथि है।

यह कहा जाता है[1] कि विष्णुपुरी जी का नाम वैकुंठपुरी भी था, और यह तिरहुत (तिरभुक्त) के थे, तथा मदनगोपाल के शिष्य थे। उन के रचित चार ग्रंथ बताए जाते हैं —(१) 'भगवद्-भक्ति-रत्नावली' (२) 'भागवतामृत', (३) 'हरि-भक्ति-कल्पलता', और (४) 'वाक्य-विवरण'।

विष्णुपुरी जी कौन थे?

'विश्वकोष'-कार विष्णुपुरी गोस्वामी नाम के एक अन्य व्यक्ति का भी वर्णन करते हैं, जिन्हों ने 'विष्णु-भक्ति-रत्नावली' नाम के एक वैष्णव-काव्य की रचना की, जो उपर्युक्त रचना से भिन्न थी। परंतु जान पड़ता है कि समनामधारी दोनों रचयिता वास्तव में एक ही हैं।

'भक्ति-रत्नावली' की रचना के संबंध में तीन भिन्न-भिन्न किंवदंतियां हैं, और यह तीनों ही बताती हैं कि पुरी (पुरुषोत्तमक्षेत्र) के श्री जगन्नाथदेव जी के चरणों पर अर्पित करने के लिए वैष्णव संत विष्णुपुरी जी ने, जो कि काशी में रहते थे, यह रचना की थी।

'भक्ति-रत्नावली' की रचना के विषय में तीन भिन्न किंवदंतियां

'विश्वकोष' में जिस घटना का उल्लेख है, और जो 'भक्तमाल' के आधार पर वर्णित है, इस प्रकार है —

---

[1] हिंदी जिल्द २१ पृ० ७०४

कहा जाता है, विष्णुपुरी जी, अधिकतर बनारस में रहते थे। इस पर यह

पहली किंवदंती कथा बना ली गई है। इस में 'पुरी' शब्द पर श्लेष है, जिस से तात्पर्य विष्णुपुरी जी तथा जगन्नाथपुरी तीर्थ दोनों ही से है।

काशी मुक्तिपुरियों में से एक है। कहा जाता है कि पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) से भगवान् जगन्नाथदेव ने विष्णुपुरी के पास यह संदेश भेजा—"पुरी, मैं तुम को भलीभांति समझ गया हूं। तुम भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करने के लिए काशी में बसे हो। और मैं [illegible] का निवासी न तुम को भुक्ति दे सकता हूं न मुक्ति। इसी लिए मेरे पास आना तुम्हें रुचिकर नहीं, फिर भी मैं तुम्हें देखने की आशा करता हूं।"

भगवान् जगन्नाथदेव के इस व्यंग्य और प्रेमपूर्ण संदेश को सुन कर विष्णुपुरी ने निम्न उत्तर भेजा—"मेरे स्वामिन्, मैं भुक्ति, मुक्ति, गया, काशी, मथुरा, वृंदावन अथवा किसी और वस्तु को नहीं जानता। मेरे स्वामिन्, मैं आप को तथा आप की महत्ता को भी नहीं जानता। मैं केवल इतना जानता हूं कि जब से जगन्नाथ-कृष्ण का नाम मेरे कानों में पड़ा है, तब से मैं उस नाम की माला गले में धारण किए हुए हूं। अब जब स्वामी की प्रसन्नता-पूर्वक यह आज्ञा हुई है कि मैं आप के सामने उपस्थित होऊं, तो मैं अवश्य चरणों पर उपस्थित होऊंगा।"

कुछ समय के अनन्तर, विष्णुपुरी जी अपनी रचना 'विष्णुभक्ति-रत्नावली' ले कर पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) गए और जगन्नाथदेव के दर्शन कर के उन के चरणों पर उसे समर्पित किया।

भगवान् के समक्ष अर्पित होने के कारण वैष्णव भक्त-जनों के बीच विष्णुपुरी जी के ग्रंथ का मूल्य और बढ़ गया। वैष्णवों में एक दूसरी कथा भी प्रचलित है। वह यह कि

दूसरी कथा नदिया के चैतन्यदेव और विष्णुपुरी जी की काशी में भेंट हुई, जिस समय कि चैतन्यदेव जी अपनी वृंदावन की तीर्थयात्रा से वापस आ रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि दोनों महात्मा एक-दूसरे को देख कर अत्यंत हर्षित होते। चैतन्यदेव विष्णुपुरी जी की विद्वत्ता से और विष्णुपुरी जी नदिया के संत के व्यक्तिगत आकर्षण तथा धार्मिक महानता से प्रभावित हुए। चैतन्यदेव बंगाल चले गए और बाद में उन्हों ने पुरी में स्थायी रूप से निवास किया

जो किवदंती वैष्णवो मे प्रचलित है[1] वह यह है कि विष्णुपुरी का एक शिष्य यात्री के रूप में काशी से पुरी गया, और वहा पर चैतन्यदेव से मिला और अपने गुरु की ओर से वदना निवेदन किया। पुरी से काशी के लिए प्रस्थान करते समय उस ने चैतन्यदेव से पूछा कि आप विष्णुपुरी जी के पास कोई संदेश तो न भेजेंगे। एकत्रित वैष्णवो के सामने चैतन्यदेव ने लौटते हुए यात्री से कहा कि विष्णुपुरी से कह देना कि मेरे लिए एक 'रत्नावली' भेजेंगे।

जो साधु वहा एकत्र थे, उन्हो ने चैतन्यदेव जैसे त्यागी महात्मा के मुख से इस बात को सुन कर आश्चर्य माना। परतु किसी को उन से जिज्ञासा करने का साहस न हुआ।

कुछ समय बीता और एक दिन अचानक फिर वही काशी का यात्री आ उपस्थित हुआ। उस ने चैतन्यदेव से कहा कि "विष्णुपुरी जी ने आप के पास यह 'रत्नावली' भेजी है" और यह कह कर एक हस्तलिखित पोथी भेट की। यही पुस्तक 'भक्ति-रत्नावली' थी।

उस वैष्णव-समाज ने, जिस ने कि चैतन्यदेव की माँग पर मन में खेद माना था, अपनी भूल को समझ लिया अब उस ने जाना कि उन के महागुरु ने केवल अपने मित्र को एक शुभ कार्य के लिए प्रेरित किया था। उस हस्तलिखित पोथी को चैतन्यदेव ने जगन्नाथ जी के चरणो पर रख दिया।

उपर्युक्त कथा के आधार पर विष्णुपुरी जी की तिथि लगभग १५०० ई० के होगी। क्योकि चैतन्यदेव (१४८५-१५३३) के वह समकालीन हुए। परतु यह बात सत्य नही जान पडती जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

क्या विष्णुपुरी जी चैतन्य-देव के समकालीन थे ?

'भक्ति-रत्नावली' की रचना-सबधी ऊपर की दोनो ही कथाए एक तीसरी कथा द्वारा कट जाती है। यह तीसरी कथा हमे 'भक्ति-रत्नावली' के किसी अज्ञात टीकाकार की 'भाषा-निबद्ध भक्ति-प्रकाशिका

तीसरी कथा

---

[1] 'दि सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज', जिल्द ७ (भक्ति-रत्नावली कांतिमाला-सहित) १९१२ भूमिका-भाग पृ० ३

टीका' से प्राप्त होती है। यह टीका हिंदी मे दोहा, चौपाई, सोरठादि छदो में है [1]।

इस पुस्तक द्वारा 'भक्ति-रत्नावली' की रचना के विषय मे और ही कथा ज्ञात होती है। यद्यपि काशी और पुरी दोनो ही के नाम उस मे आ गए है।

सत विष्णुपुरी के एक परम भक्त माधवदास ने एक बार उन से मोती और मणियो की अपूर्व माला मॉगी थी, जिस से कि उन्हे आनंद हो। उन की प्रार्थना पर विष्णुपुरी जी ने (भागवत से ले कर) भक्ति-वाक्य-रत्नो की एक माला बना कर पुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी) मे भेजी, जहा कि उन के मित्र माधवदास रहा करते थे। इस कथा के सबध मे इस प्रकार लिखा है—

विष्णुपुरी के मित्रवर, माधवदास प्रवीन।
तिन मागी मनि मुक्ति की, माला सुखद नवीन ॥७॥
तब श्री भगवद्-भक्ति की, रत्नावली बनाइ।
श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र महु, उन को दई पठाइ ॥८॥

कुछ लोग विष्णुपुरी जी का माध्व-साधु होना बताते है और कहते है कि वह चौदहवी सदी के उत्तरार्ध मे जीवित थे।[2] परतु इस वक्तव्य पर पुन. विचार करने की

विष्णुपुरी जी का वैष्णव-संप्रदाय

आवश्यकता है। 'सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज' (हिंदुओ के धार्मिक ग्रथ) सीरीज मे जो मूल-पाठ 'भक्ति-रत्नावली' ग्रथ का दिया है वह "श्री गोपीनाथाय नम।" इस प्रकार कृष्ण के नमस्कार द्वारा आरभ होता है। मैं ने बारह भिन्न-भिन्न हस्तलिखित प्रतिया इस ग्रथ की जॉच की है। उन मे इस प्रकार की वदनाए है.—

श्री राधावल्लभाय नमः।
निम्बादित्याय नमः।

---

[1] देखिए हस्तलिखित प्रति नं० १५४८, जो कि बडोदा ओरियंटल इंस्टिट्यूट में सुरक्षित है। इस प्रति के २ से १०२ पृष्ठ तक है। पहला और १०२ के अनंतर के पृष्ठ लुप्त है। ग्रंथ तेरहवें विरचन के केवल १२ छंदों तक पहुंचा है। प्रति के प्रारंभिक तथा अंतिम पृष्ठों के चित्र इस लेख के साथ दिए गए हैं।

[2] डाक्टर जे० एन० फ़र्कुहर. 'आउटलाइन अव दि रेलिजस लिट्रेचर अव इंडिया' पृष्ठ० ३०२

श्रीमते नीमादित्याय नमः।

श्री राधाकृष्णाय नमः।

श्री राधावल्लभो जयति।

इन से कम से कम इस बात का पता लगता है कि यह ग्रंथ निबार्क के अनुयायियो मे, जो राधाकृष्ण की भक्ति मे मन लगाते थे, बहुत प्रचलित था।

वैष्णवो का सब से महत्त्वपूर्ण ग्रथ 'श्रीमद्भागवत' है। इस मे विष्णु, उन के अवतारो तथा भक्तो के प्रति भक्ति के सिद्धातो की विवेचना है। 'भक्ति-रत्नावली' मे

'भक्ति-रत्नावली' का विषय

नवधा भक्ति के सबध मे विषय-क्रम से तेरह अध्यायो मे सगृहीत 'भागवत' के सुदरतम उद्धरण है। लेखक ने इन मे से प्रत्येक अध्याय को विरचन (मणिमाल) कहा है और सपूर्ण का नाम-करण 'भक्ति-रत्नावली' किया है। विवेचन जनसाधारण के प्रीत्यर्थ हुआ है।

'भागवत' की रचना का प्रमुख कारण यह था कि 'महाभारत' मे उस के रचयिता

'भागवत' के बालकृष्ण के प्रति नवधा भक्ति

व्यास ने भक्ति का वर्णन नही किया था। उस कमी की पूर्ति के लिए यह ग्रथ रचा गया।

'हरिवश' और 'विष्णुपुराण' में यद्यपि कृष्ण के बाल्यकाल की गोप-गोपियो के साथ वृदावन और उस के आस-पास क्रीडा की कथाए भी है, परतु इन मे कृष्ण के चरित्र का समग्ररूप मे विचार हुआ है। 'भागवत' मे बाद के जीवन की चर्चा नही के बराबर है, परन्तु कृष्ण के बाल्यकाल और युवावस्था के वर्णन मे संपूर्ण जोर लगा दिया गया है। यही कारण है कि समस्त वैष्णव-सम्प्रदाय पर और भारतवर्ष के अनेक महापुरुषो पर इस का इतना असर हुआ है।

'भागवत' की उस के पूर्वगामी साहित्य की अपेक्षा विशेषता यह है कि उस मे एक नए भक्ति-सिद्धात का प्रतिपादन हुआ है। इसी मे उस का महत्त्व है। इस विषय पर 'भागवत' के बहुत से कथन रहस्यवाद तथा भक्ति-साहित्य मे प्रमुख स्थान पाने के योग्य है। इस अग की परीक्षा 'भक्ति-रत्नावली' द्वारा सहज मे हो सकती है।

चार प्रारभिक श्लोको (७ ९ १० म भक्ति रत्नावली' के उद्देश्य उस की

विष्णुपुरी जी का 'भक्ति-रत्नावली'-समर्थन

प्रेरणा तथा मूल्य के विषय मे विष्णुपुरी जी ने स्वयं लिखा है और प्रस्तुत संग्रह की उपयोगिता वर्णित की है। अपनी रचना के विषय मे लेखक का वक्तव्य होने के कारण यह श्लोक मूल्यवान् है—

दूराच्छितस्य महिमानमुपेत्य पार्श्वे—
मन्तः प्रविश्य शुभभागवतामृताब्धेः ॥
पश्यामि कृष्णकरुणाञ्जननिर्मलेन
हृल्लोचनेन भगवद्भजनं हि रत्नम् ॥७॥

अर्थात् 'भागवत' की महिमा दूर से सुन कर मैं उस के निकट आया, और उस के अमृतरूपी सागर मे प्रविष्ट हुआ। वहां मैं कृष्ण के कृपारूपी अंजन से निर्मल हुए हृदय के लोचन द्वारा भगवद्भजन रूपी रत्न को देखता हूं।

रचना के लिए प्रेरणा

तदिदमतिमहार्घं भक्तिरत्नं मुरारे—
रहमधिक सयत्नः प्रीतये वैष्णवानाम् ॥
हृदिगतजगदीशादेशमासाद्य माद्यन्
निधिवरमिव तस्माद् वारिधेरुद्धरामि ॥८॥

अर्थात् हृदय के निवासी जगदीश की आज्ञा से प्रेरित हो कर मैं बहुत यत्न के साथ वैष्णव जनो की प्रीति के लिए उस वारिधि (भागवत) से भक्ति-रूपी रत्न का उद्धार करता हूं।

संग्रह का मूल्य

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब मूल्यवान् ग्रंथ 'भागवत' ही मौजूद है तब इस कृति की सार्थकता क्या हो सकती है ? उत्तर यह है कि मूलग्रंथ हस्तामलक नही है, अस्तु ऐसे संग्रह की आवश्यकता हुई जो कंठस्थ[१] किया जा सके।

---

[१] संवत् १८०६ की गुजराती टीका जो आठवें श्लोक के अनंतर है देखिए—
ए ग्रंथनुं प्रयोजन। श्री भागवत छते ए नवो ग्रंथ करवो पड्यो ते शुं ?
ते एटला माटे। भक्तरत्नावली किहितां माला कंठनि विषि धरी होय
तो घणूं शोभ ते माटे ए ग्रंथ कर्यो छि

कंठे कृता कुलमशेषमलंकरोति
वेश्मस्थिता निखिलमेव तमोपहन्ति ॥
तामुज्ज्वलां गुणवतीं जगदीशभक्ति-
रत्नावलीं सुकृतिनः परिशीलयंतु ॥९॥

अर्थात् कठ मे धारण करने पर (अथवा कठस्थ या याद कर लेने पर) यह माला पहनने वाले के शरीर को विभूषित करती है, घर मे रख लेने पर यह अधकार (अज्ञान) का निवारण करती है। सुकृतिजन उस उज्ज्वल गुणवती, जगदीश-भक्ति-रूपी-रत्नावली को ग्रहण करें।

रचना की उपयोगिता

निखिलभागवतश्रवणालसा
बहुकथाभिरथानवकाशिन. ।
अयमयं ननु ताननु सार्थको
भवतु विष्णुपुरीग्रथनग्रहः ॥१०॥

—प्रथम विरचनम्।

अर्थात् विष्णुपुरी द्वारा ग्रथित यह रत्नमाला उन लोगो के लिए सार्थक हो, जो कथा के विस्तार अथवा अवकाश न होने के कारण समस्त 'भागवत' का श्रवण करने मे असमर्थ है।

रचयिता का विनम्र निवेदन

लक्ष्मीपति के चरणो मे अपने प्रयास के फल को समर्पित कर के विष्णुपुरी जी त्रयोदश विरचन मे नीचे उद्धृत तीन श्लोको मे अपनी रचना समाप्त करते हैं।

एवं श्रीश्रीरमण भवता यत्समुत्तेजितोऽहं
चांचल्ये वा सकलविषये सारनिर्धारणे वा।
आत्मप्रज्ञाविभवसदृशैस्तत्र यत्नैर्ममैतैः
साकं भक्तैरगतिसुगते तुष्टिमेहि त्वमेव ॥११॥

—त्रयोदश विरचनम्।

अर्थात् हे लक्ष्मीपति, आप के ही द्वारा प्रेरित हो कर, चाचल्य-वश अथव समस्त विषय म सार निर्धारण करने के लिए जैसा भी समझा जाय मैं ने अपने

योग्यतानुसार और भक्तो की सहायता मे इस माला के गूथने का कार्य किया है। इसे कृपा कर आप ही ग्रहण करे।

पाठकों को संबोधन

विष्णुपुरी जी उस के बाद कहते है कि उन का प्रयास विविध-जनो द्वारा ग्रहण किए जाने के योग्य है—

साधूनां स्वतएव सम्मतिरिह स्यादेव भक्त्यर्थिना-
मालोक्य ग्रथनश्रमं च विदुषामस्मिन् भवेदादर.।
ये केचित्परकृत्युपश्रुतिपरास्तानर्थये मत्कृतिं
भूयो वीक्ष्य वदन्त्ववद्यमिह चेत्तश वासना स्थास्यति॥१२॥

अर्थात् भक्तियुक्त साधु-जन स्वत इस कृति का स्वागत करेंगे और मेरे ग्रन्थ-ग्रथन-सबधी श्रम को देख कर विद्वान् लोग उस का आदर करेंगे। जो कोई दूसरे की कृति मे दोष ढूँढते है, वे मेरी कृति को अच्छी तरह देखें और यदि उस में दोष पावे तो यदि उन की वैसी इच्छा हो तो उसे विदित करे।

रचना का भार अपने ऊपर ले कर लेखक विनम्रता-पूर्वक कहता है कि यदि उस के उद्योग से किसी को लाभ पहुँचा तो वह अपने को कृत-कृत्य समझेगा—

विनय-वचन

एष स्यामहमल्पबुद्धि विभवोप्येकोऽपि कोऽपि ध्रुवम्।
मध्ये भक्तजनस्य मत्कृतिरियं न स्यादवज्ञास्पदम्॥
किं विद्याः शरघाः किमुज्ज्वलकुलाः किं पौरुषं किं गुणा—
स्तत्किं सुंदरमादरेण रसिकैर्नापीयते तन्मधु॥१३॥

अर्थात् मै जैसा भी हू—अल्पबुद्धि, अविदित और एकाकी—मेरी कृति भक्त जनो के मध्य मे अनादर का पात्र न हो। मधु-मक्खियाँ विद्या, उज्ज्वल कुल, पौरुष और गुण का क्या गर्व कर सकती है? फिर भी क्या रसिक-जन आदर के साथ उन का सुदर मधु पान नही करते?

'भक्ति-रत्नावली' का मूलपाठ, जैसा कि 'सेक्रेड बुक्स अव् दि हिंदूज' ग्रथमाला मे इलाहाबाद के पाणिनि आफिस द्वारा १९१२ मे प्रकाशित हुआ है, कुछ भ्रांतियो का कारण बन गया है। प्रथम तो उस में दी हुई संस्कृत टीका बिना सकोच के स्वय विष्णुपुरी जी की निर्मित मान ली गई

'भक्ति-रत्नावली' का मूलपाठ

है। दूसरे पाठ के बिना कई प्रतियों में शोधे हुए छाप देने से कई स्थलों पर अशुद्धियां रह गई हैं।

जहां तक कि पहली बात है, अर्थात् टीकाकार कौन था, यह कई हस्तलिखित प्रतियों के मिलान द्वारा अब निश्चय हो गया है। हमें चार प्रकार की 'भक्ति-रत्नावली' की हस्त-

टीकाएं

लिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं। एक तो वह हैं जिन में कि विष्णुपुरी जी की कृति का मूलपाठ मात्र है। दूसरी वह है जिन में 'कांतिमाला' टीका है, जिस में टीकाकार श्रीधर ने स्पष्ट शब्दों में अपनी रचना की त्रुटियों के विषय में विनम्रता-पूर्वक क्षमा-याचना की है। इसी के साथ श्रीधर की रचना-तिथि तथा रचना-स्थान का निर्देश इस संबंध में संदेह की गुंजाइश नहीं छोड़ता।

'कांतिमाला' के अंत में श्रीधर इस प्रकार लिखता है—

> इत्येषा बहुयत्नतः खलु कृता श्रीभक्तिरत्नावली।
> तत्प्रीत्यैव तथैव सम्प्रकटिता तत् कांतिमाला मया॥
> अत्र श्रीधरसत्तमोक्तिलिखने न्यूनाधिकं यत्त्वभूत्।
> तत्क्षंतुं सुधियोऽर्हतस्वरचनालुब्धस्य मे चापलम्॥१॥[1]
>
> ५　５　५　१
> महायज्ञ-शर-प्राण-शशाङ्क-गुणिते　शाके।
> फाल्गुने शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सुमङ्गले॥२॥
> वाराणस्यां महेशस्य सान्निध्ये हरिमंदिरे।
> भक्ति-रत्नावली सिद्धा सहिता कांतिमालया॥३॥

तीसरे प्रकार की हस्तलिखित प्रतियां वे हैं। जिन में संस्कृत मूल के साथ-साथ

हिंदी-वार्तिक

हिंदी गद्य में वार्तिक दिया हुआ है। यह वार्तिक जिस प्रकार के साधारण वार्तिक होते हैं वैसा ही है और कदाचित् इस में

---

[1]एक हस्तलिखित प्रति (पृष्ठ १—१६०), जिस में संस्कृत मूल के साथ हिंदी वार्तिक है, श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार देती है.—

> अत्र कहत। इहा श्रीधर स्वामी की सत्तम कहते उत्तम जो उक्ति ताको जो लिखन ताके विषे जो न्यूनाधिक घटिबढ़ि होय तत् तत्र रचना जे कर्तव्य ताके विषे लुब्ध ते चपलता ताको क्षंतुं कहत क्षमावान् अर्हं कहू योग्य हे

श्रीधर की 'कान्तिमाला' टीका का आधार ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार का नमूना देने के लिए एक प्रति से आरम्भ का भाग उद्धृत करता हूं, जिस में मूल से मिलान हो सके—

श्रीमते नीमादित्याय नमः। श्री राधाकृष्णाय नमः।

अथ भक्तिरत्नावली सटीक लिख्यते।

श्रीकृष्णं परमानंदं नत्वा कुर्वे यथामतिः।
भक्तिरत्नावलीवार्तिकं वृत्या सज्जनसम्मुखे।।

ये मुक्तावपि। टीका। विष्णुपुरी कहत हैं। तान भक्तानपि तिन वैष्णवनिको सतत अहं वंदे। च पुनः तां भक्तिमपि ता भक्ति को अनुदिवसं अर्थये हूं मागी। त ताहि भक्तप्रियं भक्त हैं प्रिय जाको शरण्यं शरण्ये योग्य ऐसो जो हरि ताहि नित्य भजे। ते भक्त हैं कैसे। ये भक्ता मुक्तावपि निस्पृहाः मुक्ति हूं विषे स्पृहा जे वांछा ताकरि रहित। जिन भक्तनि हरिभक्ति छांडि मुक्ति हूं की वांछा नाही। तिनहां सों भक्ति है। कैसी प्रतिपद प्रतिक्षण प्रोन्मीलत प्रकट होत है आनंद ताको देन हारी जो भक्ति को अस्थाय (?) करि श्री हरि समस्त जे ब्रह्मादिक तिनको मस्तक मणि जाको स्ववशे कुर्वन्ति ताहि अहं वंदे।[१]

'भक्ति-रत्नावली' का नया पद्य-वार्तिक जो खोज मे प्राप्त हुआ है अत्यन्त मूल्यवान् है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह हस्तलिखित प्रति, जो बड़ोदा ओरिएंटल इंस्टीटयूट म

हिंदी पद्य में 'भक्ति-प्रकाशिका' टीका

रक्षित है उस का प्रथम पन्ना प्राप्त नही। इसी प्रकार अन के दो-तीन पन्ने अलभ्य हैं। अतएव लेखक का नाम और उस टीका की तिथि नहीं ज्ञात हो सकी है। इस टीका का पूरा नाम है 'भाषानिबद्ध भक्ति-प्रकाशिका टीका'।

फिर भी, टीका का प्रारंभिक अंश जो लुप्त होने से रह गया है, कुछ आवश्यकीय सूचना प्रकट करता है। इस लिए नीचे जो लंबा उद्धरण उस से दिया जाता है, उस के लिए पाठक क्षमा करेंगे—

---

[१] मूल श्लोक, जो कि 'भक्ति-रत्नावली' का मंगल-श्लोक है और सभी प्रतियों में इस रूप में पाया जाता है, विष्णुपुरी-रचित है, परंतु भूल से इसे पाणिनि आफिस के संस्करण में टीका का प्रारंभिक श्लोक कर के दे दिया गया है।

'भक्ति-रत्नावली' की 'भाषा-निबद्ध टीका' का एक पृष्ठ (नं०
मूल प्रति बड़ोदे के ओरिएण्टल इंस्टिटयूट के संग्रह (नं० १५४५)

—इंस्टिटयूट के अनु

॥ चउपाइ ॥

भाषा रचउ सजन हित लागी। जे कोउ हरि गुण रस अनुरागी।
विष्णुपुरी संग्रह भल कीन्हा। नाम भक्ति रत्नावली दीन्हा॥
तासु अरथ कछु बुधि अनुसारा। रचउ सुभाषा करि विस्तारा।
समझत सुनत सुलभ सब काहू। रुचि बिन श्रवन सुने सुख ताहू।
भनित भदेस वस्तु भलि वरनी। कृष्णभक्ति महिमा भवहरनी।
ताहि हेतु करि संत सुजाना। सुनिहैं सतत करि सनमाना॥
हरिगुन सहित त्रिसद सोई बानी। सुरमुनि जन कवि कहत बखानी।
कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीना। अल्प बुद्धि मैं सब बिधि हीना।
एही ते मोहि देहु जनि खोरी। संतसभा बिनवौं कर जोरी॥

॥ दोहा ॥

क्षमावंत अरु शीलनिधि, करुणाकर गुणग्राम।
भक्ति-रसिक सिरमौर मम, तिन कहु करउ प्रनाम॥
विष्णुपुरी के मित्रवर, माधव दास प्रवीन।
तिन मागि भनि मुक्त की, माला सुखद नवीन॥
तब श्री भगवद्भक्ति की, रत्नावली बनाइ।
श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र महु, उनकौ दई पठाइ॥

॥ चउपाइ ॥

तेरह विरचनों की सूची

करयो त्रयोदश विरचन ताही।
नाम भक्ति रत्नावली जाही॥
त्रिविध जीव सब कहु यह नीकी।
सुंदर विसर जरति हर हीयकी।

महिमा प्रथम भक्ति के बरनी। अति प्रताप भवनिधि कहु तरनी॥
दुसरे महंत सतसग प्रभाऊ। मुक्तिहीन कहँ सुगम उपाऊ॥
भक्ति विशेषण पुनि बहु भाती बरन्यौ तीसरे माम सुहाती

नवधा भिन्न भिन्न नव रीति। संग्रह करयो सुमति यत प्रीति॥
शरणापन्न त्रयोदश मांही। कह्यो ताहि सम कछु जग नाही॥
एही भक्ति रतन की माला। गूंथी चित दै सुभग बिसाला॥
सो सब जग विख्यात सोहानी। श्री भागवत सिंधु ते आनी॥

॥ सोरठा ॥

संग्रह करती बार, विष्णुपुरी निज मन गुन्यौ।
विघ्न न होइ संचार, हरिहरि जन गुण गावतैं॥[1]

प्राचीन गुजराती गद्य-टीका

चौथे प्रकार की हस्तलिखित प्रतियों में संस्कृत मूलपाठ के साथ प्राचीन गुजराती गद्य में टीकाएं मिलती हैं। नीचे एक नमूना उद्धृत किया जाता है जो उसी अंश का है जिस का हिंदी अंश पीछे उद्धृत हो चुका है। इस से पाठकों को दोनों का मिलान करने में सुभीता होगा—

श्रीराधावल्लभो जयति। ये मुक्तावपि। श्रीकृष्णाय नमः। टीका। भक्त रत्नावली लिखिता। एह नो कर्ता विष्णुपुरी। ग्रथिताय श्री भागवत अमृत समुद्र मध्येथी उधर्ण कीधू छि तेहनो अर्थ प्राकृते लषीए छि। विष्णुपुरी-वचन। श्री हरि ने नमू छू निति। ते हरि केहवा छि। जेह ने भक्त वल्लभ छि अथवा भक्तने जे वल्लभ छि। ते भक्त केहवा छि जे मुक्तिनि विषि निस्पृह छि। ते भक्त ने नमू छुं। वली हरि केहेवा छि, प्रतिपद किर्तां क्षण क्षणमि विषि भक्तरूप विकास पामतो थे आनंद तेहनो आपनार छि। वली ये पोतातांने समस्तना मुकुट मणि करि छि। वली ते भक्त केहेवा छि जे सदा हरिना गमताना चालनार छि। ते हरिनि समस्त अर्थनी प्राप्तिनि अर्थि निरंतर भजू छू। सत्त नि-षिनू ये सदाचार जेणि अनूमीत। वली शू ते जणावू। ये आरंभ निरविघ्न समाप्ति करवानि अर्थि श्री भागवत पदि करीने श्रीकृष्ण कीर्तन आचरूं छूं।

मेरी जाँच की हुई विविध हस्तलिखित प्रतियों में इस ग्रंथ की सब से मनोरंजक

---

[1]भक्ति-साहित्य के प्रेमियों के विनोदार्थ 'भ[illegible] के पूरे [illegible] क प्रकाशित होने की [illegible] हैं

प्रति वह है जो लगभग २०० वर्ष हुए अहमदाबाद में लिखी गई थी और जिस में मूल को चित्रित करते हुए प्रायः ५० छोटे चित्र दिए गए हैं। लिखावट की दृष्टि से भी यह मूल्यवान् है, क्योंकि इस से तत्कालीन गुजराती लिपिकला का और टीका-गद्य का भी अनुमान हो जाता है।

गुजराती गद्य टीका-सहित सचित्र प्रति

यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'भक्ति-रत्नावली' की अनेक हस्तलिखित प्रतियां, जो या तो मूल संस्कृत में हैं या गुजराती अनुवाद सहित हैं, प्राप्त होती हैं। गुजरात में, जहां प्रभासपत्तन और द्वारिका जैसे कृष्णोपासना से संबंध रखने वाले तीर्थ-स्थल हैं, वैष्णव धर्म का प्रचुर-रूप से प्रचार रहा है।

गुजरात में श्रीकृष्णोपासना

संतों के निरंतर आवागमन के कारण ही पश्चिम भारत में हम 'गीतगोविंद' की रचना के कुछ वर्ष बाद ही उस का, तथा बिल्वमंगल की 'कृष्ण-कर्णामृत' और 'बालगोपाल-स्तुति' जैसी रचनाओं का प्रचार पाते हैं। यह एक तथ्य है कि चैतन्यदेव ने नृसिंह मुनि के 'भक्ति-रसायन' के विषय में द्वारका में ही सुना था और यह ग्रंथ अपने साथ ले गए थे।

'भक्ति-रत्नावली' की एक सचित्र प्रति मिल जाने से संस्कृत की हस्त-लिखित भक्ति-विषयक प्रतियों की संख्या में एक और वृद्धि होती है। साथ ही साथ हमें लोककला का परिचय भी इन चित्रों द्वारा मिलता है।

गुजरात में प्राप्त 'भक्ति-रत्नावली' की सचित्र हस्तलिखित प्रति

संस्कृत ग्रंथों की सचित्र हस्तलिखित प्रतियां कम मिलती हैं। 'गीता', 'भागवत', 'महाभारत' 'हरिवंश', 'देवीमाहात्म्य', 'सौंदर्यलहरी', 'गीतगोविंद' और 'बालगोपाल-स्तुति'—यह ब्राह्मणधर्म-संबंधी संस्कृत के कुछ ग्रंथ हैं जो कि विभिन्न छोटे चित्रों द्वारा चित्रित हुए हैं। चूंकि 'भक्ति-रत्नावली' की यह प्रति गुजरात में प्राप्त हुई है, अतएव यह स्पष्ट है कि जो शैली चित्रों की इस में है वह वही है जो गुजरात में १८वीं सदी में प्रचलित थी। यह प्रति गुजराती चित्रशैली को समकालीन मुगल और राजपूत शैलियों के बराबर स्थापित करती है।

पुस्तक में अंकित सूचना से यह पता चलता है कि इस प्रति का कर्त्ता अहमदाबाद के श्रीमाली ब्राह्मणों के वंश से किसी कुबेर का पुत्र भट्ट कृपाराम था। और इस का लेखन रविवार फाल्गुन की सप्तमी को संवत् १८०६ वि० १७५० ई० में

अर्थात् लगभग २००[1] वर्ष पूर्व समाप्त हुआ है। नकल करने का स्थान नडीआद था 'रसिक-विलास' का था जो कि ठीक ३०० वर्ष पूर्व नकल हुई थी। हिंदू मंदिरों में तथा प्राचीन विद्या-प्रतिष्ठित घरानों में खोज करने से अब भी बहुत मूल्यवान सामग्री के प्राप्त होने की सभावना है।

हस्तलिखित प्रति कैसे मिली ?

यह हस्तलिखित प्रति किसी प्रकार श्री फूलशंकर महाराज के हाथों में पड़ गई जो कि एक धार्मिक व्याख्याता है और खभात (मध्य गुजरात) के निवासी थे तथा अमदाबाद में बस गए है। एक मित्र की सहायता से मैं ने इसे प्राप्त किया, मुख्यतया चित्रों के अध्ययन के लिए, और बाद में यह निश्चित किया कि यह सत विष्णुपुरी की 'भक्ति-रत्नावली' है, जिस में बाएं हाथ की ओर मूल सस्कृत है और दाए हाथ प्राचीन गुजराती गद्य में एक चालू टीका है, जिस के बीच-बीच में छोटे चित्र लगे हुए है जो कि मूल को चित्रित करते हैं। प्राप्त प्रति का आकार $10\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}''$ है। इस में २ इंच की एक पटरी सस्कृत मूल के लिए और ६ इंच की दूसरी पटरी गुजराती टीका के लिए है और आवश्यकतानुसार चित्रों का स्थान दिया गया है। परतु ये चित्र लबाई में ६ इंच से अधिक कहीं भी नहीं है। प्राय केवल गुजराती भाग में चित्र दिए गए है और चित्रों के चारो ओर सुदर फूल है।

चित्रों की शैली

इन चित्रों में मुगल और राजपूत शैलियों के ह्रास-युग का आभास मिलता है। फिर भी कुछ स्थलों पर वेषभूषा, भूप्रदेश और शैली में गुजराती लोकशैली का भी प्रदर्शन होता है, जो उस समय प्रचलित थी।

'भागवत' के कुछ प्रमुख व्यक्तियों और दृश्यों के इन चित्रों द्वारा सत विष्णुपुरी जी की 'भक्ति-रत्नावली' में गूँथे हुए रत्नों की आभा का पाठक सुदरतर आभास पा सके यह इन पक्तियों के लेखक की कामना है।

---

[1] इति श्री भक्तरत्नावल्यां त्रयोदशमु विरचन समाप्त। १३। श्री विष्णुपुरी ग्रथितायां श्री भागवतमृताब्धिलब्ध श्री भगवत् रत्नावल्यां संपूर्ण। श्री सं-वत् १८०८ वर्षे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे सप्तमी रविवासरे श्री अमदावाद-वासि श्रीमाली ज्ञाती भट कुबेरात्मज कृपारामेन लिखितमिदं पुस्तकं। मंगलं लेखकानां च च मंगलं मंगलं सर्व प्राणीना मंगल जय मगल श्री रामाय नम

वासवदत्ता-हरण का ठिकरा

(पकाई मिट्टी का; कौशांबी से प्राप्त)

[लेखक—श्रीयुत राय कृष्णदास]

(१)

उदयन (छठी शताब्दी ई० पू०) प्राचीन भारत के प्रसिद्ध और प्रतापी राजाओं में से हैं। वे पाडव-वंश में थे और बुद्ध भगवान् के तुल्यकालीन थे। महाभारत से प्रायः सौ वर्ष बाद हस्तिनापुर को गंगा बहा ले गई थी। अतएव पांडव के वंशधरों ने अपनी राजधानी वहा से उठा कर कौशाबी में स्थापित की थी। यह कौशाबी प्रयाग से कोई बीस कोस पश्चिम-दक्षिण यमुना के किनारे वत्स जनपद की एवं सारे देश की एक बडी समृद्ध नगरी थी। अब इस का अवशेष दस बारह मील के घेरे में, एक पठार के रूप में विद्यमान है, जिस पर कोसम इत्यादि गाँव बसे है। आज भी वहा असख्य प्राचीन वस्तुएं भरी पडी हैं सिक्के, मनके और मृण्मूर्तिया तो जमीन छू देने से मिल जाती है। इस प्रकार की वस्तुओं का सर्वोत्तम सग्रह इलाहाबाद म्युनिसिपल सग्रहालय में है, और उस के बाद काशी के भारतकला-भवन का नबर है, इन दोनों ही सग्रहो का श्रेय इलाहाबाद संग्रहालय के प्राण श्री ब्रजमोहन व्यास के उत्साह को प्राप्त है। उन्ही के उत्साह का फल यह भी है कि विगत १५ नवबर से वहा पुरातत्व-विभाग ने, अपने डाइरेक्टर-जेनरल श्री काशिनाथ दीक्षित की प्रेरणा से खुदाई प्रारभ कर दी है, जिस में अभी से बडी आशाजनक सफलता होने लगी है।

कौशाबी के पठार को देख कर अब भी उस महानगरी की बीती समृद्धि आँखो के सामने नाच उठती है, और जितने पग आप उस पर चलते हैं, यही जान पडता है कि या तो यह कुक्कुटाराम रहा होगा जिसे बुद्ध भगवान् ने अपने अनेक चातुर्मास-निवास से पावन बनाया

था, किंवा महाराज उदयन का सुयामुन प्रासाद रहा होगा जिस से उन की बीन की मधुर लहरी चारों ओर आंदोलित हुआ करती थी, क्योंकि वे अपने समय के बहुत बड़े बीनकार थे—मनुष्य तो क्या हाथियों तक को मोह लिया करते थे।

अस्तु, उदयन का जीवन बहुत घटनापूर्ण था। यहां तक कि उन के सैकड़ों वर्ष बाद उन की कथा प्रचलित थी। कालिदास के 'मेघदूत' में सूचित है कि उदयन से प्रायः ८ सौ वर्ष बाद तक अवंति में उदयन-कथा के कोविद ग्राम-वृद्ध मौजूद थे[1]।

उदयन के जीवन की मुख्य घटनाओं में से एक यह भी थी कि उन्हों ने अवंति जनपद[2] के राजा प्रद्योत वंशी, अपनी प्रचंडता के कारण चंड उपाधिधारी, महासेन की कन्या वासव-दत्ता का हरण किया था। कालिदास ने 'मेघदूत' में इस कथा का भी इंगित किया है[3]।

संप्रति इस कथा के पांच लिखित रूप ज्ञात हैं—(१) भास के नाटक 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण'[4] में, (२) बौद्ध साहित्य[5] में, (३) जैन साहित्य[6] में तथा (४) 'कथा-सरित्सागर'[7] और (५) 'बृहत्कथामंजरी'[8] में। इन में सब से प्राचीन रूप वह है जो 'प्रतिज्ञा-यौगंध-

---

[1] 'प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्'। पूर्वमेघ—३१

[2] जिस की राजधानी उज्जयिनी थी।

[3] 'प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्रजह्रे'। पूर्वमेघ—३४

[4] इस नाटक की कथा-वस्तु यही घटना है। इसे 'त्रिवेंद्रम संस्कृत सीरीज़' ने प्रकाशित किया है। इस लेख में आगे इस के अवतरण दिए गए हैं जिन का पृष्ठ-निर्देश इस के सन् '२० वाले तीसरे संस्करण से है।

[5] 'धम्मपदत्थकथा' अप्पमादवग्ग, उदेनवत्थु के अंतर्गत वासुलदत्तायवत्थु। सारांश के लिए देखिए 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' जिल्द १, पृ० ३९३-३९५

[6] जैन साहित्य में यह कथा अपेक्षाकृत बहुत इधर आती है; इस का सब से पुराना उल्लेख संभवतः 'आवश्यक सूत्र' की टीका में है, जो विक्रम की ७वीं-८वीं शती की रचना है। इस के बाद यह कई ग्रंथों में मिलती है, जैसे—वि० १४वीं शती के, हेमचंद्र सूरिकृत, 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुष-चरित्र' के अंतर्गत 'महावीरचरित्र' में एवं 'कुमारपालप्रतिबोध' में (गायकवाड प्राच्य-ग्रंथमाला में पंडितवर मुनि जिनविजय-संपादित)। शेषोक्त ग्रंथवाली उदयन कथा पर स्व० डा० गुणे का, जुलाई १९२० के 'एनल्स आव् भंडारकर इन्स्टिटयूट' में (पृ० १—२१) एक लेख है।

उक्त ब्योरों के लिए मैं जिनविजय जी का कृतज्ञ हूं

[7] तरंग ३ ५

[8]

रायण मे है, जैसा कि हम आगे देखेंगे। उस का साराश यो है—

महासेन उदयन से वैर रखता है, किन्तु उन की शक्तिमत्ता के कारण उन से युद्ध न कर के उन्हे एक कृत्रिम गज के छल से बदी करा मँगाता है। उन की वीन 'घोषवती' उसे विजयोपहार रूप दी जाती है जिस को वह अपनी युवती कन्या वासवदत्ता को जो बीन सीख रही है, (और जिस के विवाह के सदेश आ रहे है) दे देता है।

उदयन को छुडाने उन के मत्री यौगधरायण तथा सखा वसतक इत्यादि अपने दल सहित उज्जैन पहुँचते है, ओर छद्मवेश मे छिट-फुट हो कर अपना जाल फैलाते है। उन मे से वसतक उदयन तक जा-आ सकता है।

यौगधरायण महासेन के प्रसिद्ध हाथी नलागिरि को उपचारो द्वारा उन्मत्त करा देता है, कि उस हाथी को स्वस्थ करने और वश मे लाने के लिए वत्सराज बधन-मुक्त किए जाय और उन की बीन 'घोषवती' उन्हे वापस मिल जाय, क्योकि उन मे अपनी बीन से हाथी को वश मे लाने की विलक्षण शक्ति है। यौगधरायण बधन-मुक्त वत्सराज को उसी हाथी पर 'घोषवती' बीन सहित, भगा देने का बदोबस्त रखता है कि—

येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते ![1]

किंतु इसी बीच एक दिन वासवदत्ता जल की परनाली फूट जाने के कारण विषम राजमार्ग को छोड कर बंदीगृह की ओर से 'अवनिसुदरी यक्षिणी' के पूजार्थ जाती है। कारागार के परिरक्षक (जेलर) को मिला कर उदयन सयोगवश उसी समय बंदीगृह के द्वार तक आ गए है। वे राजकुमारी पर आसक्त हो जाते है और यौगधरायण से कहला भेजते है कि राजकन्या समेत मेरे उड जाने का उपाय करो। यह सदेश पा कर मत्री प्रतिज्ञा करता है कि—अपने स्वामी को 'घोषवती' बीन और राजकन्या के साथ हाथी पर सवार करा के यहा से चपत न कर दू तो मै यौगधरायण नही[2]।

इस बीच नलागिरि का मद उतारने के लिए और इत्थ उस के त्रास से अपनी और

---

[1]प्रतिज्ञा०, ३।५

[2]यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामिनृपं चैव नास्मि यौगन्धरायण: ॥प्रतिज्ञा०।३।६

अपनों की रक्षा करने के निमित्त महासेन उदयन को मुक्त कर देता है,[१] [illegible] हो जाने पर भी उन्हें इस डर से पुन बंदी नहीं बनाता कि ऐसे उपकर्ता के प्रति [illegible] दुर्व्य-वहार से निंदा होगी[२]।

राजकन्या की एक हथिनी है, जिस का नाम है—भद्रवती[३]। यौगंधरायण का [illegible] गण, गात्रसेवक नाम से, उस हथिनी का रक्षक बन गया है। एक दिन [illegible] की ओट ले कर यह घोषित करता है कि भद्रवती कहीं भाग गई[४]। [illegible] उदयन मुक्त होने पर, पहुँचते-पहुँचते राज-अन्तःपुर तक पहुँच गए,[५] [illegible] उन का प्रेम हो गया। यद्यपि नाटकीय घटना में उस का समावेश नहीं है किन्तु [illegible] अवश्य है कि इधर उदयन की वीणावादन-कला, उधर वासवदत्ता की [illegible] सीखने की प्रवृत्ति इस प्रेम-बंध का कारण हुई थी[६]। अस्तु अब वे नलागिरि के बदले उस हथिनी पर उज्जैन से उड जाते है।

राजकुमारी-हरण के समाचार से स्वभावतः सारी उज्जयिनी [illegible] उठती है। भागे हुए प्रेमी-प्रेमिका का पीछा राजसेना किया चाहती है, जिसे यौगंधरायण और उस का

---

[१] यदस्य चाज्ञां कुरुते नलागिरि. स शिक्षितानां वचनेषु तिष्ठति।
ततो विमुक्तः स्वशरीररक्षणे यशः प्रदातुं सुहृदां च जीवितम्॥ प्रतिज्ञा०, ४।१९

[२] यौगंधरायणः—नेति पश्यत्युपक्रोशभयात्। प्रतिज्ञा०, ॥ पृ० १२२

[३] भटः—भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया. . . . भद्रवती न दृश्यते। प्रतिज्ञा० पृ० १०६

[४] गात्रसेवकः—. . . . कण्डिलशौण्डिक्यागेहं भित्वा भद्रवती पलायते। प्रतिज्ञा०, पृ० ११०

[५] हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना।
नह्य नारुह्य नागेंद्रं वैजयन्ती निपात्यते॥ प्रतिज्ञा०, ४।२०

भाव यह है कि अन्तःपुर में पहुँचे बिना उदयन वासवदत्ता को कैसे पाते और जब वहाँ तक पहुँच गए थे तो उन्हें महासेन को मार डालते क्या लगता था।

[६] भरतरोहकः—भो यौगंधरायण! यदग्निसाक्षिकं महासेनस्य दुहितरं शिष्यां प्रतिगृह्य अदत्तापनयनं कृतं, युक्तेयं भोस्तस्करप्रवृत्तिः?

यौ०—मा मा भवानेवम्। विवाहः खल्वेष स्वामिनः—
भरतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः।
अकृत्वा करिष्यति प्रतिज्ञा० पृ० १२१

दल रोक रखता है। अंत मे वह बंदी कर लिया जाता है। किंतु पकडे जाने तक वह इतना समय बिता देता है कि वत्सराज निकल जाते हैं।[1]

अब क्या हो सकता था! महासेन को हार माननी पडती है। वह अपने अमात्य भरतरोहक को यौगंधरायण के मुक्त करने के लिए भेजता है और अतत: वासवदत्ता-हरण को क्षात्रधर्म के अनुकूल विवाह मान कर उन दोनो के चित्र-फलक द्वारा विवाह संपन्न करता है।

(२)

हाल ही मे भारत-कला-भवन, काशी, को कौशाबी के, एक ही साँचे से बने, पकाई मिट्टी के दो टिकरे मिले हैं, जिन पर प्रत्यक्षत: इसी घटना का एक दृश्य अंकित है। एक टिकरे पर की आकृतिया स्पष्ट है[2], दूसरा[3] कुछ अधिक घिसा हुआ है (देखिए चित्र १,२, तथा ३)। दृश्य इस प्रकार है—

एक हथिनी पर तीन व्यक्ति सवार हैं। दाँत न होने के कारण वह स्पष्टत: हथिनी है। उस का अगला बाया पाँव उठा हुआ है। ऐसा लगता है कि अब चली। उस पर झूल कसा है। घिसे टिकरे मे तीनो सवारो के सिर खंडित है। साफ टिकरे मे सब से आगे वाली मूर्ति का अधिकाश टूट गया है। चेहरा और धड नही बचा है। जितना अंश बचा है उस के दहिने हाथ मे अकुश है जो हस्ति-संचालन की मुद्रा में हथिनी के मस्तक से लगा हुआ है। घिसे टिकरे मे इस व्यक्ति का छाती वाला अश बचा है, जिस से स्पष्ट है कि वह स्त्री है। साथ ही उस (घिसे टिकरे) मे उस का बाया हाथ भी बचा है, जो आगे की ओर बढ़ा हुआ है; मानो हथिनी को आगे बढने का इंगित कर रहा है। इस व्यक्ति के पीछे, बिल्कुल भिड कर दूसरा व्यक्ति बैठा है। साफ टिकरे मे उस के दहिने कधे से ले कर दहिने

---

[1] चिरमरिनगरे निरोधमुक्तः स किल वनान्युपलभ्य भद्रवत्या।
ग्रहणमुपगमिश्यति प्रयातो निमिषित मात्र गतेषु योजनेषु ।। प्रतिज्ञा०, ४।१०

[2] कलाभवन के सहायक संग्रहाध्यक्ष श्री० विजयकृष्ण द्वारा संगृहीत।

[3] दाता—श्री० व्रजमोहन व्यास

चित्र (४)
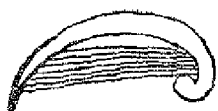
समतंत्री वीणा

चित्र (३)
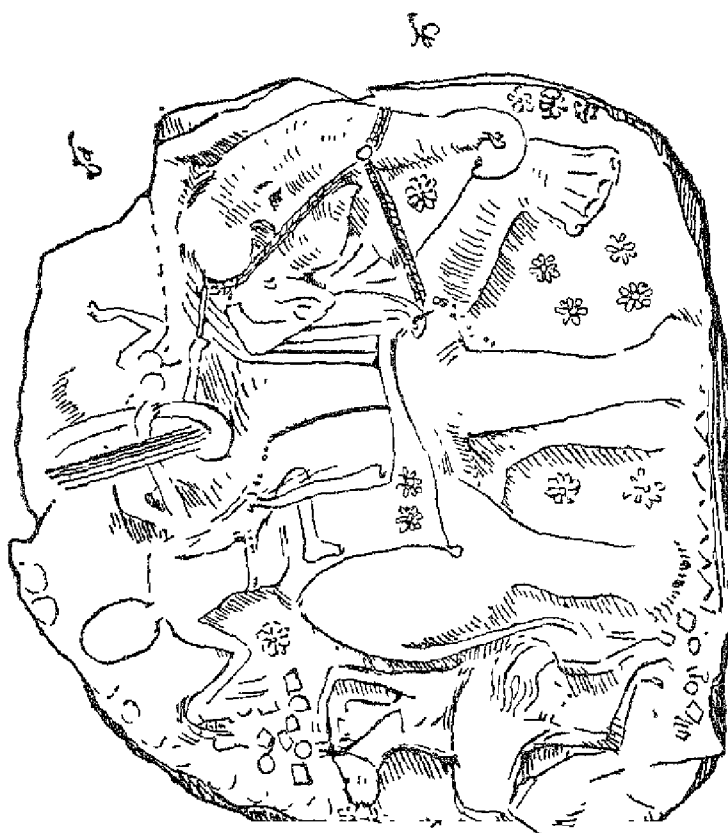
हाथ तक बचा है, जिस मे वह सप्त-तन्त्री वीणा[1] लिए है। विसे टिकरे मे उस के वक्षस्थल का कुछ अग भी बचा है, जिस से प्रमाणित हो जाता है कि यह दूसरा व्यक्ति पुरुष है। उस का कद भी पुरुष का है। उस का निचला धड (अच्छे टिकरे मे) सुरक्षित है, कमर मे धोती है; घुटने पर दुपट्टा पडा हुआ है तथा पैर हथिनी के कान की ओट मे हो गया है। तीसरा व्यक्ति इन दोनों से अलग, पीछे बैठा है। वह भी पुरुष है। स्पष्ट टिकरे मे उस का चेहरा घिस गया है लेकिन आकृति पूरी है। उस के तन पर धोती है और कमर से रस्सा कसा है, जिस का एक छोर आगे बढा है और उसे वह अपने बाए हाथ से थाम्हे है, यह रस्सा हथिनी की कमर के तग वाले रस्से से मिल गया है। अर्थात् तीसरे महाशय इस रस्से के द्वारा हथिनी से इस प्रकार कस दिए गए है कि लुढक न पडे। अस्तु इस तीसरे व्यक्ति का धड कुछ पीछे की ओर झुका हुआ है और मुँह भी पीछे को फिरा हुआ है, क्योंकि अपने दहिने हाथ से वह हथिनी के पीछे की ओर एक थैली झाड रहा है, जिस मे से चौकोर और गोल सिक्के नीचे गिर रहे है। उन्हे हथिनी के पीछे स्थित दो व्यक्ति ले रहे है। इन मे से एक उन्मुख है और अपना दहिना हाथ ऊँचा कर के सिक्के लोक रहा है। इस के सिर और कान शिरस्त्राण से ढके हैं। दूसरा—जो उक्त व्यक्ति के आगे की ओर है—झुक कर पृथ्वी पर गिरे हुए सिक्को को बीन रहा है। यह व्यक्ति वृद्ध है, जैसा कि उस के चेहरे पर की झुर्रियो और भुजा पर की उभरी नसो से मालूम होता है।

टिकरे की कोर पर सितारेदार फूलो की एक लडी बना कर टिकरे की सरहद बाँधी गई है। दृश्य की पृष्ठिका मे जो अग रिक्त है वे नौ पखडी वाली चौफुलिया से अलंकृत किए गए है, टिकरे मे नीचे की ओर शृगाटक बने है। टिकरा पीछे की ओर सादा है और हाथ से पाथ कर बनाया गया है । उस पर हथेली की रेखाए छप गई है। उस के ऊपरी सिरे पर

---

[1] सप्ततंत्री वीणा आज-कल की बीन-जैसी नहीं होती थी, बल्कि वह उस बाजे की तरह होती थी जिसे आज-कल 'कानून' वा 'सुरमंडल' कहते है। अंग्रेजी में इस का नाम 'हार्प' है। प्राचीन यूनान मे भी इस का प्रचार था। एक टेढ़ी लकड़ी में एक के बाद दूसरा कर के सात तार कसे होते है (चित्र ४) जो जवे से बजाए जाते है। प्राचीन काल में तूबे वाली बीन के साथ-साथ इस सप्ततंत्री का भी प्रचार था। समुद्रगुप्त के सोने के सिक्को में एक प्रकार एसा भी ह जिस म वह मच पर बठा ऐसी सप्ततत्री वीणा बजा रहा है

बीचो-बीच एक छेद है। ऐसे छेद प्राचीन काल की अधिकाश मृण्मूर्तियो मे पाए जाते है। जान पडता है, इन मे डोरी पिरो कर मूर्तियो को दीवार पर लटका देते थे।

इन टिकरो के अनुसार वासवदत्ता-हरण की कथा का यह रूप खडा होता है कि उदयन और वासवदत्ता हथिनी पर उज्जैन से भागे। हथिनी वासवदत्ता की थी इसी लिए वह उसे चला रही है। प्राचीन काल मे राजकुमारो की भाँति राजकुमारियाँ भी हस्ति-सचालन करती थी। उस के बाद वाला, सट कर बैठा हुआ, व्यक्ति उदयन है जो दहिने हाथ मे अपनी घोषवती वीणा लिए है।

तीसरा व्यक्ति, जो सब से पीछे है और इस युगल से अलग बैठा है, उदयन का विदूषक वसतक होना चाहिए,[1] क्योकि वत्सराज के लिए कोशाबी का जो दल उज्जयिनी गया था उस मे से वसतक ही की पहुँच उदयन तक थी[2]। दूसरे उस का इस तरह हाथी मे बाध दिया जाना केवल उस की रक्षा का ही नही उस के विदूषकत्व का भी द्योतक है।

जिन लोलुप पिछलगुओ को वह सिक्के बिखेर कर बरका रहा है उन में से एक (शिरस्त्राण-धारी) सैनिक और दूसरा (झुका हुआ) कचुकी होना चाहिए। इस झुके हुए व्यक्ति के वृद्ध होने के कारण हमारी यह उपपत्ति प्रमाणित हो जाती है, क्योकि राजकुमारियो की देख-भाल के लिए ऐसे ही वृद्ध कचुकी रहा करते थे[3]।

इस टिकरे का भास के कथानक से प्राय सर्वथा ऐक्य है। यथा—

(क) उदयन और वासवदत्ता जिस वाहन पर भागे थे वह हथिनी थी।

(ख) वह हथिनी वासवदत्ता की थी।

---

[1] उदयन अपने हाथ में बीन लिए हुए थे तथा उन के साथ वसंतक भी था, ये दोनों अनुश्रुतिया हेमचंद्र के समय तक जीवित थी—

वत्सराजो घोषवतीपाणिः प्रद्योतनन्दना।
कांचनमाला वसन्तश्चारोहन्नामयद्विपीम्॥ त्रिषष्टि०—१०।११।२४८

वसंतक को तो जैन कथा में इतनी प्रधानता है कि वही हस्ति-संचालक है—

......वसंतको हस्तिपकः।
—वही १०।११।२४७

'कुमारपालप्रतिबोध' में भी उक्त ब्योरे प्रायः इसी प्रकार है।

[2] यौगंधरायणः—वसंतक ! गच्छ भूयः स्वामिनं पश्य—प्रतिज्ञा०, पृ० ८९

[3] अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।

(ग) उस हथिनी पर उस का महावत न था।

(घ) उदयन के साथ उस की वीन भी थी।

(ङ) उन के साथ विदूषक वसतक भी था।

भास मे इस दपती के साथ वसंतक के जाने का कोई सीधा उल्लेख नही ह, किंतु यदि वह उज्जयिनी मे रह गया होता तो चौथे दृश्य मे जहा योगधरायण उज्जयिनी वालो से मोर्चा लेता है और अतत पकडा जा कर भी महासेन पर विजयी होता है, वहा वसतक महोदय के लतीफे बीच-बीच मे अवश्य आते। अतएव वसतक का चला जाना भी भास-सम्मत है।

यदि भास वासवदत्ता-हरण का दृश्य अकित करता तो क्या वसतक के मुह से कुछ ऐसा व्यग न कराता—"तुम दोनो तो जीवन का रस लेने के लिए चले। यहा इस ब्राह्मण को क्या स्वस्ति-वलिदान के निमित्त छोडे जाते हो?" अस्तु।

ये टिकरे असदिग्ध रूप से शुगकालीन ह। इन के डौल[1] का चिपटापन (फ्लैट माडेलिंग) उस युग के मूर्ति-शिल्प की विशेषता है। इन मे चौकोर सिक्को का आना भी मार्के की बात है। ये चौकोर सिक्के आहत (पच-मार्क्ड) वा ढले हुए (कास्ट) होने चाहिए। शुगकाल मे इन दोनो ही प्रकार के चौकोर सिक्को का चलन था। शुगकाल के बाद चौकोर सिक्को का बनना और संभवत प्रचलन भी, बद हो गया था।

प्रसगवश यहा यह कह देना भी अनुचित न होगा कि इन टिकरो पर के दृश्य की 'प्रतिज्ञा-यौगधरायण' वाली कथा से एकरूपता के कारण भास के समय पर भी—जो बडा विवादास्पद विषय रह चुका है—एक नया प्रकाश पडता है। अर्थात् इस ऐक्य के कारण भास का समय इन टिकरों से अधिक दूर नही ठहरता। दूसरे शब्दो मे इन टिकरो के कारण जायसवाल द्वारा निर्णीत भास का समय, ई० पू० प्रथम शती, विनिश्चित हो जाता है।

एक तो ये टिकरे कौशाबी के है, दूसरे शुगकाल के है अतएव इन से वासवदत्ता-हरण का जो रूप मिलता है वह अपेक्षाकृत प्रामाणिक होना चाहिए। उधर भास वाला रूप भी, जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, प्राय यही है, अतएव यह मानना चाहिए कि

---

[1] 'माडेलिग' के लिए अपने यहा की क्रिया 'डौलियाना' वा 'डौलना' है। इसी से सुडौल बेडौल आदि विशेषण बनते है

वासवदत्ता-हरण का वास्तविक ऐतिहासिक रूप यही है; इस स्वरूप की स्वाभाविकता भी इस बात की पोषक है।

'कथासरित्सागर'[१] मे इस घटना का जो रूप मिलता है उस मे कहानीपन है। थोडे में वह इस प्रकार है—

" . . . बंदी उदयन को चंड-महासेन ने वासवदत्ता के बीन सिखाने पर नियत किया। वह उदयन से प्रेम करने लगी। उस के पिता ने उसे भद्रवती नाम की हथिनी दी थी, जिस की चाल बडी तेज़ थी। उदयन ने यौगधरायण की (जो एक विद्या के बल से अदृश्य हो कर वत्सराज के पास रह रहा था) सीख से वासवदत्ता को समझाया कि इसी हथिनी पर भाग चले। कुमारी ने हथिनी के महावत आषाढक को, जिसे यौगधरायण ने मिला लिया था, बुला कर हथिनी लाने के लिए कहा। सध्या समय, जब मेघ गरज रहे थे, आषाढक हथिनी तैयार कर के ले आया। उदयन ने, मत्रबल से अपना बंधन खोल डाला। अपनी बीन और शस्त्रो को ले कर, वासवदत्ता, उस की सखी कांचनमाला, अपने सखा वसतक (जो मत्र-बल से छद्मवेश मे उस के पास रहता था) तथा आषाढक के साथ, उस हथिनी पर सवार हो के वह चलता बना। नगर का परकोटा जो उन का बाधक हुआ तो भद्रवती ने उसे तोड डाला और वहा के दो रक्षको ने जो उन्हे रोका तो उदयन ने उन्हे हथियार के घाट उतार दिया[२]। इस प्रकार वह मडली चड-महासेन के हाथ से निकल गई।"

'कथासरित्सागर' मे उदयन द्वारा दो नगर-रक्षक मारे जाते है। इधर टिकरे मे भी दो व्यक्ति उदयन के पीछे लगे है, किंतु यहां उन के मारने की नौबत नही आई है। यहा रिश्वत दे कर उन से पीछा छुडाने मे वसतक ही समर्थ हो जाता है।

कला की दृष्टि से यह टिकरा एक सुदर चीज़ है। इस का डौल चिपटा होते हुए भी कायदे से है। इस की प्रत्येक रेखा सुनिश्चित है; उस मे बारीकी है, साथ ही दम-खम भी है। भारतीय कला मे आरभ ही से हाथी का एक विशिष्ट स्थान है और उसे अकित करने मे अपने कलाकार यथेष्ट सफल भी रहे है। प्रस्तुत टिकरे की हथिनी का अंकन भी वैसा ही हुआ है। उस का अग—क़द-कँड़े से है, उस के बदन की झुर्री बारीकी से दिखाई

---

[१] 'कथासुखलम्बक', ५ वीं तरंग, श्लो० १—२५

[२] तत्स्थानरक्षिणौ वीरौ स्वैरं स हतवान्नृप'। वही, श्लो० २५

है। भद्रवती सीधी और सधी हुई हथिनी थी[1], इसी लिए वह वासवदत्ता को मिली थी—स्वभावतः वह अधेड रही होगी, अत ये झुर्रियां सार्थक है। उस के अगले पैर के भग मे गति भी खूबी से दिखाई गई है। वस्त्रो की सिलवटें और मोड कुशलता से अकित है। पृष्ठिका का खडहर (व्यर्थ अवकाश) आलकारिक फूल छीट कर दूर किया गया है। वासवदत्ता का हस्ति-सचालन के लिए किंचित् झुक कर दहिने हाथ से भद्रवती के सिर पर अकुश लगाना और बाए हाथ को आगे कर के उसे बढाना, उधर वसनक का थैली बिखेरने के लिए, अपने शरीर को सम्हाले हुए, पीछे मुडना भी अच्छा अभिव्यक्त हुआ है, इसी प्रकार सिक्के लोकने और बिनने वालो की मुद्राए भी ठीक अकित हुई है।

इस भाँति इतिहास तथा कला, दोनों ही, की दृष्टि से यह टिकरा विशेष महत्व का है।

अंत मे, यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के टिकरे बनाने की प्रवृत्ति अपने कुम्हारों मे, आज तक चली आती है। मुझे बचपन की याद है कि (वर्तमान महाराज बनारस के पितामह) बूढे काशिराज ईश्वरीनारायण सिंह की—जो बडे रूप-स्वरूप के आदमी थे और काशी मे बहुत लोकप्रिय थे—आकृति वाले मिट्टी के चोखूंटे टिकरे काशी मे बना करते थे। उन मे भी डोरी से लटकाने के लिए छेद रहता था और अलकरण के लिए बूटियो का छिटाव। इसी प्रकार के जगन्नाथ जी की त्रिमूर्ति और रुपए पर की विक्टोरिया की आकृति वाले टिकरे भी बनते थे। सभवत आज भी वैसे सब टिकरे बनते है।

---

[1] स्वभावविनीतायाः भद्रवत्या अंकुशेन किं कार्यम्। प्रतिज्ञा०, पृ० १०७
पुष्पबंध्याया —————— किं कार्यम। प्रतिज्ञा० प० १०८
—पुष्पेण बंधु ।

प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय

[लेखक—डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद)]

(क्रमागत)

३—ब्रह्म-संप्रदाय

मध्वाचार्य ने इस संप्रदाय का प्रचार किया। यह वायु देवता के अवतार माने जाते हैं। इन का जन्म ११९९ ई० में कन्नड प्रदेश मे हुआ था। इन के पिता का नाम 'मध्य गेह' और माता का 'देवता' था। इन का प्रसिद्ध नाम 'आनन्दतीर्थ' ओर 'पूर्णप्रज्ञ' था किंतु पिता इन्हे 'वासुदेव' कहा करते थे। जन्म ही से इन में कुछ वैलक्षण्य था। इन्हो ने बहुत ही अल्पवयस में सन्यास ग्रहण करने की उत्कट इच्छा प्रकट की, किंतु पिता-माता के अनुरोध से इन की इच्छा उस समय पूरी न हो सकी। कुछ दिन बाद जब इन के पिता के दूसरा पुत्र हुआ तब इन्हो ने सन्यास ग्रहण कर लिया और तब से 'पूर्णप्रज्ञ' ही के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस के बाद यह भारत-भ्रमण के लिए निकले और हरिद्वार पहुंचे। यहा कुछ दिन रह कर बदरिकाश्रम की तरफ चले गए और किसी एकांत स्थान में इन्हों ने योगाभ्यास और तपस्या की। कहा जाता है कि तपस्या के अंत मे व्यासदेव ने इन्हे दर्शन दिया और इन को वैष्णव धर्म-प्रचार के लिए तथा 'बादरायणसूत्र' के ऊपर एक भाष्य-रचना के लिए आज्ञा दी। इन्हो ने 'बादरायणसूत्र', 'उपनिषद्' तथा 'गीता' की अपने मतानुसार टीका की। इन के अनेक प्रसिद्ध शिष्य हुए, जिन्हो ने इन के मत के समर्थन मे ग्रंथो की रचना की। 'अनु-व्याख्यान', 'न्यायसुधा', 'पदार्थसंग्रह', 'मध्वसिद्धांतसार' आदि ग्रंथ इन के बहुत प्रसिद्ध है। इन का दार्शनिक सिद्धांत 'द्वैतवाद' है।

पूर्णप्रज्ञ के अनुसार पदार्थ दस है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट अंशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव। इन का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

दो विवादशील वस्तुओं में जो द्रवण अर्थात् गमन प्राप्य हो वही 'द्रव्य' है। उपा-

पदार्थ-विचार : द्रव्य-निरूपण

दान-कारण को भी 'द्रव्य' कहते है, अर्थात् जिस का परिणाम हो या जिस रूप मे परिणाम हो दोनो ही द्रव्य है। उपादान भी दो प्रकार के होते है—परिणाम और अभिव्यक्ति।[1]

द्रव्य के पुन बीस भेद है—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अहंकार, बुद्धि, मन, इंद्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माड, अविद्या, वर्ण, अंधकार, वासना, काल, तथा प्रतिबिंब[2]। इन मे परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत आकाश, तथा वर्ण की तो अभिव्यक्ति होती है, और बाकी का परिणाम होता है।[3]

१—परमात्मा—यह अनत गुणो से पूर्ण है। लक्ष्मी आदि की अपेक्षा परमात्मा का ज्ञान अनंत गुण अधिक है। इस मे श्रुत, अश्रुत, विरुद्ध ये सभी गुण नित्य वर्तमान है। इस का ज्ञान महाशुद्ध, चितिस्वरूप, समस्त विशेषो का स्पष्ट-रूप से दर्शनात्मक, नित्य, एक ही प्रकार का, सूर्य-प्रभा के समान निरतर वस्तुमात्र का प्रकाशक, अभिमान तथा दोषो से रहित, तथा सदैव विकारहीन है[4]। लक्ष्मी मे भी प्राय ये सभी गुण है, किंतु भेद इतना ही है कि परमात्मा मे जो विशेष है वह लक्ष्मी मे नही। यह सभी अत्यत सूक्ष्म विशेषो के साथ अपने को तथा दूसरो को भी देखता है।

सृष्टि, स्थिति, संहार, नियम, अज्ञान, बोधन, बध, तथा मोक्ष इन कार्यो को परमात्मा निरंतर करता है। दूसरा कोई भी इन्हे नही कर सकता, अतएव परमात्मा 'एकराट्' कहलाता है। बिना सर्वज्ञ हुए ये कार्य नही किए जा सकते इस लिए यह सर्वज्ञ है।[5] प्रकृत्यादि जड पदार्थ, ब्रह्मादि जीव तथा महालक्ष्मी सबो से यह अत्यत भिन्न है। शरीर के बिना परमात्मा भी सृष्टि आदि नही कर सकता है, इस लिए परमात्मा का भी शरीर है। यह शरीर नित्य, ज्ञानात्मक, आनदात्मक तथा अप्राकृतिक है। इस का प्रत्येक अंग आनदमय और चित्स्वरूप है। यह सर्वस्वतत्र और एक ही है। इस के समान या इस से परे

---

[1] 'पदार्थसंग्रह', पृ० २३ (क)
[2] वही, पृ० १ (ख)
[3] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० २३ (क)
[4] वही।
[5] वही पृ० २४ क

कोई भी नही है। कोई भी मुक्त पुरुष इस का साम्य नही लाभ कर सकता है, ऐक्य तो दूर है।

जीव के प्रत्येक रूप मे परमात्मा परिपूर्ण-रूप से वर्तमान है। इस लिए सभी अवतारो मे भगवान् पूर्ण-रूप से वर्तमान रहते है। अवतारो के सबध मे बधन और मुक्ति का प्रश्न ही नही हो सकता क्योकि ये अजर, अमर और चिदानंदमय है। इन मे परस्पर किसी प्रकार का भेद नही है। भगवान् का अपना रूप तथा आविर्भूत रूप कोई भी देश, काल तथा गुण से परिच्छिन्न नही है।

सृष्टि, प्रलय, नियमन, ज्ञान, अज्ञान, जीव का बधन अर्थात् ईश्वरेच्छा, अविद्या, कामकर्म, लिंगशरीर, त्रिगुणात्मक मन, स्थूल शरीर तथा मोक्ष ये सब परमात्मा के अधीन है।[1] परमात्मा वैकुठ मे सब प्रकार का भोग करता है। लक्ष्मी आदि के साथ ब्रह्मा आदि मुक्त जीव वैकुठ मे परमात्मा को पूजते है। लक्ष्मी के स्वरूप के अपराजित 'विमिता' नाम के चिन्मय सुवर्ण के बने हुए परम-दिव्य पलग पर भगवान् शयन करते है। अविद्या, विद्या, सत्वादि, तीनो गुण, देहोत्पत्ति, सुख-दुःख ये सब परमात्मा के अधीन है, इस लिए यह नित्य-बध और मोक्ष से रहित है और नित्य-मुक्त है।

मुक्त जीव अपनी इच्छा से शुद्धसत्वमय देह धारण कर उस के द्वारा यथेष्ट भोग का अनुभव कर पुन स्वेच्छा ही से उसे त्याग देते है। इस शरीर मे रजोगुण तथा तमोगुण के न रहने ही के कारण उन मे शरीर-धारण-जन्य बधन नही रहता। इसे ही 'लीला-विग्रह' कहते है। फिर भी यह प्राकृत शरीर ही है[2]। किसी-किसी के मत मे मुक्त जीव पाँच भौतिक शरीर के द्वारा भी भोग कर सकता है, किंतु यह कर्म से उत्पन्न नही है, इस लिए इस शरीर मे इन्हे हम लोगो की तरह सुख-दुःख का ज्ञान नही होता और न उस मे किसी प्रकार का बधन ही उन्हे प्राप्त होता है। यह शरीर उन का स्वेच्छा-स्वीकृत शरीर कहलाता है।[3]

२—लक्ष्मी—यह परमात्मा से भिन्न किंतु केवल उन्ही के अधीन है। ब्रह्मा आदि

---

[1] 'पदार्थसंग्रह', पृ० १४७ (ख)

[2] श्री-संप्रदाय के अनुसार शुद्धसत्वमय लीलाविग्रह अप्राकृत देह है।

[3] " पृ० ३६ ख ३७ क

जीव लक्ष्मी के पुत्र है, और प्रलय मे ये सब लक्ष्मी ही में लीन हो जाते है। परमात्मा की कृपा से बलवती लक्ष्मी एक क्षण मे विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय, महाविभूति, वृत्तिप्रकाश, नियमावृत्ति, बधन तथा मोक्ष को सपादन करती है। हिरण्यगर्भादि जीवो की अपेक्षा, भगवान् की प्रीति, भक्ति और ज्ञान मे लक्ष्मी कोटिगुण अधिक है।

परमात्मा के समान लक्ष्मी भी नित्यमुक्त और आप्तकाम है। ऐसा होने पर भी यह विष्णु की सदैव उपासना करती है। लक्ष्मी और विष्णु का सबध अनादि है इस लिए ये दोनो अनादिनित्य, अनादियुक्त, अनादिमुक्त तथा अनादिकृत है। यह परमात्मा की पत्नी है। ये दोनो नित्यमुक्त है अतएव इन के परस्पर सयोग से सुख की अभिव्यक्ति तो हो ही नही सकती, फिर इन मे पति-पत्नी का सबध मानने का यह कारण है कि भगवान् 'आत्मरमण' होने पर भी लक्ष्मी के प्रति अनुग्रह-पूर्वक लक्ष्मी मे स्वस्त्रीरूप मे प्रवेश कर दूसरे रूप मे क्रीडा करते है, अर्थात् लक्ष्मी मे वर्तमान अपने ही रूप के साथ भगवान् क्रीडा करते है। लक्ष्मी भी चिद्रूप और अनत है।

श्री, भू, दुर्गा, भृणी, ह्री, महालक्ष्मी, दक्षिणा, सीता, जयती, सत्या, रुक्मिणी, आदि सभी लक्ष्मी की मूर्तिया है। यह भगवान् के उर:-स्थल में रहती है और इस अवस्था मे 'यज्ञा' नाम को धारण करती है। 'दक्षिणा' मूर्ति के साथ भगवान् को अत्यन सुख होता है। यह भी अप्राकृत शरीर है। यह देश और काल से ही पूर्ण है, न कि गुण से और यही परमात्मा और लक्ष्मी के आनंत्य का भेदक है।

३—**जीव**—ससारी जीव अज्ञान, दु:ख, भय, मोह, आदि दोषो से युक्त है। ब्रह्मा और वायु मे भी ये दोष है। अज्ञान ने चार बार, भय तथा शोक ने दो बार ब्रह्मा पर आक्रमण किया था। विष्णु के वश मे रहने वाली उन्ही की सूक्ष्म प्रकृति श्री, भू तथा दुर्गा ब्रह्मा आदि को भय देती है, किंतु रुद्र आदि मे जिस प्रकार भय आदि स्थिर होते है, उस प्रकार ब्रह्मा मे नही। अज्ञान भी ब्रह्मा के शरीर को स्पर्शमात्र कर बाहर चला जाता है। ब्रह्मा का मोह मिथ्याज्ञान-रूप नही है, किंतु नियत अपरोक्ष ज्ञान का अभावरूप है। ब्रह्मा का भी शरीर पंच-भौतिक है और बंधन मे पड़ा है। वह भी मोक्ष चाहते है।

ऐसे जीव असख्य है। यह इतने सूक्ष्म है कि एक परमाणु-प्रदेश मे भी अनत जीव रहते हैं। यह आनत्य केवल व्यक्तिगत नही है, किंतु गणगत भी, जैसे—ऋजुगण असुरगण इत्यादि

जीव के तीन भेद है—मुक्तियोग्य, तमोयोग्य तथा नित्यससारी।

मुक्तियोग्य पुन. पाँच प्रकार के है—'देव', जैसे—ब्रह्मा, वायु आदि, 'ऋषि', जैसे—नारदादि, 'पितृ', जैसे—विश्वामित्र आदि; 'चक्रवर्ती', जैसे—रघु, अंबरीष आदि, तथा 'मनुष्योत्तम'। इन जीवो मे अनेक तारतम्य है।

तमोयोग्य पुन दो प्रकार के है—'चतुर्गुणोपासक' और 'एकगुणोपासक'। जो सत्, चित्, आनंद और आत्मा-रूप मे ईश्वर की उपासना करते है वे तो 'चतुर्गुणोपासक' है। और जो केवल आत्मा ही को परमदेव भगवान् समझ कर उस की उपासना करते है वह 'एकगुणोपासक' है। इस उपासना के द्वारा कोई-कोई इसी शरीर मे रहते ही मुक्ति पाते है, और इन का आक्रमण नही होता, जैसे—तृणजीव, स्तव इत्यादि। यह फिर चार प्रकार के है—दैत्य, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य।

नित्यससारी—ये जीव सदैव सुख-दु ख भोगते है। ये मध्यम मनुष्य ही होते है और अनत है। ये सदैव स्वर्ग, नरक तथा पृथ्वी मे घूमते रहते है।

रामानुज के मत में ब्रह्मादि जीवो मे केवल ससार दशा ही मे अतर है। मुक्त होने पर ये सभी जीव समान है, और परमात्मा के साथ भी इन का साम्य मोक्ष मे हो जाता है। तार्किको के अनुसार भी मुक्ति-दशा मे सभी जीव समान है। परतु मुक्त-जीव और परमात्मा मे फिर भी भेद है, क्योकि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वकर्ता और सर्वोत्तम है। मायावाद मे भी सभी जीव परमात्मा से अभिन्न है। भेद तो केवल भ्रम है।

परतु माध्वमत में संसार तथा मोक्ष दोनों ही अवस्था में जीवो मे भी परस्पर भेद है, और परमात्मा भी इन सबो से भिन्न है।[1] इसी कारण मुक्त-जीवों में परस्पर उन के काम, संकल्प तथा आनद मे भी अतर है और इसी से ये मुक्त-जीव भी शुभकर्म करते है। इसी प्रकार परमानद को पाए हुए आविर्भूत स्वरूप योगियो मे भी परस्पर भेद है। फिर भी जो मुक्त-जीवो मे साम्य कहा जाता है वह यह है कि उन मे दु खाभाव, परानद तथा लिगभेद एक ही सदृश है। और ज्ञान के भेद से परमानद के आस्वादन मे भी भेद है।

४—अव्याकृत आकाश—इसे एक प्रकार से दिक् ही समझना चाहिए। सृष्टि-काल में इस में न तो कोई विकार और न प्रलयकाल ही मे इस का नाश होता है। इसी लिए

---

[1] 'पदार्थसग्रह' पृ० ३२ क

इसे 'अव्याकृत' कहते है। इसे गगन, साक्षिगोचर, तथा प्रदेश भी कहते है। यह नित्य है और अहकार के तामस अंश से उत्पन्न भूताकाश से भिन्न है। यह एक, व्याप्त और स्वगत है। पूर्व, दक्षिण आदि विभाग इस के स्वाभाविक अवयव है। इसी कारण जिस स्थान मे सूर्यादि नहीं भी होते, जैसे वैकुठ मे, वहा भी पूर्व आदि दिशाओं का ज्ञान होता है।

भूताकाश से यह भिन्न है, क्योकि अव्याकृत आकाश रूपरहित, कूटस्थ, नित्य, साक्षिसिद्ध, विभु और क्रिया-रहित है, किंतु भूताकाश रूपयुक्त, देहान्तर मे विकारशील, तामस तथा अहंकार का कार्यरूप, एक और अविभु एव गतिशील है। लक्ष्मी इस की अभिमानिनी देवी है। इन्हीं के अधीन यह है।[1]

५—**प्रकृति**—साक्षात्, जैसे—काल और तीनो गुणो का, या परपरा, जैसे—महदादि का, उपादान प्रकृति है। इसी से यह द्रव्य भी है। यह जडा, परिणामिनी, तीनो गुणों से अतिरिक्त, अव्यक्त और नानारूपा है। महाप्रलय के अनतर नवीन सृष्टि का उपादान कारण होने मे यह 'नित्य' है। क्षण, लव आदि काल के विभागो का भी कारण यह है, इसी से व्यापक भी है। इस की अभिमानिनी देवी रमा है। जीवो के लिंग-शरीर की समष्टिरूप ही प्रकृति है। महाप्रलय मे यह अकेली रहती है।

६—**गुणत्रय**—सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणो के समुदाय को गुणत्रय कहते है। भगवान् ने सृष्टिकाल मे मूला प्रकृति से सत्वराशि, रजोराशि तथा तमोराशि को उत्पन्न किया। इसी से महदादि सृष्टि होती है। सृष्टि के लिए इन तीनो गुणो मे निम्नलिखित परिमाण रहता है—तमस् से दो गुना रजस्, और रजस् से दो गुना सत्व। तमोगुण महत्तत्व से दस गुना अधिक परिमाण का है। महत्तत्व के चारो ओर यह दशगुणित तमोगुण घिरा हुआ है।

प्रकृति से पहले केवल शुद्ध सत्व उत्पन्न होता है। सत्व और तमोगुण के मिश्रण से रजोगुण तथा सत्व एव रजोगुण के मिश्रण से तमोगुण होता है। रजोगुण में १ भाग रजस्, १०० भाग सत्व और $\frac{१}{१००}$ भाग तमस् है। तमोगुण में १ भाग तमस्, १० भाग सत्व और $\frac{१}{१०}$ रजस् है। गुणो के इसी वैषम्य को सृष्टि कहते है। सृष्टिकाल मे सत्व-

---

[1] पृ० ३३ क ३५ ख

गुण कभी मिश्रित नही रहता है, यह सर्वदा शुद्ध ही रहता है। गुणो की साम्यावस्था ही को प्रलय कहते है।

रजोगुण से जगत् की सृष्टि, रजोगुण मे विद्यमान सत्वगुण से स्थिति तथा तमोगुण से सहार होता है। सत्व की अभिमानिनी श्री, रजस् की अभिमानिनी भू; तथा तमस् की अभिमानिनी दुर्गा रमा है। ब्रह्मा आदि भी गुणत्रय के अभिमानी है।

७—महत्तत्व—इस का उपादान साक्षात् गुणत्रय का अश है। सभी तीनों गुण महत्तत्व रूप मे नही परिणत होते, कारण महत्तत्व की अपेक्षा मूला-प्रकृति दशगुण अधिक है। प्रलय-काल मे महत्तत्व गुणत्रय मे लीन हो जाता है। उस समय महत्तत्व बारह भागो मे विभक्त होता है। उस से दश भाग शुद्धसत्व मे, एक भाग रजस् में तथा एक भाग तमस् मे प्रवेश करता है। और फिर सृष्टिकाल मे शुद्धसत्व का दश भाग तथा रजस् का एक भाग तमोगुण के साथ मिल जाता है। तब महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। इस मे तीन भाग रजस् है, और एक भाग तमस्। इस प्रकार चारो भागो से युक्त महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्व मे विद्यमान रजोगुण मे सत्वगुण का भी कुछ अश है, इस लिए महत्तत्व मे भी सत्वगुण का अंश रहता ही है। इस महत्तत्व का परिमाण तमोगुण की अपेक्षा दशगुण न्यून है। ब्रह्मा तथा वायु अपनी स्त्रियो सहित महत्तत्व के अभिमानी हैं।

८—अहंकारतत्व—महत्तत्वगत तमोगुण के भाग से 'अहकार' की उत्पत्ति होती है। इस मे दश भाग सत्वगुण, एक अश रजस् तथा रजस् का दसवां हिस्सा तमस् है। यह महत्तत्व से दशगुण न्यून है। गरुड, शेष, रुद्र आदि इस के अभिमानी है। इस के तीन भेद है—वैकारिक, तैजस तथा तामस।

९—बुद्धितत्व—महत्तत्व से 'बुद्धितत्व' की उत्पत्ति होती है। यह दो प्रकार का है—तत्वरूप तथा ज्ञानरूप। इन मे ज्ञानरूप-बुद्धि गुणविशेष है। यह तत्व नही माना जाता है। तैजस अहकार के द्वारा यह उपचित होता है। ब्रह्मा से ले कर उमा पर्यंत इस के अभिमानी है।

१०—मनस्तत्व—यह भी दो प्रकार का है—तत्वरूप तथा उस से भिन्न। वैकारिक अहकार से मनस्तत्व की उत्पत्ति होती है। रुद्र, गरुड, शेष, काम, इन्द्र, अनिरुद्ध, ब्रह्मा, सरस्वती- वायु और चंद्रमा इस के अभिमानी है।

तत्वभिन्न मन इन्द्रिय है वह भी दो प्रकार की है नित्य और अनित्य नित्य

मनोरूप इंद्रिय परमात्मा, लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि सब जीवो का स्वरूप भूत है। यह साक्षी कहलाता है। इसी लिए यह चेतन्य-स्वरूप है। बद्ध जीवो का मन चेतन और अचेतन दोनो है। किन्तु मुक्तो का मन केवल चेतन ही है। भगवान् यद्यपि अपने स्वरूप ही से सब भोगो को भोग सकते है तथापि जीव के देह मे रह कर वह जीव के इंद्रियो द्वारा ही भोग भोगते है। अनित्य मनोरूप इंद्रिय ब्रह्मादि सब जीवो मे है और यह बाह्य पदार्थ है। यह पाँच प्रकार का है—मन, बुद्धि, अहकार, चित्त तथा चेतना। 'मन' सकल्प विकल्पात्मक है। निश्चयात्मिका 'बुद्धि' है। अपने रूप से भिन्न मे अपने रूप की मति ही को 'अहकार' कहते है। 'चित्त' स्मरण का हेतु है। कार्य करने की शक्ति स्वरूप चेतन्य ही 'चेतना' है।

११—इंद्रियतत्व—अपने-अपने विपयो के प्रति गमन की शक्ति जिस में हो वह 'इंद्रिय' है। यह भी दो प्रकार की है—तत्वभूत एव तत्वभिन्न। और भी इस के दो भेद है—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। फिर भी यह नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार की है। इस मे तत्वरूप और अनित्य ज्ञानेंद्रिय एव कर्मेंद्रिय तो तैजस अहकार से उत्पन्न है, किंतु तत्व-भिन्न और नित्य ज्ञानेंद्रिय तथा कर्मेंद्रिय परमात्मा, लक्ष्मी, आदि सब जीवो के स्वरूप भूत है। ये साक्षी कहलाते है। परमात्मा और लक्ष्मी की दश इंद्रिया प्रत्येक गध आदि सब पदार्थो की ग्राहक है। परन्तु मुक्त तथा बद्ध जीवो की इंद्रिया प्रत्येक केवल अपने ही विपय की ग्राहक है। ब्रह्मादि सब जीवो की इंद्रिया अनित्य एव तत्वभिन्न है। ब्रह्मादि की भी स्थूल इंद्रिया है और इन की उत्पत्ति के सबध में यह कहा गया है कि ब्रह्माडान्त पच-भूत सृष्टि के अनतर ब्रह्मादिगत सूक्ष्म इंद्रियाँ ही पाचो भूतो से तथा अहकार से वृद्धि को प्राप्त होती है। और ये ही बाद को स्थूल इंद्रिया हो जाती है।[१] अतएव ये प्राकृत इंद्रिया है। ब्रह्मा आदि तथा सूर्य आदि इन इंद्रियो के अभिमानी देव है।

स्वरूपभूत इंद्रियाँ साक्षी कही जाती है। मुक्तावस्था मे इन के द्वारा साक्षात् सभी पदार्थो का ज्ञान हो जाता है। संसारावस्था में भी साक्षी-स्वरूप इंद्रियो के आत्मा, मन, मनोधर्म, सुख-दुःख आदि, अविद्या, काल एव अव्याकृताकाश साक्षात् विषय है। बाह्येंद्रियो के द्वारा शब्द आदि भी साक्षिगोचर है। ज्ञातभाव से या अज्ञातभाव से सभी अतींद्रिय पदार्थ साक्षिगोचर है।

---

[१] पृ० ४२ क)

१२—**तन्मात्रा**—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पांच विषय 'मात्रा' (अर्थात् इंद्रियों के द्वारा जानने के योग्य) कहलाते हैं। ये भी दो प्रकार के हैं—तत्वरूप तथा उस से भिन्न। तत्वरूप तामस अहंकार से उत्पन्न होते हैं, तथा इन्हें 'पञ्चतन्मात्रा' कहते हैं। ये द्रव्य हैं। इस से भिन्न आकाशादि के गुण जो शब्दादि हैं वे न तो तत्व हैं और न द्रव्य ही हैं। उमा, सुपर्णी, वारुणी, बृहस्पति आदि इन के अभिमान रखने वाले देव हैं।

१३—**भूत**—इन सब तन्मात्राओं द्वारा तामस अहंकार से आकाश आदि पांचों भूतों की उत्पत्ति होती है। शब्द से 'आकाश' की उत्पत्ति होती है। इस के अभिमान रखने वाले विनायक हैं। अहंकार से दशगुण न्यून आकाश है।

१४—**ब्रह्मांडतत्व**—महत् से ले कर पृथिवी-पर्यंत प्राकृत पदार्थ हैं। ब्रह्मांड तो विकृत पदार्थ है। महदादि की उत्पत्ति अलग-अलग एकमात्र उपादान से होती है, किंतु ब्रह्मांड तो चौबीसों, उपादान से उत्पन्न होता है। इसी लिए कहा गया है कि इन चौबीस तत्वों के द्वारा विष्णु बीज-रूप में हो कर अपने स्वरूप को ब्रह्मांड के रूप में परिणत करते हैं। यह पचास कोटि योजन विस्तीर्ण है।

यह ब्रह्मांड एक ही है और घड़े के दो कपालों के समान इस के दो टुकड़े हैं। ऊपर का हिस्सा तो सोने का है और नीचे वाला चाँदी का। सोने वाला भाग 'द्यौ' (आकाश) कहलाता है, और चाँदी वाला 'पृथिवी'।[१] इस ब्रह्मांड को भगवान् कूर्मरूप में तथा वायु धारण किए हुए हैं। यही सभी प्राणियों का तथा चौदहों भुवन का आवास-स्थान है। संधि-स्थल में क्षुर के धार के समान सूक्ष्म छिद्रों से युक्त है।[२] इस के अभिमान रखने वाले देव चतुर्मुख, शक्र, शेष, सुपर्ण आदि हैं।[३]

ब्रह्मांड के अंतर्गत सृष्टि करने के लिए भगवान् ने महत् आदि तत्वों के अंश को अपने उदर में रख कर ब्रह्मांड के भीतर प्रवेश किया। इस के पश्चात् जलशायी भगवान् के उदर के भीतर वर्तमान जलरूप उपादान कारण से नाभि के द्वारा कमल उत्पन्न

---

[१] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५३ (ख)
[२] वही पृ० ५४ (क-ख)
[३] पृ० ५४ ख)

हुआ[1]। उस से चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। इस के बाद फिर ब्रह्माड के भीतर देवताओ की, मन की, तथा आकाश आदि पचभूतो की क्रमश उत्पत्ति हुई।[2]

१५—**अविद्यातत्व**—पचभूत की सृष्टि के बाद चतुर्मुख ने 'अविद्या' की उत्पत्ति की। यथार्थ मे 'अविद्या' या 'माया' अनादि है, अतएव इस की उत्पत्ति नही होती, फिर इस की उत्पत्ति हुई, इस कथन से यह जानना चाहिए कि सूक्ष्म-रूप से तो 'अविद्या' सर्वदैव है फिर भी सृष्टि के लिए इस का स्थूल-रूप आवश्यक है। अतएव ब्रह्माड के बाहर ही अविद्या के स्थूल-रूप को उत्पन्न कर परमात्मा ने ब्रह्माड के मध्य मे रहने वाले चतुर्मुख म उसे रक्खा और ब्रह्मा ने उसे अपने शरीर से बाहर निकाला। इसी से इस की उत्पत्ति मानी जाती है।[3] पचभूतो के तमोगुण ही इस के उपादान है।[4]

इस की पॉच श्रेणियां होती है, जिन्हें, क्रमश मोह, महामोह, तामिस्र, अधतामिस्र तथा तम कहते है। विपर्यय, आग्रह, क्रोध, मरण, तथा शार्वर इन के क्रमिक नामान्तर है।[5] इस के जीवाच्छादिका, परमाच्छादिका, शैवला तथा माया ये भी चार भेद होते है।[6] 'अविद्या' के ये सभी प्रकार जीव ही के आश्रित रहते है। प्रत्येक जीव के लिए भिन्न-भिन्न अज्ञान है। इस की अभिमानिनी देवी दुर्गा है।[7]

१६—**वर्णतत्व**—अकारादि 'वर्ण' के ५१ भेद होते है। इन्ही वर्णों से लौकिक तथा वैदिक सभी शब्द बने हुए है। इन वर्णो मे प्रत्येक देश और काल की अपेक्षा आकाश के समान व्यापक, अनादि तथा नित्य है।[8] वर्ण नित्य-द्रव्य होने के कारण किसी म समवाय सबध से नही रहता।

१७—**अंधकारतत्व**—अंधकार भी एक द्रव्य है, यह तेज का अभाव नही है, और यह प्रकाश का नाशक है। यदि यह अभाव-स्वरूप होता तो 'नील रग का अधार

---

[1] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५५ (क)
[2] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५५ (क)
[3] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ५६ (क-ख)
[4] तात्पर्य, तृतीयस्कंध। [5] वही।
[6] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ५६ (ख)
[7] तात्पर्य
[8] पृ० ५६ ख

इधर-उधर जाता है' ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव नही होता। नील-रूप तथा चलन-रूप क्रिया के आश्रय होने के कारण अधकार का मूर्त्त द्रव्य होना सिद्ध होता है।[1]

अधकार जड़ा प्रकृति रूप उपादान ही से उत्पन्न होता है और वह इतना घनीभूत हो जाता है[2] कि दूसरे कठोर द्रव्य के समान वह भी हथियार से काटा जाता है।[3] महाभारत के युद्ध मे जब सूर्य चमक ही रहा था उसी समय कृष्ण भगवान् ने इसे उत्पन्न किया था।[4] भावरूप द्रव्य होने ही के कारण ब्रह्मा ने इस का पान किया था। स्वतन्त्र रूप से इस की उपलब्धि लोगो को होती है और यह अन्य वस्तुओ को ढाक देता है इस लिए इस का भावरूप होना निश्चित है।[5]

१८—वासनातत्व—स्वप्न मे देखी जाने वाली बातो के उपादान कारण को वासना कहते हैं।[6] माध्व के मत मे स्वप्न में अनुभूत बातें सभी सत्य मानी जाती हैं। स्वप्न शुभदायक और अशुभदायक भी होता है। यदि स्वप्न मिथ्या ही होता तो इस के संबध मे शुभ और अशुभ का प्रयोग ही नही होता।[7]

जाग्रत अवस्था में स्वप्न की बातें नही दीख पड़ती; इस का कारण यह है कि ईश्वर से प्रेरित हो कर वे विद्युत् के समान स्वप्नावस्था ही में उत्पन्न होती हैं, और नष्ट भी हो जाती हैं।[8]

जाग्रत अवस्था में जिन बातों का अनुभव होता है उन्ही अनुभवो से अत करण के सहारे ये वासनाए उत्पन्न होती है। अत करण ही इन का आश्रय है। ये अनुभव अनादि काल से चले आ रहे है और प्रत्येक जीव के मन मे संस्कार-रूप से वर्तमान रहते है। अपनी इच्छा से यही मनोगत सस्कार जीव को दिखलाते है और यही दिखलाई देना स्वप्न कहलाता है।

मनोरथ तथा ध्यान मे भी तो सस्कार से उत्पन्न विषय का अनुभव मन के द्वारा

---

[1] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६० (ख)
[2] वही, पृ० ६१ (क)
[3] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६१ (क)
[4] निर्णय
[5] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६१ (क)
[6] वही, पृ० ६१ (ख)
[7] [illegible] ० ६१ (ख
[8] वही पृ० ६२ (क

होता है, और स्वप्न में भी ऐसा ही होता है, फिर मनोरथ तथा स्वप्न के अनुभवों में भेद इतना ही है कि मनोरथ की सृष्टि मनुष्य के प्रयत्न से होती है किंतु स्वप्न की सृष्टि अदृष्ट के सहारे ईश्वर के अधीन है।[१] इसी प्रकार ध्यान या उपासना में भी जो भगवान् के सदृश आकार दिखाई देता है वह भी वासनामय है, क्योंकि भगवान् साक्षात् ध्यान-विषय तो है नहीं। चित्त का प्रतिबिंब ही उस समय दिखाई देता है। अतएव श्रवण तथा दर्शन आदि से उत्पन्न मानसिक वासनामय वस्तु का अवलोकन करने को ही आचार्यों ने 'ध्यान' कहा है।[२]

१९—कालतत्व—आयु का व्यवस्थापक 'काल' कहलाता है। क्षण, लव, त्रुटि इत्यादि इस के अनेक रूप हैं। नैयायिकों की तरह माध्व ने काल को नित्य नहीं माना है इन के मत में काल प्रकृति से उत्पन्न होता है, और उसी में लय भी होता है।[३] प्रलय-काल में भी काल की उत्पत्ति मानी जाती है और इसी लिए काल का आठवां हिस्सा प्रलय-काल कहलाता है।[४] काल में भी काल होता है, जैसे—'इदानीं प्रातः कालः'। यहां 'इदानीं' भी तो कालवाचक ही है।[५] काल सब का आधार है। काल अनित्य होने पर भी काल का प्रवाह नित्य है। यह सब कार्यों की उत्पत्ति का कारण भी है।[६]

२०—प्रतिबिंबतत्व—बिंब से अलग न रहने वाला और उस के सदृश ही तत्व 'प्रतिबिंब' है।[७] बिंब ही के अधीन इस की सत्ता और क्रिया होने से यह क्रियावान् कहलाता है।[८] स्वयं प्रतिबिंब में क्रिया नहीं है।[९] बिंब और प्रतिबिंब में कहीं ज्ञान, आनंद, आदि गुणों से तथा कहीं चैतन्य, हाथ, पैर आदि के होने से सादृश्य है। इसी लिए परमात्मा का प्रतिबिंब दैत्यों में भी है।[१०]

---

[१] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६२ (क-ख)
[२] वही।
[३] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६३ (क)
[४] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६३ (ख)
[५] वही, पृ० ६५ (क)
[६] 'पदार्थसंग्रह', पृ० ६५ (क) [७] वही, पृ० ६५ (ख)
[८] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६५ (ख)
[९] 'गीताभाष्य'।
[१०] सार' पृ० ६५ ख

यह प्रतिबिंब नित्य और अनित्य दोनो है। परमात्मा[1] से अतिरिक्त जितने चेतन है सभी परमात्मा के प्रतिबिंब है, और ये प्रतिबिंब सभी नित्य है। क्योंकि परमात्मा-रूप बिंब का तथा अन्य चेतनो का अथवा उन की सन्निधि का नाश कभी नही होता। दर्पण मे जो मुख का प्रतिबिंब है वह बिंब-स्वरूप मुख के नाश से, अथवा दर्पण-रूप उपाधि के नाश से, या उन के सन्निधि के नाश से नाश होता है। अतएव ये सब अनित्य प्रतिबिंब है। छाया, परिवेष, इन्द्रचाप, प्रतिसूर्य, प्रतिध्वनि, स्फटिक का लौहित्य, इत्यादि भी प्रतिबिंब कहलाते है।[2]

द्रव्य के बाद 'गुण' दूसरा तत्व है। माध्व ने 'गुण' का 'दोष' से भिन्न अर्थ मे प्रयोग किया है। इन के मत मे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, संयोग, विभाग,

गुणनिरूपण

परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, गुरुत्व, लघुत्व, मृदुत्व, काठिन्य, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, आलोक, शम, दम, कृपा, तितिक्षा, बल, भय, लज्जा, गांभीर्य, सौदर्य, धैर्य, स्थैर्य, शौर्य, औदार्य, सौभाग्य आदि अनेक गुण माने गए है।

इन गुणो मे रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द पृथ्वी मे पाकज और अपाकज दोनो है, किंतु अन्य द्रव्यो मे केवल अपाकज का ही भेद है। माध्वमत मे 'पीलुपाकवाद' नही मानते, क्योकि यह प्रक्रिया प्रत्यक्षविरुद्ध है।

साक्षात् या परपरा से पुण्य और पाप का जो असाधारण कारण है वही 'कर्म' है। कर्म के तीन भेद है—विहित, निहित तथा उदासीन। विधिपूर्वक की गई यज्ञादि क्रिया

कर्मनिरूपण

'विहित कर्म' है। इस के काम्य और अकाम्य दो भेद है। फल की इच्छा से किया गया कर्म 'काम्य' है, और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए किया गया कर्म 'अकाम्य' है। ये दोनो प्रकार के कर्म ब्रह्मा से ले कर छोटे से छोटे जीव तक सभी करते है। 'प्रारब्ध कर्म' भी काम्य ही है। इस मे भी पूर्वतन काम्य पुण्य दो प्रकार का है—प्रारब्ध और अप्रारब्ध। प्रारब्ध का नाश नही होता। अप्रारब्ध फिर दो प्रकार का है—इष्ट और अनिष्ट। इष्ट का भी नाश नही होता।

---

[1] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० ६६ (क)
[2] 'पदार्थसंग्रह' पृ० ६८ (क)

सत्यलोक के आधिपत्य तथा जगत के सर्जन आदि से भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा जो कर्म करते हैं वही उन का काम्य कर्म है। लक्ष्मी-नारायण के जो नमस्कारादि कर्म हैं वे लीला के लिए या शत्रुओं को मोहने के लिए होते हैं। ये काम्य नहीं कहलाते।

मन, वाणी और शरीर से अपने से बड़ों का अपराध करना ही निषिद्ध कर्म है। इस के अतिरिक्त जिन कर्मों का वेद या तन्मूलक शास्त्र में निषेध है, वे भी 'निषिद्ध कर्म' हैं। जैसे, 'न कलज भक्षयेत्'।

विधि और निषेध से भिन्न कर्म 'उदासीन' कहलाता है। यह अनेक प्रकार का है—'उत्क्षेपण'—ऊपर फेंकना, 'अपक्षेपण'—नीचे फेंकना, 'आकुंचन'—सिकुड़ना, 'प्रसरण'—फैलाना, 'गमन'—जाना, 'भ्रमण'—घूमना, 'वमन'—कै करना, 'भोजन'—खाना, 'विदारण'—फाड़ना इत्यादि। ये कर्म चेतन और अचेतन दोनों ही में रहते हैं।

कर्म पुन दो प्रकार का है—नित्य और अनित्य। ईश्वर, जीव आदि चेतना के स्वरूप-भूत कर्म नित्य है, जैसे—सृष्टि, सहार तथा गमन इत्यादि। अनित्य कर्म शरीर आदि अनित्य वस्तुओ मे है।

सामान्य-निरूपण

'सामान्य' के दो भेद है—'नित्य' और 'अनित्य'। 'जाति' और उपाधि' इस के दो और भी भेद है। शास्त्रीय जाति-व्यवहार का जो विषय है वही 'जाति' है, जैसे—ब्राह्मणत्व। इतर निरूपणाधीन निरूपण जिस मे हो वही 'उपाधि' है, जैसे—'प्रमेयत्व', 'जीवत्व', 'देवत्व' इत्यादि। जाति, जो 'यावद्वस्तु भावि' है, नित्य जाति है, किंतु 'ब्राह्मणत्व', 'मनुष्यत्व' इत्यादि, 'अयावद्वस्तु भावि' होने के कारण अनित्य है। इसी तरह 'उपाधि' भी नित्य और अनित्य है। 'सर्वज्ञत्व' परमात्मा मे नित्य उपाधि है, किंतु 'प्रमेयत्व' घट आदि मे अनित्य है।

विशेष-निरूपण

भेद न रहने पर भी भेद के व्यवहार का कारण 'विशेष' है। यह अनंत है। यह सभी पदार्थ मे है। इसी 'विशेष' के कारण गुण और गुणी मे भेद किया जाता है, किंतु विशेषो मे भी परस्पर भेद के लिए उन पर भी अन्य विशेष नही माना जाता है। वह स्वयं विशेष का काम कर लेता है। यह भी नित्य और अनित्य है। ईश्वरादि नित्य द्रव्य मे तो नित्य-विशेष है, घटादि अनित्य द्रव्य में अनित्य-विशेष 'समवाय' ये नहीं मानते

विशेषण के संबंध से विशेष का जो आकार है वही 'विशिष्ट' है। नित्य और अनित्य इस के भी दो भेद हैं। सर्वज्ञत्व आदि विशेषणों से विशिष्ट परब्रह्म आदि 'नित्य-विशिष्ट' है। दंड आदि विशेषणों से विशिष्ट दंडी आदि 'अनित्य-विशिष्ट' है।

विशिष्ट-निरूपण

हाथ, वितस्ति, आदि से अतिरिक्त पट, गगन आदि प्रत्यक्ष सिद्ध 'अंशी-पदार्थ' है। आकाशादि तो नित्य अंशी है, किंतु पट आदि अनित्य-अंशी।

अंशी-निरूपण

'शक्ति' के चार भेद है---अचिंत्य-शक्ति, सहजशक्ति आधेय-शक्ति, और पदशक्ति।

शक्ति-निरूपण

१---**अचिंत्यशक्ति**---अघटित घटना में पटीयसी शक्ति ही 'अचिंत्यशक्ति' है। वह परमेश्वर में संपूर्णरूप से है, और लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि की अपेक्षा परमात्मा में अवधि-रहित है। बैठे रहने पर भी दूर चला जाना, अणुत्व और महत्व दोनों को एक ही समय में अपने में रखना इत्यादि अचिंत्यशक्ति के उदाहरण है। लक्ष्मी में परमात्मा की शक्ति से अनंत अंश न्यून शक्ति है। लक्ष्मी की शक्ति से कोटिगुण न्यून ब्रह्मा तथा वायु की शक्ति हैं। इस प्रकार तारतम्य सभी द्रव्यों में हैं।

२---**सहजशक्ति**---कार्यमात्र के अनुकूल स्वभावरूप शक्ति ही 'सहजशक्ति' है। जैसे---दंड आदि में घट बनाने की अनुकूल शक्ति। यह अतींद्रिय हैं। एक प्रकार से यह कारण धर्म-विशेष ही है। यह सभी पदार्थ में है। यह भी नित्य और अनित्य है---नित्य द्रव्य में नित्य और अनित्य द्रव्य में अनित्य।

३---**आधेयशक्ति**---अन्य वस्तु में आहित अर्थात् दी हुई शक्ति 'आधेयशक्ति' है। जैसे---प्रतिष्ठित प्रतिमा की ही पूजा होती है। उस में प्रतिष्ठारूप-क्रिया के द्वारा प्रतिमा में पूर्व न रहने वाले देवता का सान्निध्य होता है। उसे ही 'आधेयशक्ति' कहते हैं। इसी प्रकार 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इस से व्रीहि में, कामिनी-चरण के आघात से अशोक वृक्ष में अकालिक पुष्प की उत्पत्ति, तथा औषध-लेपन से कास के पात्र में दौड़ने की शक्ति 'आधेयशक्ति' के उदाहरण है।

४---**पदशक्ति**---पद और उस के अर्थ में जो वाच्य-वाचक है वही

'पदशक्ति' है। गोशब्द से गो-अर्थ का ज्ञान जिस से हो वही 'पदशक्ति' है। यह स्वर, ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य में रहती है। मुख्या और परममुख्या इस के भेद हैं। परमात्मा में सभी शब्दों की परममुख्या शक्ति है, अन्य में केवल मुख्या।

सादृश्य-निरूपण

'यह इस के सदृश है', 'वह उस के सदृश है' इन वाक्यों में जिस से परस्पर प्रतियोगी और अनुयोगी का अनुभव होता है वही 'सादृश्य' है। यह नाना है। यह भी नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। नित्य द्रव्य में नित्य और अनित्य द्रव्य में अनित्य है।

अभाव-निरूपण

प्रथम प्रतिपत्ति, अर्थात् ज्ञान में निषेधात्मक भान ही 'अभाव' है। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव तथा अत्यंताभाव ये चार इस के भेद हैं। कार्य की उत्पत्ति से पूर्व ही रहने वाला उस वस्तु का जो अभाव है वही 'प्रागभाव' है। उत्पत्ति के अनंतर ही रहने वाला अभाव 'प्रध्वंस' है। सार्वकालिक जो अभाव है वही 'अन्योन्याभाव' है। यह पदार्थ स्वरूप ही है। यह पुनः नित्य में रहने वाला 'नित्य' है, जैसे—जीवों के आपस के भेद। और अनित्य में रहने वाला अनित्य है, जैसे घट-पट में। अप्रामाणिक प्रतियोगिक जो अभाव, अर्थात् असत् प्रतियोगिक जो अभाव है वही 'अत्यंताभाव' है। जैसे—शशशृंग।

कारण-विचार

'कारण' के दो भेद हैं—उपादान तथा अपादान। परिणामी कारण ही को उपादान कारण और अपादान ही को निमित्त कारण भी बतलाया है। कार्य सत् और असत् दोनों होता है। उत्पत्ति के पूर्व कारण-रूप में तो 'सत्' है किंतु कार्य-रूप में वह 'असत्' है। परंतु उत्पत्ति के बाद कार्य-रूप में तो 'सत्' है और कारण-रूप में 'असत्' है। उपादान और उपादेय में भेद और अभेद दोनों ही हैं। द्रव्य के साथ-साथ रहने वाले गुण, क्रिया, जाति आदि का गुणी, क्रियावान् तथा व्यक्ति के साथ अत्यंत अभेद है। द्रव्य के साथ-साथ न रहने वालों में भेद और अभेद दोनों ही हैं।

ज्ञान-विचार

अंतःकरण का परिणाम ज्ञान है। इस का उत्पत्ति-क्रम यह है—आत्मा का मन के साथ संयोग होता है, मन इंद्रिय के साथ और इंद्रिय अपने विषय के साथ संयुक्त होता है। तब अंतःकरण का परिणाम होता है और इसी परिणाम को ज्ञान कहते हैं। ज्ञान से इच्छा और इच्छा से प्रवृत्ति होती है। अंतःकरण में रहने वाले ज्ञान के साथ बाहर के घट पट आदि से संयोग नहीं

हो सकता, अतएव इन दोनो मे 'विषय-विषयिभाव' सबध माना गया है। प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण इंद्रिय और अर्थ का सयोग है। गुण, क्रिया आदि के साथ भी इद्रिय का सयोग ही होता है। इद्रिय और अर्थ के सयोग के द्वारा चक्षु आदि छ इद्रिया ज्ञान को उत्पन्न करती है। सस्कार के द्वारा मन स्मरण का कारण है। इन के मत मे यथार्थ-स्मृति भी प्रमाण है। प्रत्यक्ष आदि जन्य ज्ञान सविकल्पक ही होता है, निर्विकल्पक नही।

प्रत्यक्ष के आठ भेद है—साक्षि, यथार्थ ज्ञान, तथा छ इंद्रियों से साक्षात् उत्पन्न ज्ञान। अनुमान के तीन भेद है—अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी, तथा केवलव्यतिरेकी। अनुमान मे उतने ही अवयव माने जाते है जितने अनुमिति के लिए आवश्यक हो। पांच अवयवो का होना आवश्यक नही है। पौरुषेय और अपौरुषेय के भेद से आगम दो प्रकार का है। आप्तो[१] मे कहे जाने ही पर पौरुषेय प्रमाण है। अपौरुषेय वेदवाक्य सभी प्रामाणिक है। वेद के अपौरुषेय होने मे एक तो श्रुति (वेद) ही प्रमाण है और यदि वेद पौरुषेय होता तो धर्म और अधर्म आदि की सिद्धि ही नही होती। इन के मत मे प्रमाणो का प्रामाण्य स्वत होता है। ज्ञान के कारण मात्र ही मे ज्ञानगत प्रामाण्य का भी बोध होता है इस लिए उत्पत्ति मे स्वतन्त्र्व है और जहा कही प्रामाण्यग्रह होता है वहा ज्ञान-ग्राहक साक्षी ही के द्वारा प्रामाण्यग्रह होना नियत है, इस प्रकार ज्ञप्ति मे भी स्वतस्त्व है। अप्रामाण्य तो परत. होता है और जाना भी जाता है।

प्रलय के अत मे सृष्टि करने की परमात्मा को इच्छा होती है। तब वह प्रकृति के गर्भ में प्रवेश कर उसे कार्योन्मुख करते है। बाद तीनों गुणो का परस्पर विभाग होता है।

सृष्टिप्रक्रिया-विचार

बाद इस के महद् से ले कर अड-पर्यत तत्वो की तथा उन के अभिमान रखने वाले ब्रह्मा आदि देवताओ की सृष्टि करते है। फिर चेतन और अचेतन अशो को उदर मे निक्षेप कर परमात्मा ब्रह्माड मे प्रवेश करते है। तव देवताओ के मान से हजार वर्ष के अंत मे अपने नाभि से पद्म (कमल) को उत्पन्न करते है। उस पद्म से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न होते है।

---

[१] 'पदार्थसग्रह' पृ० १०० क

और चतुर्मुख जगत की उत्पत्ति के निमित्त हजार दिव्य वर्ष पर्यंत तपस्या करते हैं। उस तपस्या से प्रसन्न भगवान् अपने शरीर से पंचभूत की सृष्टि करते हैं। पंचभूत की सहायता से परमात्मा के द्वारा सूक्ष्म रूप में उत्पन्न किए हुए चतुर्दश लोकों को परमात्मा चतुर्मुख के अंदर प्रवेश कर उन्हीं के नाम को धारण कर स्थूल-रूप में उत्पन्न करते हैं। बाद को सभी देवता अंड के भीतर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार क्रमशः अवशिष्ट सृष्टि हुई।

जब राजसिक तथा तामसिक प्रकृति के लोग सात्विकों पर उपद्रव करने लगे हैं तभी भगवान् के भिन्न-भिन्न अवतार हुए। इन में कृष्ण को छोड़ कर और सभी अवतार परमेश्वर के अंशभूत हैं। किंतु एकमात्र अवतार कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।[१] सब से पहले 'मत्स्य' अवतार हुआ। मत्स्य-अवतार दो बार हुआ। 'कूर्म'-अवतार भी दो बार हुआ, क्योंकि अमृत-मथन दो बार हुआ था। 'वराह'-अवतार भी दो बार हुआ। 'नृसिंह'-अवतार एक बार हुआ। 'वामन'-अवतार भी दो बार हुआ। 'राम'-अवतार भी एक ही बार त्रेता-युग में हुआ। 'परशुराम'-अवतार भी एक ही बार हुआ। इसी प्रकार 'कृष्ण'-अवतार एक ही बार हुआ। 'बुद्ध' तथा 'कल्कि' अवतार भी प्रत्येक एक बार हुआ। ये दश अवतार हुए हैं। इन के अतिरिक्त और भी अवतार हैं जैसे 'व्यास'-अवतार 'राम'-अवतार से पहले हुआ था। 'स्वायंभुव' मनु के समय में 'यज्ञ' और 'ऋषभ' ये दोनों अवतार हुए।[२] इन सभी अवतारों का एकमात्र प्रयोजन दुष्टदमन तथा सज्जनोद्धार है।

भगवान् नानारूप से जगत में आ कर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मोह तथा तुरीय इन अवस्थाओं द्वारा पोषण करते हैं। जाग्रत-अवस्था ब्रह्मादि सभी चेतनों में होती है, स्वप्नावस्था सभी जीवों की होती है। सुषुप्ति तथा मोह अवस्था रुद्रादि सभी जीवों की है। तुरीयावस्था मोक्ष है। गर्भावस्था में भी भगवान् ही सब का पोषक है।

इसी प्रकार प्रलयरूप संहार भी होता है। प्रलय दो प्रकार का है—महाप्रलय और अवांतर प्रलय। तीनों गुणों से ले कर ब्रह्मांड-पर्यंत के अभिमानी ब्रह्मा आदि का नाश महाप्रलय में होता है।[३] इस अवसर पर भगवान् सृष्टि के नाश की इच्छा करते

---

[१] 'भागवत', प्रथम स्कंध।
[२] 'मध्वसिद्धांतसार' पृ० १११ (क-ख)
[३] ,, पृ० ११६ ख

हुए शेष या संकर्षण के भीतर प्रवेश कर मुख मे अग्नि की ज्वाला निकालते हैं और उस से आवरण-सहित ब्रह्मांड जल कर भस्म हो जाता है। सभी कार्य अपने-अपने कारण मे लीन हो कर केवल प्रकृति मात्र रह जाती है। लक्ष्मी भी जलस्वरूपा हो जाती हैं और उस महान् जल-राशि में लक्ष्मी-स्वरूप एक वट के पत्र पर शून्य नाम के (शून्यनामा) नारायण शयन करते हैं।[1] प्रलय में अन्य कोई आश्रय न होने के कारण सभी जीव नारायण के उदर मे प्रविष्ट हो कर रहते हैं। श्वेतद्वीप, अनत-आसन, तथा वैकुठ मे श्री के अशो का नाश प्रलय मे नही होता। अधतमस का भी नाश नही होता। रौरव आदि नरको का नाश होता है। 'अवातर प्रलय' के दो विभाग हैं—'दैनदिन-प्रलय' तथा 'मनुप्रलय'। प्रतिदिन ब्रह्मा के रात्रि आने पर जो नाश होता है वह दैनदिन-प्रलय है। इस अवस्था मे भू, भुव. तथा स्व इन्ही तीनो लोको का नाश होता है। इद्र आदि इस समय मे महर्लोक को चले जाते है। प्रत्येक मनु के भोगकाल समाप्ति के अवसर पर जो नाश होता है वही 'मनुप्रलय' है। इस मे भूलोक के मनुष्यादि मात्र का नाश होता है। अन्य दोनो लोक के वासी महर्लोक को चले जाते हैं और तब ये तीनों लोक जल से पूर्ण रहते है।

संहारप्रक्रिया-विचार

सभी ज्ञान परमात्मा के अधीन है। शरीर, स्त्री, आदि का ममता-रूप ज्ञान तो ससार का कारण होता है और योग्य अपरोक्ष-रूप ज्ञान मोक्ष का हेतु होता है। चतुर्मुख से ले कर उत्तम श्रेणी के मनुष्यपर्यंत सज्जीवो ही को अपरोक्ष ज्ञान होता है। तमोयोग्यो को नही होता। मोक्ष के हेतु अपरोक्ष-रूप ज्ञान के साधन निम्नलिखित हैं—नाना प्रकार के सासारिक दु ख को देख कर सतो की सगति से इहलौकिक तथा पारलौकिक फल मे विराग उत्पन्न होना, शम, दम, तितिक्षा आदि गुणो से युक्त होना, अध्ययन मे निरत होना, शरणा-गति, गरुकुलवास, गुरु के उपदेश से सत्-शास्त्रो को श्रवण करना, उन का मीमासा आदि के द्वारा मनन करना, यथायोग्य गुरुभक्ति, परमात्मा मे भक्ति, अपने नीचों के प्रति दया, अपने समान वालो के प्रति स्नेह, अपने से उत्तम मे भक्ति, ज्ञानपूर्वक निष्काम होना, शास्त्रो में निषिद्ध बातो का त्याग, भगवान् मे सब का समर्पण, जीवो मे, देवो मे तारतम्य को सम-

---

[1] 'भागवत', तृतीय स्कंध।

ज्ञना और भगवान् को सब से ऊँचा जानना, पांच प्रकार के भेदों का ज्ञान,[1] प्रकृति और पुरुष में विवेक-ज्ञान, अयोग्यों की निंदा, और उपासना। ये अठारह मिल कर सभी योग्य जीवों को मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।

उपासना-विचार

'उपासना' के दो भेद हैं—सर्वदा शास्त्र का अभ्यास करना तथा ध्यान करना। किसी को अभ्यास से और किसी को ध्यान से अपरोक्ष ज्ञान मिलता है। अन्य सभी विषयों को हेय दृष्टि से देखते हुए, भगवान् के विषय में अखंड स्मृति[2] को ही ध्यान कहते हैं। इसी को निदिध्यासन तथा समाधि भी कहा है। यह श्रवण और मनन के द्वारा अज्ञान, संशय तथा मिथ्याज्ञान के नाश होने पर होता है। भगवान् के भिन्न-भिन्न गुणों के अनुसार उपासना में भी अनेक प्रकार होते हैं। कोई आत्मस्वरूप एकमात्र गुण को ले कर भगवान् की उपासना करते हैं—वे एक-गुणोपासक हैं। उत्तम श्रेणी के मनुष्य सत्, चित्, आनंद तथा आत्म-स्वरूपवान् इन चारों गुणों से विशिष्ट भगवान् की उपासना करते हैं। इसी प्रकार देवों में भी ब्रह्मा वेद में कहे हुए अनंत गुण और क्रिया से विशिष्ट भगवान् का ध्यान करते हैं। सरस्वती क्रिया अंश ले कर सामान्य-रूप में भगवान् की उपासना करती हैं। अपने-अपने अधिकार के अनुसार देवता लोग भगवान् के भिन्न-भिन्न अंग को ले कर उपासना करते हैं। कोई-कोई ऋषि अपने देह के अंतर्गत बिंब ही की उपासना करते हैं। अप्सराओं को काम-भक्ति से उपासना करनी चाहिए। देवताओं की स्त्रियों को श्वशुर-भाव से भगवान् की उपासना करनी चाहिए। अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उपासना करने से मुक्ति मिलती है अन्यथा उपासना का फल अनर्थ को प्राप्त करता है।[3] उपासना के भेद से दृष्टि से भी भेद है। जैसे कोई अंतर्दृष्टि, कोई बहिर्दृष्टि, कोई अवतारदृष्टि, और कोई सर्वदृष्टि होते हैं। ऋषि लोग अंत प्रकाश वाले होते हैं, इस लिए वे अंतर्दृष्टि कहे जाते हैं। मनुष्य बहि प्रकाश के होते हैं और अतएव वे बहिर्दृष्टि होते हैं। देवता लोग सर्वप्रकाश

---

[1] जीव-ईश-भेद, जीवों में परस्पर भेद, जड़-ईश-भेद, जड़ों में परस्पर भेद तथा जड़-जीव-भेद।

[2] 'तंत्रसार'

[3]

तथा सर्वदृष्टि होते है। अतएव मनुष्यो को अग्नि तथा प्रतिमा (मूर्ति) की उपासना करनी चाहिए।[1] उपासना के अनुसार ही ज्ञान भी होता है।[2]

इन साधनाओ के द्वारा 'मोक्ष' होता है । इन के अतिरिक्त हरि का स्मरण, कीर्तन, जप, अर्चन, द्वादशी[3] आदि व्रत आदि अनेक साधन है जो भक्ति के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के हेतु हैं। अज्ञान तथा बंधन परमात्मा के अधीन है।

मोक्ष-विचार

मोक्ष भी परमात्मा के अधीन है। उक्त साधनो के द्वारा अपरोक्ष ज्ञान होने के बाद परमभक्ति उत्पन्न होती है। तब अत्यत प्रसादप्राप्ति होती है। इस मे प्रकृति अविद्यादि से मोक्ष मिलता है। यह मोक्ष चार प्रकार का है—कर्मक्षय, उत्क्रांतिलय, अर्चिरादिमार्ग, और भोग। अपरोक्ष ज्ञान होने पर सभी सचित पापो का अनिष्ट तथा पुण्यों का सब तरह से नाश हो जाना ही 'कर्मक्षय' कहलाता है। प्रारब्धकर्म का नाश भोग ही से होता है। सत्यलोक के आधिपत्य-रूप पुण्यात्मक प्रारब्धफल का अनुभव ब्रह्मा को शत ब्रह्मकल्पपर्यंत होता है। गरुड तथा शेष को पुण्य-पाप-रूप प्रारब्ध का अनुभव पचास ब्रह्मकल्पपर्यंत होता है। इद्र और काम को बीस ब्रह्म-कल्पपर्यंत, सूर्य, चद्र आदि देवताओ को दश कल्पपर्यंत प्रारब्ध कर्म का अनुभव रहता है। अन्य उत्तम श्रेणी के मनुष्यो को एक ब्रह्मकल्प मात्र अनुभव रहता है। प्रारब्ध कर्म के भोग-फल का अनुभव समाप्त कर सुषुम्ना-रूपी ब्रह्मनाडी द्वारा देह से निकल कर ऊपर जीव उठता है। यहा मे कोई वायु द्वारा चतुर्मुख तक पहुचते है, किसी को सीधे परमात्मा की प्राप्ति होती है। देवताओ का न तो उत्क्रमण होता है और न अर्चिरादिमार्ग ही होता है। मनुष्य आदि को ही दोनों प्राप्त होते है। किंतु इस से मुक्ति नही होती है। उत्तम जीवो मे देह का लय हो जाने से क्रमश मोक्ष मिलता है। उत्तरोत्तर देहो मे क्रमश लय होते-होते चतुर्मुख के देह मे जब जीव प्रविष्ट हो जाते है तब ब्रह्मा के साथ-साथ विरजा नदी[4] मे स्नान करने से लिग-शरीर का नाश[5] हो जाता है। लिग के नाश से जीव-सबंध का नाश

---

[1] 'पदार्थसंग्रह', पृ १४१ (क)
[2] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० १४१ (ख)
[3] द्वादशी तिथि ही हरिवासर है। इस लिए द्वादशी-व्रत हरि की उपासना का अंग कहा गया है।
[4] 'मध्वसिद्धांतसार', पृ० १५९ (क-ख)
[5] 'पदार्थसग्रह' पृ० १५९ ख

समझा जाता है। अंत में साल्ोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य ये चार प्रकार से मुक्ति मे भी जीव भोग प्राप्त करता है। सभी अवस्था मे तारतम्य है, और अपने-अपने उपासना के अनुसार सभी ईर्ष्या, असूया आदि से रहित हो कर आनंद मे मगन रहते है। ये मुक्ति-ससार मे फिर नही आते। ब्रह्मा आदि जब मुक्त हो जाते है तब उन मे सृष्टि करने का व्यापार नही रहता है।
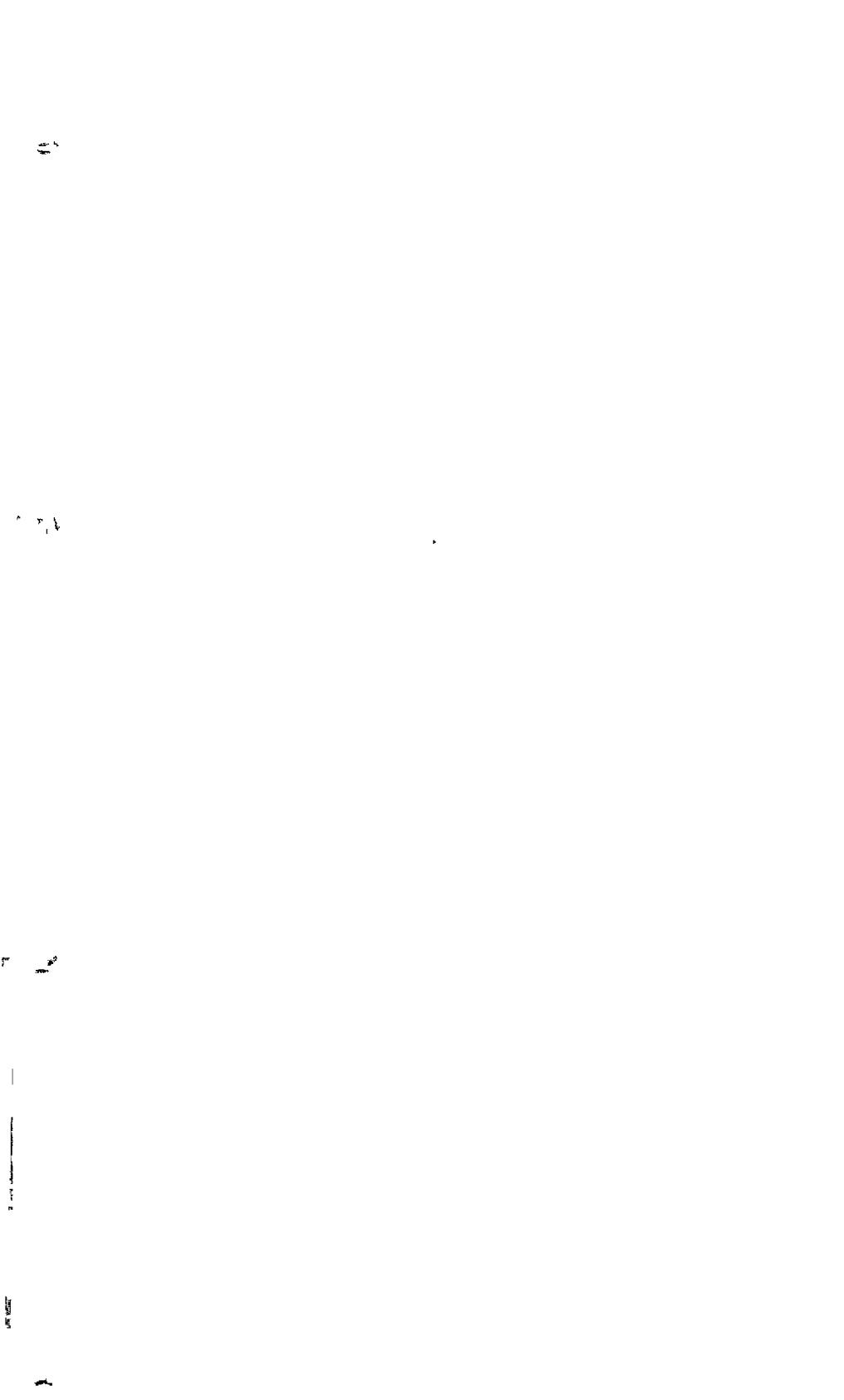
ब्रजभाषा गद्य में मुगलवंश के इतिहास का एक पृष्ठ
(आकार में संक्षिप्त)

ब्रजभाषा गद्य में दो सौ वर्ष पुराना मुग़लवंश का संक्षिप्त इतिहास

[लेखक—श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्, बी०]

हिंदी साहित्य के इतिहास के पन्ने उलटने पर यह ज्ञात हो जाता है कि उस का प्राय सब गद्य-भाग एक सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नही है, और जो कुछ पहले का है वह भी विशेपत धर्म-सबधी है। कुछ पुस्तके केवल सस्कृत ग्रथो की टीका मात्र है और कुछ भक्ति-सबधी है। तथा धर्मप्रचार की दृष्टि से संकलित की गई है। इतिहास, जीवनी तथा अन्य गहन विपयो पर ब्रजभापा या खडीबोली हिंदी मे ग्रथ प्राप्त नही होते। राजस्थानी मे जो दो चार ख्याते प्राप्त है, वे राजस्थान के एक-एक राजवश की ख्यात है और उन मे भी एक भी ऐसी नही है, जिस मे दिल्लीश मुगलवश का शुद्ध इतिहास दिया गया हो। केवल अपने-अपने राजवंश से संबंध रखने वाली घटनाओ के सिलसिले में जो कुछ उल्लेख हो सका है, वही हुआ है। अत ऐसी हालत मे ब्रजभापा गद्य मे यदि कोई ऐसा इतिहास प्राप्त हो, जिस मे सिलसिलेवार अकबर के समय से मुहम्मदशाह के समय तक का पूरा इतिहास दिया गया हो तो वह कितना भी संक्षिप्त हो तब भी सग्रहणीय है। फारसी मे इतने बडे-बडे तथा समकालीन इतिहास-ग्रथो के रहते हुए हिंदी मे इन का अभाव विशेप खटकता है। खोज मे जो नए-नए ग्रथ मिलते जाते है, वे प्राय सभी काव्य-ग्रथ होते है, और यदि कोई गद्यग्रथ मिले भी तो वही कथा-कहानी टीका-टिप्पणी ही के निकलते है।

कुछ समय हुए, एक स्थानीय सज्जन द्वारा मुझे वह हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई जो इस लेख का विपय है, और जिस का मूल पाठ भी प्रस्तुत किया जाता है।

इस पुस्तक के आरभ के चार पृष्ठ, ९वा पृष्ठ, २९वा पृष्ठ तथा कुछ अत के पृष्ठ जिन की सख्या का अनुमान नही किया जा सकता, खो गए है। अतिम पृष्ठ की सख्या ५४ है। इस का आकार लगभग चौथाई फुलस्केप है। और प्रति पृष्ठि मे औसतन १८ पक्तिया

है। आदि के पृष्ठों के अभाव से पुस्तक का नाम नहीं ज्ञात होता। पाँचवें पृष्ठ से पुस्तक का आरम्भ होता है, जिस में मुगलराज्य-संबंधी बहुत से शब्द भी दिए हैं। 'सूबा, सरकार, प्रगना, मौजे-रकबा, मेदानी चौधरी, कानूनगो, हासिल, सायर, अबवाब, [illegible], जागीर, दबाव, आलमगमा, इनाम, खेत, बीघा, बिस्वा, अमीन' इत्यादि प्रथम चार [illegible]। इस प्रकार पाँचवा पृष्ठ समाप्त होने पर छठे से इतिहास शुरू होता है, जो [illegible] दिया गया है। यह बाइसवें पृष्ठ पर समाप्त होता है, तब श्री गणेशाय नमः कर के चालीस दोहे और चौपाई दिए गए हैं, जो नीति तथा शृंगार दोनों के हैं। उस के अनन्तर 'श्री महाराजा माधो स्यघ जी कसूय बरनन' नामक पुस्तिका दो पृष्ठों में है। इस का अंत है—'ऐसा प्रतापतो लिख्या है, दिन प्रति राज बधतो है, नए कारखाने बने जाते हैं, शुभ भवतु।' इस से इतना निश्चय होता है कि लेखक राजा माधोसिंह का समकालीन है। उस के बाद भक्त-माल है, जिस मे तेरह दोहे है और अंत मे 'इति भक्ति भावतिका संपूर्ण' लिखा है।

उक्त भक्ति-भावना के बाद २८ वे पृष्ठ मे हिंदुस्तान की 'पातस्याही' का विस्तार-प्रमाण दिया है और बडासल से गजनी तक के बीच के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरो की दूरी दी गई है। २९वां पृष्ठ गायब है और ३०वे मे मोदीखाना, रिकाबखाना आदि खानो की सूची दी है। डेढ पृष्ठो मे अमीन, करोडी आदि के काम लिखे गए है। इस के अनन्तर ढाई पृष्ठ मे दो, तीन तथा चार आवश्यक पदार्थो के उल्लेख है। फिर डेढ पृष्ठ मे संस्कृत मे दिनचर्या वर्णित है। इस के बाद डेढ पृष्ठो मे 'अथ साल का भेद' दिया है। इस मे ऊनी, जरी आदि वस्त्रो के नाम, रंग आदि दिए गए है। इस के अनन्तर अंत तक वार्ता है अर्थात् तैमूर के समय से औरंगजेब के समय तक की बहुत सी कहानी, चुटकुले आदि कहे गए है, जिन की संख्या ६४ है, ६५ वी अपूर्ण रह गई है।

इतना तो हस्तलिखित पुस्तक के विषय मे लिखा जा सका, पर रचयिता तथा प्रतिलिपि-कर्त्ता और रचनाकाल तथा प्रतिलिपि-काल के बारे मे कही कुछ उल्लेख नही हुआ है। समय के विषय मे कुछ अनुमान भी लगाया जा सकता है पर नाम के लिए तो वह भी संभव नही। रचना-काल के विषय मे निम्नलिखित बातें विचारणीय है —

१—मुग़लवंश का संक्षिप्त इतिहास अकबर के ३७ वे जलूसी वर्ष सन् १५९२ ई० मे जयपुराधीश राजा मानसिंह के उडीसा-विजय से आरंभ किया जा कर सं० १८०५ सन् १७४८ ई० म [illegible] की मयुपर [illegible] के गद्दी पर बठन तक

हुआ है। 'इति एक भेदः' दे देने पर भी लेखक पुन दिल्ली की अशातिमय स्थिति को देख-कर मानो लिखता है कि मनसूर अली वजीर से प्रबध ठीक न हो सका और बादशाह से उस की सर्जी नही मिली। इस वजीर के समय सूरजमल जाट का प्रताप बढा और सं० १८२१ तक बढता रहा। इतिहास से ज्ञात होता है कि सूरजमल इसी वर्ष युद्ध मे मारे गए थे। इन वाक्यो से यह स्पष्टत. ज्ञात होता है कि लेखक उन्नीसवी विक्रमीय शताब्दि के आरभ मे मौजूद था, और यह इतिहास स० १८०५ के बाद तथा स० १८२१ के पहले लिखा जा चुका था। इति के बाद का अश पीछे मे सूरजमल की मृत्यु पर जोडा गया मालम होता है। नजीब खां रुहेला से युद्ध करते हुए सूरजमल मारे गए थे, जिन के पुत्र जवाहिर सिंह ने गद्दी पर बैठते ही बदला लेने के लिए दिल्ली पर आक्रमण कर वहा बहुत उपद्रव मचाया था। पर इस घटना का इस मे उल्लेख नही हुआ है।

२—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु स० १८०० में हुई तब उन के पुत्र ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठे। इन की मृत्यु पर इन के छोटे भाई माधोसिंह जी स० १८०८ ई० मे गद्दी पर बैठे और उन्हो ने सत्रह वर्ष राज्य किया। इन की मृत्यु सन् १७६८ ई० (स० १८२५) मे हुई थी। इन्ही माधोसिंह जी का जो वर्णन लिखा गया है वह सब वर्तमान क्रिया मे है। लिखते हैं कि 'स० १८०७ तेइस वर्ष की अवस्था मे जयपुर तै पधारि आंबेरि का राज्य पाया . . . दिन प्रति राज बधतो है।' इस से यह निश्चय हो जाता है कि यह रचना स १८२५ के पहले ही की है।

३—हस्तलिखित प्रति के कागज, लिखावट तथा उस की दशा से भी यह निश्चय रूप से ज्ञात होता है कि यह प्रति दो पौने दो सौ वर्ष से कम प्राचीन नही है। हो सकता है कि प्रति लेखक की निज की हो और इसी से उस का नाम आदि न आया हो।

उपर्युक्त विचारो से यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त इतिहास स० १८२०—१ की या उस के कुछ पहिले की रचना है।

रचयिता के विषय में इतना ठीक कहा जा सकता है कि वह ब्रजभाषा-भाषी था क्योंकि इस प्रति मे मुख्यत गद्य ही है और गद्य के लिए ब्रजमडल के बाहर के साहित्यिको ने ब्रजभाषा नही अपनाया था। यह जयपुर के दरबार का आश्रित अवश्य था, जैसा कि माधोसिंह जी की दिनचर्या के विवरण से ज्ञात होता है और अपने इतिहास का आरंभ भी इस ने राजा मानसिंह के विजय के उल्लेख ही से किया है भरतपुर-नरेश सूरजमल की

भी प्रशंसा की है, इस से उस दरबार में भी इस का आश्रय पाना जाना जाता है।

अब यह देखना चाहिए कि इस इतिहास में जो कुछ विवरण दिया गया है वह कहां तक विश्वसनीय हो सकता है। पहली बात तो यह है कि लेखक ने जिस वर्ष से अपना इतिहास आरंभ किया है और जिस वर्ष तक उसे समाप्त किया है उस के बीच की जितनी घटनाओं का विवरण दिया है, उन में एक भी विशृंखल नहीं है अर्थात् लेखक ने बाद की घटना को पहले और पहले की घटना को बाद में नहीं लिखा है। उस ने कुल घटनाक्रम को सिलसिलेवार दिया है। लेखक हिजरी सन् से कदाचित् परिचित न था इस लिए उस ने उस का उल्लेख न कर बराबर विक्रमी संवत् का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं जलूसी सन् भी दिए हैं और वे, जैसा टिप्पणी में दिखलाया गया है बिल्कुल शुद्ध हैं। यद्यपि लेखक एक फारसी शेर उद्धृत करने के कारण फारसी का कुछ ज्ञाता मालूम होता है, पर उस ने मुसल्मानों के सभी नाम तथा फारसी शब्दों को ब्रजभाषा का रूप दे दिया है, जैसे मुलाजमति, पातस्याह, फत्ते, फरकसेर आदि।

पाद-टिप्पणियां पूर्ण-रूप से नहीं दी गई हैं, केवल खास-खास स्थलों पर इस लिए लगा दी गई हैं कि यदि पाठक-गण इस पुस्तक की जांच करना चाहें तो यत्र-तत्र उन विशद ग्रंथों से मिलान कर सकें। अब वह इतिहास पूरा यहां उद्धृत कर दिया जाता है—

"राजा मानसिंघ उडीसा का सुबा मैं पातस्याह कौ सिको पुतबो चलायो। तहां के पठाणन के पेसकस हजुरी ल्याये।[१] कंधार कौ पातस्याह ईरान की पातस्याह की फौज सु भाजि हजुरि आयो, पंच हजारी भयो, मुल्तान के सुबा जागिर में पायो। पातस्याही फौज जाय कंधार लीनी। वा दिन तैं कंधार हिंदुस्थान की पातस्याही मैं ठहरी।[२] पाछै ठट्ठा हू लयो। पातस्याह की सन् ३४ मैं तानसैन कलावंत,[३] सन् ४० मैं सेष अबुल फजल फैजी मर्‍यो।[४] साहजादा सुलतान मुराद कौ दषिन पठयो। सौ बरार को सुबा वा अहमद-

---

[१] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) भा० १, पृ० २९७, इलि० डा० जि० ६ पृ० ८६-९

[२] पारसीक दुर्गाध्यक्ष मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने सन् १५९५ ई० में कंधार अकबर को सौंप दिया। (स्मिथ, 'अकबर' पृ० २४८)

[३] यह सन् १५८९ ई० (सन् ९९७ हि०) के अप्रैल में मरा था, जो अकबर का ३४वां जलूसी वर्ष था।

[४] अबुल फ़ैज़ फ़ैज़ी की मृत्यु सन १००४ हि० के १० सफर (१५०९५-९८) को हुई थी जो ४० वां जलूसी वर्ष था ... उमरा' फ़ारसी भा० २

नगर फत्ते करी। बदबस हुवो, तब पातस्याह सेष अबुल फजल कौ तहं भेज्यो। दैवात् साहिजादो परलोक भयो, सब काम सेप उठाये। पातस्याहा दानीयाल साहिजादे कु दषिन भेज्या, पाछे ते आपहु लाहौर तै कूच कीयौ। बटाले आयो तब सुणी मुसलमान फकीर वा सन्यासी को परसपर जुध भयो। मुसलमान प्रबल रहे। कई देवालये ढाये, या अनीति सुणि पातिस्याह कितनै फकीरन कौ कैद कीया, देवालये नये बणाय दये। ऊहा तै आगरे मे कोई दिन रहा। सेष अबुल फजल की अरज दासती पर दषिण कु कूच कीयो। राह मै चबल की नदी उतरतै एक हाथी का पाव की जजीर लोह की हुती सो सुवर्ण भई। पातस्याह वाही घाट करिकै कैऊ हाथी जजीर सहीत ऊतारे, पाषाण बटोरे परतु पारस पायो नही। बुरहानपुर पहुचे। सेप अबुल फजल आसेर घाट घेरचो, बहुचिर बित्यो तब सेप कागुरा परी तनाब लगाये। आप कैयू लोगनि सगि लै कीला मै कुदचो गढ फत्ते भयो।[1] अहमदनगर तिलगानू हू लयो। पातस्याह अबुल फजल कौ हजुरी आगरे बुलायो। वा दिन तै पातस्याजादो जहागीर यलाहबाद मै बागी भयो हतो सो अबुल फजल सो दुप पायो हतो सो या तै मालवा की राह तै आवतै मरायो। या बात तै पातस्याह बडो सोच कीयो, जो वै बडो विद्यावान, अरबी, फारसी, तुरकी, सस्कृत स्वमत परमत निपुण, राज कारज मै दच्छ, सूरबीर मुनसी ग्रथ करता हतो।[2] जदि पातस्याह दषिन की महीम गये हते तब जहागीर कौ राजा मानसिंघ कौ साथ दे राणा उदैसिघ पर पठायो हतो सो वा काम को लगे हते, अैसै मै बगाला कौ उपद्रव कुंवर महासिघ को भजिवो सुण्यो। यातै जहांगीर इलाहाबास[3] जाय तहा पातस्याही अमल जागीर उठाय आप अमल कीयो। तीस लाख रुपये प्रजनो पटणा कौ आवत है सो छीन लीनौ। तीस हजार असवार सग पातस्याह सो मिलबे कौ आगरा की वोर चल्यौ। एक बार तो पातस्याह के लिपे तै हटि गयो, वैहन बेगस समुझाई, राणा परि विदा भयो तहा तै यागी होय फीरी इलाहाबास गयो। पातस्याह की माता मरी। पातस्याह भद्र भये, रथी कांधे लई, जहांगीर मातिम कौ हजुरी

---

[1] स्मिथ, 'अकबर' पृ० २७१-३

[2] 'मआसिरुल् उमरा' (फा०) भा० २ पृ० ६१६–१८

[3] सं० १८२० तक इस से ज्ञात होता है कि इलाहाबाद इसी नाम से पुकारा जाता था

आयौ। साहजादो दानीयाल दषिण में पदारथपय सा मर्‌यो।[१] पाछै पातस्याह हू रोग सू मरे। बरस पातस्याही करी।[२] आगरा में मकबरा भयो। सवत १६७० अवल फजल पर। नूरदी जहांगीर जाको पुर नाम सलीम सो सेलीम बरस को आगरे म तषत बैठ्यो।[३] जमाना बेग कौ महाबत खा कीयो।[४] राजा मानसिंघ बगाला की सूबदारी पाई। व गे बेटा सुल्तान षुसरो यागी होय चन्हाड़ नदी ल्या गयो, ऊहां से लाहोर म पातस्याह पासि पकड्यो आयौ।[५] निदान बदिषाना मं मर्‌यो। पातस्याह काबुल गय। नूरजहां बेगम सेर अफगन की स्त्री, ईनायती बेगम, एतमादुद्दौला की बेटी, आसफ खा की छोटी बहन हुती। प्रथम तो अलि कुली खा ईरान के पातस्याह को सफरची अस्थाल परोसिबो वारो हतो सो हिंदुस्थान मै आइ सेर अफगन षा को षिताब वगाला मे जागीर पाय तहाई को तई-नात भयो। सुभाव को दुस्ट हतो या तै बगाला को सुबादार सो मिलवे गयो तह ठेग म जुध भयो दोउ मारे गये। वाको माल भराय हजुरी आई। तेके पेट की एक बेटी हती सो साहिजादे सहिरयार सौ ब्याह करी दीनी। नूरजहा अति सुदरि चतुरी विद्या मे निपुण, कबित्ता दछ, इगताप ऊदर राज कारज मैं सुबुधि, स्वधर्म सावधान, हावभाव, लीला-विलास: धुरधुर नृत्यगीत मे पबरदारी सौग्य-धैरय सपन्न हती। तापर पातस्याह अति मोहित होई मुष्य बेगम कीनी। जाको छणमात्र बिरह पातस्याह कौ दुसह हतो। सब पातस्याही कौ काम नूरजहा कै आधीन भये।[६] पातस्याह को नाम मात्र रह्यो और हुकुम सब नूरजहा को ठहरचो। कागद फरमान उगैरै बेगम के नाम के चले। सिका मैं पातस्याह वा बेगम को नाम दोऊन कौ नाम हतो। पातस्याह कहते हुवे सो को एक सीसो मदिरा को वा आधसेर मास चहिये और सब बेगम कौ हुकम हासिल। [७]षान आलम एल्ची ईरान

---

[१] सन् १६०४ ई० के अप्रैल में मद्यपान से मृत्यु हुई।

[२] १७ अक्टूबर १६०५ ई० को मृत्यु हुई। इस का जन्म २३ नवबर सन् १५४२ ई० को हुआ था, इस लिए वह सिरसठ वर्ष की अवस्था मे मरा।

[३] वेणीप्रसाद, 'जहाँगीर' पृ० १२९–३०

[४] वेणीप्रसाद, 'जहाँगीर' पृ० १३५ [५] वही पृ० १३९–४७

[६] 'मआसिरुल् उमरा,' भा० १; एतमादुद्दौला की जीवनी, पृ० १२७–३४ उस में नूरजहां की माता का नाम नहीं दिया है। पर डॉ० वेणीप्रसाद असमत बीबी लिखते हैं।

[७] वेणीप्रसाद 'जहाँगीर' पृ० १७–८५

गयो हतो सो आयो। ईरान को पातस्याह वासौ निपट राजी रह्यौ। जान आलमै नाम दियो हतो। बडो चतुर दूतकरम मे सावधान हतो। ईरान को पातस्याह सनेह बस वाके घर आवनो।[1] पातस्याहजादो सुल्तान पुर्रम के तीन बेटा भये दारासीकोह, मुराद बकस। दो[2] पहले भये हते। गुजरान के सूबा दोहदगात्र मै औरंगजेब भयो।[3] आगरा तें लगाय लाहौर ताई पौणा दो दो कोस......।[4]

"पातस्याह कौ अपने काबू मै काबिल लै गयौ। राह मै अटकतें आसफ षा को बेटा समेत कैद करयौ। काबिल तें हिंदुस्थान की वोर फिरे तब नूरजहा गुपतफो की नीगैदास्ती कीनी जबें रुहतासगढ आयै। तब पातस्याह षुस होय कोप पुरबक महावत खा कौं ठठै साह महम रुषसत कीनौ। आसफ षा उगैरे कौ कैद सौ छुडायो। महावत खा यागी होय दषिन मै साहजिहा सौ जाय मिलौ।[5] पातस्याह बटाले आवत ६० साठी बरस की उमरी मै मरे।[6] लाहौर मै मकबरा भयो। बिचि मै साहिजहा क्यो दूर जाणि आसफ षा यद्यपि अनहकरण सौ मिल्यौ हतौ तथापि सलाह के लिये दावर वषस बेटा सुलतान पुर्रम कौं कैद तै निकासि पातस्याह कीनौ। लाहौर मे दानीयाल पातस्याहजादे के बेटा पकडे। निदान साहिजहा के लिये तै मारि डारे। स० १६९९ मै अबुल मुजफ्फर सहबुद्दीन साहजहा तीसरो बेटा जहांगीर कौ ३७ बरस की ऊमरी मे दषिन मै पातस्याह भये। लाहौर मै सिक्का षुतबा पातस्याह को भयो। षानजहा लोदी वो दषिन के सूबा सु आये, आय हिंदुस्थान कौ चले। षानजहा यागी होय मालवा मै षान-

---

[1] वेणीप्रसाद, 'जहाँगीर', पृ० ३३९

[2] शुजाअ का नाम नहीं दिया गया है, पर वही औरंगजेब से बड़ा था। बाद में नाम आ गया है।

[3] यदुनाथ सरकार के 'औरंगजेब' में इसी दोहद गाँव में सन् १६१८ ई० में जन्म लिखा है। (पृ० सं०१) 'तुजुक' (पृ० २५०–१)

[4] इस के बाद ही का एक पृष्ठ गुम हुआ है। शाहजहां के पूरे विद्रोह का और महाबत खां के विद्रोह के आरंभ का उसी पृष्ठ में विवरण रहा होगा।

[5] वेणीप्रसाद, 'जहाँगीर', पृ० ३९२–४१०

[6] जहाँगीर छुटकारे के बाद लाहौर की गर्मी के कारण काश्मीर गए और वहां से लौटते समय रावी नदी के किनारे राजपुरी (राजौर) से एक पड़ाव आगे बढ़ते ही मार्ग मे २८ अक्टूबर सन् १६२७ ई० को ५८ सौर वर्ष और ६० चांद वर्ष की अवस्था में मरे।

स्याह कौ मारग रोकी रह्यौ। पातस्याह मालवा की राह छोडि दई, गुजरात ह्वाई आगरा आये[१]। राह मै राणा कर्ण मिल्यो। अजमेरि को सूबा महाबत खां कू दयो। राजा जै सिघ कछवाहा आय मुलाजमति कीनी। आसफ खां वकील मुतलक भयो। यन की पातस्याही मे दौलताबाद को किला फत्ते भयो। कंधार को किला भयो, अलीमरदा पा ईरान सो आई चाकर रह्यो। साहजहानाबाद बसायो। बलष बुखारा की पातिस्याही लई। अल्पकावस्था मे पातस्याही को बटवारो बेटानि को विचारि या रीति कीनी। प्रथम बटा दारा सिकोह कौ वल अहद अरथात युवराज कीनो, हजूरि मे राख्यो। दूसरो बेटा मुहमद सुजायत (मुहम्मद शुजाअ) कौ बगाल दियो। औरगजेब कौ दषिन, मुरादबपस कौ गुजरात दई। निदान दिल्ली मे पातस्याह दीरघ रोगी भये। सब अपतयार दारा सिकोह कौ भयौ। सर्वत्र उपद्रव उठ्यौ। मुरादबकस गुजरात मे तपत बैठे। असै बगाल मै मुहम्मद सुजाय कीनी, बनारस लो आयौ। या बात तै दारा सिकोह बाप के रोग ही मे आगरे नाव की राह जमुना के मारग ल्यायो। तहां ते सुलेमान सिकोह वाके बेटा कौ राजा जयसिघ कौ वडी फौज तोपपानौ दै सुजाय पर बिदा कीयो। सुजा लडाई मै भाजि लुटि बगालै गयो। राजा जसवत सिघ राठोड कौ मालवा भेज्यो, दषिन की राह मे आडो रहे। दारा सिकोह के हाथ मैं सिगरी पातस्याही हुती, तऊ ओरगज्ेब तै डरतो रहत हो। सुजा की मुहिम के मिस दषिन तै औरंगजेब के तईनाती उमराव बुलाये। या बात ते औरंगजेब दषिन तै बाप पासि चल्यो। मालवा मे बडे जुध पुरबक राजा जसवत कौ भजाय आगरा की दस कोसी दारा सिकोह सामुनै आयो। महाजुध भयो। निदान वह भाजि एक राति आगरे मे रहि लाज करि पातस्याह कौ बिना मिलै ही दिल्ली गयो। औरगजेब फत्ते पाई, आगरा मै आग बाप कू कैद करि दिल्ली चल्यो। राह मे मथुरा जी के डेरा मुरादबकस कौ कैद कीनौ। दारा सिकोह दिल्ली तै भाजि लाहौर गयो। स० १७१८ उमर ४० मै अबूजफर मुहीयुदिन पातस्याह गाजी आलमगीर औरगजेब दिली आय तषत बैठि लाहौर चले। दारासिकोह लाहौर ते पजाना पातस्याही लै मुलतान गये। पातस्याह मुलतान की वोर मुरे। राजा जयस्यघ

[१] ––– शाहजहां पृ० ५६–६३ ६६

लाहौर तें आय मिले। या पवरि सौं दारा सिकोह २२ लाष रुपये लै मुलतान सौं भषर कौं भाजे। पातस्याह वाके पीछें फौज बिदा करि मुहमद सुजा बंगाला सौं उपद्रव कै लियें आवत हो ताके सामुने चले। लाहोर सहर कौं सिरे सवारी देषत गये। षलीलुला षा कौ लाहौर की सूबेदारी वाके बेटा कू मीर षा कौ षिताब दयौ। दिली आये। राजा जसवतसिंघ दिली मे हुकम सौं रह्यौ हतो तानै आय मुलाजमति कीनी। मकनपुर येक सहर मैं तहा पीर की दरगाह हैं ईलाहाबाद के सुबा मे तहा एक ओर तें सुजा एक वोर तें पातस्याह आये संग्राम भारी भयो। पातस्याह की फौज अति बिह्वल भई। ता औसर मैं राजा जसवत स्यंघ यागी होय पातस्याही लस्कर बजार कारखाना लूटि लये। बडो उपद्रव भयो। पातस्याह धीरज धरी लोगन की दिला करी। सुजा की लडाई को चले। प्रथम तौ सुजा की फौज गालिब भई, निदान भज्यो। पातस्याह वाके पाछें फौज भेजि आपुनै आगरे आयो। दारा सिकोह गुजरात आयो सुनि वा राजा जसवत स्यंघ के प्रतिकार लियें कूच कीनौ। रायसिंह वाके भतीजा कौ (जोधपुर के राजा का) षिताब, चारि हजारी मनसब दयो। दारा सिकोह राजा जसवत स्यंघ के लिपै तै अजमेरि आयो। पातस्याह भी अजमेरि आये तब राजा जयसिंघ कछवाहे की अरज सौं राजा जसवत स्यंघ की तकसीर माफ भई। यह ठहरी जो दारा सिकोह के सामिलि न होय। दारा सिकोह कै जसवत कौं कैऊ प्रकारे के लोभ लालच दीये, वाकौं बुलायो, बेटा हू कु ल्यायबे कू पठायो तऊ वह न आयौ। अजमेरि की घाटी पर परसपर महा जुध भयो, निदान दारा सिकोह भाजि गुजरात गयो, तहा हू दषल न पायो तब कछ देस की राह भषर मैं होय कधार कौ जात मलिक जिवन जमीदार दावर के नै पकड्यौ। पाछें तें राजा जयसिंघ पातस्याही फौजे लै गये हते। सो वाकौं मलिक जिवन पास तें लै कैं हजूरि ल्यायौ।[1] पातस्याहे आगरे के किला कौ परकोटा बनायो, नाज कौ हासिल राहदारि कौ सर्वत्र माफ कर्यो। पातस्याह जादो मुहमद मुलतान सुजा कै पाछै पातस्याही फौज लै बगाल गयो हतो सो यागी होय पातस्याही फोज मैं तै ऊठि सुजा पासि गयो। कालातर मे सुजा को निरभाग देषि पातिस्याही फोज मे आयौ। पातस्याह वाकू बुलाय दिली मै सलीमगढ चढायो। दिली के किला मै मसीत

---

[1] यदुनाथ सरकार, 'औरंगजेब' भाग २ में इस भ्रातृयुद्ध का विस्तृत विवरण है। इस पुस्तक में दिया हुआ बिल्कुल ठीक उस से मिलता है

बनाई। अमीर षां बिकानेरि राव करण पगि बिदा भयो। बाकि हजार रुपया तकसीर माफ करवाई। प्रथम सुलेमान सिकोह बड़ा बेटा दारा सिकोह को ताके को बंगाला तैं आय बाप की लराई सुनि पातस्याह के भय सों श्रीनगर के पास भागि गयो हो। ताको राजा नैं कुंवर रामस्यंघ कछवाहि को बुलाई सौंपि दयो। पातस्याह वाको और मुहम्मद सुलतान अपने बेटा को और मुरादबकस भया को गुवालेर गढ़ मैं दयो। ईरान को पातस्याह छचासठि घोड़ा इराकी, मोती को दाणो गोलिस सात्ती हजार को और च्यारि लाष को माल भेज्यों हतो सो गुदरयो। एलची को लाष रुपये रोक, हाथी, जवाहिर सिवाई बषसिस हुई। बुषारा के पातस्याह चालीस हजार को माल एक और तुरकी घोड़ा और बुखारी ऊंट, तोहफा अनेक अनेक भेज्ये सो गुजरे। बीस हजार रुपया और जवाहिर उगैरै एल्ची को इनाम भये। यैसै तूरान सूं नजरि आई। पातस्याहजादा मुहमद मोअजम कौ व्याह राजा रूपसिंह राठोड की बेटी सों भयो। यह राजा जगवन्त राय के बेनका के बेटा हतो। महाबत षा की तगीरी काबुल की सूबेदारी अमीर षा को भई। बगाला मैं षानषाना आसाम कामरूप नास नामरूप मे अमल कीयो।[१] जाकी गैल मैं ब्रह्मावरत महनद वाकैऊ अगम्य नदी वा दुरगम अटवी बृछ झाडी अत्युतान पहाड़ ता परि किला पहाडन मैं दरे बडी बडी भींतैं मेह मैं जहां सर्वत्र जलमय होत है तहा रेत मै तै सुवर्ण निकसत है। वै ही और कजलीबन हाथीन की उत्पति भूमि है। ब्रह्मावरत नदी की ऊतर मैं ऊतर कू दषिन मैं दषिण कू कूल्ह कहावत है। आसाम की राजधानी करगाव है। ए सरहद श्रीनगर के पहाड जाई लागी है। आसाम के देस २५० कोस लबाई मैं ८ दिन की राह नीच कौ देस है। आसाम बहुधा धान्य है, चावल, उड़द बहोत है, कहू कहू मसुर होत है। कपडानि मैं मुसबर, मषमल्ल, टाटबन्धी, वाफता तहा होत है। लौण वा देस मै दुरलभ। अगर तहा ही ते आवत है। वाही देश मै कईक कोसनि मे पहाडन मै अैसे लोग बसत है जे नगन सरीर है, सरबभछी है। स्वान, बिलाव, सरप, चूहा,

---

[१] मीर जुमला खानखानां ने सन् १६६१ ई० में आसाम पर चढ़ाई की और दो वर्ष में उस पर अस्थायी अधिकार कर लिया था पर वहां से लौटने में देश के जलमग्न होने के कारण इस की सेना नष्ट हो गई और यह भी बीमार हो कर सन् १६६३ ई० में मर गया।

टीट, चीटा, कीडा जो पावै सो पावै। तहा किस्तूरीया मृग होत है। असाम के लोग हिंदु मुसल्मान मनुष्य बिना सरब को मास पात है। परदा तही नही। राजा को स्त्री बरग पुले केस, मुष पुले मुषबकें पुले पुले केस ही फिरतु हे। भारज्या को क्रय विक्रय होत है। स्त्री पुरुष सुदर सन्ध्य निरदय ढग कपटी लडकनि जडाल्र पुरुष डाढी मुछ मुडायै रहत है। बोली तिन की बगाला की बोली तें न्यारी। एक वस्त्र कामर मैं रेठतु है, एक चादरि कधा पै रापत हे। सहर के दरवाजा ताप का और सब बसनी के घर लकडी फुस के। राजा तौ सिघासन चढे फिरे और सब धनवत डोली परि बैठ फिरे, ऊट, गधा, घोड़ा नही, कहू तै आवै तो लोगन कों चमत्कार होवै। घोडा तै अति डरप्तु है। हथयार मैं बदूक तरवारि तीर कमठा किला मै, नवाडा[१] मे तोप, रहकला, लमलड, राम चगी ये सामान रपै। राजा वा धनवत कौ प्रथम जीवतै ही दाह स्थान बणावै। मै कपडा धन जवार भोज्य सब जमीन मैं गाडै। मृत्यु हूवै तहा जलावै, साथि. सब अस्त्री पवास हू जलावै। सहर मै तबोली बिना काहू काहू की दुकान नही। जोपै सब लोग एक बरग कौ समा रापै। करगाव सिहर साढा दस कोस लबा चौरो है। घर घर प्रति पेती बाग है। सहर के बीच दघवा नाम नदी चली जात है ता किनारे मध्य मै राजाकौ घर है। सबन के घर चबूतरा परि है। सरब देसही मे चबूतरा है। चबूतरा कौ नाम आलय कहतु हैं। बरषा रितु मे सरब भूमि जलमई होत है ताके बचाव को आलय है।[२] दगिण मै सेवा की मुहिम राजा जसवत सिघ हतो, तासौ काम पातस्याह की मरजी माफिक बणी आयो नही यातै राजा जै सिघ कौ जडाऊ तरवारि, घोडा १०० इराकी-अरबी, सोना रूपा की सा-पति सरजाम ते साथी उमराव तोपषाना दे बिदा कीयो। राजा जसवत स्यघ कू हजूरि बुलाये। राजा जयस्यघ औरगाबाद मै मुहमद मौजम पातस्याहजादे की मुलाजमति कीनी। राजा रुपसति होय आगै गयो, सेवा सौ लडाई कीनी, सेवा भाजि पुरि के किला मै गयो तापर कवर कीरति स्यघ पठायो। निदान सेवा सरणी आयो, राजा ताजीम दई। बिना हथियार सेवा जयस्यघ जी कै डेरा आयो, गलै लगायो, ढिग बैठायो, सेवा सु पातिस्याही

---

[१] एक प्रकार की नाव।

[२] आसाम का यह भौगोलिक वर्णन मानो स्वयं देख कर लिखा है। यह बहुत ठीक

 युद्ध का विवरण अत्यत सक्षिप्त है

चाकरी ठहराई। किला छाडि देण कह्यो, सब कही सो अंगीकार कीयो। सभा आपुनै बेटा को चाकरी के लिए राजा जयस्यघ पासि राख्यो। राजा वाको पाचहजारी करी। आपुनी ओर तं सिरपाव हाथी दीनो। आदिल षा बीजापुर को पातस्याह दोय हाथी, जवार जड़ाउ बासण राजा की नजरि भेज्या। सेवा तरवारि न बाधत हो ताही राजा जय स्यघ जु तरवारि बधाई।[1] पतस्याह की अजुरि कवर राम स्यघ हो ताको पातस्याह हाथी सिरपाव दीयो। राजा जंस्यघ (ह) फ्त हजारी हफ्त हजार सवार दु अस्पं सि असो भयो। राजा की मारफति आदिल षा की पेसकस आई। दलदन मिरजा गिरवान को पातस्याह को हुकम मानि देस मे पातस्याही सिक्को पतनों चलायो। मारफति सेफषा कासमीर के सूबेदार की मारफति। तिब्बति को देस लबाई में छह महीना की राह है, चौडाई म दोय महीना की राह। दषिन पातस्याहजादो महमद मोजम वा ताको बेटा मोजुद्दीन हुकम सु हजुरि आये। पातस्याह के सन् ८ मै साहिजहा आगरे मै मरे। सेवा वा सभा दषिन तै आय कवर रामस्यघ जी की मारफति मुलाजमति कीनी। फिरि भाजि गये या बात ते कवर रामस्यघ बेमनसिब मुजराते मेट भयो। इरान के पातस्याह विरोध बिचार्‌यो या तै पातस्याहजादा मुहमद मोजम वा राजा जसवत स्यघ को काबुल बिदा कीयो। दैवात् ईरान को पातस्याह राह मै आवत मर्‌यो, वाको बेटा तषत बैठ्यो।[2] या षबरि तै पातस्याहजादा कौ हुकम पहोच्यौ। लाहौर मै ठहरी, निदान हजुरि आयो। जसवत स्यघ राठिवर का काल बसि हुवा की षबरी आई[3]। तदि पातस्याह नै प्रथम ही कालीका का देहरा फोडि मसजद बणाई। आलमगीर अजमेरि जाय मारवाडि मैं थाणा भेज्या। दुरगदास राठौड नै फिसाद कीयो तब पातस्याह ने अकबर साहजादे कू फौज लार दे दुरगदास परि बिदा कीयो। साहिजादा दुरगदास तै मिलि गया तब पातस्याह अजमेरि तैं कूच कीया।

---

[1] शिवाजी के विषय में जो कुछ लिखा है वह इतिहास से ठीक है। देखिए सरकार कृत 'शिवाजी'।

[2] शाह अब्बास द्वितीय ने शाहजहाँ की मृत्यु पर भारत पर चढ़ाई करने की तैयारी की पर शीघ्र ही उस की सन् १६६६ ई० में मृत्यु हो गई। 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १७४

[3] पौष ब० १० सं० १७३५ को इन की मृत्यु हुई। गहलौत 'मारवाड का इतिहास'

साहिजादे कू फरमान भेज्या जो तुम कु दुरगदास कौ कावू मैं ले कैद करणा विचारया सो अछा काम कीया। यह फरमान दुरगदास पास पहुच्या। दुरगदास साहिजादा का कागद जाणी कूच किया, फेरि साहिजादा मिलारै गया। जोधपुर मेड़ता वगैरे सब मारवाडि म पातस्याही अमल होय गया।[1] पातस्याह दषिण गये। सूबा च्यारि नये लिए। बडा स्याहजादा सुलतान महमूद कैद राष्या सो कैद ही मुये। बहादुर स्याह कु वरस बाहरै कैद राषी छोडि दीया। बरस ५१ पातस्याही करी। स० १७६६ मे दषिण ही म कालवसि हुवा[2]। तव राजा अजीत स्यघ जी राठोड नै पातस्याही थाणा उठाया, मारवाडि मे अमल कीयो। दषिण तै आजम स्याह सब फौज ले हिंदुस्थान मैं आया। दिली मे बहादुर स्याह बडा साहिजादा तषत बैठ्या। फेरी आजम स्याह वा भादुर स्याह के धौलपुर मे लडाई भई। आजम स्याह के गोला लागि मारया गया। महाराजि सवाई जयस्यघ जी आजम स्याह की लार हुते तीन के तीर लगा। बहादुर स्याह फत्ते पाई, अजमेरि आये, आवैरि जोधपुर मे थाणा राष्या। सवाई जयस्यघ वा अजीतस्यघ जी राठोड कू लार ले दषिण कू चाल्या। सो नरबदा के घाट तै पातस्याह तो दषिण गये। दोनू राजा उदेपुर आये। आवैरि वा जोधपुर मे पातस्याही थाणा उठाय अमल कीयो।[3] दोनू राजा सभरी आये। लडाई करि असन षा मारयो गयो। बहादुर स्याह बीजापुर की फते करि नरवदा आये। ये ताही मैं षवरि आई, जो सिष नी लाहौर मै अमल करी नानिक गुरु का सिक्का चलाया। अजमते नानिक गुरु हम जाहरो हम वातिनस्त। वादस्याहे दीनो दुनिया आप सच्चा साहिवस्त।[4] व बहादुर स्याह सिषू की तवीह वास्तै पंजाब गये। सो हजार सिष मारि मुदारे

---

[1] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० ५५–६; गहलौत, 'मारवाड़ का इतिहास' पृ० १५९–६०

[2] २१ फ़रवरी सन् १७०७ ई० को औरंगजेब की मृत्यु हुई।

[3] मुअज्जम, आजम, और कामबख्श तीन पुत्र थे। प्रथम काबुल में और अंतिम दो दक्षिण में थे। सभी ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। आगरे के दक्षिण जाजऊ के युद्ध में आजम मारा गया, जो १० जून को हुआ था। सवाई जयसिंह आजम के साथ थे, इस से सैयद हसन खां बारहः आमेर का फौजदार नियत हुआ। कामबख्श से युद्ध करने जब बहादुरशाह दक्षिण चला तब जयसिंह और अजीतसिंह साथ गए पर मार्ग से लौट कर सैयद हसन खां को मार कर आमेर पर अधिकार कर लिया। ('मआसिरुल् उमरा' हिंदी पृ० १६४–५)

[4] यह फ़ारसी का शेर यों है

तूणाय दीये। लाहोर का वदोबस्त करि दिल्ली आवत हो, सो राह मे सनत् १७७१ मं काल्ल वसि भया।[1] बरस ५ महीना ५ दिन २८ पातिस्याही करी। फिरी बहादुर स्याह का बेटा मोजुदीन[2] तपत बैठा अरु फरकसेर बहादुर स्याह का पोता पटणा का सूबादार था। सेद अबदुल्लह् पा वा हसन अलीषा तगाउ हते, सो फरकसेर फोज मे पातस्याही दावा करि दिली की तरफ चल्यो। मोजुदिन दिली ते कूच कीयो, धोल्पुर आय चंबल का घाट बध किया। तोपषाना किनारे पर लगाय दीया। नावे सब पैंचि लिये अरु दया बहादुर अवध का सूबादार सवार हजार आठ बषतर पोस्याग ले आय मोजुदीन सामिल भया। मोजुदिन नै वासु पेसकस मागी। तब दया बहादुर आजरद होय कूच करि फरकसेर सामिल जा हुवा।[3] फरकसेर कोस चालीस ऊपरि होय पगार उतरि धोल्पुर आय लडाई करी। सो मोजुदीन कौ कैद करि लीया। मोजुदीन मास ७ पातस्याही करी। फरकसेर तपत बैठा अरु सैद हसन अली षा की लार बाईसी दे महाराजा अजीत स्यघ जी राठोड़ परि विदा कीये। सो मेडते आया तब अजीत स्यघ जी ऊकील भेजि पेस-कस दई। फरकसेर को बेटी का डोला भेज्या। पाछै अजीत स्यघ जी पातस्याह की हजूरि आये।[4] अरु चूडामनि जट[5], भीव सीघ हाडा कोटे का, अजीत स्यघ राठोड, सैद हसन अली षा, अबु(दु)ल्पा एक होय गया तब दगा कीया, फरकसेर कू कैद कीया। आख्यू म सलाई फेरी। सवाई जयस्यघ जी इन की हरामषोरी सामिल भई नही अर पहली पात-स्याह सु अरजी करी हुती। जो हजरति आप परदेस रहै हम हजुरी ही रहगे। नागरि पात-

---

अजमते नानक गुरू हम जाहिरो हम बातिनस्त।
बादशाहे दीनो दुनिया आप सच्चा साहिबस्त।।

अर्थात् गुरु नानक का बडप्पन प्रकट तथा गुप्त (बाह्य तथा आन्तरिक) दोनों है। वह लोक-परलोक का सच्चा स्वामी तथा सम्राट् है।

[1] स्मिथ, 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इंडिया', पृ० ४५५

[2] मुईज़ुद्दीन जहाँदारशाह।

[3] दयाराम का भाई छबीलेराम नागर आया था। दयाराम को दयाबहादुर भी कहते थे। इस का पुत्र गिरिधर बहादुर अवध का सूबेदार हुआ। देखिए 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १४०–२; इलियट डाउसन, जि० ७, पृ० ४३५

[4] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० ५७–८

[5] फ़र्रुख़सियर ने जयसिंह के अधीन इस पर सेना भेजी थी पर अब्दुल्ला सैयद ने हठ कर इसे क्षमा दिला कर अपने पक्ष में मिला लिया था मआ० हिंदी पृ० १२४ ५

स्याह नै सौंप दई तब आंबैरि उठि आये, ता पीछै पातस्याह परि दगा भया।[1] फरकसेर बरस ७ पातस्याही करी। पीछे सं० १७७८ मैं महमद स्याह तषत बैठे तब षबरी आई, जो निजामुलमुल्क नै हसन अली षां सैद के भतीजा आलम अली षा दषिण मैं मार्‌यो, सो हसन अली षा कु लार ले अबदुल षा कुं दिली राषी दषीण का ईरादा करी, करोरी के घाट पहुचे तहा सारा हुकम हसन अलीषां का हुता। पातस्याह महमद स्याह महमद अली षा मुगल सो हसन अलीखा के मारनै की मसलती करी, सो हैदरबेग मुगल नै अरजी के बहानै सवारी मं नजीक जाई पालकी मै पेसकबज तै मार्‌या। तब अबदुल षा नीको सियर स्याहजादा कुं सलेमगढ़ तै उतारी तषत बैठाय सवार लाष ड्योढ तै आय लडाई करी, सो महमदस्याह की फत्ते भई। नीको सियर वा अबुदुल्ला षा कू कैद करि लीया।[2] फेरि महाराजि सवाई जयस्यघ जी की लार सवार हजार ४० तईनात करी, चूडामणि जाट की मुहिम परि थुण भेज्ये। सो थुण तोडि गरथवक हल चलाये। बदन स्यघ जाट कू सवाई जयस्यघ जी छजी राज दीयो बड़ी बरदयास करी।[3] हैदर कुलीषा गुजरात का सूबादार बागी भयो। तब निजामुलमुलक कुं गुजरात को सूबा दयो। सो वानै जाई गुजरात षाली कराई। अरु होमिद षा जगीली साहजादे कु गुजरात मै राषी निजामुल्मुलक दषिण गये। हैदर कुलीषां दिली आये। महाराजि अजीत स्यंघ जी राठोड यागी भयो, साभरि मे अमल कीयो अर कवर अभै स्यघ जी कूं भेजी नारनौल स्याहजहापुर लूट्या। पातस्याह मारिवाड़ि परि हैदर कुलीषा की लार बाईमी दे बिदा कीयो। सो अजीत स्यघ जी साभर तै कूच करी त्रबेणी ताई लडाई वास्ते साम्हा गये। सो महाराजि सवाई जै स्यंघ जी की सलाह तै बिना लडाई कूच करि अजमेरि गये। हैदर कुलीषा भी अजमेरि आए। अजीत स्यघ जोधपुर गये। गढ़ बीटली (पुतलीगढ) मं महीने दोय लडाई भई, किला षाली भयो, हैदर कुली षा मारवाडि मै गयो। तदि अजीत स्यघ जी के ऊकील आये, तकसीर माफ

---

[1] 'मआसिरुल् उमरा' (हिंदी) पृ० १६५–६, ख़फ़ी ख़ां, भाग २, पृ० ८०४–५।

[2] 'मआसिरुल् उमरा' (फारसी) भा० ३, पृ० १३५–६ में कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला खा की जीवनी में पूरा विवरण दिया है।

[3] चूड़ामणि की मृत्यु पर राजा जयसिंह जाटों पर भेजे गए थे, ऐसा भी इतिहासो में मिलता है। इस के विवरण के लिए सूदन का 'सुजानचरित', 'मआसिरुल उमरा' हिंदी) में चूड़ामणि जाट और मिराज जयसिह शीर्षक जीवनियां खफी खा आदि देखिए

करार्ई। कवर अभै स्यघ जी दिली जाय पातस्याह की हजूरि मुलाजमति करी।[1] फेरि हामिद षां की तगीरी सरबिलंद षा कु गुजरात को सूबा दयो। हामिद षा दषिण जाय दषिणीनि की फोज ल्याय गुजरात षराब करी। हामिद षां भाग्या गया। सरबिलंद षा ने अमल कीयो अर दयाबहादुर कु मालवा का सूबा हुवा सो दषिण मांको फोज सवार हजार सतरी मालवा मे आय दयाबहादुर ने लडाई करी, सो दयाबहादुर मारया गया। तब वाके बेटा ने उजिणी (उज्जैन) मे बंदोबस्त करि, दषिण्य की फोज न लगाई दीनी सो फत्ते पाई।[2] पाछै मालवा का सूबा महमद षा बंगस कु दीया, ताकी तगीरी महाराजि सवाई जयस्यघ जी कु दीया। ता की तगीरी भई फेरि दषिण्या की फोज आमेर किले की तलहटी ताई आय लूटि करि अरु फिरि गई अर गुजरात का सूबा महाराज अभैसिघ जी राटौड कु हूवा। सो सिरबिलद षा अमल दीया नही तब लडाई भई फिरि सल्याह भई। सिर बिलद षा दिली गये। अभैसिघ जी नै गुजरात म अमल करया अरु सूबा म नाइब राषि आप पातस्याह की हजूरि गया। फेरि दषिण की फोज गुजरात होइ[3] मेडता लूटि अजमेरि आई। अर बाजेराव पुस्कर स्नान वास्तै पुस्कर आया, तहा महाराजा सवाई जयस्यघ जी मिले। बाजेराव दषिण गये। षानदौरां षा, सवाई जयस्यघ जी, अभै स्यघ जी राठोड कु साथि ले बडी फोज ले मालवै गया अर दषिण्या की फोज मुकदरै होय साभरि आई तब जयस्यघ जी साभरि आये। षानदौरा षां दिली गये।[4] दषिण्या की फोज दिली पीछै गई। स० १७९४ मै बाजेराव फोज ले दिली आय कालीका को मेला

---

[1] 'तारीखे–मुजफ्फरी' में लिखा है कि चौथे वर्ष अशरफ़द्दौला इरादतमंद खा बाईस सर्दारो के साथ अजीतसिह् पर भेजा गया था। आषाढ़ शु० १३ सं० १९८१ ई० को अजीतसिंह का शरीरात हुआ। इस के बाद अभयसिह् राजा हुए।

[2] राजा गिरिधर बहादुर आसफजाह् के स्थान पर मालवा का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ था। यह सन् १७२९ ई० मे मारा गया तब इस का चचेरा भाई दयाबहादुर सूबेदार हुआ। यह भी दो वर्ष बाद मल्हारराव होलकर से युद्ध कर के मारा गया। तब मुहम्मद खां बंगश सूबेदार नियत हुआ। (पारसनिस-किनकेड, 'मराठों का इतिहास', भा० २, पृ० २११–५)

[3] पारसनीस–किनकेड, 'मराठो का इतिहास', भा० ३, पृ० २१२–२०

[4] सं० १७९२ वि० में मालवा बाजीराव को दे दिया गया। 'मआसिरुल् उमरा हिंदी) पृ० १६७

मरे।[१] कमुरीदी पां (कमरुद्दीन खां) सादत पा (सआदत खा) आगरा तै फौज ल्रैं दिल्ली आये। वाजेराव दषिण पाछा उठि गये। सो हिंदुस्थान की बदअमली की पत्ररि सुणि नादरस्याह् स० १७६५ में हिंदुस्थान मैं आया। काबुल का वा लाहोर का सुवादार, निजा-मुल्मुलक कमुरुदी षा कागदू सू मिलि गये अर पातस्याह् महमद साह् करनाल गया। तहां लडाई भई। पानदौरा पा कामि आये। दूसरै दिन निजामुलमुल्क मुलह् वासतै नादर-स्याह् पासि गये। नादिरस्याह् नै वाकू कैद किया तव निजामुल्मुलक नै महमद स्याह् कू बुलाये। महमद स्याह् थोड गतै नादर स्याह् पास गये, सो चोकी बैठाई दई, सो नादर स्याह् महमद स्याह् दिली आये, किला मैं पाली भये। नादर स्याह् नै दिली कतल करी। दिल्ली मै महीना दोय रह्या। सब पातस्याही का माल लूटि महमद स्याह् कु पातस्याही दे नादरस्याह् ईरान गया।[२] ता पीछै अहमद पा पठाण कंधार नैं फौज ले सतलज आये तब पातस्याह् नै अह्मद साहिजादे की लार कमुरुदि पा वा महाराजि ईसरी स्यघ जी कछवाहा लागै दे विदा किये। सतलज मैं पहुंचे तहां नवाव कमरुदि पां डेरा मै बैठे हुते तहा गोला लागि मारचा गया। महाराजि ईसरी स्यघ जी भाजे। लषी जंगली की राह् होई देस मै आये अर अहमद साहि साहिजादे वा मीर मन्नु कमरुदी पा का बेटा वा मनसुर अली पा नैं सरब अपनी फोज ले लडाई करी सो फत्ते पाई। अहमद षां भाजे।[३] मीर मन्नू कू ल्याहोर का सूबादार कीया। साहीजादा दिल्ली आवै था सो महमद स्याह् का काल बस्यी हूवा की पत्ररी आई, सो अहमद साहि दिली आया। सं० १८०५ मैं तषत बैठे। नवाव बहादुर षोजा का अषतियार भया। मनसूर अली पा कु ऊजीराति दई। इति येक भेद। परन्तु दिली का तरद्दुद मनसूर अली पां[४] मैं भया नही। मीर उमरावन की बरहर्मी सै मलतल सरजाम आया नही। नवाब मनसूर के अहद मैं सूरजिमल जाट का बाड़ा प्रताप बध्या। ताके तप के जोर सैं प्रथी भय मानत ही। दिल्ली का बिगाडनै का मनसुबा तो सवाई जय-

---

[१] मुगल सेना को रास्ते में छोड़ कर बाजीराव दिल्ली पहुँच गए पर दक्षिण मे आसफजाह की चढ़ाई का समाचार सुन कर बिना युद्ध लौट गए।

[२] 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', भाग ५, सं० १

[३] यह अहमद खां अब्दाली की प्रथम चढ़ाई थी।

[४] अवध के द्वितीय नवाब सफ़दर जंग का नाम मन्सूर अली खां था

सिघ जी कीया अर सूरजि मल राजा ने तुरकौ का दगादा ही मेट्या। दिल्ली सामन दुरि कीया। नकले का नाव मात्र नै जाट ने पोगं। स० १८२१[1] र्‍ सूरजिमल जाट का ए सूरज बधता रह्या।"

---

[1] इसी वर्ष इन की मृत्यु हुई

स्वर्गीय सर जगदीशचंद्र बोस और उन का कार्य

[लेखक—डाक्टर पंचानन माहेश्वरी, डी० एस्-सी०]

जगदीशचद्र बोस का जन्म ढाका के निकट विक्रमपूर नाम के एक गॉव मे ३० नवबर, १८५८ ई० को हुआ था। उन के पिता बाबू भगवानचद्र बोस फरीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट थे और अपने साहस, योग्यता, सच्चाई, और कर्तव्य-परायणता के लिए प्रसिद्ध थे।

बालक जगदीशचद्र पॉच वर्ष की अवस्था मे पढने के लिए बैठाए गए। उन के पिता ने उन्हे एक बंगाली पाठशाला में भेजा, सरकारी अंग्रेजी पाठशाला मे नही। ऐसा करने मे बाबू भगवानचद्र को अपने कई मित्रो की इच्छा का विरोध करना पडा, जो चाहते थे कि बालक का विद्यारभ अग्रेजी से हो। पिता ने यह उत्तर दिया कि जगदीशचद्र को अपनी मातृभाषा का ही ज्ञान पहले होना चाहिए। इस के अनतर दूसरी भाषाए सिखाई जा सकती है। इस कोमल अवस्था मे अपने लोगो से अलग रह कर बालक मे एक झूठे गर्व के उत्पन्न होने के लिए अवसर देना उचित नही। ऐसा करने मे पिता ने जिस दृढ जातीय भावना का परिचय दिया, उस का आभास हमे पुत्र के जीवन मे भी पग-पग पर मिलता है।

जगदीशचंद्र के बाल्यावस्था के साथी किसानो और मछुओ के बालक थे। उन के साथ वह क्रिकेट और फुटबाल खेलते और रामलीला तथा अन्य हिंदू नाटक देखते। राम के चरित्र, और उस से भी अधिक लक्ष्मण के त्याग का उन पर प्रभाव पडा, परतु उन के लिए आदर्श पुरुष कर्ण थे। पाडवो मे ज्येष्ठ होने के कारण, उन्हे ही राजा होना चाहिए था। राजा बनना उन की इच्छा-मात्र की वस्तु थी, परंतु उन्हो ने सारथी होना पसद किया, उन की वीरता और साहस, आत्मत्याग और भक्ति की कथा ने जगदीशचद्र पर गहरा प्रभाव डाला, और इन गुणो से बालक जगदीशचद्र का आचरण बहुत कुछ प्रभावित हुआ।

सोलह वर्ष की अवस्था मे जगदीशचद्र कलकत्ते के सेंट जेवियर्स कालिज मे भरती

हुए, और यद्यपि इसी समय में भौतिक विज्ञान के प्रति उन की रुचि अंकुरित हो गई थी तथापि आगे वाली विशेष योग्यता का इस समय आभास न मिला। जगदीशचंद्र का प्रथम विचार इंडियन सिविल सर्विस में प्रवेश करना था, परन्तु उन के पिता ने उस विचार का तुरत प्रतिवाद किया। बाबू भगवानचंद्र स्वयं एक सफल अधिकारी होते हुए भी यही चाहते थे कि बालक जगदीशचंद्र दूसरों के बदले अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करना सीखे और ज्ञानोपार्जन पर विशेष ध्यान दे।

इस के बाद जगदीशचंद्र ने भैषज्य में निपुणता प्राप्त करने की सोची, और उस निमित्त से वह लंदन जाना चाहते थे। परन्तु मार्ग मे कठिनाइयां थी। उन के कुटुंब की आर्थिक परिस्थिति बहुत अच्छी न थी। इस के अतिरिक्त उन के छोटे भाई की मृत्यु १० वर्ष की अवस्था मे हो गई थी और उन की माता जो इस शोक से बहुत आकुल थी, अपने एकमात्र जीवित पुत्र को अपने से पृथक् नही करना चाहती थी। सब ने बैठ कर सलाह की और जगदीशचद्र को अपने विचार का त्याग करना पड़ा। परन्तु जिस समय जगदीशचद्र विलायत जाने का विचार त्याग कर के हिंदुस्तान में ही किसी धंधे मे लगने का विचार कर रहे थे, उस समय सहसा माता के चरित्र का बल प्रकट हुआ। पुत्र के निकट आ कर उन्हों ने कहा, 'बेटा, तुम्हारा आगे पढ़ने का विचार बहुत ठीक है, मै तुम्हारे मार्ग की बाधा न बनूँगी। मेरे पास आभूषण है, और कुछ रुपए भी है। इन्हे ले कर तुम विलायत-यात्रा की तैयारी करो।'

इस बीच मे बाबू भगवानचद्र की तरक्की हो गई थी, और आभूषण आगामी आवश्यकता के लिए सुरक्षित रह सके।

इस प्रकार सन् १८८० मे जगदीशचद्र ने इंगलिस्तान के लिए प्रस्थान किया। लदन मे उन्हे दुर्भाग्यवश ज्वर होने लगा, और चीर-फाड़ के कमरे की दुर्गंध के कारण उस का पुन:-पुन: आघात होता। एक बार उन की अवस्था इतनी नाजुक हो गई कि उन के अध्यापकों ने उन्हें डाक्टरी की शिक्षा छोड कर किसी दूसरे रुचि-पूर्ण विषय के अध्ययन की सलाह दी। इस प्रकार किंकर्तव्य विमूढ हो कर जगदीशचद्र ने लदन मे पढाई छोड़ कर केंब्रिज मे विज्ञान का अध्ययन आरंभ किया। यहा पर उन के शिक्षकों मे कई विख्यात वैज्ञानिक थे, जिन मे भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ लार्ड रैले ने इन्हे सब से अधिक प्रभावित किया केंब्रिज से प्रकृति विज्ञान म इन्हो न १८८४ म ट्राइपास परीक्षा पास की और

लगभग उसी समय बिना विशेष अतिरिक्त परिश्रम के लदन की बी० एस्-सी० की परीक्षा भी पास कर ली।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ अध्यापक फासेट ने उसी समय इन्हे हिदुस्तान के बडे लाट लार्ड रिपन के नाम परिचय-पत्र दिया। कलकत्ता लौटने पर जगदीशचद्र बोस उन से शिमला जा कर मिले और उन्हो ने जगदीशचद्र को इडियन एडूकेशनल सर्विस मे पद देने का वचन दिया। कलकत्ता लौटने पर जगदीशचद्र शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर से मिले। इसी बीच मे बडे लाट ने बगाल सरकार की मारफत डाइरेक्टर को जगदीशचद्र की नियुक्ति का आदेश भी दे दिया। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को नियुक्ति का यह क्रम अनुचित सा हुआ और वह बोल पडे—"नीचे से प्रार्थनाए सुनने के लिए मै अभ्यस्त हू, ऊपर से आदेश पाने के लिए नही। इडियन एडूकेशनल सर्विस (भारतीय शिक्षा महकमे) मे कोई स्थान रिक्त नही है। यदि तुम चाहो तो तुम्हें प्रान्तीय शिक्षा महकमे मे जगह मिल सकती है।" जगदीश बोस ने इसे अस्वीकार कर दिया। बडे लाट के यहा से जोर पडने पर शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर जगदीश बोस को प्रेसीडेसी कालेज मे भौतिक विज्ञान के स्थानापन्न प्रधान अध्यापक के पद पर नियुक्त करने के लिए विवश हुए। यह बात मनोरजन से शून्य नही है कि इस स्थानापन्न-नियुक्ति का भी प्रिंसिपल ने उस समय विरोध किया था, क्योंकि उस समय यह समझा जाता था कि हिदुस्तानियो मे विज्ञान-विषयक योग्यता का अभाव होता है।

नौकरी मिल जाने पर भी अध्यापक बोस का मार्ग सुगम न था। अपने यूरोपीय साथियो की अपेक्षा इन्हे केवल तिहाई वेतन दिया जाता। भावुक होने के कारण जगदीश-चद्र के लिए यह अपमान असह्य था और इस का उन्हो ने दृढ प्रतिवाद किया परन्तु उस की सुनवाई न हुई। पुन जगदीशचद्र ने अपनी दृढता और चरित्र का परिचय दिया। अपने मासिक वेतन की चेक वह तीन वर्ष तक निरतर वापस करते रहे, इस अवधि के अत मे डाइरेक्टर तथा प्रिंसिपल दोनो ने अपनी भूल का अनुभव किया, और सरकार की एक विशेष आज्ञा द्वारा अध्यापक बोस को पूरी तनख्वाह मिलने लगी और पिछला वेतन भी उसी परिमाण मे मिला। इन तीन वर्षो मे अध्यापक बोस और उन की पत्नी को जिन आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडा होगा उस का हम सहज में अनुमान कर सकते है परन्तु इस बीच म जो उन्हो ने अपन चरित्र-बल का परिचय दिया वह अत्यत [illegible] ीय है

यद्यपि अध्यापक बोस बड़े प्रभावशाली और सफल शिक्षक थे फिर भी वह अपना कार्य अध्यापन तक नही सीमित रखना चाहते थे। वह आरम्भ से ही शोध द्वारा ज्ञान के क्षेत्र के विस्तार के लिए उद्योगशील थे। पहले की ही भांति सरकार ने इन की आकांक्षाओं और उत्साह की ओर ध्यान न दिया। सरकार ने मूर्खतावश यह समझा कि अध्यापक का कार्य विद्यार्थियो को शिक्षा दे कर और मामूली नियमित कार्य कर देने से ही पूरा हो जाता है। शोध के कार्य से उस नियमित कार्य मे बाधा पड़ती है अतएव उसे अग्रसर करना उचित नही। परन्तु अध्यापक बोस हतोत्साह होना नही जानते थे, और वह सन्ध्या-समय तथा रात्रि मे शोध का कार्य किया करते थे, और चूकि इस कार्य के लिए सरकार की ओर से कोई अतिरिक्त सहायता नही मिलती थी, इस लिए आवश्यकतानुसार अपनी जेब से प्रयोग-सबधी यत्रो आदि के लिए रुपए व्यय किया करते थे।

सन् १८८७ मे, प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हेल्म होल्ज के शिष्य हर्ज ने विद्युत्-चुबकीय लहरो का उत्पादन किया जो कि प्रकाश की लहरो की भांति परन्तु लबाई मे अधिक थी। इस उपलब्धि ने वैज्ञानिक जगत मे बड़ा कुतूहल उत्पन्न किया। अध्यापक बोस ने इन प्रयोगो को स्वय दुहराया और १८९४ मे बगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष एक निबध पढ़ा। हर्ज के कार्य द्वारा इटली के युवक मार्कोनि (जिन की भी हाल ही मे मृत्यु हुई है) को बड़ी प्रेरणा मिली और इन्हो ने इस के द्वारा ही बे-तार-के-तार का आविष्कार किया। अध्यापक बोस ने स्वतत्र-रूप से इसी का विचार किया था परन्तु सुविधाओ के अभाव मे वह अपने कार्य को अग्रसर न कर सके। कलकत्ते के एक सार्वजनिक व्याख्यान मे १८९५ मे, इन्हो ने अपने एक प्रयोग द्वारा यह स्थापित किया था कि विद्युत्-किरणे व्याख्यान देने के कमरे से एक कमरा तथा गलियारा भेद कर तीसरे कमरे मे पहुंच सकती है। यह तीसरा कमरा उत्पादक-यत्र से ७५ फीट की दूरी पर था और तीन ठोस दीवालो को तथा सभापति के शरीर के अवरोध को पार कर के भी, इस तीसरे कमरे मे ग्राहक-यत्र म इतनी शक्ति शेष थी कि वह एक घटी बजा सके, एक पिस्तौल छुटा सके और एक छोटी सी सुरग मे बारूद का धड़ाका कर सके। सभापति महोदय जिन के शरीर को विद्युत्-तरगो ने भेदा था स्वय छोटे लाट थे।

इस विषय पर अध्यापक बोस ने लदन की रायल सोसाइटी के कार्यवाही-पत्र मे कई निबध प्रकाशित कराए और उन के   का परिचय भौतिक विज्ञान की

प्रामाणिक पुस्तको मे दिया जाने लगा। उन के कार्य से प्रभावित हो कर सरकार ने उन्हे इगलैंड भेजा, जहा पर उन्हो ने अपने कार्य के सबध मे विभिन्न सभाओ में व्याख्यान दिए। रायल सोसाइटी के सदस्य एक हिंदुस्तानी को इस प्रकार प्रयोगो सहित अपने विचारो को दृढता-पूर्वक प्रकट करता देख विस्मित हुए। उन के कार्य का मूल्य देखते हुए लदन विश्वविद्यालय ने उन्हे डी०एस्-सी० की उपाधि से विभूषित किया। लार्ड केल्विन ने उन की अत्यत प्रशसा करते हुए भारत-सचिव को एक पत्र लिखा जिस मे कि यह सिफारिश की कि कलकत्ता के प्रेसीडेसी कालेज में एक सुव्यवस्थित तथा पूर्ण प्रयोगशाला का प्रबध होना चाहिए, जिस से अध्यापक बोस अपने उपयोगी कार्य को सुविधा-पूर्वक आगे बढा सके। दुर्भाग्य से यह प्रस्ताव सरकारी दफ्तरो के लाल फ़ीते का शिकार हुआ और लार्ड केल्विन द्वारा प्रस्तावित भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला सन् १९१४ तक अस्तित्व मे न आई, और उस समय तक डाक्टर बोस के अवकाश ग्रहण करने का समय निकट आ गया था। फिर भी उन्हे इस बात का सतोष तो रहा ही कि प्रेसीडेसी कालिज की प्रयोगशाला की समुचित उन्नति कर के ही उन्हो ने अवकाश ग्रहण किया।

यदि डाक्टर बोस ने अपने आविष्कार को पेटेंट करा लिया होता तो उस से इन्हो ने बहुत धन कमाया होता। उन के कई मित्रों ने इस बात की सलाह भी उन्हें दी, परन्तु वह विज्ञान के सच्चे भक्त की भॉति ऐसे प्रस्ताव से दृढता-पूर्वक असहमत ही रहे।

रायल सोसाइटी ने पार्लामेंट द्वारा प्राप्त धन से, जो उसे विज्ञान की उन्नति के लिए मिलता है, जगदीशचद्र बोस की कुछ सहायता की। यह स्वय एक बडी बात थी। हिंदुस्तान लौटने से पहले वह यूरोप की कई यूनिवर्सिटियो में घूमे। बर्लिन, पेरिस, हाइडेलबर्ग, और कील मे इन्हो ने व्याख्यान दिए और सर्वत्र इन का अच्छा स्वागत हुआ।

लगभग १९०० के डाक्टर बोस ने अपना ध्यान एक ऐसे कार्य की ओर दिया जिस ने इन्हे अतर्जातीय ख्याति दिलाई। उन्हो ने यह देखा कि पौदे और पशुओ की, आहत और और उद्दीप्त होने पर, समान प्रतिक्रिया होती है। क्लोरोफार्म के वाष्प देने पर जिस प्रकार पशुओ मे प्रतिक्रिया का लोप हो जाता है उसी प्रकार पौदों मे भी। और जब निद्रा-जनक वाष्पो का असर दूर हो जाता है और वह स्वच्छ वायु पा जाते हैं तो जिस प्रकार पशुओ मे जाग्रति आती है उसी प्रकार पौदे भी अपनी निश्चेष्टता छोड कर फिर प्रतिक्रिया अंकित करने लगते है बहुत अधिक मात्रा म इस विष के ग्रहण कर लेन पर पशु और पौद समान

रूप से निश्चेष्ट हो जाते है। अनेक विषाक्त द्रव्य अति स्वल्प मात्रा मे दिए जाने पर उत्ते-जक का कार्य करते हुए पाए गए।

अध्यापक बोस ने इसी प्रकार के प्रयोग धातुओं पर भी किए। टीन, जस्ता, पीतल, यहा तक कि प्लैटिनम भी भिन्न 'विषो' द्वारा मूर्छित किए गए और उन मे जो नक्शे (ग्राफ) प्राप्त हुए वह भी पौदो और पशुओ से प्राप्त किए गए नक्शो जैसे थे। यह परि-णाम इतने आश्चर्यजनक थे कि बगाल के लाट साहब ने डाक्टर बोस के इगलैंड जाने की पुन व्यवस्था कर दी, जिस मे अध्यापक महोदय अन्य वैज्ञानिको से विचार-विनिमय कर सके और अपने कार्य के सबध मे परामर्श तथा आलोचनाए प्राप्त कर सकें।

६ जून १९०१ को डाक्टर बोस ने लदन की रायल सोसाइटी के सामने अपना निबध पढा और सांगोपाग प्रयोग दिखाया। परतु जिस प्रकार उन के कुछ वर्ष पीछे पढे गए पहले निबध का स्वागत हुआ था उस प्रकार इस का न हुआ। जो प्राणिशास्त्री इस अवसर पर उपस्थित थे उन्हो ने डाक्टर बोस द्वारा अपने क्षेत्र पर आक्रमण होते देख कर प्रसन्नता न प्रकट की वरन् इसे बोस की अनधिकार चेष्टा माना। उन्हो ने बोस को यह परा-मर्श भी दिया कि वह अपने कार्य को भौतिक विज्ञान तक सीमित रक्खें, प्राणिशास्त्र के क्षेत्र को बाहर रहने दें। उन के निबध का सोसाइटी की कार्यवाही के साथ प्रकाशित करना भी उचित न समझा गया।

डाक्टर बोस इस से प्रतिहत अवश्य हुए परतु उन के साहस ने उन का साथ न छोडा। उन्हो ने कुछ समय और ठहर कर, इस सबंध मे लडाई कर के अपने परिणामो को सिद्ध करने का ही निश्चय किया। वह रायल सोसाइटी की प्रयोगशाला मे, सभापति की आज्ञा से एक स्थान प्राप्त कर के, अपने प्रयोगो को दुहराने लगे। आक्सफोर्ड विश्वविद्या-लय के स्वर्गीय प्रोफ़ेसर वाइन्स ने इन्हे पत्र द्वारा प्रोत्साहित किया और बाद मे अपने दो अन्य मित्रो को ले कर इन से मिलने के लिए लंदन मे आए। अध्यापक बोस के प्रयोगो को देख कर वह तीनो व्यक्ति इतने प्रभावित हुए कि उन्हो ने अध्यापक बोस को लिनियन सोसाइटी की अवधानता मे व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया, और सभी प्रमुख प्राणिशास्त्रियो को, विशेषतया अध्यापक बोस के विरोधियो को आमत्रित करने का किया

यह प्रयोग २१ फरवरी १९०२ को प्रदर्शित किए गए। और सभी ओर से अध्यापक बोस को सहज समर्थन प्राप्त हुआ। कई प्रसिद्ध वैज्ञानिको ने, जो वहा पर उपस्थित थे अध्यापक बोस की भूरि-भूरि प्रशंसा की, और सोसाइटी के सभापति ने एक प्रोत्साहक पत्र लिखा। पिछले वर्ष की दुराशा-जनक घटना का एक प्रकार से प्रतिकार हुआ और लिनियन सोसाइटी ने इन के निबध को सपूर्णतया प्रकाशित किया।

हिंदुस्तान लौटने पर अध्यापक बोस अपना शोध-सबधी कार्य और भी उत्साह के साथ करते रहे। और इस के परिणाम-स्वरूप सन् १९०२ मे उन्हो ने अपनी पहली पुस्तक 'जीवित और निर्जीव मे प्रतिक्रिया' (रिस्पान्स इन दि लिविंग ऐंड दि नान-लिविंग) प्रकाशित की। इस तिथि से आगे उन की जिज्ञासा का क्षेत्र 'जीवितो' की दिशा मे रहा है, और १९०६ मे जो उन की दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई उस का नाम था 'वनस्पति-प्रतिक्रिया' (प्लाट रिस्पान्स)। अब वह वनस्पति-प्राणिशास्त्र मे अधिकाधिक गहरे प्रवेश करते रहे और उन के निबध और ग्रंथ लागमैन्स ग्रीन ऐंड कपनी ने कई बृहत् जिल्दो मे प्रकाशित किए, जिन से इन की ख्याति अतर्जातीय हो गई। ब्रिटिश सरकार ने १९१७ मे इन्हे 'नाइट' बना कर 'सर' की पदवी से सम्मानित किया, लदन की रायल सोसाइटी ने १९२० मे इन्हे अपना सदस्य (फेलो) निर्वाचित किया, और इंडियन साइस काग्रेस ने १९२७ मे इन्हें अपना जेनरल प्रेसिडेंट चुन कर इन का आदर किया। कई बार उन्हो ने पश्चिमी देशो की यात्राए की और ससार के भिन्न-भिन्न भागो मे एकेडेमियो तथा विद्वत्समाजो के सामने इन्हो ने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। अनेक परिषदो ने इन्हे अपना सदस्य चुन कर इन्हे तथा अपने को सम्मानित किया। जहा-जहा भी यह गए अपनी योग्यता द्वारा इन्हो ने अपने देश के गौरव को बढाया और इस मिथ्या भावना का निराकरण किया कि हिंदुस्तान के निवासी विज्ञान-विषयक योग्यता नही रखते। अध्यापक सर जगदीशचन्द्र बोस के सपूर्ण कार्यो का विवरण एक छोटे से निबध मे प्रस्तुत करने का उद्योग मूर्खता होगी। हम यहां पर उन के एक ऐसे शोध-कार्य के विषय में कुछ कह कर सतोष करेगे जिस ने पिछले वर्षो मे वैज्ञानिको का बहुत कुछ ध्यान आकर्षित किया है और जिस के सबध मे अकसर विवाद हुए है।

यह बात प्राय सभी जानते है कि पौदे अपनी जडो की नोक से लगे हुए रोमो द्वारा पानी खीचते है इस पानी को पौदे की सब से ऊची शाखाओ तक पहुचना होता है

अन्यथा नन्ही-नन्ही टहनियां मुरझा कर गिर पड़े। वह कौन सी शक्ति है जिस के द्वारा पानी जड़ो से खिच कर पत्तियो तक पहुँचता है? यह ऐसा प्रश्न है जिस ने कि बनस्पति-वैज्ञानिको तथा पदार्थ-विज्ञान के शास्त्रियो को समान-रूप से विस्मित किया है।

पुराने बनस्पति-शास्त्रियो ने इस दृग्विषय की समीक्षा इस प्रकार की। उन का कहना है कि यदि हम एक ऐसा थैला ले ले जिस मे कि पानी किंचित् प्रवेश कर सकता हो, और उस मे शक्कर का गहरा घोल भरे, और फिर उसे पानी मे लटकावे तो ज्यो-ज्यो पानी उस मे समायेगा त्यो-त्यो घोल की सतह ऊपर उठती रहेगी। जिस सिद्धात के अन्तर्गत ऐसी क्रिया घटित होती है उसे रंध्र-शोषण सिद्धांत (थ्योरी अव् आस्मोटिक ऐक्शन) कह सकते है। पौदो के रंध्र-कोषों की उपमा वह घोल भरे छोटे-छोटे थैलों से देते है, जो पानी को धरती से ग्रहण कर के धीरे-धीरे ऊपर पहुँचाते रहते है।

यदि इस प्रकार रंध्र-कोषो का क्रमागत संबंध ऊपर के सारतत्व मे, जड़ से ले कर पत्तियो तक, मान भी लिया जाय तो यह क्रिया अत्यत धीमी और समय लेने वाली होगी। सिक्वोया या यूकेलिप्टस् के ३०० फीट ऊचे वृक्ष की चोटियो तक पहुँचने मे इस घोल को वर्ष भर लग जायंगे।

एक दूसरा सिद्धांत इस विषय मे यह कहता है कि पत्तियो का ज्यो वाष्प-शोषण होता है त्यो उन मे एक प्रकार की खीचने की शक्ति आती है, और नीचे से जड़ो के दबाव द्वारा उस खिचाव में सहायता मिल जाती है। यह सिद्धात भी (यद्यपि आज भी इस के मानने वाले अनेक बनस्पति-विज्ञान के शास्त्री मिलेगे) मान्य नहीं है, क्योंकि कई पौदो की जड़ो मे दबाव होता ही नही, इस के अतिरिक्त जड़ो और पत्तियो को बिल्कुल निकाल कर अलग कर देने पर भी यह गति बनी रहती है।

भौतिक विज्ञान के सिद्धातो को सतोष-जनक न देख कर अध्यापक बोस ने अपना ध्यान दूसरी दिशाओ में फेरा। क्रिसेन्थेमम की एक मुरझाती हुई टहनी ऐसे जल से सीची गई जिस मे मादक वस्तु मिली हुई थी। इस के परिणाम-स्वरूप उस मे आश्चर्यजनक अंतर उपस्थित हुआ। पद्रह मिनटो के भीतर मुरझाई हुई टहनी का तना उठा और खड़ा हो गया, और उस की पत्तियां ताजी हो कर फैल गई। इसी प्रकार की एक दूसरी टहनी फ़ारमेल-डि-हाइड के घोल म डाली गई वह कभी न उठी वरन बिल्कुल मुरझा कर मृतवत

हो गई। इसी प्रकार के प्रयोग अन्य कई पौदो पर किए गए और उन के परिणाम भी इसी प्रकार के हुए। अध्यापक बोस इस नतीजे पर पहुँचे कि सारवस्तु का सचार जीवित जालो के द्वारा होता है, जो किन्ही द्रव्यो से स्फूर्त तथा अन्य द्रव्यो से मृत हो जाते है।

इस के बाद जिज्ञासा का दूसरा विषय यह हुआ कि जड़ अथवा तने के किस भाग मे यह जाल स्थित है। इस का निर्धारण एक विशेष प्रकार से बनाई गई बिजली की सुई (एलेक्ट्रिक प्रोब) द्वारा किया गया। यह सुई चिह्न अंकित करने वाले यत्र गैल्वनोमीटर मे जोड दी गई और इसे धीरे-धीरे एक पौदे मे घुसाया गया। छाल के भीतरी अश मे सपर्क मे आने पर गैल्वनोमीटर की सुई बड़े वेग से यकायक आदोलित हुई। जब वह ओर भीतर धसाई गई तो उस का आदोलन फिर बद हो गया। प्रत्यक्षतः वह जीवित रध्र जो कि पानी को अपनी मधुर गति द्वारा ऊपर उठाते है छाल के अदर के तहो मे स्थित होते है और इन्हे ही सर जगदीशचद्र पौदे का "हृदय" कहते है। अतर यह है कि जिस प्रकार कि मनुष्य का हृदय एक स्थान पर रहता है उस प्रकार पौदो का 'हृदय' एक ही स्थान पर नही रहता है। तब भी इस की क्रिया मनुष्य के हृदय की क्रिया से बहुत कुछ मिलती है। कुछ मादक द्रव्यो द्वारा पौदे तथा पशु के हृदय तीव्र गति से चल कर रक्त अथवा जल का सचार करते है। इस के विपरीत द्रव्य उलटा असर रखते है। गर्मी के साथ इस की गति एक मर्यादित रूप मे बढती है, और ठड से वही गति मद पड जाती है।

सर जगदीशचंद्र ने अपने इन प्रयोगो को यूरोप तथा अमरीका की एक यात्रा मे प्रदर्शित किया। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि उन के परिणामो से सर्वत्र वैज्ञानिक सहमत हुए है, फिर भी ऐसे वनस्पति-शास्त्रियो की सख्या वृद्धि पर है जो यह समझते है कि सारवस्तु के ऊपर उठने की क्रिया का रहस्य जड अथवा भौतिक विज्ञान के सिद्धातो द्वारा नही उद्घाटित होता वरन् उस के लिए हमे प्राणि-शास्त्र के सिद्धातो का आश्रय लेना आवश्यक है।

फिर भी समस्त वैज्ञानिक इस बात मे सहमत है कि सर जगदीशचद्र बोस ने अपने प्रयोगों मे अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है और जितने बारीक और सूक्ष्म यत्र जीवन-गति के माप के लिए उन्हो ने तैयार किए है वैसे इस समय तक नही हुए है। इस लिए यह बात आश्चर्य-जनक नही कि यूरोप और अमरीका के वैज्ञानिक, जिन्हो ने वैसे ही सूक्ष्म यन्त्रो का आश्रय नही लिया वे उन्ही प्रयोगो को दुहरा नहीं सके है तथा वही फल नही प्राप्त कर

सके है। क्या यह कहना अत्युक्ति होगी कि यह भारतीय नेता अपने समय से आगे है? फिर भी भविष्य ही इस बात का निर्णय कर सकता है।

अपने समस्त लेखो और व्याख्यानो मे सर जगदीशचद्र अपने शोध-प्रेम तथा देश-प्रेम का परिचय देते है। शिक्षण और शोध के परस्पर-सबध के विषय में उन की निश्चित सम्मति है। अपने एक व्याख्यान मे, जो कई वर्ष पहले दिया गया था, आप ने कहा था—'यदि शिक्षण का शोध-कार्य मे सबध न हो तो शिक्षण की मर्यादा गिरने लगती है, दूसरे और तीसरे पक्ष से ग्रहण किया हुआ ज्ञान शिक्षार्थियो मे नकल का भाव उत्पन्न करता है, तथा वास्तविकता की प्रदीप्त ज्वाला मद पड जाती है।" जब उन मे यह पूछा गया कि "आप को स्वय ऐसी जबरदस्त प्रेरणा और शक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है?" तो आप ने कहा—"मेरा कार्य ही मेरा सब मे बडा शिक्षक रहा है, निरतर आए हुए दुर्दिन ही मुझे अपने जीवन मे सदा प्रोत्साह दिलाते रहे है।" उन्हे हिंदुस्तानी विद्यार्थियो का बराबर विदेशो मे जाते रहना पसद नही था। वह कहते रहते थे कि—"इस प्रकार हिंदुस्तान एक करोड रुपए से अधिक का अपने ऊपर आप कर लगा कर विदेशो मे प्रति वर्ष भेजता रहता है। यह एक ऐसा क्षय है जिस की हम शिकायत भी नही करते। क्या यह अधिक अच्छा न हो कि यह धन हिंदुस्तान ही मे सदुपयोग के साथ व्यय किया जाय? एक ही मार्ग इस निरर्थक और लज्जाजनक स्थिति के अत करने का है—वह यह कि हम अपनी शिक्षा तथा उद्योग के विषयो मे विदेशी सहायता की आवश्यकता से धीरे-धीरे मुक्त हो जावे। नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड जैसे थोडी सपत्ति वाले देशो ने ऐसा किया है। फिर हम लोग भी ऐसा क्यो नही कर सकते?"

एक बार उन्हो ने कहा था—"किसी भी विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा तीन प्रश्नो के उत्तर पर अवलबित है—(१) आप ने हमारे ज्ञान की सीमा को कहा तक अग्रसर किया? (२) क्या-क्या शोध और आविष्कार आप के निरीक्षण मे हुए? (३) क्या आप का विश्वविद्यालय विदेशी विश्वविद्यालयो के लिए एक प्रकार का प्रारभिक क्षेत्र ही बना रहेगा, अथवा आप विदेशी विद्वानो को उस प्रकार आकर्षित करेंगे जिस प्रकार कि हमारे नालद और तक्षशिला के विद्यापीठ किया करते थे?

सर के मार्ग म में जो कठिनाइया उपस्थित हुई उन्हो ने

इन्हे अन्य शिक्षार्थियो के लिए मार्ग सुलभ और प्रशस्त करने के लिए प्रेरित किया। ३० नवबर सन् १९१७ को, प्रेसीडेसी कालिज कलकत्ता से अवकाश ग्रहण करने के दो वर्ष बाद, इन्हों ने कलकत्ते मे बोस रिसर्च इस्टीटचूट की स्थापना की। यह सस्था स्वर्गीय बोस की अमर कृति रहेगी। इस के सस्थापन के अवसर पर जो व्याख्यान सर जगदीशचद्र ने दिया था वह चिरस्मरणीय है। उन्हो ने कहा था—"मै खाली हाथ आया हू, और वैसा ही चला जाऊँगा। यदि इस बीच मे कुछ भी कर सकने मे म समर्थ हुआ तो यह मेरा सौभाग्य होगा। मेरे पास जो कुछ भी है उसे मै भेट करूँगा, और मेरी पत्नी ने भी, जिस ने आजन्म मेरे साथ कठिनाइयो का सामना किया है, अपना सर्वस्व इसी निमित्त अर्पित कर दिया है।"

इस लेख को हम बिना श्रीमती बोस को स्मरण किए हुए नही समाप्त कर सकते। वह अपने पति की ५० वर्ष तक घनिष्ट सगिनी रही। उन्हो ने अपने पति के वैज्ञानिक कार्य के महत्त्व को सदा समझने का प्रयत्न किया, उन की चिन्ताओ और कठिनाइयो मे उन का साथ दिया, और ऐसे अवसरो पर अपने पति को प्रोत्साहित किया जब कि उन्हे निराशाओ का अनुभव हुआ। गृहस्थी को मितव्ययिता के साथ सँभाल कर उन्हो ने अपने पति को उन की आय का अधिकांश विज्ञान की सेवा मे समर्पण करने दिया, और पति की यात्राओ मे उन की सगिनी रही। उन का शात और आशावादी स्वभाव उन के पति का सदा सहायक रहा। उन के इस महान् विछोह में सभी देश-वासियों की सहानुभूति उन के साथ है।

सर जगदीशचद्र के मित्रों मे प्रथम स्थान कविवर डाक्टर रवीद्रनाथ ठाकुर का है। सन् १८९७ से उन से कवि की जान-पहचान थी जब कि रवीद्रनाथ ने यूरोप से लौटने पर उन का स्वागत किया था। तब से वे सदा परस्पर घनिष्ट मित्र रहे। विज्ञान के क्षेत्र मे उन के घनिष्ट मित्र सर प्रफुल्लचद्र राय रहे, जिन का एडिनबरा से वापस आने पर बोस के यहा स्वागत हुआ था। सर नीलरतन सरकार, जो कि बंगाल के प्रमुख डाक्टर हैं, जगदीशचद्र के घनिष्टो मे रहे। बोस के विद्यार्थी आज सारे हिंदुस्तान मे फैले हुए है। उन मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मेघनाद साहा भी है, जिन्हो ने भौतिक विज्ञान मे के क्षेत्र मे बडी प्रतिष्ठा लाभ की है।

सर बोस की मृत्यु विगत २२ नवबर को गिरिडीह म स्नान करते

समय हृद्गति बंद हो जाने से हुई। यह देश के लिए एक महान शोकप्रद घटना है। यह बात कभी भुलाई नही जा सकती कि बोस महोदय उन व्यक्तियो मे थे जिन्हो ने हमारे देश के गौरव को वैज्ञानिक जगत मे बढ़ाया और भारतवर्ष का मुख विदेशियो के समक्ष उज्ज्वल किया।

अंधी

[रचयिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]

क्या सोच रही है बाले !
बैठी तू शून्य सदन में ?
किस की सुध से आकुल-सी
तू हो उठती है मन में ?
कर बंद दृगों को संतत
है कौन तपस्या करती ?
किस मंजु अदेखी छवि का
तू ध्यान सदा है धरती ?

करके अनयन प्रिय-दर्शन
तू है न कदापि अघाती।
प्रेमोपचार कर मन में
फूली है नहीं समाती॥
निज मुंदे लोचनों में तू
है कौन रहस्य छिपाये ?
किन भाव-प्रसूनों से तू
है उर-उद्यान सजाये ?

अंधी के लिए अँधेरी
रहती है दुनिया सारी।

किस भाँति देखती है तू
जग की छवि न्यारी न्यारी ?
तू नयन बिना ही कैसे
प्रिय-छवि-दर्शन कर लेती ?
क्या प्रीति हृदय की तेरे
है खोल दृगों को देती ?

संपुटित नयन-सरसिज में
प्रिय-भृंग छिपा कर बाले !
अर्पण करती रहती है
निज उर के रत्न निराले ॥
प्रिय की अनुपम छबि तुझ को
देती है नहीं दिखाई।
पर शीतल कर देती है
उस की मुख-चंद्र-जुन्हाई ।

बिकसित मुख-पंकज प्रिय का
तू देख नहीं है पाती
पर तू उस के सौरभ से
है आमोदित हो जाती।
मृदु मुकुलित कंज-कली-सी
तू है छविमयी निराली
है मूर्तिमती सुंदरता
तू सुंदरि ! भोली भाली

निज छवि से भी तू बाले !
रहती ह सदा अपरिचित

अधी

तू क्या जाने, वह किस को
कर लेती है आकर्षित ॥
कमनीय कुसुम का रस है
अंधी समीर ले जाती।
प्रिय-रूप-सुधा को पी कर
तू भी है नहीं अघाती ॥

प्रेमी चकोर की चितवन
जिस को है दृष्टि न आती।
उस चंद्र-कला-सी तू भी
मन ही मन है अकुलाती ॥
मधु के वियोग में जैसे
है वनस्थली मुरझाती।
प्रिय-विरह-व्यथा से तू भी
वैसे ही है कुम्हलाती ॥

जिस को न कभी पहचाना
जिस को न कभी है देखा।
उर उसे दे दिया तू ने—
मिट सकी न विधि की रेखा ॥
अपने एकांत सदन में
तू है सदैव घबराती।
प्रिय-प्रेम-गीत गा-गा कर
अपना मन है बहलाती ॥

संगीत-सुधा-सरिता में
रहती ह सदा समाई

रह कर ध्यानावस्थित तू
कहती है कृष्ण कन्हाई ॥
ले नया जन्म जग में क्या
आई है मीराबाई ?
या सूरदास की आत्मा
है तुझ में शुभे ! समाई ?

स्वामिनी अभाव-जगत की,
जागृत स्वप्नों की रानी ।
कल्पित-सुख-मादकता से
तू रहती है दीवानी ॥
निज उर में ही प्रियतम की
है तू ने सेज बिछाई ।
बस अंध-भक्ति में तू ने
जीवन-सुख-सीमा पाई ॥

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पचास वर्ष

[लेखक—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०]

विगत दिसबर मास मे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की स्वर्णजयती बडे समारोह के साथ मनाई गई थी। यह अवसर न केवल हमारे प्रात के वरन् सारे भारतवर्ष के शिक्षा-सबधी इतिहास मे एक विशेष महत्व रखता है। इन पक्तियो के लेखक ने इस अवसर के लिए यूनिवर्सिटी के सस्थापन तथा विकास का एक सक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया था। प्रस्तुत लेख उसी के आधार पर लिखा गया है।

स्थापना-संबंधी योजना

२६ जनवरी, १८६६ को, ड्यूक अव् एडिनबरा के सम्मान मे आमत्रित एक दरबार मे भाषण करते हुए प्रातीय छोटे लाट ने 'प्रस्तावित इलाहाबाद यूनिवर्सिटी' की चर्चा की थी। ६ मई १८६९ को पत्र न २२४५ द्वारा प्रातीय सरकार ने भारतीय सरकार के गृह-विभाग को सूचित किया कि वह समय निकट आ रहा है, जब कि उत्तरी भारत मे एक नई यूनिवर्सिटी के सस्थापन का (जो कि १८५४ के सरकारी पत्र के अनुसार चौथी यूनिवर्सिटी होगी) प्रश्न ध्यान आकर्षित करेगा। सन् १८७० मे, मिस्टर डब्ल्यू० टिरेल महोदय ने म्योर कालेज की इमारत के नक़्शे के लिए विज्ञापन निकाला और अपने को 'इलाहाबाद कालिज और यूनिवर्सिटी की कमिटी का सेक्रेटरी' प्रकाशित किया। परंतु १२ जनवरी, १८७१ को, भारतीय सरकार के स्थानापन्न सेक्रेटरी मिस्टर ए० ओ० ह्यूम ने (जो बाद मे इडियन नेशनल कांग्रेस के सस्थापकों मे हुए) नार्थ-वेस्टर्न (पश्चिमोत्तरी) सूबे की सरकार को लिखा —

"अपनी कौसिल सहित गवर्नर-जनरल को इलाहाबाद के लिए एक केंद्रीय कालिज की मजूरी देने मे बडा सतोष होता है और जैसे ही माननीय छोटे लाट आवश्यक प्रबध करें ले यह अस्तित्व मे आ सकती है। . . . परंतु इस बात को समझ लेना चाहिए

कि भारतीय सरकार पश्चिमोत्तरी सूबे मे एक यूनिवर्सिटी की स्थापना की आवश्यकता पर कोई सम्मति नही दे रही है, न इसी बात से सहमत है कि यह नया कालिज कलकत्ता यूनिवर्सिटी के प्रभाव-क्षेत्र से तुरत अलग हो जाय।"

इलाहाबाद में सेंट्रल (केंद्रीय) कालिज की स्थापना की योजना के साथ एक यूनिवर्सिटी की स्थापना का विचार बराबर सबद्ध रहा है। १० मई, १८७० को पश्चिमोत्तरी सूबे की सरकार के सेक्रेटरी ने भारतीय सरकार को लिखा.—

"यह प्रकट होगा कि इलाहाबाद मे ऐसे सेंट्रल कालिज की स्थापना उद्दिष्ट है जो कि वहा निवास कर के पढने वाले विद्यार्थियो वाली यूनिवर्सिटी का आधार बन सके। . . . . इमारत के लिए निर्धारित रुपयो का अधिकाश निवास करने वाले विद्यार्थियो के आवास तैयार करने मे व्यय होना चाहिए।"

इस बीच मे सर विलियम म्योर की सरकार ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी के अधिकारियो से इस आशय का पत्रव्यवहार किया कि वह कलकत्ता यूनिवर्सिटी के सिनेट की एक शाखा इलाहाबाद मे स्थापित करे। इस पत्रव्यवहार का कोई परिणाम नही निकला, परतु इलाहाबाद मे सेंट्रल कालिज की स्थापना की योजना सफल हुई और ९ दिसबर १८७३ को, वाइसराय महोदय लार्ड नार्थब्रुक के हाथो से उस का शिला-न्यास हुआ। उस अवसर पर वाइसराय महोदय को जो सम्मानपत्र भेट किया गया था उस मे लिखा था :—

"अभी तक किसी भी कालिज मे यूनिवर्सिटी की कक्षाएं बंद नही हुई है, परतु यह विचार करने की बात होगी कि जब पर्याप्त धन गरीब विद्यार्थियो की छात्रवृत्ति के लिए एकत्र कर दिया जाय तब, यातायात के सुलभ साधनो को देखते हुए, सरकार यदि सब कालिजो की नही तो कम से कम कुछ कालिजो की यूनिवर्सिटी कक्षाए सेंट्रल कालिज इलाहाबाद मे केंद्रित करे।"

इस प्रकार यह विचार कि प्रात के अन्य कालिज यूनिवर्सिटी की कक्षाओ मे शिक्षण न प्रदान करे, वरन् यह कार्य केंद्रित रूप मे इलाहाबाद में हो, सरकार के सामने सन् १८७३ मे भी था।

जब कि ८ अप्रैल सन् १८८६ को म्योर कालिज की इमारत का उद्घाटन वाइसराय महोदय लार्ड डफ़रिन द्वारा हुआ उस समय मिस्टर जस्टिस टिरेल महोदय ने सम्मान-पत्र में यह पढा था

"हम लोगो मे से जो १६ वर्ष पूर्व कालिज की स्थापना सबधी परामर्श मे सम्मिलित थे यह जान कर विशेष रूप से सतुष्ट हुए है कि अत मे इस बात की संभावना उपस्थित हो गई है कि इस प्रात में एक स्वतत्र यूनिवर्सिटी स्थापित हो जाय। कालिज के प्रसिद्ध सस्थापक ने यह कहा था कि विकास प्राप्त करते हुए इस कालिज के उपाधि-वितरण संस्था हो जाने की सदा आशा करता रहा हू।"

लार्ड डफरिन ने अपने उत्तर मे कहा था —

"छोटे लाट (सर अल्फ्रेड लायल) ने यह विचार सामने रक्खा है कि इस कालिज का और अधिक विस्तार हो सकता है और इस की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हो सकती है। अभी वह समय नही आया है कि वाइसराय इस सबध मे अपनी निर्धारित राय प्रस्तुत कर सके। परतु मुझे यह कहने मे सकोच नही है कि कोई भी सिफारिश जिस के साथ सर अल्फ्रेड लायल का प्रतिष्ठित नाम सबद्ध रहेगा ऐसी नही हो सकती जिस पर मै और मेरे साथी आदर-पूर्वक ध्यान न दे।"

अतत. पश्चिमोत्तरी सूबे की सरकार का १८६९ का किया हुआ प्रस्ताव सन् १८८७ की २३ सितबर को ऐक्ट न० १८ पास होने पर पूरा हुआ। इस ऐक्ट मे एक विशेष बात यह थी कि वह धाराए जिन से कि यह समझा जाता था कि पुरानी यूनिवर्सिटियां केवल परीक्षण संस्थाएं है, दुहराया नही गया। १९०२ के इडियन यूनिवर्सिटीज कमिशन ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा था—"अतएव अव कोई संदेह इस बात का नही रह जाता कि यूनिवर्सिटी को शिक्षण के कानूनी अधिकार भी प्राप्त हो गए।"

पहला दीक्षा-समारोह

पहले दीक्षा-समारोह के लिए सिनेट की बैठक नवबर १५, १८८७ को हुई। और पहली सिंडिकेट की बैठक ३० जूलाई १८८७ को। बी० ए० तथा एल्-एल० बी० की पहली परीक्षाएं यूनिवर्सिटी द्वारा १८८९ मे ली गई। पहली इट्रैस परीक्षा भी इसी वर्ष ली गई।

ऐक्ट १८८७ के अनुसार सिनेट केवल 'आर्ट्स' और कानून विषयो मे उपाधियां दे सकती थी। विशेष रूप से कौसिल-सहित गवर्नर-जनरल द्वारा अधिकार पाने पर विज्ञान- भैषज्य तथा इजीनियरिग मे भी उपाधिया दी जा सकती थी। सम्मानार्थ क़ानून के डाक्टर की उपाधि भी यूनिवर्सिटी प्रदान कर सकती थी सन १८९४ में

कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने विज्ञान-विभाग की संस्थापना मंजूर करके सिनेट को विज्ञान की उपाधियां प्रदान करने का भी अधिकार दिया।

यूनिवर्सिटी की भौगोलिक सीमा निर्धारित नहीं थी, सिंडिकेट के इस विषय के नियमों में यह लिखा था कि पश्चिमोत्तरी तथा अवध सूबों के बाहर की संस्थाओं को संबद्ध होने के लिए प्रार्थना-पत्र देते हुए अपने प्रांत की सरकार के सेक्रेटरी का, अथवा यदि कालिज देशी राज्य में हो तो वहां स्थित गवर्नर-जनरल के एजेंट का अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए।

विकास-क्रम

यूनिवर्सिटी के विकास में दूसरी प्रमुख तिथि १९०४ है जब कि उस वर्ष का ऐक्ट नं० ८ पास हुआ जो 'इंडियन यूनिवर्सिटीज ऐक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस की कुछ विशेषताएं हैं। ऐक्ट की तीसरी धारा यूनिवर्सिटी को विद्यार्थियों की शिक्षा, अध्यापकों की नियुक्ति, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, अजायबघर आदि के संस्थापन और प्रबंध आदि के साथ 'ज्ञान के विस्तार और शोध' के लिए आवश्यक उपायों के करने का अधिकार देती है। यह ऐक्ट कालिजों के यूनिवर्सिटी से संबद्ध होने तथा निरीक्षण के विषय में भी नियम निर्धारित करता है। इसी की २७वीं धारा के अनुसार कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल को विशेष विज्ञप्ति द्वारा यूनिवर्सिटी की भौगोलिक सीमाएं निर्धारित करने का भी अधिकार प्राप्त है।

२० अगस्त सन् १९०४ की नं० ७१७ की विज्ञप्ति द्वारा कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का भौगोलिक क्षेत्र आगरा तथा अवध के सूबे, मध्यभारत (जिस में बरार सम्मिलित था), अजमेर-मेरवाड़ा और राजपूताना तथा सेंट्रल इंडिया एजेंसी निर्धारित किया।

इस प्रकार ४,५२,८३० वर्गमील के विस्तार की भूमि की, तथा ८,०९,४८,४३२ जनसंख्या की शिक्षा-संबंधी आवश्यकताओं की इलाहाबाद यूनिवर्सिटी द्वारा पूर्ति होती रही। प्रत्येक संबद्ध कालिज के साथ-साथ छात्रावासों की वृद्धि होती रही और शिक्षकों की शिक्षा के लिए स्थापित कालिजों को भी यूनिवर्सिटी स्वीकृति प्रदान करती रही

सन् १९०६ मे सरकार ने यूनिवर्सिटी से शिक्षा-विषय के एक प्रोफेसर की नियुक्ति की योजना पर स्वीकृति चाही। यह योजना कार्यरूप मे न आ पाई।

सन् १९०७ में यूनिवर्सिटी से 'डाक्टर अव् लेटर्स' की उपाधि प्रदान करने की व्यवस्था हुई और इसी वर्ष अर्थशास्त्र मे एम्० ए० की उपाधि की व्यवस्था भी हुई। सन् १८८८ मे सब कालिजो मे विद्यार्थियो की सख्या ६५० थी, वही बढ कर १९०५-६ मे २९७० तक पहुच गई थी।

सन् १९०८ मे प्राणिशास्त्र की शिक्षा का प्रबध हुआ।

सन् १९१० मे भैषज्य के शिक्षण के प्रबध के लिए समिति बनी, और सम्राज्ञी विक्टोरिया रीडरशिप की स्थापना द्वारा वैज्ञानिक शोध को प्रोत्साहन मिला।

सन् १९११ मे व्यापार विषय पर प्रमाणपत्र देने के लिए एक परीक्षा का आयोजन हुआ।

सन् १९१२ मे यूनिवर्सिटी ने स्नातको का रजिस्टर खोलने का प्रश्न उठाया। उसी वर्ष भारत सरकार से ४५००० वार्षिक तथा तीन लाख का एकमुश्त प्रदान प्राप्त हुआ। यूनिवर्सिटी ने भारत सरकार से यह प्रस्ताव किया कि यह सपूर्ण प्रदान इतिहास, अर्थशास्त्र तथा भाषाशास्त्र के प्रोफेसरों तथा रीडरों की नियुक्ति तथा ९ छात्रवृत्तियो मे व्यय किया जाय, और उस का उद्देश्य शोधकार्य को अग्रसर करना हो। यूनिवर्सिटी के शिक्षण के अग की पूर्ति मे सब धन लगाया जाय। सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया, परंतु यह कहा कि इस समय केवल दो प्रोफेसरों की नियुक्ति हो अर्थात् इतिहास और अर्थशास्त्र मे और इस नियुक्ति के लिए चासलर की मजूरी होनी चाहिए।

सन् १९१३ मे भारतीय सरकार ने तीसरे प्रोफेसर की नियुक्ति भी मजूर कर ली, यह सस्कृत के प्रोफेसर के लिए थी और जैसा प्रातीय सरकार ने स्पष्ट किया डाक्टर वेनिस के मूल्यवान् कार्य को जारी रखने के लिए की गई थी। इसी वर्ष कामर्स (व्यापार) का विभाग भी स्थापित हुआ।

जून सन् १९१५ मे यूनिवर्सिटी ने हिंदू यूनिवर्सिटी की स्थापना सबधी बिल पर विचार किया और कुछ अपने प्रस्ताव भी किए।

सन १९१७ म भषज्य म एम० डी० की उपाधि देना स्वीकृत हुआ सन् १९१८

मे वाइस-चासलर ने अपने विशेष तथा, अनिश्चित मत-प्रदान द्वारा बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं को स्वीकार किया। इसी वर्ष सरकार ने भूगोल के लिए एक प्रोफेसर की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव किया, तथा धन देने का वचन दिया परंतु यह पद अभी तक नही स्थापित हुआ है।

सन् १९१९ मे एम्० एस० (मास्टर अव् सर्जरी) की उपाधि अस्तित्व मे आई।

सन् १९२० मे पटना यूनिवर्सिटी की परीक्षाए मान्य हुईं।

इसी वर्ष सरकार ने राजनीतिशास्त्र तथा नागरिकशास्त्र के लिए एक प्रोफेसर का पद स्थापित किया।

३१ जनवरी १९२० को सिंडिकेट ने चासलर के एक पत्र पर विचार किया जिस मे कि यूनिवर्सिटी से दस नाम ऐसे व्यक्तियो के निर्वाचित करने के लिए कहा गया था जो यूनिवर्सिटी की पुनर्सगठन-समिति के सदस्य हो सके। यूनिवर्सिटी ने नाम निर्वाचित किए। जून १३, १९२० को प्रातीय सरकार ने यूनिवर्सिटी के पास अपनी बोर्ड अव् हाई स्कूल ऐंड इटरमिडिएट एडूकेशन के सगठन के सबध की योजना भेजी जो कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमिशन की सिफारिशो को ध्यान मे रख कर तैयार की गई थी। इस के साथ सरकार ने लिखा कि उस की राय मे "यूनिवर्सिटी के पुनर्सगठन की योजना के लिए माध्यमिक शिक्षा पर विशेषतर निरीक्षण की आवश्यकता है।" यूनिवर्सिटी ने प्रस्तावो से सहमत होते हुए इस बात की आवश्यकता प्रगट की कि निरीक्षण मे यूनिवर्सिटी का विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिए। ७ अगस्त १९२० को सर हार्कोर्ट बटलर चासलर महोदय ने अभूत-पूर्व कार्य यह किया कि स्वय सिनेट की बैठक का सभापतित्व किया। उन्हो ने कहा—

"हम लोग साधारणत यह स्वीकार करते है कि हमारी नीति का उद्देश्य इन प्रातो मे ऐसी कई केंद्रीय यूनिवर्सिटियो की स्थापना होना चाहिए जो शिक्षण प्रदान करने के साथ छात्रो के आवास का प्रबंध करे। इस उद्देश्य को ले कर हम लोग—मै समझता हू—तीन विषयों पर सहमत है। पहला यह कि लखनऊ मे एक केंद्रीय, शिक्षण और आवास का प्रबध करने वाली, यूनिवर्सिटी होनी चाहिए। दूसरे यह कि यूनिवर्सिटी और स्कूल के बीच की सीमा इटरमिडिएट दर्जो को होना चाहिए। तीसरे यह कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के दो भाग होने चाहिए		जो पूर्ण-रूप से केंद्रीय हो तथा आवास और

शिक्षण का प्रबंध रक्खे और वहिर्विभाग जो कि बाहर के कालिजो को अपने से सबद्ध रक्खे। यहा तक हम लोग एक मत है।"

डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के प्रस्ताव पर सिनेट ने यह स्वीकार किया कि लखनऊ में केंद्रीय, शिक्षा देने वाली, यूनिवर्सिटी की स्थापना हो। परतु लखनऊ यूनिवर्सिटी बिल की विस्तार की बातो पर कोई मत नही प्रकट किया गया।

जनवरी २४, १९२१ को सिनेट ने बोर्ड अव् हाई स्कूल ऐंड इंटरमिडिएट एडूकेशन के सस्थापना की बिल पर विचार किया, उसी समय यूनिवर्सिटी पुनर्सगठन की सब-कमिटी की रिपोर्ट पर भी सिनेट ने बहुमत से इस बात का विरोध किया कि वाइस-चासलर तथा खजाची कोर्ट द्वारा नियुक्त हो। परतु बाद मे इसे धारा-सभा ने स्वीकार किया।

मार्च १९२१ मे आर्ट्स-विभाग ने हिंदी तथा उर्दू मे एम्० ए० कक्षाए खोलने की स्वीकृति दी। इसी साल सिनेट ने इस की मजूरी भी दी कि विद्यार्थी 'कपार्टमेंट' मे परीक्षा दे सकते है।

१० सितबर १९२१ को सिनेट ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी बिल पर विचार किया। १८ नवबर को सिनेट ने कानपूर कृषि-कालिज तथा रुड़की इजिनियरिंग कालिज का यूनिवर्सिटी से सबद्ध होना स्वीकार किया।

सन् १८८८ में यूनिवर्सिटी से १३ कालिज सबद्ध थे; १९०७ मे इन की सख्या ३८ थी, १९२१ मे ३६। स्वीकृत स्कूल १९०९ मे १९१ थे, १९२१ मे २३०। १८८९ मे १८३९ परीक्षार्थी थे, १९२१ मे ८३५७। परीक्षा-सबंधी व्यय १९२१ मे १,५४,९८४ था, सन् १८८९ मे यही केवल ११,१३९ था।

नई यूनिवर्सिटियों का संस्थापन

बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी की स्थापना के साथ, सन् १९१५ मे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का अगभग आरभ हुआ। इस के बाद सन् १९२० मे लखनऊ यूनिवर्सिटी अस्तित्व में आई। इसी वर्ष अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी भी सगठित हुई। १९२३ में नागपूर यूनिवर्सिटी स्थापित हुई, और १९२७ मे आगरा यूनिवर्सिटी। यह पाच यूनिवर्सिटिया इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से ही अकुरित हुई और तीन अर्थात म्योर सेंट्रल ईविंग क्रिश्चियन और कायस्थ कालिजो को छोड कर से सबद्ध सभी कालिज इन म

बँट गए। सन् १९२७ के अनतर उपर्युक्त तीन कालिज ही इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से सबद्ध रहे।

पुनर्संगठन

सयुक्त प्रातीय सरकार ने ९ फ़रवरी १९२० को एक विज्ञप्ति निकाली थी जिस मे कहा गया था कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के चासलर महोदय सर हार्कोर्ट बटलर ने एक कमिटी को आमत्रित किया है जो कि इलाहाबाद के गवर्नमेंट हाउस मे १३ फ़रवरी को १०½ बजे यह विचार करने के लिए बैठेगी कि सैडलर (कलकत्ता यूनिवर्सिटी) कमिशन की शिक्षा-सबधी सिफ़ारिशो के आधार पर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का किस प्रकार पुनर्संगठन हो सकता है। कमिटी मे चासलर, वाइस-चासलर और शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर के अतिरिक्त चासलर महोदय, मध्यप्रदेश के चीफ कमिश्नर तथा यूनिवर्सिटी की सिडिकेट द्वारा निर्वाचित तथा सयुक्तप्रातीय धारा-सभा द्वारा चुने हुए सदस्य थे।

सर हार्कोर्ट बटलर ने कमिटी की कार्यवाही का उद्‌घाटन करते हुए यह कहा था—

"मै सभी प्रकार की शिक्षा की उन्नति तथा व्यापक सुधार चाहता हू। शिक्षा के क्षेत्र के सभी कार्यकर्ताओ को मै प्रोत्साहन देना चाहता हू। अपनी यूनिवर्सिटी के प्रति जो हमारे गर्व के भाव है उन की विस्तृत विवेचना करने की मुझे आवश्यकता नही जान पडती। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का हम पर जो आभार है उस के सबंध मे अतिशयोक्ति सभव नही। इस ने प्रात की शिक्षा-व्यवस्था को समुचित पथ पर अग्रसर किया है, और यह सब प्राय सरकार के हस्तक्षेप के बिना ही सपादित हुआ है। . हमे अपनी यूनिवर्सिटी के प्रति न केवल गर्व है वरन् प्रेमपूर्ण श्रद्धा है।

"फिर भी यह भावना साधारणत फैली हुई है कि हमें अन्य स्थलों में प्राप्त अनुभव के आधार पर जो कि हाल मे प्रकाश मे आए हू यूनिवर्सिटी के पुनर्संगठन के विषय मे विचार करना चाहिए। . . ऐसा अवसर आ गया है कि हम एक लबा पग आगे बढ़ावे। इलाहाबाद मे एक ऐसी केंद्रित और शिक्षा तथा निवास का प्रबध करने वाली, यूनिवर्सिटी के बीज मौजूद है, कि इसे हिदुस्तान मे किसी दूसरी यूनिवर्सिटी से घट कर न होना चाहिए और यह इलाहाबाद की प्रतिष्ठा के अनुरूप हो सकती है।"

विचार विनिमय तथा किंचित वाद विवाद के अनतर इस म कुछ अन्य

प्रस्तावों के साथ निम्न-लिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए —

(क) इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का वह भाग जो कि शिक्षा-प्रदान से सबध रखता है एक केंद्रित रूप धारण करे और इस केंद्र से सबद्ध हो कर कालिज, हाल और छात्रावास रहे जिन का कि सचालन यूनिवर्सिटी अथवा अन्य निजी सस्थाओं द्वारा हो।

(ख) यूनिवर्सिटी को अपने प्रबध के विषय मे आर्थिक स्वतत्रता रहनी चाहिए, परतु सरकार चाहे तो निर्दिष्ट उद्देश्यो की पूर्ति के लिए द्रव्य प्रदान और निर्धारित कर सके।

(ग) यूनिवर्सिटी का एक बहिर्विभाग हो, जिस का काम यूनिवर्सिटी से सबध रखने वाले मुफस्सिल के कालिजो का प्रबध हो। बहिर्विभाग की कार्यकारिणी-समिति मे मुफस्सिल कालिजों का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व रहे परतु उस मे केंद्रीय अथवा अतर्विभाग के प्रतिनिधि भी हो, जिन की सख्या समस्त सख्या की तिहाई से कम और आधी से अधिक न होनी चाहिए। सम्मेलन ने कुछ विशिष्ठ समितिया इस उद्देश्य से नियुक्त की कि सरकार के सामने विस्तार-पूर्वक सिफारिशे प्रस्तुत करे।

१९२१ का ऐक्ट

इन कमिटियो की सिफारिशो के परिणाम-स्वरूप सन् १९२१ में धारा-सभा द्वारा नया यूनिवर्सिटी ऐक्ट स्वीकृत हुआ। जो परिवर्तन हुए उन के लिए कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा नियुक्त सर माइकेल सैडलर के सभापतित्व मे जो कमिशन बैठा था उस की रिपोर्ट से प्रेरणा मिली। लखनऊ यूनिवर्सिटी ऐक्ट को भी इसी रिपोर्ट से प्रेरणा मिली थी और वह सन् १९२० मे ही अतिम मिटो-मार्ले काउसिल मे पास हो गया था। परतु यह विचार किया गया कि चूकि इस धारासभा की अवधि समाप्त होने पर आ रही है अतएव इतने बडे सुधार की जिम्मेदारी नई धारासभा पर ही छोडना उचित होगा। १९१९ के माटेग्यू एक्ट ने शिक्षा-विभाग को धारासभा के प्रति उत्तरदायी मिनिस्टरो के हाथ मे कर दिया था मिनिस्टरो ने संपूर्ण स्थिति पर विचार किया और यह निश्चित किया कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को केंद्रित रूप धारण करना चाहिए, यहां विद्यार्थियो की शिक्षा और आवास का प्रबध रहना चाहिए, और विशेष कर जब कि प्रात मे तीन अन्य केंद्रित यूनिवर्सिटिया —बनारस, अलीगढ़, लखनऊ—स्थापित हो चुकी थी, इसे केवल परीक्षा लेने वाली यूनिवर्सिटी न रहनी चाहिए सुधार के सभी पहलुओ पर विचार करने के अनतर

यूनिवर्सिटी बिल का मसविदा तैयार हुआ और शिक्षा-सचिव द्वारा धारा-सभा में पेश किया गया। इसी के साथ ही इंटरमिडिएट एजूकेशन बिल का मसविदा भी पेश किया गया। सैडलर कमिशन की सिफारिश थी कि इंटरमिडिएट दर्जों को हाई स्कूल में मिला दिया जाय और हाई स्कूल तथा इंटरमिडिएट का प्रबंध अलग महकमे द्वारा हो, जिस का भार यूनिवर्सिटी पर न हो। दोनो बिलो पर विचार हुआ और धारासभा में खूब विवाद भी हुआ। अंत में बिल ने ऐक्ट का रूप ग्रहण किया। सन् १९२१ तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का संगठन लार्ड कर्जन के १९०४ वाले ऐक्ट के अनुसार था जिस से कि यूनिवर्सिटी के ८० फी सदी 'फेलो' सरकार द्वारा निर्वाचित होते थे। इस ऐक्ट द्वारा यूनिवर्सिटी का संगठन जनमत पर अधिक अवलंबित हुआ और यूनिवर्सिटी के कोर्ट को वाइस चासलर के चुनने का भी अधिकार मिला।

वहिर्विभाग का पृथकरण

सन् १९२२ और १९२७ के बीच यूनिवर्सिटी के दो विभाग रहे—वहिर्विभाग और अंतर्विभाग। मार्च १९२२ से सरकार ने यूनिवर्सिटी को ७ लाख रुपये प्रदान किए। पिछले संगठन के अंतर्गत सिंडिकेट की अंतिम बैठक ८ अप्रैल १९२२ को हुई। सन् १९२२ के दीक्षा-समारोह के अवसर पर सर हार्कोर्ट बटलर ने अपने भाषण मे इस बात पर जोर दिया कि अब प्रथम बार यूनिवर्सिटी को इस बात का अवसर मिला है कि यह उचित दिशा में उन्नति कर सके और वास्तविक रूप में यूनिवर्सिटी के उपयुक्त कार्य में संलग्न हो सके। कोर्ट की पहली बैठक २३ जनवरी १९२३ को हुई, जब कि सर क्लाड फ्रेजर डेल्या फोस, वाइस-चासलर सभापति के आसन पर थे, उपस्थित सदस्यो की संख्या १३० थी। यूनिवर्सिटी के प्रथम कई मास नई परिस्थिति के अनुकूल व्यवस्था करने मे व्यतीत हुए। विद्यार्थियो के निवास, यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, भिन्न-भिन्न विभागों की लाइब्रेरियो, विज्ञान-विभागो के प्रयोगगृहो, यूनिवर्सिटी से संबद्ध सभाओ, परिषदों आदि के प्रबंध मे गए। इस बीच मे यूनिवर्सिटी के प्रति सरकार का रुख किंचित बदल गया। म्योर सेंट्रल कालिज के शिक्षकों ने अपने को किंचित् अप्रिय वातावरण मे पाया। विद्यार्थियों में भी अपनी शिक्षा-संस्था के प्रति वह उत्साह तथा प्रेम न पाया गया। इंटरमिडिएट के विद्यार्थियो के पृथक हो जाने के कारण विद्यार्थी ऐसा वय प्राप्त होने पर म आने लगे जब

कि उन का सहज अनुराग वास्तव में अन्य संस्थाओं के प्रति प्रदान किया जा चुका होता था। इन सब कारणों से नई संगठित यूनिवर्सिटी के प्रारंभिक वर्ष बहुत शुभ-सूचक न थे।

इसी बीच में यूनिवर्सिटी के अन्तर्विभाग तथा बहिर्विभाग के बीच कुछ खिंचाव और परस्पर संदेह का वातावरण आ गया। इन में पहला यह समझता कि उस को अंतरंग बातों में हस्तक्षेप किया जा रहा है, दूसरा यह अनुभव करता कि उसे नई व्यवस्था के अंतर्गत जो स्थान प्राप्त हुआ है वह अपेक्षाकृत कम प्रतिष्ठित है। अप्रैल सन् १९२३ तक इस प्रकार की अप्रिय धारणाएं दूर हुईं। यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी कौंसिल में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि उस को विश्वास है कि वाइस-चांसलर ने जो कुछ किया यूनिवर्सिटी के हित को ध्यान में रख कर किया। जूलाई १९२३ में कार्यकारिणी ने एकमत से यह स्वीकार किया कि वाइस-चांसलर के छुट्टी पर होने के कारण डाक्टर गंगानाथ झा स्थानापन्न रीति से उस पद पर कार्य करें।

सन् १९२३ के नवंबर में मिस्टर टी० सी० जोन्स ने (काउंसिल अव् असोसिएटेड कालिजेज) संबद्ध कालिजों की समिति में निम्न प्रस्ताव पेश किया:—

"इस कौंसिल की राय में इलाहाबाद की तथा प्रांत के इतर स्थानों की यूनिवर्सिटी शिक्षा के लिए यह हितकर होगा कि वह बाहरी कालिज जो इस समय इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से संबद्ध हैं, यूनिवर्सिटी से पूर्णतया अलग हो जावें, और यूनिवर्सिटी एकमात्र शिक्षाप्रदान करने वाली और आवास का प्रबंध करने वाली संस्था रह जाय और जो कालिज इस प्रकार पृथक् किए जायँ उन की एक अलग यूनिवर्सिटी बने जिस का प्रधान केंद्र आगरा हो और कौंसिल सरकार से अनुरोध करती है कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ऐक्ट (१९२१) में ऐसे परिवर्तन करे तथा ऐसा नया कानून पास करे जिस में इन सुधारों पर अमल हो सके।"

कौंसिल में यह प्रस्ताव पास हो गया। इस के पक्ष में २८ और विपक्ष में २३ मत थे। कार्यकारिणी कौंसिल ने इस प्रस्ताव को सरकार के पास भेजते समय यह टिप्पणी लगा दी कि 'यदि बहिर्विभाग पृथक् किया जाय तो उसे इस रूप में पृथक् होना चाहिए कि शिक्षा-प्रदायिनी यूनिवर्सिटी की आर्थिक स्थिति तथा विकास पर आघात न पहुंचे।' सन् १९२५ की जूलाई में कार्यकारिणी कौंसिल ने आगरा यूनिवर्सिटी बिल के मसविदे पर विचार करने के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की। संबद्ध कालिजों की समिति ने यह विचार प्रकट किया कि प्रस्तावित आगरा यूनिवर्सिटी को केवल परीक्षक और कालिजों को स्वीकृति

देने वाली सस्था होना चाहिए। इस ने ११ के विरुद्ध ३० वोटों के बहुमत से यह भी पास किया कि इसे यूनिवर्सिटी द्वारा स्वीकृत कालिजो के इटरमिडिएट दर्जा का शिक्षाक्रम निर्धारित करने का भी अधिकार होना चाहिए। उसी वर्ष यूनिवर्सिटी ने यह भी निश्चित किया कि उसे ट्रेनिंग कालिज की परीक्षाओं का प्रबध तथा उन्हे डिग्री प्रदान करने की व्यवस्था छोड देनी चाहिए। सन् १९२६ की फरवरी मे कार्यकारिणी कौसिल ने सरकार के प्रति अपने विचार प्रकट किए। इस मे इस प्रस्ताव का विरोध किया गया था कि यूनिवर्सिटी ऐक्ट मे परिवर्तन हो जिस मे कि वाइस-चासलर एक पूरा समय देने वाला पदाधिकारी है।

सबद्ध कालिजो की समिति की अतिम बैठक १० मार्च १९२७ को हुई जिस मे कि समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा अर्तविभाग के प्रति वहिर्विभाग की कृतज्ञता प्रकट की और आगरा यूनिवर्सिटी की सिनेट की पहली बैठक मे इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस-चासलर का निम्न सदेश पढा गया।

"इलाहाबाद यूनिवर्सिटी अपनी सब से नवीन तथा अतिम शाखा आगरा यूनिवर्सिटी के प्रति शुभ कामनाए भेजती है। मूल यूनिवर्सिटी ने सहानुभूति, और प्रशसा और गर्व के साथ बनारस, अलीगढ, लखनऊ और नागपूर यूनिवर्सिटियो का विकास देखा है। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की ओर से मै आगरा यूनिवर्सिटी के प्रति शुभ कामनाए प्रस्तुत करता हू और यह कामना करता हू कि वह प्रतिष्ठित और चिरजीवी हो। उसे मूल्यवान परपरा की थाती प्राप्त हुई है। ईश्वर करे वह इस के योग्य हो, जिस मे कि उस के शिक्षा प्राप्त लोग तथा वह सभी जो उस की सेवा करे तथा उस के समक्ष ज्ञान प्राप्त करने आवे सुखी और समृद्ध हो ओर उन को धन्यवाद दे जो कि वस्तुत भाग्य के निर्णायक है।"

आगरा यूनिवर्सिटी ने कृतज्ञतापूर्वक इस अभिवादन का उचित उत्तर दिया।

इस प्रकार इलाहाबाद यूनिवर्सिटी बाहरी विद्यार्थियों की परीक्षा तथा सस्थाओ के स्वीकृति-प्रदान के भार से मुक्त हो कर १९२७ से केवल इलाहाबाद मे निवास कर के शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की शिक्षा तथा आवास का प्रबध करती हुई अपने उद्देश्य की पूर्ति मे तत्पर है।

स्वर्गीय बाबू जयशंकर, 'प्रसाद'

बाबू जयशकर 'प्रसाद' के निधन से हिंदी साहित्य-ससार को जो क्षति पहुँची है, उस की सहज मे पूर्ति नही हो सकती। उन की जैसी बहुमुखी प्रतिभा वाला साहित्यिक उन के समकालीनो मे दूसरा न था। अपनी कुशल लेखनी द्वारा उन्हों ने हमारे साहित्य के विविध अंगो की पुष्टि की है। उन की यह सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। हमारे क्षोभ का कारण और भी बढ़ जाता है जब हम यह विचार करते है कि 'प्रसाद' जी की अवस्था अभी पचास भी न हो पाई थी। अपनी मृत्यु के कुछ मास पहले ही उन्हो ने अपना 'कामायनी' नामक महाकाव्य प्रकाशित किया था। इसे देखते हुए यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि उन की प्रतिभा उन्नतिगामी थी।

बाबू जयशकर 'प्रसाद' का जन्म काशी मे सन् १८८८ में हुआ था। उन के पितामह बाबू शिवरत्न वहा के समृद्ध व्यापारी 'सुँघनी साह' थे, जिन के दान की कथाए आज भी उस नगरी मे प्रसिद्ध है। 'प्रसाद' जी के पिता बाबू देवीप्रसाद अपने समय के काशी के प्रतिष्ठित नागरिको मे थे। अपने छोटे पुत्र जयशकर को वह ऊँची शिक्षा दिलाने के अभिलाषी थे, परतु दुर्भाग्य से जब कि जयशकर जी केवल १२ वर्ष के थे, और क्वींस कालिजिएट स्कूल की किसी माध्यमिक कक्षा मे पढ रहे थे, उन के पिता का स्वर्गवास हो गया। इन के बडे भाई बाबू शंभुरत्न ने इन की शिक्षा का घर पर ही प्रबध किया। अंग्रेजी पढाने के लिए एक मास्टर नियुक्त हुए; उर्दू-फ़ारसी के लिए एक मौलवी साहब। साथ ही साथ एक पडित जी सस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए भी रक्खे गए। बालक जयशकर ने सस्कृत के अध्ययन की ओर विशेष रुचि तथा प्रवृत्ति दिखाई और कुछ ही वर्षो मे सस्कृत भाषा तथा साहित्य मे अच्छा परिचय प्राप्त कर लिया। इस काल के साहित्यिक मनन का परिणाम हमे 'प्रसाद' जी की कृतियो मे बराबर लक्षित होता रहता है। १७ वर्ष की अवस्था मे ही जयशकर जी को अपने बडे भाई का भी चिर-विछोह सहन करना पडा और उन पर सारा कुटुब का बोझ आ पड़ा। उन

के घरेलू व्यापार में ह्रास आरंभ हो चुका था, फिर भी जिस साहस, समझदारी और तल्लीनता से उन्हों ने अपना काम सँभाला वह प्रशंसनीय है। अपने व्यापार की ओर ध्यान देते हुए, किस प्रकार उन्हों ने आत्म-शिक्षण प्राप्त किया, और फिर साहित्य-जगत को मूल्यवान् कृतियां प्रदान करते रहे यह देख कर आश्चर्य होता है। हिंदी के शिक्षित वर्ग ने 'प्रसाद' जी की कृतियों को किस प्रकार अपनाया इस का एक प्रमाण इस बात में ही है कि वह स्कूलों की माध्यमिक कक्षाओं से लेकर विविध यूनिवर्सिटियों की उच्चतम कक्षाओं तक के लिए पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हो चुकी हैं।

'प्रसाद' जी ने साहित्य-क्षेत्र में कवि के रूप में पदार्पण किया, और यद्यपि उन्हों ने नाटकों, उपन्यासों, कहानियों तथा निबंधों की रचना की, फिर भी 'प्रसाद' जी का कवि के रूप में ही स्मरण करना उन के अनेक प्रशंसकों को प्रिय है। १० वर्ष की अवस्था में ही 'प्रसाद' जी तुकबंदी करने लगे थे। २२ वर्ष की अवस्था में तो पद्य-रचना में उन्हें पर्याप्त अभ्यास हो चुका था और उन की कविताएं तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में आदर के साथ प्रकाशित की जाती थीं। 'प्रसाद' जी की प्रारंभिक कविताएं ब्रजभाषा में हैं। बाद में उन्हों ने इस बात का अनुभव किया कि समय की गति के साथ रहने के लिए खड़ी बोली का मार्ग ग्रहण करना ही विशेष उपयुक्त है। फिर वह अब तक इसी मार्ग पर रहे, और उन के पाठक इस बात को भलीभाँति जानते हैं कि इस मार्ग को उन्हों ने अपनी कृतियों में कितना प्रशस्त किया।

हिंदी में अतुकांत कविता का प्रयोग करने वालों में 'प्रसाद' जी का विशेष स्थान है। उन की पहले की कृतियों में 'प्रेम-पथिक' तथा 'महाराणा का महत्व' सफल अतुकांत काव्य हैं। काशी के 'इंदु' नामक पत्र में वह सन् १९१४ से ही अंग्रेजी 'सानेट' के ढंग की चतुर्दशपदियां लिखा करते थे। इस प्रकार कविता के क्षेत्र में नए प्रयोग करते रहने की ओर इन की आरंभ से ही प्रवृत्ति थी। 'प्रसाद' जी की कविताओं का पहला संग्रह 'कानन-कुसुम' जिस समय प्रकाशित हुआ उन की अवस्था २३ वर्ष की थी। उस की कविताएं, अब पच्चीस वर्षों के अनंतर हमें संभवतः प्रौढ़ न जान पड़ें, परंतु उन के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि वह अपने लिए एक अलग मार्ग निकाल रहे थे।

'प्रसाद' के प्रारंभिक नाटकों में हम संस्कृत नाट्यशैली का प्रभाव देखते हैं इस प्रभाव से वह किसी समय सर्वथा मुक्त नहीं हो सके राज्यश्री और विशाख

नाटको से इस बात का भी सकेत होने लगा था कि उन की रुचि ऐतिहासिक कथाओ के प्रति विशेष है, सामाजिक विषयो के प्रति नही। ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाए ही उन के बाद के नाटको का भी अधिकाश आधार रही। 'प्रसाद' जी हमारी सस्कृति के इतिहास के विशेष ज्ञाता थे और उन के इस ज्ञान का परिचय हमे उन के नाटको द्वारा तथा कतिपय निबधो द्वारा प्राप्त होता है। 'करुणालय' उन का एक गीतनाट्य है, परतु पद्य का माध्यम नाटको के लिए उपयुक्त न जान कर उन्हो ने इस प्रयोग को दुहराया नही। हा, उन के नाटको मे आए हुए गीत अपना अलग महत्त्व रखते है।

'प्रसाद' जी ने अपने को कविता और नाटको की रचना तक सीमित नही रक्खा। उन के प्रारभिक ग्रथो मे 'चित्राधार' विविध गद्य-पद्य रचनाओ का सग्रह है, और 'उर्वशी' एक सुदर चपू है। साथ ही साथ वह कहानिया भी लिखने लगे थे और उन की कहानियो का पहला सग्रह 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ। उन की कहानी-कला का विकास होता रहा और क्रमश उन्हो ने अन्य सग्रह भी प्रकाशित किए जिन मे 'प्रतिध्वनि', 'नवपल्लव', 'आकाशदीप', 'ऑधी' ओर 'इद्रजाल' प्रसिद्ध है।

नाट्यकार के रूप मे 'प्रसाद' की प्रतिभा उन के बाद के नाटको मे विकसित हुई। 'चद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'स्कदगुप्त', 'जन्मेजय का नागयज्ञ', 'कामना' और 'ध्रुवस्वामिनी' उन के प्रमुख नाटक है। हमारे प्राचीन, विशेष कर बौद्धकालीन इतिहास तथा सस्कृति का 'प्रसाद' जी को अच्छा ज्ञान था, अतएव वह अपने नाटकों मे उचित वातावरण प्रस्तुत करने मे सफल हुए है। चरित्रविश्लेषण भी गहरा हुआ है। एक आपत्ति जो उन के नाटको पर कतिपय आलोचको ने की है यह है कि यह नाटक साहित्यिक पाठ की वस्तु हो कर रह गए है, वह नाट्यमच की, विशेषतया आधुनिक, आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर नही रचे गए है। 'प्रसाद' जी के साहित्यिक जीवन का यह नियम-सा था कि वह अपने आलोचको के साथ विवाद मे नही पड़ते थे। फिर भी बिना व्यक्तिगत आक्षेपो की ओर सकेत किए हुए, नाट्यमच की आवश्यकताओ के विषय मे उन्हो ने अपने विचार 'हिदुस्तानी' (जूलाई, १९३७) मे स्पष्ट किए थे। यह स्मरण कर के खेद होता है कि यह लेख उन के जीवन-काल मे प्रकाशित उन का अतिम लेख था। इस लेख मे उन्हो ने इस बात पर जोर दिया है कि वास्तव मे यह अभिनय की योजना करने वालो का कर्तव्य है कि वह को की कृति के अनुरूप बनाव

'प्रसाद' जी की संस्कृत-गर्भित भाषा पर भी कुछ आलोचकों का आपत्ति थी है। परन्तु उन के नाटकों में हमारे पुराने युगों का चित्रण हुआ है और यह देखते हुए संस्कृत-गर्भित भाषा ही वह वातावरण उपस्थित करने में सहायक हो सकती है, उचित ही है। हम देखते है कि 'प्रसाद' जी की भाषा-शैली उन के उपन्यासों में बदल गई है और हमारी बोल-चाल की भाषा के निकटतर आ गई है। 'प्रसाद' जी के दो उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' हिंदी-संसार में आदर पा चुके है। दोनों ही सामाजिक है। अतीत के चित्रण के लिए जिस प्रकार 'प्रसाद' जी ने नाटकों का आश्रय लिया था, उसी प्रकार वर्तमान सामाजिक अवस्था के चित्रण के लिए उपन्यासों का। अभी हम उन से इस क्षेत्र में अन्य मूल्यवान् कृतियों की आशा रखते थे।

'प्रसाद' मुख्यतया कवि ही थे और आधुनिक हिंदी कविता के प्रवर्तकों में उन का अत्यंत आदरणीय स्थान था। ऊपर बताए हुए कविता-संग्रहों के अतिरिक्त 'झरना', 'आंसू' और 'लहर' उन की प्रसिद्ध कृतियां है। बहुत लोगों के विचार में 'आँसू' जैसा करुण-काव्य आधुनिक हिंदी में दूसरा नहीं। 'लहर' कदाचित् उन के कविता-संग्रहों में सब से श्रेष्ठ है। परन्तु 'कामायनी' महाकाव्य का उन की कृतियों में विशिष्ट स्थान रहेगा। इस में मनु, श्रद्धा और इला की प्राचीन कथा एक महान् रूपक के रूप में प्रस्तुत की गई है। यह एक सुसंगठित रचना है, और बीच-बीच में गीत-काव्य तो अत्यंत सुंदर बन पड़े है। 'कामायनी' यह बात स्पष्ट करती है कि हम कवि से भविष्य में और भी ऊँची आशाएं रख सकते थे। परन्तु काल बली है।

स्वर्गीय कवि जयशंकर, 'प्रसाद' हिंदुस्तानी एकेडेमी के सम्मानित सदस्यों में थे। हम उन के कुटुंब के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते है।

स्फुट प्रसंग

भारतीय लिपि

[लेखक—श्रीयुत दुर्गादत्त गंगाधर ओझा, बी० एस्०-सी०]

[बंबई के श्रीयुत दुर्गादत्त गंगाधर ओझा, बी० एस्-सी० ने अखिल भारतीय लिपि की आवश्यकता का समर्थन करते हुए लिपि-संबंधी कतिपय प्रचलित सुधार-प्रस्तावो की समीक्षा की है। आप ने यह बताया है कि एक आदर्श लिपि में कौन से गुण अपेक्षित है। साथ ही आप ने एक नई लिपि की योजना भी प्रस्तुत की है, और उस की विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया है। यहा पर उन के लेख का एक अंश किंचित् संक्षेप के साथ प्रकाशित किया जाता है। आशा है इस विषय में दिलचस्पी रखने वालों को इस में विचार की सामग्री प्राप्त होगी। ओझा जी के विचार निजी है। संपादकीय समर्थन का अनुमान लगाना उचित न होगा। —सपादक]

एक आदर्श लिपि मे निम्नलिखित गुण होने अनिवार्य है—

१—अक्षरो के नाम तथा उच्चारण समान और अभिन्न हो।

२—लिपि सीखने मे सहज हो।

३—लिपि आसानी से लिखी जा सके। प्रत्येक मौलिक उच्चारण-विशेष के लिए अलग अक्षर हो पर मिश्रित उच्चारणो के लिए विशिष्ट अक्षर बना कर वर्णमाला मे अनावश्यक वृद्धि न की जाय।

४—सब अक्षरो की ऊँचाई समान हो। मात्राए भी उतनी ही ऊँची होनी चाहिए, एव एक ही लाइन मे लिखी जानी चाहिए। सब मात्राए अक्षर के एक ही बाजू अर्थात् बाद में आनी चाहिए, और लिखने मे आसान होनी चाहिए। ऐसा होने से छापने एव टाइप करने की बहुत सी कठिनाइया दूर हो जायँगी।

५—अक्षर सरल होते हुए देखने मे सुदर भी होने चाहिए, जिस में पाठको का उन की ओर स्वाभाविक आकर्षण हो।

६—अक्षर देखते ही पहचान लिए जावे, न तो वे एक साथ जोड कर लिखे जावे कि अलग-अलग उन का पहचानना कठिन हो जाय और न वे एक-दूसरे से बहुत ज्यादा मिलते-जुलते ही हो कि एक को दूसरे के स्थान मे पढ लिया जाए।

७—अक्षरो मे यथा-रुचि मोड देने के लिए पर्याप्त क्षेत्र होना चाहिए। यह केवल वास्तविक सरल वर्णमाला मे ही सभव हो सकता है।

८—वर्णमाला मे विभिन्नता होते हुए भी एक विशिष्ट मौलिक एकरूपता का होना अत्युत्तम होगा। वर्णमाला के निर्धारण म विशिष्ट वैज्ञानिक आधार को सामने रखना रचना-कार्य को सरल बना देगा।

९—ऐसी लिपि मे यदि अन्य लिपियो के किन्ही अक्षरो मे कुछ समानता हो तो सभी प्रातीय लोग उस की एकता मे अपनेपन का आभास देखेगे, जिस से वह लिपि उन्हे बिल्कुल अपरिचित नही मालूम होगी।

१०—लिपि में यदि ऐसी विशिष्ट सार्वदेशिकता आ सके कि वह अपनी सरलता एव अन्य गुणो के कारण समय आने पर सर्व-राष्ट्रीय लिपि बनने की उपयुक्तता प्रमाणित कर सके तो यह अत्यत वाछनीय होगा।

११—अधिक प्रयुक्त होने वाले अक्षरो का आकार अपेक्षाकृत अधिक सरल होना चाहिए।

१२—वर्णमाला मे अक्षरो का क्रम ऐसा हो कि बालक भी सहज ही मे समझ सकें एवं स्मरण रख सके। अक्षरो का क्रम उन के आकार के विकास के अनुसार हो। सारी वर्णमाला ऐसी स्वाभाविक एव प्राकृतिक युक्ति के आधार पर निर्मित हो कि सब कुछ बिल्कुल भूल जाने पर भी यदि मनुष्य अपने धुंधले स्मरण के सहारे उसे फिर से सोच निकालने का प्रयत्न करे, तो उस से कुछ मिलती-जुलती ही वर्णमाला बने। इस का तात्पर्य यह नही कि ऐसा करने की भविष्य में कभी आवश्यकता शायद पड़े, किंतु यह वर्णमाला की सुगमता एव स्वाभाविकता के साथ ही उस के वैज्ञानिक आधार को स्पष्ट प्रकट करता है।

इन्ही प्रधान आवश्यक गुणो को ध्यान मे रख कर निम्नाकित वर्णमाला को स्वरूप दिया गया है अक्षरो की सरलता को प्रकट करने के अभिप्राय से उन मे अभी गोलाई नहीं दी गई है जो कि व्यवहार म आने पर उस में उत्पन्न हो जायगी

अक्षरों का ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करने पर स्पष्ट प्रतीत होगा कि इन में विभिन्न प्रकार से मनचाही गोलाई देने के लिए काफी स्थान है। थोड़े ही अभ्यास से उन में और भी अधिक सरलता, सुंदरता एवं गोलाई लाई जा सकती है।

इस वर्णमाला की कुछ विशेषताएं यह हैं —

(१) पैंतीस अक्षर (व्यंजन) पांच-पांच की सात लाइनों में रक्खे गए हैं।

(२) स्वरों में केवल 'अ' के लिए विशेष चिह्न रक्खा गया है। बाकी के स्वर ग्यारह मात्राओं की सहायता से बनाए गए हैं। यही मात्राएं व्यंजनों में भी ठीक उसी प्रकार लगती हैं।

(३) प्रत्येक लाइन का पहला अक्षर यथासंभव अत्यंत सरल रक्खा गया है— अर्थात् दो सीधी लकीरों से बना हुआ एक चिह्न। इस के बाद के तीन अक्षरों में क्रमश: एक सीधी लकीर बढ़ती गई है। इन लकीरों के बढ़ाने में इस बात का विशेष-रूप से ख्याल रक्खा गया है कि उस लाइन का कोई न कोई अक्षर प्रचलित प्रधान भारतीय लिपियों के उसी लाइन के किसी न किसी अक्षर से बहुत कुछ सादृश्य रक्खे, ताकि लिपि नवीन होते हुए भी परिचित सी मालूम पड़े, जिस के कारण अवसर आने पर इसे अपनी पुरानी लिपि के बदले में अपनाने में किसी भी प्रांत के निवासी संकोच न करें।

(४) प्रत्येक लाइन में पहले चार अक्षरों का क्रमश: विकास एक ही प्रणिति के आधार पर हुआ है। यह विकास इतना स्वाभाविक है कि एक बार देख भर लेने पर भूल जाना कठिन हो जाता है। पाँचवा अक्षर तो पहले अक्षर से केवल इस बात में भिन्न है कि उस में एक उपयुक्त सिरे पर गांठ (बिंदु) है। इस लिए वर्णमाला में ३५ अक्षर होते हुए भी केवल २८ ही याद करने पड़ते हैं। वास्तव में याद तो केवल ७ अक्षर करने पड़ते हैं—लाइनों के पहले अक्षर—बाकी तो स्वाभाविक क्रम से स्वयं आ जाते हैं।

(५) मात्राएं व्यंजनों एवं स्वर के केवल बाद में ही लगती हैं, वर्तमान लिपियों की भाँति ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, नहीं। मात्राओं के चिह्न अत्यंत सुगम हैं, और विशेष क्रमानुसार है—यह उन्हें ध्यान से देखने पर स्वयं स्पष्ट हो जायगा। उदाहरणार्थ—'इ' की 'गाँठ' बाईं तरफ और 'ई' की 'गाँठ' दाईं तरफ है, तो 'उ' की गांठ" भी बाईं बाजू और 'ऊ' की गाँठ दाईं बाजू है। 'इ' 'ई' की 'गाँठें' नीचे की ओर तथा 'उ' 'ऊ' की 'गांठें' ऊपर की ओर हैं तो 'ए' 'ऐ' की भुजाएं नीचे एवं 'ओ' 'औ' की ऊपर की ओर हैं ए और

'ऐ' तथा 'ओ' 'औ' में केवल एक गाँठ का अतर है। 'अ' का अनुस्वार भी अक्षर के अंत मे ऊपर की तरफ विदु के रूप में रक्खा गया है। नुक्ता लगाने के लिए इसी विंदु को अक्षर के बाद नीचे की तरफ रखना चाहिए। विसर्ग के लिए दोनों विंदु रखने चाहिएं।

(६) क्रम, कर्म, कृमि, ऋ, लृ, त्र, आदि मे 'र' के रूपातर को प्रकट करने के लिए उसी 'र' को छोटे आकार मे लिख देना होता है। मात्राओ की भाँति यह चिह्न भी अक्षर के बाद लिखा जाता है। क्रम और कर्म के लिखने में केवल यह अतर है कि पहले मे 'र'-कार का छोटा चिह्न नीचे की तरफ रक्खा जाता है, और दूसरे मे ऊपर की तरफ। कृ लिखने के लिए 'र'कार का छोटा चिह्न नीचे ही रक्खा जाता है, उस के सिरे मे एक गाँठ अधिक दे दी जाती है। ऋ, लृ के लिए विशेप शब्द न वनाने के अभिप्राय से उन्हे इसी ढग के अनुसार लिखा गया है, यद्यपि 'ऋ' का रूप कुछ विचित्र प्रतीत होता होगा।

(७) 'क्य' और क्य् का उदाहरण यह स्पष्ट कर देगा कि किसी अक्षर का आधा उच्चारण करने के लिए उस के आडे भाग की चौडाई आधी कर देनी चाहिए। यदि यह सभव नही हो तो उस अक्षर विशेष के बाद हलन्त का चिह्न रख देना चाहिए (देखिए क्)।

(८) फारसी शब्दो के व्यजनो का विशेप उच्चारण करने के लिए नुक्ता अक्षर के बाद मे विंदु के रूप मे नीचे की तरफ लगाया जाता है। यह विंदु अनुस्वार जैसा ही होता है, और दोनो के लिखने पर विसर्ग का चिह्न बन जाता है।

(९) कुल चिह्न-संख्या ५२ है। छापेखाने की दृष्टि से अनुस्वार, नुक़्ता, एव विसर्ग; 'क्रम' एव 'कर्म' में के दो अर्द्ध 'र'कार के चिह्न; 'ई' और 'उ' तथा 'इ' और 'ऊ' की मात्राओ के चिह्न, 'ए' की मात्रा एवं 'श', 'ओ' की मात्रा एव 'प'; 'औ' की मात्रा एव 'म'; 'ऐ' की मात्रा एव 'ह', 'क' एव 'च', 'ङ' एवं 'ञ', 'त' एव 'य', आदि जोडी के अक्षरों के लिए क्रमशः एक-एक ही टाइप की आवश्यकता पडेगी, कारण उसी चिह्न को उल्टा करने पर एक अथवा दूसरा अक्षर बन जायगा। पहले दो उदाहरणो मे अर्थात् विंदु एव अर्द्ध 'र'कार के चिह्न के टाइप की ऊँचाई अन्य टाइपो की ठीक आधी रखनी पडेगी, दूसरा आधा टुकडा सादा होगा। इन टाइपो मे खाँचा रखने पर वे एक दूसरे के ऊपर अथवा नीचे की ओर बैठाए जा सकेंगे। दोनो टाइप विंदुओ के जोड़ने पर विसर्ग बनावेंगे इस प्रकार १२ चिह्न प्रस के टाइपो की सख्या में से कम किए जा सकते

है अर्थात् वास्तव मे केवल कुल ४० चिह्नो की आवश्यकता पड़ेगी। 'आ' की मात्रा अंतिम अक्षर से विशेष दूरी पर रखने पर 'पाई' के विराम-चिह्न का काम कर देगी।

(१०) हाथ से टाइप करने की मशीन की दृष्टि से यह लिपि संसार की किसी भी वर्तमान लिपि से अधिक सरल बन सकेगी। रोमन लिपि मे बड़े और छोटे टाइपो को मिला कर संख्या ५२ होती है, इस लिपि मे भी संख्या अधिक से अधिक ५२ है। पर इन दो मे बहुत अतर है। रोमन लिपि की चिह्न-संख्या इस से कम करने का कोई उपाय नही, कारण ह्रस्व एव दीर्घ दोनो ही अक्षरो का होना अनिवार्य है। इस के विपरीत इस लिपि मे आविष्कर्ता के मस्तिष्क के सफल परिश्रम करने के लिए काफी क्षेत्र है। वर्णमाला को प्रारभ से अत तक एक बार देख जाने पर यह स्वय स्पष्ट हो जायगा कि सारी वर्णमाला की मूल-भित्ति हमारा 'एक' का चिह्न (१) है। यह स्वय दो अंशो का बना हुआ है—बिदु और पाई। ये दो चिह्नाश हमारी लिपि-निर्माण के लिए उतने ही उपयोगी एव महत्वपूर्ण है, जितने कि किसी प्राणी अथवा वृक्ष की रचना करने वाली सेलो का न्यूक्लिअस (मीगी) और प्रोटोप्लाज्म (जीवन-तत्व) अथवा किसी धातु या अन्य तत्व को बनाने वाले एटम (परमाणु) का प्रोटन एव इलेक्ट्रन। विशेष ध्यान से अध्ययन करने पर स्पष्ट होगा कि निम्नांकित कतिपय चिह्नाशो के समुचित सयोग द्वारा इस वर्णमाला का कोई भी चिह्न बनाया जा सकता है जिस से इतने से ही चिह्नाशो का सम्मिश्रण कर के कोई भी पुस्तक छापी अथवा टाइप की जा सकती है। कुल चिह्नाश-संख्या १८ है —

| \ — — । / — — । / — ० ° ० < ∠ ∠ \

टाइप करने के लिए इन सब चिह्नो का अलग-अलग होना आवश्यक है किंतु छापने के लिए इस सख्या मे से पॉच कम किए जा सकते है अर्थात् केवल एक दर्जन छापे के टाइपो से सब काम निकाला जा सकता है। इस प्रकार के चिह्नाशो की सहायता से छापे हुए अक्षर अवश्य ही सुदर नही होंगे पर कामचलाऊ जरूर होंगे। यह पद्धति साधारण वर्तमान पद्धति से सुगम एवं सस्ती पड़ेगी यह कथन भी संदेहपूर्ण हो सकता है। पर इस लिपि का यह विश्लेषण कम से कम मनोरंजक सिद्ध होगा यह स्पष्ट है

(११) यह लिपि अन्य किसी भी वर्तमान लिपि की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से छापी एव लिखी जा सकेगी। आधुनिक यत्र-युग में हमे विशेष ध्यान छापे एव टाइप की सुगमता की ओर देना चाहिए। लिखने का महत्त्व इतना नही है। जिस 'थाट' शब्द को रोमन लिपि मे लिखने के लिए सात अक्षरो की आवश्यकता पडेगी उसी को इस लिपि मे केवल तीन पतले आकार वाले अक्षरो से लिखा जा सकता है। इसी प्रकार अधिकतर अन्य शब्दो की तुलना किसी भी लिपि के साथ की जा सकती है। सभी अक्षरो का आकार पतला होने के कारण एक पेज पर अन्य लिपियो की अपेक्षा अधिक शब्द लिखे जा सकेगे। सब चिह्न एक ही ऊँचाई के एव एक लाइन मे होने के कारण लाइने अधिक पास-पास रक्खी जा सकेगी। इस से पुस्तक का आकार छोटा किया जा सकेगा।

(१२) बालक-विद्यार्थी के हृदय मे लिपि की सरलता एवं सादगी सृष्टि के प्रधान वैज्ञानिक तत्व (मूल-रूप सरल निर्माण) का प्रारभ से ही दृढ बीजारोपण करेगी। यह प्रारभिक प्रभाव बाद मे जीवन एव जड सृष्टि की जटिलता मे सरलता का स्पष्ट आभास दरसाने मे अत्यत सहायक होगा।

समालोचना

कविता

युगांत—लेखक, श्रीसुमित्रानदन पत। प्रकाशक, इद्र प्रिंटिग वर्क्स, अल्मोडा। मूल्य बारह आना।

श्री सुमित्रानदन पत वर्तमान कवियो मे ऊँचा स्थान रखते है। 'पल्लव' सामयिक काव्यसाहित्य मे बहुत मान्य है और पत जी की ओर कृतिया भी प्रशसनीय है। उन के किसी ग्रथ के प्रकाशन की सूचना मिलते ही साहित्य-प्रेमियो मे उत्सुकता और आशा उत्पन्न हो जाती है—आशा होती है कि पूर्वपरिचित मधुरता और कोमलता और शब्द-विन्यास फिर भी दृष्टिगोचर होगा, उत्सुकता होती है देखने की कि काव्य के किस अश मे उन्नति हुई है। 'युगात' श्री सुमित्रानंदन जी के नए ग्रथ का नाम है। इन मे पहले की अपेक्षा विचार-गाभीर्य अधिक है। जीवन का आह्लाद नही, स्वप्नो की सुदरता नही, परतु आकांक्षा और आशा के स्वर सुन पडते है—आशा मे नैराश्य भी है, आकाक्षा मे भय मिला हुआ है। विगत समय के संस्मरण से एक प्रकार का शोकमय सुख उत्पन्न होता है। प्रकृति के वर्णन मे तो पहले भी पंत जी को पर्याप्त सफलता प्राप्त थी। अब प्रकृति की सुदरता तो पूर्ववत् मनोहारिणी है, परतु साथ ही उस मे कवि के भावो का प्रतिबिंब भी है। यदि मानव-हृदय मे मोद है तो प्रकृति भी सुख के राग अलापती है, यदि विषाद है तो प्रकृति भी विषादमयी मालूम होती है। प्रस्तुत ग्रथ के पद्यो मे सरसता है, परतु अकृत्रिम तन्मयता नही है। कवि अब अपने को अपनी भावनाओ और विचारो मे मग्न होकर भूलता नही है। जीवन की जटिल समस्याओ को भूल जाने मे, अथवा गौण स्थान देने मे, कवि अब समर्थ नही है। संभव है कुछ पाठकों को इस मे संतोष हो। सभव है, पत नई रीति की कविता लिखने मे कालक्रम से सफल हो। परतु अभी तो हमे पूर्व-परिचित लालित्य और मधुरता और अकृत्रिमता के अभाव से खेद है। कुछ पद्यो से स्पष्ट होगा कि भावो को प्रकट करने मे पत अब बहुत कुशलहस्त हो गए है।

झर पड़ता जीवन-डाली से
मैं पतझड़ का-सा जीर्ण-पात !—
केवल, केवल, जग-कानन में
लाने फिर से मधु का प्रभात ! (पृष्ठ ५)

यह भाव बिल्कुल नया है, साथ ही बड़ा गंभीर है। मृत्यु में जीवन, पतझड़ में वसन्त—जीर्णता से यौवन, यही संसार की गति है। विश्व में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, पदार्थमात्र में पुनः पुनर्जीवन की शक्ति है। इसी लिए कवि का हृदय विषण्ण नहीं—जीवन-डाली से वह साह्लाद झरने को प्रस्तुत है।

कवि समस्त संसार में केवल एक तत्त्व को पाता है—उस तत्त्व का नाम है "सौंदर्य"। महामरण, जलनिधि, तन, मन, सब सौंदर्य के बल से एक है—समस्त सृष्टि में सौंदर्य का एक मात्र आधिपत्य है—

भाव रूप में गीत स्वरों में,
गंध कुसुम में, स्मिति अधरों में,
जीवन की तमिस्र-वेणी में
निज प्रकाश-कण बाँधो !
छवि के नद (पृष्ठ ३२)

कादंबिनी—लेखक, ठाकुर गोपालशरण सिंह। प्रकाशक, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य एक रुपया आठ आना।

नईगढ़ी के ठाकुर साहब का पहला पद्यसंग्रह—'माधवी' सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ था। हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि ठाकुर साहब काव्य-सेवा में बहुत दिनों से तत्पर हैं। कवि-समाज में, विशेषकर खड़ीबोली की प्रगतिशील कविमंडली में, ठाकुर गोपालशरण सिंह का बड़ा आदर है। आप ने न स्वयं उत्तम कवितायें लिखी हैं, कवियों को आप से पूर्ण उत्साह और साहाय्य भी मिलता रहता है। लक्ष्मी और सरस्वती का यहां विरोध नहीं है।

दस वर्ष पूर्व की कविताओं में ठाकुर साहब ने यह व्यक्त कर दिया था कि स्व भावना के एक अंश को सुंदर शब्दों में प्रकट करने की [illegible] उनमें है परंतु माधवी

मे कोई लबी कविता नही है। 'कादंबिनी' मे प्रधानत लबी कवितायें ही है। हिंदी के वर्तमान कवियो की—विशेषत नई शैली के कवियो की—छोटी कविताओ के प्रति ही रुचि देख पडती है—दस पक्ति की, बीस पक्ति की, दो तीन पृष्ठ की ही अधिकतर कवितायें होती है। और गीतकाव्य छोटा ही होता है। सतोष का विषय है कि ठाकुर साहब लबी कवितायें अब लिखने लगे है। कविताओ के शीर्षक से इन के विषयो का और कवि की अभिरुचि का पता मिलता है—"अनत छवि", "अमर गान", "अनत यौवन", "अनत ससार", "अनत जीवन", "अनत प्रेम", "अनत उल्लास"—इन पद्यो मे प्रसन्नता और आह्लाद के तान सुन पडते है—कवि जीवन को सुखमय, आशामय, पाते है। उन की दृष्टि मे जगत मे सुखदायी छवि छाई हुई है, जगत का भाडार परिपूर्ण है, विस्तृत है, नाना प्रकार से विभूषित है, शशि अपार हर्ष मे सुधा-धार बहा देता है, लहरे प्रसन्नचित्त गाती है, दिगत कोकिलरव से मुखरित है, प्रेम जगजीवन सार है, कल-कुसुमो के हास मे, जग के पुण्य-प्रयास मे, मधुमास मे, वारिधि-वीचि-विलास मे कवि अनत उल्लास पाते है। हमारे विचार मे ठाकुर साहब का यह दृष्टि-कोण हिंदी साहित्य मे नया और अनूठा है। हमारे साहित्य मे—क्या सस्कृत, क्या फारसी, क्या बगला, क्या हिंदी, क्या उर्दू—करुण रस का ऐसा पूर्ण आधिपत्य है कि किसी और रस का समावेश बहुत कठिन हो गया है। प्रत्येक कवि ससार को वेदनामय पाता है, जीवन को असार कहता है, प्रेम का फल चिर विरह समझता है। पडितराज जगन्नाथ के शब्दो मे सारे ससार की यह दशा है कि

> भूतिर्नीचगृहेषु विप्रसदने दारिद्र्यकोलाहलो
> नाशो हन्त सतामसत्पथजुषामायु. शतानां शतम् ।

इस प्रकार की धारणा 'कादंबिनी' मे कम मिलती है।

ठाकुर साहब प्रकृति के सौंदर्य से भी प्रभावित है। प्रकृति की छवि का वर्णन कई पद्यो मे बहुत मनोहर रूप मे किया गया है। 'कानन' शीर्षक कविता मे उदाहरण-स्वरूप ये पक्तियां उद्धृत करने योग्य है—

> पुष्प पराग चढाते तुमको
> लता हृदय अर्पण करती

मधुऋतु लेकर तुम्हें गोद में
तृण-तृण में है छवि भरती।
विधि का अनुपम रुचिर विधान,
हे कानन कल-कान्ति-निधान!"

अथवा 'प्रभात' के ये पद .

भ्रमर छूट कर पंकज-दल से
करने लगे विहार।
भानु-करों ने खोल दिया है
कारागृह का द्वार।

अथवा 'चाँदनी' से .

नभ से अवनी पर आने से
मानों वह भी थक जाती है।
श्रम-स्वेद कणों से ओस-बिन्दु
धरणीतल पर टपकाती है।

कहीं-कहीं जीवन के शोक से विह्वल हो कर कवि केवल वेदना के ही स्वर सुन सकता है

सिर धुनने लगती है कोयल
तज कर अपना कल-कूजन।
मुझे घेर करते हैं मधुकर
गुंजन के मिस करुण रुदन।

इन उदाहरणों से पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि इस ग्रंथ में कई विषयों पर और कई प्रकार की कवितायें हैं जिन से मनोरंजन के अतिरिक्त आश्वासन और सारगर्भित तत्वों का दिग्दर्शन भी होता है।

कहानियां

वीरगाथा—लेखक, श्रीयुत सतराम, बी० ए० प्रकाशक, स्वाध्याय-सदन, लाहौर। पृष्ठ २०० । १९३७ । मूल्य १)

श्रीयुत सतराम हिंदी के सुपरिचित लेखक है। उन की शैली मे एक विशेष रोचकता और प्रवाह है। प्रस्तुत पुस्तक मे उन्हो ने सात ऐतिहासिक सदर्भों को, जो कि वीरता मे सबध रखते है साहित्यिक ढग से प्रस्तुत किया है। उन का उद्देश्य इन सदर्भों को विद्यार्थियो के लिए मनोरजक और ग्राह्य बनाना रहा है। इस उद्देश्य मे वह बहुत-कुछ सफल भी हुए है। वैभवशाली हिंदूराष्ट्र लेखक के कथनानुसार श्री सावरकर के मराठी प्रबंध पर आश्रित है। शेष निबध लेखक के अपने है। लेखक का दावा है कि उस की भाषा साहित्यिक हिंदी है, 'हिंदी याने हिंदुस्तानी' नही। यह बात नही कि फारसी उद्गम के शब्दो का बहिष्कार किया गया हो।

ग० द०

जीवट की कहानियां—लेखक, श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बबई। १९३७। पृष्ठ-सख्या १५२। मूल्य १)

हिंदी मे ऐसी पुस्तको की बडी कमी है जिन से पाठकों को साहसी जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा प्राप्त हो। इस कमी की पूर्ति के लिए जो प्रयास हो रहे है उन मे श्री श्यामनारायण कपूर का प्रयास उल्लेखनीय है। उन्हों ने हिमालय पर्वत के आरोहण, दक्षिण ध्रुव की खोज, ज्वालामुखी के गर्भ मे प्रवेश, वैज्ञानिको के साहसी कृत्यो आदि की अनेक घटनाओ का बड़ा मनोरजक वृत्तात प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक हमारे नवयुवको के लिए प्रोत्साहन का साधन होगी। यह सरल भाषा और रोचक शैली मे लिखी गई है और सचित्र है।

रा० द०

कोष

उर्दू-हिंदी कोष—संपादक—एम० वि० जबुनाथन, एम० ए०, बी० एस्-सी०। प्रकाशक—एम० वि० शेषाद्रि एड कपनी बल्पेट बेगलोर सिटी। पृ० २४४। मूल्य १) सजिल्द

पं० रामनरेश त्रिपाठी का 'हिंदुस्तानी कोष' ऐसा है जिस में हिंदी में चल जाने वाले विदेशी शब्दों को सम्मिलित कर लिया गया है। यह कोष केवल हिंदी भाषियों के लिए उपयोगी हो सकता है। परन्तु नए हिंदी (या उर्दू) सीखने वालों के लिए, विशेषतया दक्षिण-भारत वासियों के लिए, ऐसा कोई साधन नहीं था जिस से उन्हें हिंदी, जिस में अरबी, फारसी तुर्की आदि भाषाओं के शब्द मिल गए हैं, सीखने में सुविधा हो। और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के नाते यह काम बड़ा जरूरी था। साथ ही उर्दू (इस में अरबी, फारसी, तुर्की आदि शुद्ध विदेशी शब्द) तथा अन्य विदेशी शब्दों से अनभिज्ञ हिंदी भाषा-भाषियों को बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती थीं। इस अभाव की पूर्ति श्री जगन्नाथन जी ने अपने 'उर्दू-हिंदी कोष' से कर दी है। जिस सिद्धांत पर यह कोष बना है वह संपादक के ही शब्दों में इस प्रकार है--

"इस कोष में ऐसे सभी विदेशी शब्द और उन के अर्थ दिए गए हैं जो आज कल के उर्दू या हिंदी के ग्रंथों में पाए जायँ, चाहे वे उर्दू लिपि में लिखे हुए हों या नागरी लिपि में, चाहे उन का इस्तेमाल समालोचक की दृष्टि में मुनासिब समझा जाय या ना-मुनासिब। साथ-साथ यह भी बतलाया गया है कि हर एक शब्द किस भाषा से लिया गया है। ये शब्द अरबी, फारसी, इबरानी, यूनानी, तुर्की, पुर्तगाली (पोर्चुगीज) आदि भाषाओं में से उर्दू में आए हैं। कुछ अंगरेजी शब्द और पंजाबी, तामिल आदि भारत की भाषाओं के एक आध शब्द भी उर्दू में आ गए हैं और वे शब्द इस कोष में शामिल हैं। कभी-कभी उन पराई भाषाओं के शब्दों में हिंदी प्रत्ययों के लगने से, अथवा हिंदी शब्दों में उन भाषाओं के प्रत्यय लगाने से कुछ नए शब्द बन गए हैं। जैसे--अजायबघर, घड़ीसाज, दफनाना, आज़माना, चहबच्चा, नंबरदार। ऐसे वर्णसंकर शब्द किसी अन्य भाषा के शब्द नहीं माने जा सकते, वे सब उर्दू ही के शब्द हैं। इस कोष में उन्हें स्थान अवश्य दिया गया है।'

अवतरणिका में संपादक ने हिंदी-उर्दू का भेद समझाया है जिस में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। उर्दू शब्दों के उच्चारण प्रायः शुद्ध हैं। अर्थों को साफ-साफ बतलाने के लिए अंगरेजी या दक्षिणी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। अरबी व्याकरण के नियम और अरबी-फारसी उपसर्ग, प्रत्यत्य आदि की सूची दे कर संपादक ने पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिए एक छोटा-सा साधन उपस्थित कर दिया है। साधारणतया कोष अच्छा है। और लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है।

ल० वा०

हिंदी मुहावरा कोष—सपादक—एम० वि० जम्बुनाथन। प्रकाशक—एम० वि० शेषाद्रि एड कपनी, बल्लेपेट, बेगलोर सिटी। पृ० २८८। मूल्य १॥)। सजिल्द।

मुहाविरे भाषा की शक्ति है। इन के द्वारा हम थोडे मे सार्थकता और प्रभावोत्पादकता के साथ अपना आशय प्रकट कर सकते है। हमारे कहने मे जान आ जाती है। हिंदी मे मुहावरो का कितना बाहुल्य है और उन का क्या मूल्य है, इस ओर शायद हम हिंदी भाषा-भाषियो का ध्यान नही गया। वास्तव मे अपनी भाषा होने के कारण दिन रात मुहावरो का प्रयोग करते रहने पर भी हम उन के विषय में अधिक नहीं सोचते। इसी कारण अभी तक हमारे यहा मुहावरो का वैज्ञानिक कोष नही है।

जबुनाथन जी का कोष न तो पहला मुहावरा-कोष है और न वैज्ञानिक है। परतु इस मे अन्य कोषो की अपेक्षा मुहावरो की सख्या अधिक है। सपादक ने हिंदी, उर्दू, गल्प, उपन्यास आदि सब जगहो से मुहावरे लिए है और कोष को 'पूर्ण' बनाने का प्रयत्न किया है। मुहावरो के उदाहरण बहुत आवश्यक थे। क्योकि बिना किसी सदर्भ के देखे किसी मुहावरे का ठीक अर्थ समझना दुस्तर होता है। साथ ही एक मुहावरा कई अर्थो मे प्रयुक्त होता है। किंतु ये समान अर्थ कहीं-कही कोष मे नही मिलते। उदाहरण के लिए 'हाथ चलाना'—का प्रयोग कोष मे दिए हुए अर्थो के अतिरिक्त 'फुर्ती से काम करना' के अर्थ मे भी होता है। ऐसे ही कुछ और भी उदाहरण मिलेगे। कुछ मुहावरे गलत लिखे गए है, जैसे 'दड भरना' (जुर्माना देना) के स्थान पर 'डड भरना'। इन छोटी-छोटी त्रुटियो और अशुद्धियो के रहते हुए भी जिन के लिए विशेषतया यह कोष लिखा गया है (अर्थात् दक्षिण भारतवासियो के लिए) उन की आवश्यकता की पूर्ति बहुत कुछ इस से हो सकेगी। साधारणतया हिंदी-भाषी भी इस कोष से लाभ उठा सकते है।

ल० वा०

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम सहित, अंकित किए गए हैं।]

अ की बारहखड़ी—श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रुवाला, हंस, दिसंबर '३७

अख़्तर शेरानी—श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क', विशाल भारत, अक्तूबर '३७

आदि सभ्यताओं का गहवारा—छोटा नागपुर—श्री शरच्चंद्र राय, विशाल भारत, जनवरी '३८

इंग्लैंड की, उन्नीसवीं शताब्दी में, साहित्य साधना—श्री शशिभूषण; विश्व-मित्र, नवंबर, ३७

इस्लाम का प्रचार—श्री पांडेय रामावतार शर्मा, एम्० ए०, बी० एल्०; माधुरी, जनवरी '३८

उर्दू की उत्पत्ति—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

एवरेस्ट-शिखर के आदि अन्वेषक बाबू राधानाथ सिकदर—श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०; माधुरी, अक्तूबर '३७

कविराज कल्हण और राजतरंगिणी—श्री चक्रधर हंस, एम्० ए०, माधुरी, जनवरी '३८

कुमावनी लेखनी का चमत्कार तथा पहाड़ी भाषा—श्री मथुरादत्त त्रिवेदी, विशाल भारत; अक्तूबर '३७

गढ़वाली भाषा के 'पखाणा' (कहावतें)—श्री शालिग्राम वैष्णव, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८–२

ग़दर और बाद की दिल्ली—श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल, सरस्वती; जनवरी '३८

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि—श्री मन्नालाल द्विवेदी; वीणा; जनवरी '३८

तुलसी-कृत रामायण में करुण-रस—श्री राजबहादुर लमगोड़ा, एम्० ए०, कल्याण, नवंबर '३७

दादू की साधना का स्वरूप—श्री क्षितिमोहन सेन, एम्० ए०, वीणा, दिसंबर '३७

देवी सरोजिनी नायडू—श्री रामनाथ सुमन, माधुरी, नवंबर '३७

नवयुग के साहित्य का रूप—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए० बी० एल्०, विश्वमित्र; अक्तूबर '३७

नागरी लिपि में सुधार—श्री धर्मदेव शास्त्री, सुधा, नवंबर '३७

नादानुसंधान—स्वामी श्री कृष्णानंद जी महाराज, कल्याण, नवंबर '३७

पांचाल के संस्मरण—श्री उमेशचंद्र देव, सरस्वती, जनवरी '३८

प्राचीन पत्रलेखन—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, डी० लिट्०, विशाल भारत, जनवरी '३८

प्राचीन भारत में नगर-निर्माण—श्री परमेश्वरीलाल गुप्त माधुरी, जनवरी '३८

प्राचीन भारतीय समाज की एक झलक—डाक्टर बाबूराम सक्सेना, डी० लिट्०, चाँद, नवंबर, '३७

बिहार का साहित्यिक जागरण—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, साहित्य भाग, १—४

भगवान् महावीर और मंखलिपुत्र गोशाल—मुनिराज श्री विद्याविजय, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८—२

भरतपुर का राजवंश और सूदन कवि—डाक्टर कालिकारंजन कानूनगो, पी-एच्० डी०; वीणा, नवंबर '३७

भारत की प्राक्-ऐतिहासिक सभ्यता—श्री नगेंद्रनाथ घोष, एम्० ए०; चाँद, नवंबर '३७

भारतवर्ष की राष्ट्रीय लिपि—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, डी० लिट्०, वीणा; दिसंबर '३७

भारतीय संस्कृति में कला का स्थान—डाक्टर परमात्माशरण पी-एच० डी०: वीणा नवंबर ३७

महाकवि अकबर इलाहाबादी—श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, माधुरी, अक्तूबर '३७

महाकवि कालिदास तथा गोस्वामी तुलसीदास का शृंगार वर्णन—श्री व्योहार राजेंद्रसिंह, सुधा, नवंबर '३७

मारवाड़ की सब से प्राचीन जैन मूर्तियाँ—श्री मुनि कल्याणविजय, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८—२

मालवे की भौगोलिक स्थिति का इतिहास पर प्रभाव—श्री विश्वनाथ शर्मा, वाणी, अक्तूबर-दिसंबर '३७

मुस्लिम सम्राटों के सिक्कों पर हिंदू मूर्तियां—श्री बहादुर सिंह सिंघी, एम्० ए०, विश्वमित्र, अक्तूबर '३७

मूल गोसाईंचरित की प्रामाणिकता—श्री रामदास गौड़, एम्० ए०, कल्याण; नवंबर, '३७

यज्ञोपवीतरहस्य अथवा ब्रह्मात्मैक्य निरूपण—श्री धर्मराज वेदालंकार; कल्याण, जनवरी '३८

राजस्थान का एक कवि—राजिया—श्री मनोहर शर्मा, हंस; नवंबर '३७

'रामचंद्रोदय' की भाषा—श्री अबोध मिश्र; माधुरी, अक्तूबर '३७

रूस के दो अमर कवि—श्री कामेश्वर शर्मा; हंस, अक्तूबर '३७

वर्तमान हिंदी के संबंध में कुछ विचार—श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा, एम्० ए०, विशाल भारत, अक्तूबर '३७

वस्तुजगत और भावजगत—श्री नलिनीमोहन सान्याल, एम्० ए०; सरस्वती; जनवरी '३८

वेदों में भगवन्नाम महिमा—श्री सत्परमहंस स्वामी भागवतानंद महाराज, कल्याण; जनवरी '३८

श्री सियारामशरण गुप्त की 'मृण्मयी'—श्री रामचंद्र तिवारी, हंस, अक्तूबर '३७

साहित्यिक सत्य—श्री धर्मेंद्र ब्रह्मचारी साहित्य भाग १ ४

संसार का महत्तम ग्रंथ—महाभारत—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी विशाल भारत, अक्तूबर '३७

संस्कृत-साहित्य में गद्य-काव्यों की विरलता—श्री सीताराम शास्त्री मिश्र, साहित्याचार्य, माधुरी, जनवरी '३८

सेनापति विमल के कुटुंब की एक अप्रकट प्रशस्ति—श्री मुनि जयन्तविजय, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८—२

स्वामी दयानंद और उर्दू—श्री चंद्रबली पांडे, सरस्वती, जनवरी '३८

हमारा साहित्य : उस के गुण–दोष—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, विशाल भारत, जनवरी '३८

हमारी भाषा का रूप कैसा हो?—श्री भवानीप्रसाद, बी० ए०, सरस्वती; दिसंबर '३७

हिंदी-कविता में हास्य-रस—श्री नगेंद्र एम्० ए०, वीणा; नवंबर '३७

हिंदी कहानी की प्रगति—श्री प्रकाशचंद्र गुप्त, हंस; दिसंबर '३७

हिंदी का ऐतिहासिक साहित्य—श्री सतीशचंद्र, एम्० ए०, साहित्य, भाग १—४

हिंदी गद्य का प्रारंभिक युग—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०, वीणा, अक्तूबर '३७

हिंदी पत्रकार-कला का विकास—श्री विष्णुदत्त शुक्ल, विशाल भारत, जनवरी '३८

हिंदी में दार्शनिक साहित्य—श्री हरिमोहन झा, एम्० ए०, साहित्य, भाग १—४

हिंदी साहित्य की वर्तमान धारा और लोक-रुचि—श्री देवनारायण कुँवर, माधुरी; अक्तूबर '३७

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड्थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३), सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुलफज्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ।)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अप्रैल, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

जी (विट्ठलनाथ) ने, गोविंद दुबे को एक श्लोक लिख भेजा। जिस समय गोविंद दुबे के पास वह पत्र पहुँचा, उस समय वह सध्यावदन कर रहा था। उसे पढ़ते ही गोविंद दुबे वहा से ऐसा चला कि पीछे फिर कर भी न देखा। मीराबाई ने कितना समझाने का प्रयत्न किया पर वह रुका नही।[१]

कृष्णदास अधिकारी की वार्ता से पता चलता है कि आचार्य महाप्रभु के कुछ 'निज सेवक' मीराबाई को नीचा दिखाने का भी प्रयत्न किया करते थे। उस से इस विरोध के कारण का भी कुछ पता चलता है।

कृष्णदास अधिकारी एक बार द्वारिका गया। वहा से रणछोड़ जी के दर्शन कर के वह मीराबाई के गॉव आया। वहा हरिवश व्यास आदि कई प्रतिष्ठित वैष्णव ठहरे हुए थे। किसी को आए आठ, किसी को दस, किसी को पद्रह दिन हो गए थे। कृष्णदास ने आते ही कहा, 'मै चलता हू'। मीराबाई के बहुत रोकने पर भी वह न रुका तब मीराबाई ने श्रीनाथ जी के लिए कई मुहरे भेट देनी चाही। पर कृष्णदास ने ली नही और कहा कि तू आचार्य महाप्रभु की सेवक नही होती है इस लिए हम तेरी भेट हाथ से छुएगे भी नही। यह कह कर वह चल दिया।[२]

---

[१] "और एक समय गोविंद दुबे मीरांबाई के घर हुते। तहां मीरांबाई सो भगवद्वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविंद दुबे मीरांबाई के घर उतरे है सो अटके है। तब श्री गुसाई जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहां जाय पहुँचौ, ता समय गोविंद दुबे संध्यावदन करत हुते। तब ब्रजवासी ने आयकें वह पत्र दीनो। सो पत्र बांचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे तब मीरांबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे ने फिरि पाछें न देख्यौ।"—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', (गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुंबई) १९८५, पृ० १६२

[२] "सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोरजी के दर्शन करि कें तहां ते चले। सो आपन मीरांबाई के गांव आयौ, सो वे कृष्णदास मीरांबाई के घर गये, तहां हरिवंश व्यास आदि के विशेष सह वैष्णव हुते। सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह दिन भये हते। तिन की बिदा न भई हुती और कृष्णदास नें तौ आवत ही कही जो हूँतौ चलूँगो। तब मीरांबाई ने कही जो बैठो तब कितनेक महौर श्रीनाथ जी को देन लागी। सो कृष्णदास नें न लीनो और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की नाही होत ताते तेरी भेंट हाथ ते छूवेंगो नाहीं। सो ऐसे कहि के कृष्णदास वहां ते उठि चले।"—८४ वार्ता, पृ० ३४२; डाक्टर धीरेंद्र वर्मा संकलित 'अष्टछाप', पृ० १९

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि वल्लभाचार्य जी के अनुयायियो का उस से कुछ सीमा तक अवश्य ही इस कारण विरोध था कि वह भी उन की अनुयायिनी नही बनी। आरंभिक अवस्था मे प्रत्येक संप्रदाय मे स्वभावतया प्रचार और प्रदर्शन का भाव अधिक रहता है। वल्लभ-सम्प्रदाय भी इस बात का अपवाद नही था, यह स्वय कृष्णदास अधिकारी के शब्दो मे स्पष्ट है। कृष्णदास जब मीराबाई की भेट फेर कर चला आया तो एक वैष्णव ने उस से कहा, तुम ने श्रीनाथ जी की भेट नही ली। कृष्णदास ने कहा, भेट की क्या पटी है। मीराबाई के यहा जितने भक्त बैठे थे उन सब की नाक नीची कर के भेट फेरी है। इतने एक जगह कहा मिलते। ये भी जानेगे कि एक समय आचार्य महाप्रभु का सेवक आया था। उस ने भी जब भेट नही ली तो उस के गुरु की तो बात ही क्या होगी।[1]

जान पडता है कि मीराबाई को वल्लभ-सप्रदाय मे दीक्षित करने के कुछ प्रयत्न हुए थे। बाद को तो वल्लभ-सम्प्रदाय को मेवाड मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। '२५२ वार्ता' के अनुसार मीरा की देवरानी अजबकुँवरबाई को विट्ठलनाथ ने अपनी शिष्या बना लिया[2] और श्रीनाथ का मदिर बन जाने पर औरंगजेब के समय से तो मेवाड वल्लभ-सप्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र ही हो गया। किंतु स्वय मीरा को दीक्षित करने का कोई प्रयत्न सफल नही हुआ। मीराबाई का पुरोहित रामदास भी '८४ वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वल्लभ-सप्रदाय मे दीक्षित हो गया था। पर वह तब भी दीक्षित नही हुई। एक दिन रामदास मीराबाई के ठाकुर जी के आगे कीर्तन कर रहा था। उस ने कीर्तन मे आचार्य महाप्रभु का पद गाया। उस के समाप्त होने पर मीराबाई ने कहा, श्री ठाकुर जी का पद गावो। इस पर आचार्य महाप्रभु का अपमान समझ कर रामदास बडा क्रुद्ध हुआ और मीराबाई को बुरा-भला कहता हुआ उस के यहा से अपना कुटुंब ले कर चला गया। मीराबाई के बुलाने पर भी वह उस के यहा न गया। मीराबाई ने घर बैठे ही रामदास को वृत्ति देनी चाही, पर उस ने यह कह कर नही ली कि 'आचार्य

---

[1] "तब कृष्णदास ने कह्यौ जो भेंट की कहां है परि मीरांबाई के यहां जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करि कें भेंट फेरी है। इतने इक ठोरे कहां मिलते। यहह जानेंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्य जी महाप्रभून कौ सेवक आयौ हुतो तानें भेंट न लोनी तो तिनके गुरू की कहा बात होयगी।"—'८४ वार्ता', पृ० ३४३; 'अष्टछाप', पृ० १६

[2] २५२ वार्ता पृ० १३०

महाप्रभु पर तेरी 'ममत्व' दृष्टि नही है, तेरी वृत्ति ले कर हमे क्या करना है ? हमारे तो सर्वस्व आचार्य महाप्रभु ही है।'[१]

ये उद्धरण इतने विस्मयकारक है कि सहसा इन पर विश्वास करने का जी नही चाहता। इस लिए देखना चाहिए कि 'वार्ता' और उस मे दी हुई ये घटनाए कहा तक प्रामाणिक है।

'वार्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को जॉचने का कोई विशेष साधन उपलब्ध नही है। उस का रचयिता कौन है, इस का भी निश्चित ज्ञान हमे नही है। स्वयं 'वार्ता' मे कही उस के लेखक का नाम नही दिया हुआ है। इधर कुछ लोगों का विश्वास चला आता रहा है कि यह वल्लभाचार्य के पौत्र और विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ की लिखी हुई है जिन का रचना-काल पडित रामचद्र जी शुक्ल के अनुसार स० १६२५ से १६५० तक माना जा सकता है। (हिंदी-शब्दसागर, भूमिका, पृ० २०६) स० १६०६-१६११ की नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में हरिराय के नाम से एक 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता (स० ११५-बी) का उल्लेख है। आदि-अन्त के अवतरणो से मालूम पडता है कि यह भी थोडे से भेद से गोकुलनाथ की समझी जाने वाली वार्ता ही है। पर रिपोर्ट वाली '८४ वार्ता के आदि-अन मे भी रचयिता का नाम नही दिया हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार, हरिराय आचार्य जी का शिष्य और उन के पुत्र विट्ठलनाथ तथा पौत्र गोकुलनाथ दोनो का समकालीन था। '२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे दी हुई गगाबाई क्षत्राणी की वार्ता से पता चलता है कि गगाबाई की मृत्यु के समय स० १७३६ मे हरिराय विद्यमान था। उस समय

---

[१] "सो एक दिन मीरांबाई के श्री ठाकुर जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते तब मीरांबाई बोली जो दूसरे पद श्री ठाकुर जी को गावो तब रामदास जो ने कह्यो मीरांबाई सो जो अरे दारी रांड यह कोन को पद हैं यह कहा तेरो खसम को मूड़ है जो जा आज ते तेरो मुँहडौ कबहूं न देखूँगो तब तहां ते सब कुटुम्ब को लेकें रामदास जी उठि चले तब मीरांबाई ने बहुतेरे कह्यो परि रामदास जी रहे नाहीं . . . मीरांबाई नें बहुत बुलाये परि वे रामदास जी आये नाही तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यौ जो रांड तेरो श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्त्व नाहीं जो हम को तेरी वृत्ति कहा करनी है। हमारे तौ श्री आचार्य जी महाप्रभू सर्वस्व हैं।"—८४ वार्ता, पृ० २०७-२०८; 'पुष्टि दृढ़ाव' नामक निबंध में भी जो '२५२ वैष्णवन की वार्ता' के अंत में छपा है इस प्रसंग का उल्लेख है।—पृ० ५१६—५२०

वह मेवाड मे श्रीनाथ के मदिर का महत था। इस मे संदेह नही कि हरिराय तथा गोकुलनाथ ने ब्रजभाषा गद्य में अच्छी टीकाए लिखी है, जिन की भाषा 'वार्ता' ही के समान सुदर और सजीव है। परतु हरिराय के 'भावना', 'सन्यास-निर्णय', 'निरोध लक्षण' और 'शिक्षा-पत्री' तथा गोकुलनाथ के 'सर्वोत्तम स्तोत्र टीका' आदि ग्रथो मे लेखकों के नाम स्पष्ट रूप से दिए हुए है, जब कि वार्ताओ मे किसी का नाम इस प्रकार नही दिया गया है। ऐसा जान पडता है कि 'वार्ता' किसी एक व्यक्ति की लिखी हुई नही है। सभवत बहुत सी वार्ताए मूल-रूप मे स्वय आचार्य जी के मुख से सुनी गई होगी। कुछ अन्य लोगों ने अपनी आँखो देखी कही होगी। फिर परपरा से कानोकान चली आती होगी। गोकुलनाथ या हरिराय इन के लेखक तो क्या सग्रहकर्ता भी थे या नही, नही कहा जा सकता। परतु इस से मीराबाई-सबधी इन प्रसगो की प्रामाणिकता मे कोई अतर नही आता। इन प्रसगो के पीछे यदि ऐतिहासिक आधार न होता तो ये पीछे से 'वार्ता' मे न आ पाते। मीरा का महत्त्व सर्वकालीन है। ऐसे व्यक्तियो को सब लोग अपनाने का प्रयत्न करते है; समय की दूरी जब तुच्छ कलहो की तात्कालिक तीव्रता को शिथिल कर डालती है तब ऐसे व्यक्तियो के प्रति श्रद्धा प्रकट करने की इच्छा होती है, मतभेद दिखाने की नही। उस से जान पडता है कि इन वार्ता के पीछे अवश्य ऐतिहासिक आधार है। और ये उस समय की लिखी या कही हुई है जब कि अभी ताजी ही थीं। इन मे कोई बनावट भी नही जान पडती। यदि कोई बनावट हो तो अधिक से अधिक इतनी ही कि रामदास से मीराबाई के लिए जो दुर्वचन कहलाए गए है, वे अतिरंजित हो। कृष्णदास वाला प्रसग तो इतना निश्छल है कि इस के सर्वथा सत्य होने मे कोई संदेह ही नही जान पडता।

ऐतिहासिक दृष्टि से इन घटनाओ मे कोई असंभवता भी नही। वल्लभाचार्य जी का जन्म स० १५३५ मे हुआ था और गोलोकवास स० १५८७ में। ये तिथिया सप्रदाय मे भी मान्य समझी जाती है और उस के बाहर भी। मीराबाई पहले महाराणा कुभ की स्त्री समझी जाती थी। परतु अब मुशी देवीप्रसाद, श्री हरविलास सारदा और महामहो-पाध्याय डाक्टर गौरीशंकर हीराचद ओझा, राजस्थान के ये तीनो प्रमुख इतिहासविद उसे एकमत हो महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज की स्त्री मानते हैं 'वार्ता' भी समय की दृष्टि से इस को पुष्ट करती है। मीरा के सबध मे अब तक जो कुछ एतिहासिक तथ्य • है उन से इतना निश्चित है कि महारे

के राव बीरसदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की इस पुत्री का जन्म स० १५५५ के लगभग, विवाह १५७३ के लगभग, वैधव्य १५७५ के लगभग, और निधन १६०३ के लगभग हुआ।[1] इस प्रकार 'वार्ता' में दी हुई ऊपर की घटनाओं के सत्य होने में कोई ऐतिहासिक व्यवधान नहीं है। क्योंकि मीरा और आचार्य जी दोनों समकालीन थे।

'वार्ता' के ऊपर दिए हुए उद्धरणों से मीराबाई के महत्व पर बहुत प्रकाश पड़ता है। वह सब संतों का, सम्प्रदाय-भेद का विचार किए बिना, समान-रूप से आदर करती थी। उस की बड़ी उदार धार्मिक भावना थी। वल्लभ-सम्प्रदाय की न होने पर भी उस ने उन के मंदिर में भेंट भेजनी चाही। उस के विरोधियों ने भी उस से कटु वचन नहीं कहलाए। वह बड़ी सहिष्णु थी। कृष्णदास ने उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न किया, रामदास ने उसे गालियां तक दीं, फिर भी उसे उद्विग्न नहीं कर सके। रामदास को तो वह घर बैठे वृत्ति देने तक को तैयार थी। उस के महत्त्व को वल्लभाचार्य जी स्वयं जानते होंगे। किसी सामान्य व्यक्ति को दीक्षा के लिए तैयार न करा सकने पर उन के भक्तों को उतनी खीझ न होती जितनी 'वार्ता' से प्रकट है।

वल्लभाचार्य जी भी उस काल के बहुत बड़े महात्मा थे। मीरा के साथ उन के भक्तों के बेढंगे व्यवहार में उन का हाथ कदापि नहीं हो सकता, किंतु मीरा से उन का अवश्य ही गहरा तात्विक भेद था, जिस ने शिष्यों में जा कर दूसरा रूप धारण कर लिया। 'गोविंद दुबे की वार्ता' से पता चलता है कि यह भेद इतना गहरा था कि उस के कारण मीराबाई से अपने अनुयायियों का संसर्ग भी वल्लभ-सम्प्रदाय के कुछ आप्तजन अवाछनीय समझते थे।

मीराबाई ने भी मतभेद को छिपाया नहीं है। उस की ओर से हमारे सामने दो अर्थ-गर्भित तथ्य हैं। जब कि सूरदास सरीखे महात्मा जो स्वयं दीक्षा देते थे, जिन के स्वयं बहुत से भक्त थे, वल्लभाचार्य जी के सेवक हो गए[2] तब भी मीरा ने उन से दीक्षा नहीं ली। दूसरे वल्लभाचार्य जी के पदों को मीरा अपने ठाकुर जी के उपयुक्त

---

[1] ओझा, 'राजपूताने का इतिहास', पृ० ६५०–६५१

[2] "गऊघाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतो। सो सूरदास जी स्वामी हैं आप सेवक करते सूरदास जी भगवदीय हैं। गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदास जी के सेवक भये हुते"—'८४ वार्ता' पृ० २७२

नही मानती थी। परिणाम इस से यह निकलता है कि मीराबाई पर पहले ही से कोई गहरा रंग चढा हुआ था, जो वल्लभ-संप्रदाय के रंग से कदापि मेल नही खाता था। इस प्रकार '८४ वार्ता' के ये उल्लेख मीरा के मत को समझने में प्रकारांतर मे हमारी मदद करते है।

वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग मे कृष्ण-भक्ति ही सार वस्तु है। इसी लिए वल्लभ-सप्रदायी कवियो ने कृष्णावतार की लीलाओ का विस्तार से वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के यशस्वी कवियों की रचनाए जिन्हों ने पढी है, वे इस बात को जानते है।

इस मे सदेह नही कि प्रत्यक्षत मीराबाई भी कृष्णभक्त है। उस की वाणी मे स्थल-स्थल पर कृष्ण का उल्लेख है। उस का बहुत-सा अश कृष्ण ही को सबोधित कर कहा गया है। मीरा ने स्वयं कहा है कि 'मोरमुकुटधारी' 'नंदनंदन' ही मेरे पति है। 'गिरिधर गोपाल' के अतिरिक्त किसी दूसरे से वह अपना सबध ही नही मानती थी।[१] कृष्ण ही की बॉकी-सॉवली छवि, टेढी अलको और त्रिभंगी मूर्ति पर उस की लुभाई हुई ऑखे अटकी रहती थी।[२]

अपने आप को गोपी कल्पित कर वह भाग्यशालिनी गोपियो के भाग्य पर ईर्ष्या करती है—

स्याम म्हांसूँ ऐंडो डोले हो।
औरन सूं खेलै धमार म्हांसूं मुखहू ना बोलै हो।
म्हारी गलियां ना फिरै वाके आंगन डोलै हो॥
म्हारी अंगुली ना छुवै वा की बहियां मोरै हो।
म्हारो अंचरा ना छुवै वाको घूंघट खोलै हो।
मीरा के प्रभु सांवरो रंग रसिया डोलै हो।[३]

---

[१] मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरा न कोई।...
जा के सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई॥—बानी, पृ० २४

[२] निपट बंकट छवि अटके मेरे नैना निपट बंकट छबि अटके।
देखत रूप मदनमोहन को पियत मयूखन मटके।
वारिज भँवर अलक टेढ़ी मनो अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी गिरिधर नागर नट के॥

[३] बानी पृ० ५३

परंतु यदि गहरे पैठ कर देखा जाय तो जान पडेगा कि उस का उतना ध्यान अवतार की ओर नहीं है जितना ब्रह्म की ओर। जिस नंद-नंदन गिरिधर गोपाल के विरह में वह 'अँसुअन की माला'[१] पोया करती है, जिस की बाट जोहते उस की 'छमासी' रात बीतती है[२], जिस के रूप पर मुग्ध हो कर उसे लोक परलोक कुछ नहीं सुहाता[३], जिस से वह अपनी बाहु मुड़वाना और घूँघट खुलवाना चाहती है[४], जिस के लिए वह घायल हो कर तड़पती फिरती है[५], जिस को वह 'छप्पन भोग' और 'छतीसो व्यंजन' परसती है[६] जिस 'मिठ-बोला' के लिए विकलता ने उस की 'दिल की घुंडी' खोली है[७] वह पूर्ण ब्रह्म है।[८] उसी निर्गुण का सुरमा वह अपनी आँखों में लगाती है।[९] वह उसे पूर्ण-रूप से अपने अंदर देखती है।[१०] उस निर्गुण ब्रह्म का 'गगन-मंडल' में निवास है।[११] गगन-मंडल में बिछी हुई सेज पर ही प्रिय को मिलने की उत्कंठा वह अपने मन में रखती है।[१२] सुरति-निरति का वह दीपक बनाती

---

[१] इक विरहिनि हम देखी अँसुवन की माला पोवै।—बानी, पृ० २३, ५१

[२] एक टकटकी पंथ निहारूं भई छमासी रैन।—वही, पृ० २३,५३

[३] जब से नंदनंदन दृष्टि पड़चो माई।
तब से लोक परलोक कछू ना सुहाई॥—वही, पृ० २६,६७

[४] म्हारी अँगुली ना छुवै वाकी बहियाँ तोरैं हौ।
म्हारो अँचरा ना छुवै वाको घूँघट खोलै हौ॥—वही, पृ० ५३,२

[५] घायल फिरूं तड़पती पीर नांहि जाने कोइ॥—वही, पृ० ५१–५२

[६] छप्पन भोग छत्तीसों बिंजन सनमुख राखो थाल जी।—वही, पृ० ५२

[७] साजन घर आवो मीठा बोला।.....
तुम देख्या बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला।
मीरा दासी जनम जनम की, दिल की घुंडी खोला॥—वही, पृ० १७,३२

[८] मात पिता तुम को दियो तुम हीं भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को मन में नांहि आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म पूरन पद दीजे हो।—वही, पृ० ८, १२

[९] सुरत सुहागिन नार... निरगुन सुरमो सार।—वही, पृ० ३१,७२

[१०] मेरे पिया मोंहि मांहि बसत हैं, कहूं न आती जाती।—वही, पृ० १०,१६
औरों के पिय परदेस बसत है लिख लिख भेजैं पाती।
मेरे पिया हिरदे में बसत हैं गूँज करूं दिन राती॥ —वही, पृ० २७,६२

[११] गगन-मंडल में सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।—वही, पृ० ४,३

[१२] तेरा कोइ नहिं रोकनहार, मगन होय मीरा चली...।
ऊंची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी...।
सेज सुखमणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी॥—वही, पृ ११-१८

है, जिस मे प्रेम के बाजार में बिकने वाला (अर्थात् प्रेम का) तेल भरा रहता है और मनसा (इच्छा) की बत्ती जलती रहती है।[१] उस का प्रेम-मार्ग उसे ज्ञान की गली मे ले जाता है।[२] उस का मन सुरत की आसमानी सैर मे लगा हुआ है।[३] वह अगम के देस जाना चाहती है, जहा प्रेम की वापी मे शुद्ध आत्मा हस क्रीड़ा किया करते है।[४] राणा को डाट कर वह कहती है कि मै आज की नही तब की हूं जब से सृष्टि बनी है।[५] कबीर के मार्ग की भाति उस की भी ऊँची-नीची रपटीली राह है, जिसे वह 'झीना पंथ' (सूक्ष्म ज्ञान-मार्ग) कहती है।[६] निर्गुणियों का अभ्यास मीरा के निम्न-लिखित पद मे आ गया है—

नैनन बनज बसाऊं री जो मै साहिब पाऊं री।
इन नैनन मोरा साहब बसता डरती पलक न लाऊं री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहां से झाँकी लगाऊं री॥
सुन्न महल में सुरति जमाऊं सुख की सेज बिछाऊं री।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊं री॥[७]

इस मे त्रिकुटी-ध्यान और भ्रू-मध्य-दृष्टि की ओर स्पष्ट सकेत है। मीरा का ध्येय है 'पूरन पद'।[८] निरजन का वह ध्यान करती है।[९] अनाहत नाद को सुनती है[१०] और

---

[१] सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल बना ले जगा करे दिनराती॥—बानी, पृ० १०,१६

[२] मान अपमान दोउ धर पटके निकली हूं ज्ञान गली।—वही, पृ० ११,१३

[३] मीरा मनमानी सुरति सैल असमानी।—वही, पृ० १९,४१

[४] चलो अगम के देस काल देखत डरै।
वहां भरा प्रेम का हौज हंस केलां करै॥—वही, पृ० १३

[५] आज काल की मै नहिं राणा जब यह ब्रह्मंड छायो।—वही, पृ० ६७,३२

[६] ऊंची नीची राह रपटीली, पांव नही ठहराइ।
सोच सोच पग धरूं जतन से बार बार डिग जाइ॥
ऊंचा नीचा महल पिया का हम से चढ्या न जाइ।
पिया दूर पंथ म्हांरा झीणा सुरत झकोला खाइ॥—वही, पृ० २७

[७] वही, पृ० ३०,९८। निर्गुणियों के अभ्यास के लिए देखिए बड़थ्वाल-'निर्गुण स्कूल आव् हिंदी पोयट्री', (इंडियन बुकशाप, बनारस), पृ० १३१-१५२

[८] तुम प्रभु पूरन ब्रह्म, पूरन पद दीजै हो।—बानी, पृ० ८,१२

[९] जा को नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूंगी हो।—वही पृ० २४,५४

[१०] बिन बाजे अनहद की झकार रे —वही पृ० ४२ १

'आदि अनादि साहब' को पाकर भवसागर से तर जाती है।[1]

यह कबीर की निर्गुण-भावना के सर्वथा मेल मे है। उसी तात्पर्य के सहित कबीर की प्राय सारी शब्दावली मीरा में मिलती है। कबीर से यदि मीरा मे कोई अतर है तो यही कि मीरा को मूर्त्तियो से चिढ नहीं। प्रियादास[2] ने तो उसे अपूर्व मूर्ति-पूजक माना है। उस के अनुसार, पिता के घर मे ही उस का गिरिधर लाल की मूर्ति से प्रेम हो गया था। जब विवाहोपरांत पतिगृह जाने लगी तब उस ने सब वस्त्राभूपण छोड माता-पिता से गिरिधर लाल की मूर्ति माँगी, उसी को अपना पति समझा और अत मे उसी मे समा गई।[3] कबीर के साथ इस सादृश्य और भेद का कारण यह है कि उस ने रामानद के शिष्य और कबीर के गुरुभाई रैदास से अथवा उस की वाणी से आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी। मीरा के

---

[1] साहब पाया आदि अनादी नातर भव में जाती।—वही, पृ० १,१

[2] मेरतौ जनम भूमि झूमि हित नैन लगे,
पगे गिरधारीलाल पिताही के धाम मै।
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामा नई,
गई मति बूड़ि वा रँगीले घनश्याम मैं।
भाँवरैं परत मन साँवरे रूप मांझ
ताँवरैं सी आवै चलिबै कौ पति ग्राम मै।
पूछै पिता-माता "पट आभरन लीजियै जू"
लोचन भरत नीर कहा काम दान मै।।
—रूपकला-संपादित "श्रीभक्तमाल" (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२६), पृ० ७२०

[3] देवौ गिरिधरलाल जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखिए उठाय कै।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़्यौ भारी,
रोय मिली महतारी, कही "लीजिये लड़ाय कै।।"
डोला पधराय दृग दृग सों लगाय चलीं,
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
—वही, पृ० ७२१

सुन बिदा होन गई राय रणछोर जू पै
छांडौं राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै।
—वही पृ० ७२८

नाम से मिलने वाली वाणी में कई स्थान पर रैदास उस का गुरु बताया गया है।[1] कबीर के समकालीन और उस से पहले के कुछ संतों तथा कबीर के अतिरिक्त रामानंद जी के अन्य शिष्यों की यह विशेषता जान पड़ती है कि वे निर्गुण के प्रति अपनी ऊँची से ऊँची अध्यात्म-भावना को मूर्तियों के समक्ष प्रकट करने में कोई प्रत्यक्ष विरोध नहीं मानते थे। नामदेव विठोबा की मूर्ति के सामने घुटने टेक कर निर्गुण निराकार की स्तुति करता था।[2] इसी प्रकार रामानंद जी के अन्य शिष्य शालग्राम के प्रति आदर-भावना रखते थे। मीरा में भी यही बात थी। उस पर निर्गुण-भावना का रैदासी रंग चढ़ा हुआ था। उस की सगुण-भावना निर्गुण-भावना का प्रतीक मात्र थी। वह अवतार भावना की विरोधिनी नहीं है परंतु उधर उस का उतना ध्यान नहीं। वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों की भाँति उस का उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करना नहीं, अपनी अनुभूति का प्रकाशन करना था। वह पर-ब्रह्म-कृष्ण की गोपी थी। कबीर की भाँति वह प्रेम-लक्षणा अर्थात् दशधा भक्ति की मानने वाली थी, जो निर्गुण-मार्गियों की विशेषता है। जो कुछ रैदास ने राम का नाम ले कर कहा है वह मीरा ने कृष्ण का नाम ले कर। कदाचित् कृष्ण-नाम से प्रेम का कारण यह हो कि वह जन्मी भी कृष्ण-भक्त परिवार में थी और ब्याही भी कृष्ण-भक्त परिवार में। उस के पति के यशस्वी पूर्वज महाराणा कुंभ ने तो राधामाधव संबंधी

---

[1] रैदास संत मिले मोहि सतगुरु दीन्ही सुरत सहदानी।—बानी, पृ० २०,४१
गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।
सतगुर सैन दई जब आके जोत में जोत रली।—वही, पृ० ३६,१४
मीरा नै गोबिंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास।—वही, पृ० ३७,१

रैदास का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। उसे पीपा (लगभग १३५०—१४००सं०) का समकालीन और रामानंद का शिष्य मानते हुए इस संबंध में जो कुछ अनुमान लगाया जा सकता है उस से मेरी सम्मति में, उस का मीराबाई का समसामयिक होना भी घटित नहीं होता। इस लिए संभव है कि मीराबाई ने उस के मुख से शिक्षा ग्रहण न कर उस की रची 'वाणी' से शिक्षा ग्रहण की हो। गरीबदास (लगभग सं० १७७४-१८३५) ने कबीर को और चरनदास (जन्म लगभग सं० १७६०) ने 'भागवत' के शुकदेव को अपना गुरु माना है। इन असमसामयिक गुरुओं के स्पष्ट उदाहरणों को हम इसी अर्थ में ठीक समझ सकते है। रैदास और मीराबाई के समय पर विचार एक अलग विषय है।

[2] फ़र्क़ुहर 'आउटलाइन ऑव दि रिलिजस लिटरेचर ऑव इंडिया' पृ० ३००

मधुर काव्य 'गीतगोविंद' पर सुंदर टीका उस समय लिखी थी जब कि वल्लभ-सम्प्रदाय अभी अस्तित्व में नहीं आया था।

यह भी छिपा नहीं है कि वल्लभ-सम्प्रदाय भी प्रेम-मार्ग है परन्तु नवधा भक्ति का, जो निर्गुणोपासना का विरोधी है। 'भ्रमरगीत' में सगुण की आराधिका गोपियों के हाथों सूरदास ने निर्गुण-ज्ञानी उद्धव की जो दुर्दशा कराई है उस में निर्गुणोपासना के प्रति वल्लभ-संप्रदाय की विरोध-भावना का स्पष्ट प्रतिबिंब है। यहां पर गोपियों के चुटीले तर्क की एकाध बानगी दे देना काफी होगा---

१---सुनिहै कथा कौन निर्गुण की रचि पचि बात बनावत।
सगुन सुमेर प्रगट देखियतु तुम तृन की ओट दुरावत॥

२---रेख न रूप बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तुम कबहूँ हौ पावत॥

वल्लभाचार्य जी और मीरा के बीच गहरे तात्त्विक मतभेद के ही आधार पर हम 'वार्ता' में लिखित उपर्युक्त घटनाओं को उन के उचित रूप में समझ सकते हैं।

आधुनिक उर्दू कविता में गीत

[लेखक—श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क']

गीतों का युग

इन पंक्तियो के लेखक ने अन्यत्र[1] इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि उर्दू कविता मे एक नए युग का आविर्भाव हुआ है। एक नए रग की कविता लिखी जाने लगी है। जिस प्रकार हिंदी कविता नायिका-भेद और राजा-महाराजाओं की स्तुति तथा विलास-भावनाओ के सकुचित युग से निकल कर मुक्ति के महान आकाश मे चिडियो की भाँति विविध स्वरो से चहकने लगी है, उसी प्रकार उर्दू शायरी भी शमा-परवाने,[2] गुलो-बुलबुल[3] महबूबो-माशूक[4] के जाल से निकल कर नवीन भावनाओ के साथ जगत मे प्रवेश कर रही है।

एक ही तरह की गजलो का दौर खत्म हुए भी देर हो चुकी। अब तो कवि नज्मो की दुनिया से भी आगे निकल कर कविता के एक नए ससार मे आ गए है। बड़े-बड़े शायर छोटे-छोटे सीधे और सरल गीतों में हृदय के कोमलतम उद्गारो को व्यक्त कर के साहित्य में नई गंगा वहा रहे है। यह गीत पंजाब मे सर्वसाधारण की जबान पर चढे हुए है और कुछ तो इतने लोकप्रिय हुए है कि गले मे अमृत रखने वाले अपने मीठे, मादक स्वरों से गाते हुए इन से पंजाब की महफिलो को गुँजा देते हैं।

सुंदरता के जादू से दिलों को मोह लेने वाले इन गीतो को जन्म देने का श्रेय जालंधर की नररत्न-प्रसू भूमि मे जन्म लेने वाले मौलाना अबुल असर 'हफीज' को है। अपने इस रग के विपय मे वह स्वय ही लिखते है—

---

[1] 'विशाल-भारत', दिसंबर १९३७

[2] दीपक और शलभ।

[3] फूल तथा बुलबुल।

[4] प्रिय-प्रेयसी।

किया पाबंदे नै नाले को मैं ने,
यह तरजे खास है ईजाद मेरी।[1]

और है भी ठीक। उन्हों ने वे गीत लिखे है जिन मे नाले गीत बन गए है और आहे ताने। "मन है पराए बस मे" शीर्षक से उन का गीत मेरे इस कथन का प्रमाण है।

साहित्य में भी क्राति का पैगाम लाने वाले की कद्र पहले कठिनाई मे ही होती है। उन्हो ने अपना इस प्रकार का पहला गीत 'कान्ह की बसरी' लिख कर जब लाहौर के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक मे भेजा तो उस के सपादक ने, जो 'हफीज' साहब के घनिष्ट मित्र थे, उन को 'इस बेगार टालने' पर बहुत उलाहना दिया, और गीत को आकर्षक स्थान न देकर एक कोने में छाप दिया। किंतु जादू वह जो सर पर चढ कर बोले। दूसरे ही दिन जब 'हफीज' साहब ने अपना वही गीत जादू भरी आवाज मे गा कर सुनाया तो महफिल झूम गई। उक्त सपादक महोदय भी वही बैठे थे। उन्हों ने अपनी गलती को महसूस किया और जाना कि इस प्रकार के छोटे-छोटे गीतो की ईजाद एकदम फजूल नही और साहित्य के खजाने को और भी समृद्ध करने वाली है। दूसरे अंक मे उन्हों ने इस गीत को दोबारा, सपादकीय नोट मे उस की विशेष प्रशसा करते हुए छापा, और महीनो वह गीत लोगो की जबान पर रहा।

'शाहनामा-इस्लाम' के लेखक, फिरदौसिए इस्लाम श्री 'हफीज' इस रग मे लिखते है—

बंसरी बजाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले
बंसरी बजाए जा
प्रीत में बसी हुई अदाओं[2] से
गीत में बसी हुई सदाओं[3] से
ब्रजवासियों के झोंपड़े बसाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले

---

[1] मैं ने नालो को लय में बंद कर दिया है और यह मेरी खास ईजाद है।
[2] [3] आवाजों

बंसरी बजाए जा
बंसरी की लय नहीं है आग है
और कोई शय नहीं है आग है
प्रेम की यह आग चार सू लगाए जा
सुनाए जा सुनाए जा
कान्ह मुरली वाले नंद के लाले
बंसरी बजाए जा

इस के बाद गीतों के तूफान में पंजाब का कवि-समाज बह चला, और बरबस बह चला। इस गीत का प्रभाव अभी तक इतना बाकी है कि 'दर्दे जिंदगी' और 'हदीस अदब' के रचयिता हजरत 'अहसान दानिश' ने हाल ही में लिखा है—

ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा।
मस्तियां उबल पड़ें
मदभरी सदाओं से,
प्रेमरस बरस पड़े
मनचली हवाओं से।
मुसकरा रही है शाम, श्याम मुसकाराए जा।
ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा।
गोपियों को सुध नहीं
मस्तियों में जोश है,
रागरंग में है ग़र्क़[1]
रंग मयफ़रोश[2] है।
झूमती है कायनात,[3] झूमकर झुमाए जा।
ब्रजवासियों में शाम, बंसरी बजाए जा॥

---

[1] डूब गया है। [2] मदिरा बेचने वाला।
[3] सृष्टि

कृष्ण के गीत

'हफ़ीज़' साहब के इस गीत के बाद गोकुल के इस प्रेमावतार ने, कविता के सुहाग को चिर जाग्रत रखने वाले बसरीवाले ने राग की दुनिया मे अगणित गीतो का निर्माण कराया, और साप्रदायिकता के गढ पजाब के उर्दू कवियो से कराया। सच है शायरो का कोई मजहब नही, यदि कोई धर्म है तो प्रेम। आज यदि कवियो के हाथ मे विश्व के सचालन का भार और अधिकार हो तो देश और धर्म की तग दीवारे खडी न रह पाए और दुनिया की चप्पा-चप्पा जमीन भाई-भाई के खून से तर न हो।

मौलवी मकबूल अहमद हुसेनपुरी, जो उर्दू मे अपने मीठे-मीठे गानो के कारण प्रसिद्ध हैं, और जिन की कविता पर ब्रजभाषा का रग गालिब है, 'हुमायू' नाम की उर्दू पत्रिका में लिखते है—

बंसीधर महराज हमारे
हृदय-कुंज में बंसी बजाओ
सब भक्तों के राजा हो तुम
प्रेम-गीत से मन को रिझाओ
तुम सब प्यारों के प्यारे हो
आओ प्रीत की रीत सिखाओ
राधा-स्वामी
अंतर्यामी
परमानंद की राह सुझाओ
बंसीधर महराज हमारे
हृदय-कुंज में बंसी बजाओ

और 'अदबे-लतीफ़' पत्रिका के एक दूसरे गीत में आप विह्वल हो कर पुकार उठे है—

अब तो श्याम से उलझे नैन
कोई बुलाए हरि के घर से
बंसी बजाए प्रेम-नगर से

दिल रूठा अब दुनिया भर से
मन की डोर लगी ईश्वर से
क्या जानूं आई है रैन
अब तो श्याम से उलझे नैन

भक्तो की इस भक्ति से परे, जिस का ऊपर के गीतो मे प्रदर्शन किया गया है, भगवान् कृष्ण से सबंधित कविता का एक और रूप भी है, इस मे जुदाई के गीत लिखे गए है। जब कृष्ण गोकुल को छोड कर मथुरा जा बसे तो उन के विरह मे गोपिया जिस प्रकार तड़पती थी उस का पता केवल इस एक पद से लग जाता है,जब ऊधव के आने पर कोई गोपी रो कर, सिहर कर, कह उठती है—

ऊधव ब्रज की दसा निहारो

और इसी विरह की उदासी मे—जब मथुरा से कोई सदेसा नही आता और तडप तडप कर सवेरा करने वाली गोपी फिर सध्या के आने पर विह्वल हो उठती है। उस का चित्र 'नश्तर' जालधरी ने एक गीत मे खीचा है —

तड़प-तड़प कर भोर हुई थी
ना आया पैग़ाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-ग्राम
बादल गरजे बिजली चमके
उठी घटाएं शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन-ग्राम
आँख में आँसू कसक हृदय में
फिर आई है शाम
कन्हैया
उजड़ चला मन ग्राम

पंजाबी भाषा के प्रख्यात कवि लाला धनीराम जी ने भी 'आह्वान' शीर्षक एक कविता म श्याम का आवाहन करते हुए लिखा ह

आजा

शाम बिहारी आजा

शाम घटा लाइयां घनघोरा

बाग उठा लये सरते मोरां

हुन तां शामां तेरियां लोड़ां

बुझे दिला विच जोत जगाजा

आजा

शाम बिहारी आजा[1]

और हिंदी की भाषा मे तो मीराबाई, सूरदास आदि के गीतो में न जाने कितने आवाहन, कितनी मनुहारें और कितने अभिसार भरे पडे है। उर्दू मे भी बीसियो ऐसे गीत लिखे गए है जिन में घनघोर घटाओ, पुरशोर हवाओ और उन्मत्त मोरो को देख कर कोई गोपी अपने चितचोर श्याम को पुकार उठती है। उन गीतो मे से मैं किसी युवक रामप्रसाद 'नसीम' का एक गीत देता हूं। कितना दर्द-भरा और मर्म-स्पर्शी है!

घटाएं घिर आई घनघोर

हवाएं चलती है पुरशोर

मस्त पपीहा

बेसुध कोयल

और पागल है मोर

घटाएं घिर आई घनघोर

बिजली चमके

बादल बरसे

आन मिलो चित-चोर

घटाएं घिर आईं घनघोर

हवाएं चलती है पुरशोर

---

[1] ऐ मेरे श्याम बिहारी तू आजा।

ऐ श्याम घनघोर घटाएं छाई है, मोरों ने अपनी झंकार से बागों को सर पर उठा लिया है, ऐ श्याम अब तो तेरी ही कमी है।

आजा और बुझे हुए दिलों में आग लगा दे

वसंत के गीत

चलने लगा बिल्लूर का सागर किनारे जू,
पत्थर में जान फूंक दी बादे बहार ने।[1]

उस वसंत ऋतु को आते देख कर, जिस के आगमन पर पत्थरो तक मे भी जान आ जाती है, उर्दू का एक कवि अपने गम को भूल जाना चाहता है और निश्चित हो कर कहता है—

छलकता हुआ कैफ़[2] का जाम ले कर
नसीमे बहारी[3] का पैगाम ले कर
बसंत आ रहा है, बसंत आ रहा है!
जलाएगा अब क्या भला सोज़[4] हम को
भुलाएँगे रंजो मुहन[5] और ग़म को
बसंत आ रहा है, बसंत आ रहा है!

अपने गीत "पुरानी वसत" मे अब्बुल असर 'हफीज़' भी इसी भाव से प्रेरित होकर कहते है—

उम्र घट गई तो क्या?
डोर कट गई तो क्या?
यह हवाएं तुंदो तेज़
रुख पलट गई तो क्या?
आ गई बसंत रुत[6]
और इक पतंग दे
रंग दे
रंग दे क़दीम रग

---

[1] बिल्लूर (शीशे) का प्याला नदी के किनारे चलने लगा है—अर्थात् वसत के समीरण से मतवाले होकर मयख्वार नदी के किनारे जाकर मदिरा पान कर रहे है और मदिरा का पात्र इस हाथ से उस हाथ में चलने लगा है—कवि कहता है कि वसंत की बयार में वह जादू है कि पत्थर अर्थात जड पदार्थों में भी इस ने जान फूंक दी है।

[2] मस्ती [3] वसत का समीरण। [4] दद जलन। [5] दुख। [6] ऋतु

और पंडित इद्रजीत शर्मा, जिन्हों ने उर्दू मे अपनी पुस्तक "नेरगे-फितरत" लिखने के बाद इन रग को भी अपने गीतों से काफी समृद्ध बनाया है "वसत" शीर्षक गीत मे लिखते है—

आओ 'सखी' री चलें कुंज में छाई है हरियाली
फूलों की भरमार है ऐसी लदी है डाली-डाली
गेंदा और गुलाब खड़े है लिए हाथ मे प्याली
आँख खोल कर ताक-झाँक में नरगिस है मतवाली
आओ 'सखी' री चलें कुंज में छाई है हरियाली

इसी उल्लास के रग में एक और भी गीत है—

सजनि
आओ बसंत मनाएं
पीत के ही वे रंग जमाएं
सुंदर निर्मल
हो फुलवार
और जहां हो
फूलों की महकार
भँवरो की गुंजार
ऐसे में फिर
खुशी मनाएं
सजनि
आओ बसंत मनाएं

परतु दुनिया मे सुख ही सुख हो यह बात नही। सुख की छाया मे दुख है, हर्ष के दामन में व्यथा है, उल्लास की गोदी में विषाद है। वसत मे सब ही उल्लास और हर्ष से विभोर हो उठते हो, इस दुखी ससार मे यह कहां ? 'गालिब' ही कहते है—

उग रहा है दरो दीवार से सब्जा गालिब।
हम बयाबां में हैं और घर में बहार आई है

अब्बुल असर 'हफ़ीज' भी जहा सरसो के फूलने का, सखियो के झूलने का, तरुणो के गीत गाने का, मनचलो के पतग उड़ाने का जिक्र करते है, वहा वह उस युवती को भी नही भूलते, जिस ने वसत के आने पर फूलो के पीले गहने तो पहन लिए है परंतु प्रियतम परदेश मे है इस लिए—

है अगर उदास
नहीं पी के पास
ग़मो रंजो यास
दिल को पड़े है सहने

उसी विरहिन के हार्दिक मर्म को पजाब के तरुण कवि, जनाबे 'कैस' जिन्हो ने उर्दू गजलो से काफी अरसे तक पजाब मे सिक्का जमा कर इस रग मे लिखना आरभ किया है, एक सरल गीत मे व्यक्त करते है।

फूली फुलवारी-फुलवारी
फूल-फूल फूले लहराए
झूम-झूम कर भँवरा गाए
महकी क्यारी-क्यारी
फूली फुलवारी-फुलवारी
सखियां झूलें और झुलाएं
रल-मिल कर सब मंगल गाएं
मै पापिन दुखियारी
फूली फुलवारी-फुलवारी

और फिर वसत के दिनों मे यौवन-मदमाती दुलहिन किस प्रकार सिहर कर मिन्नत से अपनी सखी से कहती है—

सजनि
लिख भेजो कोई पाती
आई बसंत पिया नहीं आए
किस बिध चैन दुखी मन पाए
आग बिरह की जिया जलाए
बात कही नहीं जाती

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

और ताना देते हुए लिखो, कि

वा रसिया भूले बिरहन को

खो बैठी मैं जीवन-धन को

चैन नहीं है पापी मन को

नाम जपूं दिन-राती

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

लिखो कि

घर को आओ भिखारन के धन

सदके तुम पर जीवन यौवन

लौट आओ परदेसी साजन

फितरत[१] है मदमाती

सजनि

लिख भेजो कोई पाती

और फिर बसंत के दिन मालिन को सरसों के फूल लाते देख कर बिरहिन दुखित हो जाती है, और चिढ़ कर उस से कहती है—

ऐ मालिन इन फूलों को तू जा ले जा मेरे सामने से ;
यह लहू रुलाती है मुझको सूरत मतवाली सरसों की ।
यह जर्दी इन की लाली है, पीला पन है गहना इन का ;
मैं जन्म जली दुख की मारी लूं छीन न लाली सरसों की ।
जब आए बसंत मेरे मन का तो लाख बसंत मनाऊं मैं ;
सरसों के हार पिरोऊं मैं और गीत बसंत के गाऊं मैं ।

---

[१] प्रकृति ।

होली के गीत

होली और वसंत का चोली-दामन का-सा साथ है। एक की याद आते ही दूसरे का चित्र आँखो के सम्मुख खिच जाता है। उन दिनों की स्मृति भी जागृत हो उठती है जब वसतोत्सव मनाए जाते थे, और होली खेली जाती थी। जब भारत खुशहाल था, सपन्न था और देश का कोना-कोना ब्रज बन जाता था; नाचता, गाता और फाग मनाता था। फिर यह कैसे सभव था कि भगवान् कृष्ण और वसत के गीत तो गाए जाते पर होली को विस्मृति के गर्त मे फेक दिया जता?

इस रंग मे होली के गीत भी गाए गए है, और खूब गाए गए है, परतु उन मे उल्लास नही है, हर्ष नही है। जब ब्रज वह ब्रज नही रहा तो होली फिर वह होली कहा रहती? आज कल जो होली खेली जाती है वह होली कहा है, होली का स्वाँग मात्र है। 'वकार' साहिब ने इसी वर्तमान दशा का चित्र खीचा है। एक दुखिया अपनी सखी से कहती है—

होली खेलें किस के संग आली?
ब्रज में अब वह बात नहीं है कान्ह वाली घात नही है।
जीवन का वह रंग नहीं है प्रेम का पहला संग नहीं है।।
नगर-नगर से प्रीत उठी है डगर-डगर से रीत उठी है।
खेल कहां? इस खेल में चूके सखियां भूकी बालक भूके।।
कौन से रंग में चोली रंगाऊँ कौन से मुंह से फाग उड़ाऊँ?
बस में नहीं है मन साजन का राग रंग रूप है मन का।।
मुरली मूक टूटा मृदंग आली।
होली खेलें किस के संग आली?

एक और कवि ने मजदूर की होली लिखी है। भावो की तीव्रता देखिए—

कष्ट उठाए और दुख झेले
मैंने कितने पापड़ बेले
मेरे रक्त से होली खेले
सरमाया[1] चालाक

---

[1] **पूनीवाद**

नंगा रह कर सर्दी काटी
भूका रह कर ख़ाक भी चाटी
नीचे माटी ऊपर माटी
मेरी होली ख़ाक !

और अपनी दीन दशा से दुखी होकर अछूत पुकार उठा है—

होली आई कैसे खेलूं ?
मेरा रंग है फीका-फीका
कमबख़्ती बदहाली सी का
हाल बुरा है मेरे जी का
होली आई कैसे खेलूं ?
हिंदू कुछ बेरंग है मुझ से
आमादाये[1] जंग है मुझ से
मेरा भी दिल तंग[2] है मुझ से
होली आई कैसे खेलूं ?

लेकिन फिर भी होली के दिन रग उडाया जाता है। स्वाँग ही सही पर व्यवहार निभाया जाता है। सखी उदास है, वह होली न खेले, अछूत और श्रमी दुखी है वे होली न खेले, और कवि भी इन दुखियो के दुख से दुखी हो कर होली न खेले, परतु दूसरे तो खेलेगे। उस सूरत मे शायर का कर्तव्य केवल नसीहत करना रह जाता है यदि होली खेलना ही है तो ऐसी होली खेल जिस से—

बिछड़े है जो वह मिल जाएं
मन की कलियां फिर खिल जाएं
बैरी देखें औ हिल जाएं
तेरे घर का मेल
ऐसी होली खेल

---

[1] लड़ने को तयार   [2] मेरा दिल मुझ से ऊब गया ह

एकता के गीत

कृष्ण के संबध में गीत लिखने के बाद मौलाना 'हफ़ीज' ने एक प्रीत का गीत लिखा, जिस मे सांप्रदायिकता को मिटा कर एकता का राज्य स्थापित करने की अपील की। गीत लवा है, यहा पूरा नही दिया जा सकता फिर भी एक दो बंद देखिए—

अपने मन में प्रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
मन मंदिर में प्रीत बसा ले ओ मूरख ओ भोले-भाले
दिल की दुनिया कर ले रौशन अपने घर में जोत जगा ले
प्रीत है तेरी रीत पुरानी भूल गया ओ भारत वाले
भूल गया ओ भारत वाले
प्रीत है तेरी रीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
क्रोध कपट का उतरा डेरा छाया चारों कूंट अंधेरा
शैख़ बरहमन दोनों रहज़न एक से बढ़ कर एक लुटेरा
ज़ाहरदारों की संगत में कोई नहीं है संगी तेरा
कोई नहीं है संगी तेरा
मन है तेरा मीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत
भारत माता है दुखियारी दुखियारे है सब नर-नारी
तू ही उठा ले सुंदर मुरली तू ही बन जा श्याम मुरारी
तू जागे तो दुनिया जागे जाग उठें सब प्रेम पुजारी
जाग उठें सब प्रेम पुजारी
गाएँ तेरे गीत
बसा ले
अपने मन में प्रीत

पंजाब साम्प्रदायिकता के लिए बदनाम है और पंजाब के मुसलमान साम्प्रदायिकता के कट्टर अनुयायी कहे जाते हैं। उसी पंजाब के मुसलमान कवि के मुँह से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध ऐसी बात निकलना क्या गौरव का विषय नहीं है, और क्या यह नवयुग की प्रतिनिधि हिंदी भाषा के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण नहीं है?

दूसरा गीत मैं मौलवी मकबूल हुसेन अहमदपुरी का देता हूं, जिस के एक-एक शब्द से एकता का भाव टपका पड़ता है। गीत का शीर्षक है—'प्रेमपुजारी'। प्रेम का अर्थ यहां एकता से है—

हम तो प्रेम-पुजारी
धर्म प्रेम का सब से अच्छा प्रेम की शोभा सारी
कोई माने या ना माने हम तो प्रेम-पुजारी
आशा है यह अपने मन की प्रेम कन्हैया आएं
साँस-माँस को अपना कर लें हिरदय में रम जाएं
बिपता कटे हमारी

हम तो प्रेम-पुजारी
गाएं भजन बंसी वाले के ख़्वाजा[1] की जय बोलें
बड़े पीर[2] की आसा ले कर मन की घुंडी खोलें
नाव चले मँझधारी

हम तो प्रेम-पुजारी
दास बनें कमली वाले के रामचंद्र के दरबारी
कहें मगन हों 'अहमदपुरी'[3] सब से हमारी यारी
सब से लाज हमारी
हम तो प्रेम-पुजारी

मौलाना 'वक़ार' ने भी वर्तमान फूट के विरुद्ध आवाज उठाई है और कहा है—

---

[1] ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती।

[2] ख़्वाजा ग़ौस समदानी जिन को भारत में 'बड़ा पीर' भी कहा जाता है।

[3] मौलवी मक़बूल अहमदपुर के रहने वाले हैं

जगत में घर की फूट बुरी

फूट ने रघवर घर से निकाले पापन फूट बुरी
रावन से बलवान पिछाड़े जल गई लकपुरी

जगत में घर की फूट बुरी

फूट पड़ी तो कर बल जाकर हुए हुसेन[1] शहीद[2]
ध्यान हो जिन का सारे जग में मारे उन्हें यज़ीद[3]

जगत में घर की फूट बुरी

फूट ने अपना देश बिगाड़ा खो दी सब की लाज
बना हुआ है देश अखाड़ा फूट बुरी महराज

जगत में घर की फूट बुरी

तन से कपड़ा, पेट से रोटी फूट ने ली हथियाय
धन बल मान सभी कुछ अपना हम ने दिया गँवाय

जगत में घर की फूट बुरी

देश के गीत

पजाबी भाषा मे तो आप को सहस्रों देश के गीत मिलेंगे परन्तु उर्दू में सब से पहले शायद महाकवि 'इकबाल' ने ही देश का गीत लिखा। देश के बच्चे-बच्चे उसे लय से और तन्मयता से गाते है—

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा
हम बुलबुलें हैं उस की वह गुलस्तां[4] हमारा
गुरबत[5] में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो हमें वहां ही दिल हो जहां हमारा
परबत वह सब से ऊँचा हमसाया[6] आसमां का
वह संतरी हमारा वह पासबां[7] हमारा

---

[1] हजरत हुसेन। [2] बलिदानी। [3] हजरत हुसेन का घातक। [4] बाग उपवन [5] निर्वासन [6] पड़ोसी [7] रक्षक

गोदी में खेलती है जिस की हजारों नदियां
गुलशन[1] है जिस के दम से रश्के जना[2] हमारा
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा

इसी दौर मे उन्हों ने भारतीय बच्चो का राष्ट्रीय गीत 'मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है' और 'नया शिवाला' लिखे थे। वह तो अब यह मय पीना छोड चुके हैं परतु प्याला आज भी दूसरो के हाथो मे घूम रहा है। इसी देश की सुधा से मस्त हो कर कवि 'अखतर' शेरानी गाते है —

भारत, सब की आँख का तारा भारत
भारत है जन्नत का नजारा भारत
सब से अच्छा सब से न्यारा भारत
दुख-सुख मे दुख-सुख का सहारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

शाही शानो-शौकत वाली बस्ती
इज्जत वाली अजमत[3] वाली बस्ती
सदियों की जिंदा शोहरत[4] वाली बस्ती
तारीखों[5] की आँख का तारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

कैसी भीनी-भीनी हवाएं इस की
कैसी नीली-नीली घटाएं इस की
कैसी उजली-उजली फिजाएं इस की
दुनिया में जन्नत का नजारा भारत
प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत

यह गीत गाने के लिए लिखा गया है। सब मिल कर एक साथ इस गीत को

---

[1]उपवन। [2]वह जिस पर स्वर्ग को भी ईर्ष्या हो।
[3]प्रतिष्ठा। [4]ख्याति। [5]इतिहासों।

गाते हैं। इस के बाद एक व्यक्ति यह पद गाता है 'प्यारा-प्यारा देश हमारा भारत' और फिर सब मिल कर अन्य पद गाते हैं।

भारतवर्ष और महात्मा गांधी एक नाम हो कर रह गए है, जैसे गोकुल और कृष्ण, फिर यह कैसे सभव था कि देश के गीत गाए जाते और महात्मा गाधी का गीत न गाया जाता ? इस नए युग मे यह गीत भी गाया गया है और इस के गाने वाले है प्रसिद्ध मुसलमान राष्ट्रीय कवि 'सागर' निजामी। "महात्मा गाधी" शीर्षक गीत मे वह लिखते है—

कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा
दुनिया गो थी बैरी उस की दुश्मन था जग सारा
आखिर में जब देखा साधू वह जीता जग हारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा
सच्चाई के नूर[1] से इस के मन में है उजियारा
बातिन[2] में शक्ती ही शक्ती, ज़ाहर[3] में बेचारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा
बूढा है या नए जन्म में बंसी का मतवारा
मोहन नाम सही पर साधू रूप वही है हारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

---

[1]ज्योति। [2]अंदर से। [3]प्रकट रूप से।

भारत के आकाश पै है वह एक चमकता तारा
सच मुच ज्ञानी, सच मुच मोहन, सच मुच प्यारा-प्यारा
कैसा संत हमारा
गांधी
कैसा संत हमारा

यह गीत 'कोरस' मे गाने वाले है। इन की लय और तान भी वैसी ही है। इन को पढ़ने समय प्रतीत भी ऐसा ही होता है जैसे देश-प्रेमियो का जलूस स्वदेश प्रेम से विभोर हो कर यह गीत गाते-गाते जा रहा है।

वैसे तो देश और उस की विभिन्न समस्याओ के सबध मे इतने गीत लिखे गए है कि केवल देश के गीतों से ही एक पुस्तक बन सकती है परतु मै मौलवी महम्मद फैज लुधियानवी मुशी फाजिल के गीत का एक बद देना चाहता हू। सोए हुए देश-वासियो को गफलत की नीद से जगाने के लिए ही यह गीत लिखा गया है—

आन पड़ी है मुश्किल भारी
लेकिन तुम पर नींद है तारी
जाग उठी है ख़लक़त सारी
सुन कर बेदारी का राग
ऐ हिंदी तू अब तो जाग

माया के गीत

अतीत काल से सतजन माया को कोसते आए है। कबीर ने लिखा है—

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, बोले मधुरी बानी।
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।

माया के विषय में इस युग के प्राय सभी कवियो ने गीत लिखे है। मै यहां एक दो गीत दूंगा। माया के सबंध में अधिक लोकप्रिय होने वाला गीत जो बहुत सी पत्र-पत्रिकाओ म उद्धृत होन के बाद जन　　　　की जबान पर चढ गया है वह कवि मनोहर

लाल राहत का गीत है। यह सब से पहले सुदर्शन जी की मासिक-पत्रिका 'चदन' म निकला था। कवि लिखता है—

बाबा, सुन लो मेरा गीत

दुखिया मन है दुखिया काया
छूट गया है अपना पराया
दुनिया क्या है माया माया

माया के सब मीत है लेकिन
माया किस की मीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया वाले लोभ के बंदे
तन के उजले मन के गंदे
झूठी दुनिया झूठे धंदे

कोई नहीं है संगी-साथी
सब की झूठी प्रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

माया ही से प्यार है सारा
झूठा सब संसार है सारा
खोटा कारोबार है सारा

रीत का कोई खरा नही है
सब की खोटी रीत
बाबा, सुन लो मेरा गीत

इसी सिलसिले मे स्वर्गीय अब्दुल रहमान बिजनौरी का एक गीत 'जोगी की सदा' भी काफी मर्मस्पर्शी है। मैं इस के दो बंद नीचे देता हू।

यह निथरी-निथरी आँखें
यह लंबी-लंबी पलकें
यह तीखी-तीखी चितवन
यह सुंदर-सुंदर दर्शन

माया है सब माया ह

यह गोरे-गोरे गाल
यह लंबे-लंबे बाल
यह प्यारी-प्यारी गरदन
यह उभरा-उभरा यौवन
माया है सब माया है

माया की मदिरा पी कर गहरी नींद में सोने वालों को जगाने के लिए श्री अमरचंद 'कैस' ने भी एक सुंदर गीत लिखा है —

उठ निद्रा से जाग ऐ प्यारे
उठ आलस को त्याग ऐ प्यारे
तेरे जागे जाग उठेंगे
तेरे सोए भाग ऐ प्यारे
इस धन से क्यों खेल रहा है
यह धन तो है नाग ऐ प्यारे
मन चंचल है, थामे रखना
चंचल मन की बाग ऐ प्यारे
आशा तृष्णा जाल सुनहरी
इन दोनों से भाग ऐ प्यारे
माया एक मनोहर छल है
इस माया को त्याग ऐ प्यारे

'वकार' साहिब का यह गीत भी काफी शिक्षाप्रद है—

रंग रूप रस सब माया है
इस माया की चाल से बचना
इस माया के जाल से बचना
इस ने बहुतों का मन भरमाया है
रंग-रूप-रस सब माया है
राग की लहरें जाल की तारें
मन-पंछी उलझा कर मारें

इन में फँस कर मन पछताया है
रंग-रूप-रस सब माया है

रंग है क्या ? इक नीझ[1] का धोका
रूप है क्या ? इक रीझ का धोका
रस क्या ? ढलती फिरती छाया है

पंडित इंद्रजीत शर्मा के एक-दो चौपदे भी देखिए—

माया आनी जानी है
माया बहता पानी है
माया रूप कहानी है
त्याग रे मूरख माया त्याग

माया को तू मीत न जान
इस बैरन की प्रीत न जान
सीधी इस की रीति न जान
त्याग रे मूरख माया त्याग

जान पाप का मूल इसे
जान दुखों का झूल[2] इसे
याद न कर अब भूल इसे
त्याग रे मूरख माया त्याग

संसार

कवियों ने संसार को कई पहलुओं से देखा है और ऐसा ज्ञात होता है कि उन के हाथ सिवा कुछ नहीं आया। पंजाब के प्रसिद्ध सूफी कवि साईं बुल्हेशाह ने इसे भीतर का उपदेश दिया है और लिखा है—

---

[1] दृष्टि। यह शब्द पंजाबी भाषा से लिया गया है।

[2] चोला

इस दुनिया बिच अंधेरा है
एह तिलक न बाजी वेहड़ा है
वड़ अंदर वेखो केहड़ा है
बाहू ख़फ़तन पई ढुढें टीऐ[1]

वह सूफी थे, फकीर थे, कदाचित् उन्हो ने ऐसा किया हो, परतु जन-साधारण तो ऐसा नही कर सकते और जन-साधारण के दु खो से दुखी कवि इस के भीतरी रूप को देख कर कब शांत हो कर सतोष से बैठ सकते हैं? अबुल असर 'हफीज' ससार को दुखी देखते ह और एक गीत में कहते हैं—

दुखिया सब संसार
प्यारे
दुखिया सब संसार
मोह का दरिया, लोभ की नैया, कामी खेवनहार
मौज के बल पर चल निकले थे, आन फँसे मँझधार
प्यारे
दुखिया सब संसार

और इन दुनिया वालो की दुनियादारी से भी कवि दुखी है—

तन के उजले, मन के मैले, धन की धुन असवार
ऊपर-ऊपर राह बतावें, भीतर से बटमार
प्यारे
दुखिया सब संसार

'अहसान' साहब ने भी 'ससार' पर एक गीत लिखा है और इसे सपना कहा है—

सीस नवा कर झरना रोए, छोड़ के उत्तम देस
उस की चिंता राम ही जाने, जिस का पी परदेश

---

[1] साई बुल्हेशाह कहते है कि इस दुनिया में चहुँदिशि अंधेरा ही अंधेरा है, यह तो एक फिसलते आँगन की नाई है। जो आता है फिसल जाता है। ऐ बावरी. तू इसे भीतर से देख पागल बाहर ही क्यो सर पटक रही ह

सावन औ फिर काली बदली बूंदनियों के तार
रीत जगत की प्रीत से खाली सपना है संसार

इद्रजीत शर्मा इसे 'झूठ' समझते है। समझते हैं ससार मे सत्य कुछ नही, नित्य कुछ नही, सब झूठ है। इस लिए कहते हैं—

झूठी है यह दुनियादारी, झूठा है ब्यौहार
प्रेम है झूठा, प्रीत है झूठी, झूठा है सब प्यार
प्यारे झूठा सब संसार
रिश्ते नाते झूठ के बंधन, है जी का जंजाल
झूठ का चारों ओर जगत में फैल रहा है जाल
प्यारे झूठा सब संसार
झूठे ज्ञानी, झूठी बानी, झूठा दीन उपदेश
झूठी रीत जगत की बाबा, देश हो चाहे विदेश
प्यारे झूठा सब संसार
झूठी नैया, झूठा खेवट, झूठे है पतवार
भवसागर में आन फँसे हैं, कैसे हो उद्धार
प्यारे झूठा सब संसार

पडित विहारीलाल 'साबिर' को जग मे प्रेम ही प्रेम दिखाई देता है और वह लिखते हैं—

यह जग प्रेम पुजारी है बाबा
बिरहन का मन प्रेम का मंदिर
प्रियतम है इस प्रेम के अंदर
ईश्वर प्रेम, प्रेम है ईश्वर
इस की गत न्यारी है बाबा
यह जग प्रेम-पुजारी है बाबा

और इतनी भिन्न बातो को देख कर कोई क्या निर्णय कर सके। वास्तव मे न संसार दुखी है, न सपना, न झूठ है, न प्रेम-पुजारी है, कुछ है तो अपने मन का फेर है। जैसा किसी का मन होता है वैसा ही उसे ससार लगता है

जीवन

जीवन माया है अथवा माया ही जीवन है, इस का कोई पता नही चलता। वास्तव में माया, ससार और जीवन तीनों ही रहस्य है। जहां कवि माया और संसार की गुत्थी को नही सुलझा सके, वहा जीवन की गुत्थी उन से क्या सुलझती ?

उर्दू के इस दौर मे जीवन पर भी गीत लिखे गए है। मै एक गीत देता हू, जिस मे जीवन, ससार और माया तीनो पर ही प्रकाश डाला गया है। कवि लिखता है—

जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
झूठा है ससार का सपना
झूठा झूठे प्यार का सपना
माया की यह ओट है प्यारे
माया की यह ओट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जीवन का अभिमान भी झूठा
ख्याति और सम्मान भी झूठा
झूठी इस की चोट ऐ प्यारे
झूठी इस की पोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट
जन्म पै मूरख क्यों मुसकाए
मरन पै क्यों कोई नीर बहाए
काल के मन में खोट ऐ प्यारे
काल के मन में खोट
जीवन दुख की पोट है प्यारे
जीवन दुख की पोट

'वकार' साहब ने लिखा है—

मोह चंचल की नदिया पर है माया-रूपी घाट
आशा नैया, काम खेवैया, लोभ हैं इस के पाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखों की बाट

सन्मुख कजली बन है भयानक, चिंता मन का रोग
टेढ़ा मारग, लगी हुई है बाघ के मुँह को चाट
जीवन है इक रैन अँधेरी साँस दुखों की बाट

माया, संसार और जीवन के गीतों के अतिरिक्त उर्दू में रहस्यवादी गीत भी कम नहीं लिखे गए हैं। फिर प्रेम, विरह और स्मृति के गीत हैं, और उन के बाद प्रकृति-संबंधी गीतों की तथा लोरियों की बानगी देखना भी आवश्यक है। इन के संबंध में आगामी अंक में निवेदन किया जायगा।
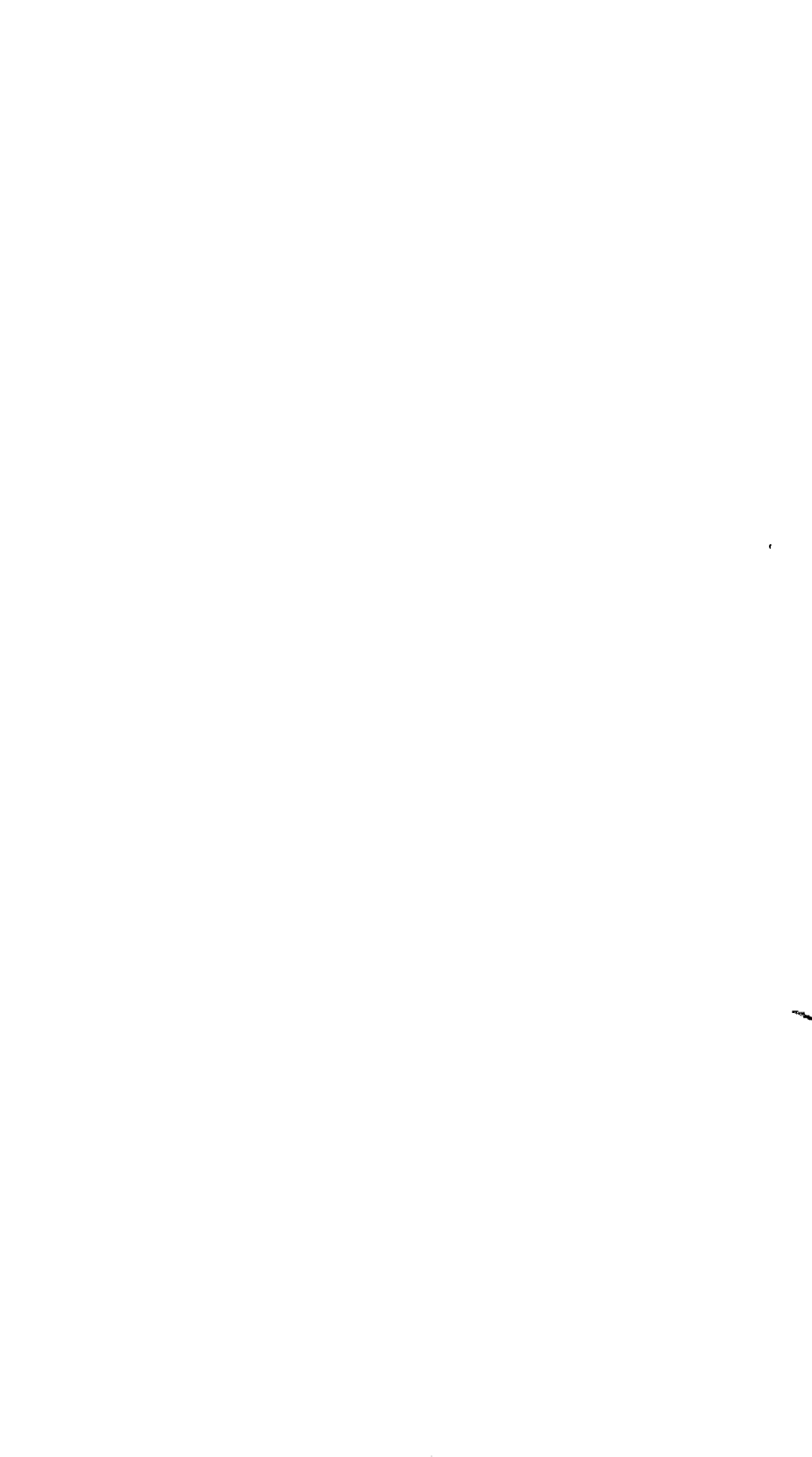
कविवर जटमल नाहर और उन के ग्रंथ

[लेखक—श्रीयुत अगरचंद नाहटा और भँवरलाल नाहटा]

कविवर जटमल और उन की 'गोरा बादल की बात' साहित्य-ससार मे पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुकी है। इस की प्रसिद्धि की कथा भी वडी मनोरजक और आश्चर्यजनक है। साहित्य-महारथी वाबू श्यामसुदरदास जी यदि सन् १९०१ की रिपोर्ट मे इस 'वार्ता' को गद्य की रचना न बताते तो सभव है जटमल की इतनी ख्याति न फैलती, अर्थात् यो कहे कि एक साहित्यिक विद्वान की भूल ने इस की प्रसिद्धि मे बडी भारी सहायता पहुँचाई। उस समय तक हिंदी का, विशेपत खडी बोली का, उतना प्राचीन गद्य-ग्रथ अन्य कोई उपलब्ध नही था, इस से तत्कालीन हिंदी गद्य के उदाहरण-स्वरूप सभी विद्वान अपने ग्रथो मे इस का उल्लेख करते गए। परतु विशेष खोज द्वारा एशियाटिक सोसायटी की प्रति के मिलने पर भ्रम-निवारण के साथ ही गद्यानुवाद उन्नीसवी शताब्दी का प्रमाणित हो गया।

'गोरा बादल की बात' के अतिरिक्त जटमल की अन्य कोई कृति प्रकाश में नही आई थी। अतः हमारी खोज-शोध से प्राप्त अन्य कृतियों के परिचय तथा कवि-परिचय, 'गोरा बादल की बात' के विशेष विवरण के साथ प्रस्तुत निबंध मे प्रकाशित किए जाते है।

कविवर की कृतियों के साथ हमारे सबध की कथा भी पठनीय एवं मनोरंजक होने से सक्षेप मे यहा लिखी जाती है।

आज से लगभग ८ वर्ष पूर्व, जब हम ने साहित्य-संसार मे प्रवेश कर हस्तलिखित ग्रथो का सग्रह करना प्रारभ किया था, तब जो ग्रथ सर्व-प्रथम संग्रह हुए उन मे नाहर जटमल कृत 'गोराबादल की बात' की एक प्राचीन प्रति (स० १७५२ की) उपलब्ध हुई। तभी से जटमल के विषय मे हमारा परिचय प्रारंभ हुआ। खोज-शोध का कार्य सतत चालू था, इसी बीच हमे बीकानेर के श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के सग्रह के अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ उक्त सग्रह में की कथा के अतिरिक्त की अन्य

जी के भंडार मे 'लाहोर गजल' भी दृष्टिगोचर हुई। हम ने तत्काल उन प्रतियो से यथोचित उद्धरण ले लिए।

एक बार कलकत्ते मे सुप्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी बाबू पूरणचद्र जी नाहर मे प्रसगवश इस विषय मे वार्त्तालाप हुआ। उन्हे अब तक जटमल के स्वगोत्रीय अर्थात् नाहर होने का ज्ञान न था, अत. उन्हे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई और जटमल एव उन के ग्रथो के विषय मे विशेष जानने की उन्हो ने इच्छा प्रकट की। उत्तर मे हम से जटमल के ३-४ ग्रथो का पता पा कर उन की प्रतिया प्राप्त करने के लिए हमे एव श्रीपूज्य जी और उपाध्याय जी को बराबर प्रेरित करते रहे।

नाहर जी की प्रेरणावश हम ने अपने सग्रह की 'गोराबादल की कथा' (स० १७५२ लिखित) और उपाध्याय श्री जयचद्र जी के भडार मे 'लाहौर गजल' की प्रति भी यथासमय भेज दी, परन्तु श्रीपूज्य जी के भडार की सूची न होने के कारण अवशेष ग्रथो की प्रतिया कहा और किस बडल मे रक्खी हुई थी, ज्ञात न होने से भिजवाने मे असमर्थ रहे।

सवत् १९८९ में अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति हो कर श्री नाहर जी अजमेर पधारे। वार्त्तालाप के प्रसग में महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशकर जी ओझा ने बताया कि 'गोराबादल की बात' का सपादन ठाकुर रामसिंह जी तथा स्वामी नरोत्तमदास जी करने वाले है और उन्हे साहाय्य देने को कहा। श्रीयुक्त नाहर जी ने हमारे नाम-निर्देश के साथ, विशेष सहायता उन्हे वही मिल सकती है, यह सूचित किया।

ओझा जी की सूचनानुसार ठाकुर रामसिह जी से इसी प्रसग को ले कर हमारा परिचय हुआ। स० १९९० के श्रावण मे बीकानेर से ठाकुर रामसिह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी कलकत्ता पधारे। उन दोनो एव बाबू पूरणचद्र जी नाहर के साथ हम भी रिपोर्ट मे उल्लिखित गोराबादल की गद्य 'वार्त्ता' के अवलोकनार्थ 'रायल एशियाटिक सोसायटी' मे गए। उस प्रति की प्राप्ति बडी कठिनता से हुई जिस के समाचार यथा-समय श्री नाहर जी ने 'कुए भाग'[1] नामक लेख द्वारा 'विशाल-भारत' (पौष १९९०) मे और स्वामी जी ने

---

[1] इस लेख में मुद्रण-दोष से भँवरलाल नाहटा के स्थान पर भँवरलाल नाहर छप गया है

'जटमल की गोराबादल री बात' नामक लेख द्वारा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १४, अक ४ में साहित्य-ससार मे प्रकाशित कर दिए।

इधर श्रीपूज्य जी के संग्रह से उपरोक्त प्रतियो को खोज कर नाहर जी को भेजने के प्रसग से उन के ज्ञान-भडार के समस्त (२५००) हस्तलिखित ग्रथो की विशेष विवरणात्मक सूची तैयार करते समय जटमल-कृत अन्य ग्रथ-द्वय ('स्त्रीगजल' और 'फुटकर सवैया') भी नवीन उपलब्ध हुए जिन की प्रतिया नाहर जी को भेज दी गई। उन्हो ने उन सब की नकले करवा ली क्योकि उन का उक्त ग्रथो का सुसपादित सस्करण प्रकाशित करने का विचार था। हम भी जटमल के विषय मे कई बार लिखने का विचार कर के इस लिए रह गए कि नाहर जी इस विषय मे लिखेगे ही। किंतु लिखते दुख होता है कि अकस्मात् उन का देहात हो जाने से ऐसा न हो सका। अतएव हम ने प्रस्तुत निबंध द्वारा जटमल का, उन के ग्रथो के साथ यथाज्ञात आवश्यक और उपयोगी परिचय लिखने का प्रयत्न किया है। जटमल की कृतियो की उपलब्धि और हमारे उन से सबध की यह सक्षिप्त आत्म-कथा है।

'गोराबादल की बात' की प्रशस्ति मे कविवर जटमल ने अपना परिचय "धरमसी कौ नद नाहर जाति जटमल नाव" इन शब्दो मे दिया है, जिस से उन का गोत्र नाहर और पिता का नाम धर्मसी होना स्पष्ट है।

जटमल के निवास-स्थान के सबध में अद्यावधि कोई निश्चित प्रमाण साहित्य-ससार मे ज्ञात न था अत कल्पना के अतिरिक्त निश्चित स्थान बता देना कठिन बात थी। हमारा अनुमान, 'प्रेमलता चौपाई' मिलने से पूर्व ही 'लाहौर गजल' नामक कृति से उन का निवास-स्थान लाहोर होने का ही था। 'प्रेमलता चौपाई' ने उसे स्पष्ट प्रमाणित कर दिया, यद्यपि 'गोराबादल की बात' सिंबुला में और 'प्रेमलता चौपाई' जलालपुर मे रची हुई है, फिर भी प्रेमलता चौपाई की प्रशस्ति मे "तहा वसत जटमल लाहोरी" इन शब्दो से कवि ने अपना मूल निवासस्थान लाहोर होने का उल्लेख किया है। इस चौपाई मे अन्य एक महत्वपूर्ण बात पर भी प्रकाश पडता है, वह यह कि पीछे से वे जलालपुर जा कर निवास करने लगे थे।

नाहर गोत्र ओसवाल जाति की एक शाखा है, अत साधारणतया उन का जैन धर्मानुयायी होना प्रमाणित ही है फिर भी हमारे सग्रह की स० १७५२ मे लिखित गोरा

बादल की बात की पुष्पिका मे 'श्रावक जटमल कृता' लिखा है इस से उन के जैन धर्मानुयायी होने मे कोई संदेह नही रह जाता। 'बावनी' के आदि की ५ गाथाओं का 'ॐ नमो सिद्ध' मे प्रारंभ भी इस की पुष्टि करता है।

१—गोरा बादल की बात[1]—यह वीररस-प्रधान काव्य है जो राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली मे रचा गया है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इस का प्रचार राजपूताने मे सविशेष हुआ ज्ञात होता है। केवल बीकानेर मे ही हम ने इस ग्रंथ की बीसो प्रतियां देखी है। इतना ही क्यों, हमारे संग्रह मे भी इस की ७ प्रतियां विद्यमान है। लोकप्रिय होने से उन्नीसवीं शताब्दी मे इस का गद्यानुवाद

---

[1] जटमल के इस 'बात' को रचने का क्या आधार था? यह विचार करने से ज्ञात होता है कि इस से पूर्व-रचित गोरा-बादल या पद्मिनी के संबंध में दो काव्य उपलब्ध हैं। प्रथम जायसी का 'पद्मावत' व द्वितीय हेमरत्न-कृत 'चौपाई'। परंतु जटमल की कथावस्तु इन दोनों से भिन्न अपनी मौलिकता प्रकट करती है। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अंक ४ में जटमल-कृत 'वार्ता' का सार और 'पद्मावत' की कथा में जो अंतर है उस के विषय में श्री ओझा जी ने 'कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात' नामक लेख लिखा है। हेमरत्न-कृत चौपाई की कथावस्तु उक्त पत्रिका के भाग १५, अंक २ में श्री मायाशंकर याज्ञिक के लेखानुसार ही है। उस लेख में लब्धोदय अपर नाम लालचंद-कृत (लेखक ने भ्रमवश कर्त्ता का नाम लक्षोदय और डुंगरसी का पुत्र लालचंद लिखा है पर वस्तुत. कवि खरतर गच्छीय वाचक ज्ञानराज का शिष्य लब्धोदय था, डुंगरसी के भ्राता भागचंद के आग्रह से कवि ने प्रस्तुत चरित्र रचा) रास से पद्मावत और जटमल-कृत 'वार्ता' में जो अंतर है उस का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। लब्धोदय ने यह रास हेमरत्न-कृत चौपाई के अनुसार ही रचा है।

हेमरत्न पूर्णिमा गच्छीय वाचक पद्मराज का शिष्य था। उस ने संवत् १६४५ श्रावण शुक्ला १५, सादड़ी में सुप्रसिद्ध मेवाडोद्धारक कावेड़िया भामाशाह के भ्राता ताराचंद के आग्रह से इस रास को गाथा ६१८ में रचा है, इस की तत्कालीन लिखित दो प्रतियां हमारे संग्रह में, और कतिपय बृहद् ज्ञानभंडार में भी हैं। लब्धोदय कृत रास की एक प्रति श्री जिनचारित्र सूरि भंडार और दो प्रतियां सेठिया लायब्रेरी में विद्यमान हैं।

जैन कवि की एक और रचना सं० १८३२ आषाढ़ शुक्ला २ जोधपुर में खरतर यति गिरधारी लाल-विरचित यहां के बृहत् ज्ञानभंडार में है।

लब्धोदय-कृत 'पद्मिनी चरित्र चौपाई' जिन भागचंद्र के अनुरोध से रची गई है, उन्हीं के कथन से कवि भुवनकीर्ति का 'अंजनासुंदरी रास' सं० १७०६ माघ शुक्ला ३ उदयपुर में रचित उपलब्ध है।

हमारे विचार से जटमल ने प्रस्तुत 'वार्त्ता' किसी के अनुकरण में न रच कर मौखिक सुनी हुई कथा के आधार पर ही रची होगी

भी हो चुका है जिस की प्रति कलकत्ते की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी आव् बगाल' मे है।

तीन वर्ष पूर्व श्रीयुत पडित अयोध्याप्रसाद शर्मा 'विशारद' ने इस का सपादन कर 'तरुण-भारत-ग्रथावली' कार्यालय, दारागज, प्रयाग से प्रकाशित भी कर दिया है। परतु वह सस्करण बिल्कुल सामान्य है, भूलों से भरा है, पाठ-शुद्धि भी जैसी चाहिए नही की गई है और न पाठातर ही ठीक तरह से दिए गए हैं।

एक अक्षम्य भूल उन्हो ने 'कविपरिचय' मे यह की है कि प्रशस्ति में 'नाहर जाति' या 'नाहर खाप' को 'नाहर खान' पढ कर "यह या तो मुसल्मान हो गया था या नाहर खाँ की इस को उपाधि प्राप्त थी (क्योकि उस ने स्वयं अपना नाम नाहर खा जटमल बताया है") इन शब्दो मे कवि के मुसलमान होने तक की असभव और विचारहीन कल्पना कर दी है।

इस ग्रथ की अनेक प्रतिया देखने से इस की गाथाओ की सख्या का न्यूनाधिक पाठभेद एव रचनाकाल के विषय मे तीन मत पाए जाते है। उदाहरणार्थ हम कतिपय प्रतियो के उद्धरण भी देते हैं।

१—सं० १७५२ फा० शु० ६ लि०	गा० १४४	रचना-काल स० १६८६ भा० ११
२—सं० १७६३	गा० १५० (?)	रचनाकाल स० १६८५ फा० शु० १५
३—स० १७६७		
४—स० १७६६	गा० १३१	रचना-समय का उल्लेख नही।
५—सं० १७७५ वै० शु० ५	गा० १२५	,, ,, ,,
६—सं० १७७६ आ० व० ८	गा० १४८	रचनाकाल स० १६८० फा० शु० १५
७—सं० १७८०		रचना-समय का उल्लेख नही
८—सं० १८२०		रचनाकाल स० १६८०
९—स० १८३६ द्वि० श्रा० व० ५	गा० १२८	रचनाकाल का उल्लेख नही
१०—स० १८४५		,,
११—स० १८४८	गा० १२५	

१२—स० १८५१ श्रा० ब० १४	गा० १५७	स० १६८५ फा० सु० १५
१३—स० १८५७ व० व० १३	गा० १५३	स० १६९८ ,, ,,
१४—स० १८८३ जे० मु० ३	गा० १४७	स० १६८० ,, ,,
१५—स० १८९७ से पूर्व	गा० १६०	स० १६८६ माघ ११
१६—स० १९११	गा० १६६	स० १६८६ माघ ११

उपर्युक्त प्रतियो में न० १, ५, ६, १४, १५ हमारे सग्रह में, न० २, ८, १० शर्मा जी सपादित आवृत्ति के उल्लेखानुसार बीकानेर स्टेट लायब्रेरी मे, नं० ९, ११, १२, १३ श्रीपूज्य जी के सग्रह मे, न० १६ श्री जिन कृपाचद्र सूरि ज्ञानभडार मे, न० ३ वृहद् ज्ञान-भडार मे; न० ७ बाबू पूरणचद्र जी नाहर के सग्रह मे; और न० ४ स्वामी नरोत्तमदास जी के पास है। इन के अतिरिक्त लेखन-समय के उल्लेख से रहित प्रतिया हमारे सग्रह मे एव अन्य ज्ञानभडारो मे बहुत सी उपलब्ध है।

पाठभेद

आदि—स० १७५२ लिखित में—

चरण कमल चितु लाय, समरूं श्री श्री शारदा।
सुहमति दे मुझ माय, करूं कथा तुहि ध्याइ कइ ॥१॥
जम्बू दीप मझार, भरत खंड सभ खंड सिर।
नगर तिहां इकु सार, गढ़ चितौड़ है विषम अति ॥२॥
रतन सेन तिहाँ राय, पाय कमल सेवै सुभट।
सूरवीर सुखदाय, राजपूत रज को धणी ॥३॥
चतुर पुरुष चहुआण दान मान दोनूं दियइ।
मंगत जन को प्राण, आवइ मंगत दूर तंइ ॥४॥

सं० १७७५ लिखित मे—

चरण कमल चित लाइ कइ समरू श्री श्री शारदा।
मुझ अक्षर दे मांइ, कहिस कथा चित लाइ कइ ॥

स० १७८० लिखित में

सु (ख सपति) दायक सकल, सिद्धि बुद्धि सहित गणेश।
विघन विडारण विनयसौ पहिलौ तुझ पणमेश॥

सं० १७७६ लिखित प्रति में गाथा ८ के पश्चात् कथाप्रारभ है। गाथा भेद सविशेष है।

स० १८६७ से पूर्व लिखित—

चरण कमल चित लाइ कै, समरूं सारिद माय।
रतनसेन अरु पदमनी, कहिसुं कथा बनाय॥१॥
भरत क्षेत्र सोहत अधिक, जम्बूदीप मझार।
देश भलो मेवाड तहां, सब जन कुं सुखकार॥२॥
नगर भलौ चित्तौड़ है, तापर दृढ दुरंग।
रतनसेन राणउ निपुण, अमली माण अभंग॥३॥

· · · · ·इत्यादि ६ गाथा के पश्चात् कथा-प्रारभ।

अत—स० १७५२ लिखित—

सु अम्बर वाणी सुणी, प्रिय की पघड़ी साथ।
सती भई आणन्द सुं, सुर पुर दीने हाथ॥३९॥
सूरा सोय सराहियइ, धाउ सनमुख पाय।
सूरा सुर पुर संचरइ, कायर दुर्गति जाय॥४०॥
गोरा बादल की कथा, सूरां अधिक सुहाय।
सुणतां जागइ सूरिमा, आणंद अंग न माय॥४१॥

सालूरछंद—गोरइ जुबादल की कथा, अब भई सम्पूरन जान॥श्री॥

संवत सोलइ सय छयासी, भला भाद्रव मास।
एकादशी तिथि बार के, दिन करि धरी उल्लास॥
अब बसइ मोछ अडोल अविचल सुखी रइयत लोक।
आणंद घरि घरि होत मंगल देखियइ नहीं शोक॥
राजा तिहां अली खान न्याजी खान नासिर नंद।
सिरदार सकल पठाण भीतर जिउ नक्षत्र महिचद

तिहां धरमसी को नंद नाहर जाति जटमल नांउ।
तिण करी कथा बणाय के बिचि सुंबला के गांउ ।।४२।।

दोहा—जटमल कीनी जुगत सुं, हरखि हियइ उपजाय।
श्रोता सुनहु जु कान दे, चतुर पढ़उ चितलाय ।।४३।।

पढतां नव निधि पाइयइ, सुनतां सब सुख होय।
जटमल जंपति गुन जनो, विघन न उपजइ कोय ।।४४।।

इति जटमल श्रावक कृता गोरइ बादल की कथा संपूर्ण ।। संबत् १७५२ वर्षे फागुण सुदि ६ दिने सोमवारे। पं० खेता लिखितं ।। कोटा मध्ये लिखितं ।।श्री श्री श्री।।

सवत् १७७५ लिखित—

नारी इम बाणी सुणी पिय की पगड़ी साथ।
सती भई आणंद सौ, शिवपुर दीनौ हाथ ।।२३।।

गोरइ बादल की कथा, संपूरण भई जाम।
गुरु सरसति प्रसाद करि कविजन करि मन ठाम ।।२४।।

. . .

कहता तिहां आणंद उपजइ, सुण्यां सुभ सुख होय।
जटमल पर्यपै गुन जनो विघन न लागै कोय ।।१२५।।

संवत १७७५ वैशाख सु० ५ लि० पं० सुखहेम लूणसर मध्ये ।।

निष्कर्ष और विशेष ज्ञातव्य

१—गाथा-सख्या कम से कम १२५ मध्यम १५० ओर सर्वाधिक १६६ तक पाई जाती है। गाथाओ की कमी-बेशी के सबध मे भिन्न-भिन्न प्रतियो को मिलाने पर ज्ञात हुआ कि कथा-प्रारंभ से पूर्व स० १७५२ लिखित प्रति में जो ४ सोरठे है वे ही मूल ग्रथकार द्वारा रचे हुए है, अवशेष दोहों वाला मगलाचरण, जो कि सं० १७८० लिखित नाहर जी वाली प्रति के मगलाचरण (प्रथम गाथा) रूप मे है वह सं० १६४५ रचित हेमरत्न-कृत 'गोरा बादल चौपाई' का है। कथा प्रारभ के पूर्व स० १७७६ लिखित प्रति मे ८ गाथाए और स०

१८६७ से पूर्व लिखित प्रति मे ६ गाथाए है, जो जटमल की रचित न हो कर[1] किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होती है। शर्मा जी द्वारा सपादित आवृत्ति मे कथा-प्रारभ मे ८ गाथाए है, उन मे की स० १७७६ लिखित प्रति से गाथाएं ४ से ८ मिलती है। तृतीय गाथा सं० १८६७ पूर्व लिखित प्रति से मिलती है। सभव है सपादक ने उपलब्ध ५ प्रतियो का पाठ वर्गीकरण न कर के मिश्रित सस्करण प्रकाशित किया हो।

हेमरत्न-कृत चौपाई के अवलोकन से यह भी ज्ञात हुआ कि शर्मा जी वाले सस्करण मे गाथाक ४२, ४३, ४४, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ६५ मे जो छप्पय एव श्लोक छपे है वे हेमरत्न-कृत चौपाई मे गाथाक ६४, ६६, ६५, ६७, ७३, ६६, ७१, ६८, ७४, ७२, ६१, अनुक्रम से पाए जाते है। इस से प्रमाणित है कि लिपि-लेखको ने उन्हे जटमल कृत 'गोराबादल की बात' मे प्रक्षिप्त कर दिया है। हमारे ध्यान से जटमल-रचित मूल गाथाए १२५ के लगभग होगी।

२—पाठांतर-भेद के उदाहरण ऊपर केवल दो तीन प्रतियो के आदि-अंत से ही दिए गए है। भिन्न-भिन्न प्रतियो मे अनेकानेक पाठातर देखने मे आए है, यदि सारे ग्रथ के पाठातर लिखे जांय तो सैकडो की सख्या में पहुचें। जहा तक इस के रचना-काल की सम-कालीन प्रति न मिले, मूल पाठ को निर्धारित करना कठिन है।

३—रचनाकाल के सबंध मे ऊपर दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि कई प्रतियो मे तो रचना-सवत् का दोहा ही नही मिलता, एव जिन मे मिलता है, उन में भी (१) स० १६८६ भा० ११, (२) स० १६८० फा० सु० १५, (३) स० १६८५ फा० शु० १५, (४) स० १६८६ माघ ११, (५) सं० १६६५ माघ ११, पाच मत पाए जाते है। अत निश्चित नही कहा जा सकता कि कवि ने कृति मे रचना-काल क्या दिया है, जब तक कोई समकालीन प्रति न मिले।

४—'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के भाग १३, अक ४ मे श्रद्धेय ओझा जी ने प्रस्तुत कथा का साराश प्रकाशित किया है। उस मे आप ने 'उस समय तक मनसबदारी[2] की प्रथा भी जारी नही हुई थी' लिख कर आपत्ति दर्शाई है, परतु वह पाठ इस 'वार्ता' की सभी

---

[1] जटमल ने कथा-प्रारंभ में सोरठे रचे है, दोहे नही।

[2] वार्त्ता के "कहै फेर सुलतान करूं तुम सात हजारी" के आधार पर।

प्रतियो में नही मिलता, किंतु इस के बदले मे 'गढ न लेहुं न लडू, अरज इक सुनो हमारी' पाठ पाया जाता है। सभव है कि लिपि-लेखक ने अपने समय के अनुकूल परिवर्तन कर दिया हो।

५—लेखन-सवत् के उल्लेख वाली प्रतियो मे हमारे सग्रह की स० १७५२ लिखित प्रति सब से प्राचीन है एव सब से कम गाथा की प्रतियो मे भी हमारे ही सग्रह की प्रति प्राचीन है।

ठाकुर रामसिह जी और स्वामी नरोत्तमदास जी इस का सुसपादित सस्करण प्रकाशित करने वाले है, अत यहा विशेष विचार नही किया जाता।

२—प्रेमविलास प्रेमलता की कथा—यह काव्य 'गोराबादल की बात' से भी बडा है। जिस प्रकार प्रथम काव्य वीररस-प्रधान है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य शृगार-रस-प्रधान है। प्रसगवश अन्य सभी रसों का वर्णन होने से इस का नाम "सबरसलता" भी रक्खा गया है, जिस से कवि का सब रसो पर समान अधिकार ज्ञात होता है। इस काव्य की अद्यावधि तीन प्रतिया उपलब्ध है, जिन मे एक तो श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्रसूरि जी के सग्रह मे और दूसरी हमारे सग्रह मे है। तीसरी प्रति हाल मे जयपुर मे श्रीपूज्य जी श्रीधरणीद्र सूरि जी के भडार से प्राप्त हुई है। प्रथम प्रति स० १८०६ मे लिखी हुई है, जिस में २८६ गाथाए है, दूसरी प्रति मे यद्यपि लेखन-समय नही लिखा है तथापि कागज और लिपि देखते उस से प्राचीन ही ज्ञात होती है। उस मे गाथाओ की सख्या, अतिम दोहा न होने के कारण, २८५ है। रचना-काल और स्थान दोनो मे स० १६९३, भाद्रव शुक्ला ४-५ रविवार, जलालपुर मे सहबाज खॉ के राज्यकाल मे, लिखा है। तीसरी प्रति सिंध के भेहरा स्थान मे लिखी गई है जहा प्राचीन नगर वीतभयपत्तन था। इस की पुष्पिका से जटमल के जैन होने की पुष्टि 'श्रावक' शब्द द्वारा होती है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति प्रेमविलास प्रेमलता की सरबरलता नाम कथा नाहर गोत्र श्रावक जटमल कृता समाप्ता ।। सवत् १७५३ वर्षे ज्येष्ठ वदि ७ दिने पडित दानचंद्र लिपि कृत भयहरा मध्ये ।।"

कथा-वस्तु मनोरजक होने से यहा दी जाती है।

पोतनपुर नगर में प्रेमविजय राजा राज्य करता था जिस की रानी प्रमवती की

कुक्षि से उत्पन्न राजकुमारी प्रेमलता सौंदर्य मे अप्सराओ से भी बढ कर थी। राजा के मत्री मदनविलास के प्रेमविलास नामक रूपवान् पुत्र था। राजकुमारी और मत्रिपुत्र दोनो एक गुरु के पास विद्याध्ययन करने लगे। दोनो मे परस्पर प्रेम न हो जाय इस लिए गुरु, राजकुमारी को परदे की ओट मे बैठा कर पढाया करता था। दोनों मे मिथ्या विश्वास जमा दिया कि राजकुमारी जन्मांध और मत्रिपुत्र कुष्टि है। एक बार गुरु की अनुपस्थिति मे कुमारी के काव्य की मात्रा भूलने पर प्रेमविलास ने उसे अधी शब्द से सबोधित किया उत्तर मे कुमारी ने उसे कुष्टी कहा। इस तरह भेद खुलने पर दोनो का साक्षात्कार होने से प्रेमसागर उमड पडा। उन्हो ने यह प्रतिज्ञा भी कर ली कि दोनो को परस्पर विवाह करना है। अकस्मात् गुरु आ गए, यह वृत्तात देख कर गुरु ने बहुत समझाया, पर उन दोनो ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया। इस के पश्चात् कुमार और कुमारी एक दूसरे को देखे बिना बेचैन रहने लगे इसी समय कोई तत्र, मत्र और सगीतकला मे प्रवीण सुदर योगिनी वहा आई। राजा ने प्रेमलता को अभ्यास कराने के लिए योगिनी से निवेदन किया, वह हरदम के लिए राजमहल मे रहना अस्वीकार कर ४ घडी आ कर पढाने लगी। मत्रिपुत्र भी उस के मठ मे आता था। उन दोनो की हार्दिक व्यथा ज्ञात कर योगिनी ने दया करके उन्हें (१) आकाशगामिनी, (२) रूपपरावर्त्तनी, (३) अदृश्याजन विद्यात्रय प्रदान की।

अमावस्या की रात को सखी चपकमाला के साथ राजकुमारी प्रेमलता महल से निकल कर महाकाल देवी के मदिर मे आई, जहा प्रेमविलास भी पूर्व सकेतानुसार उपस्थित था। सखी ने मधुरध्वनि मे गीत गाते हुए उन दोनो का विवाह कर दिया। महाकाल ने प्रकट हो कर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी जोडी अविचल रहेगी और तुम्हे राज्य मिलेगा।

वहा से वे तीनो आकाश-मार्ग से उड़ कर रतनपुर नामक नगर के उद्यान मे जा पहुँचे। वह नगरी नृप-विहीन थी अत राजा नियुक्त करने के लिए निकाला हुआ दिव्य हाथी प्रात काल ही लोगो के साथ आ पहुँचा। उस ने प्रेमविलास को राज्याभिषिक्त कर अपनी सूड से तीनो को अपनी पीठ पर बिठा लिया। मत्री, सामत और नागरिक लोगों ने महदाडबर से राज्याभिषेक किया।

सारा राज्यभार मंत्री को सौप कर राजा प्रेमलता के साथ इतना आसक्त रहने लगा कि घडी भर भी उस के बिना कल नही पडती थी, यही हाल रानी का था।

एक बार   के राजा चद्रचूड के बागी होने का हाल मत्री से ज्ञात कर

विस्तृत सेना के साथ चढाई की दोनो म घमासान युद्ध हुआ फलत प्रेमविलास की विजय हुई नगर म आडबर से प्रवेश कर कुछ दिन वहा रहन के पश्चात् राज्य अनगदत्त मत्री को सौप कर स्वय रतनपुर आया। नगर-लोक और रानी अत्यधिक प्रसन्न हुई, कवि ने राजा-रानी के विरह और युद्ध का अच्छा वर्णन किया है।

इधर पोतनपुर से चले जाने पर माता-पिता ने चिंतित होकर खोज के लिए आदमी दौडाए, महाकाल के मदिर तक पद चिह्न पाकर राजा ने उपवास-सहित देवी के समक्ष ध्यान लगा दिया। रात्रि मे देवी ने प्रसन्न हो कर प्रेमविलास और प्रेमलता के विवाह आर अपने आशीर्वाद व राज्य-प्राप्ति की भविष्यवाणी कह कर सतुष्ट किया।

पॉच वर्ष बाद रतनपुर के एक व्यापारी से पता पा कर राजा ने उन्हे बुलाया। प्रेमविलास अपनी प्रिया के साथ ससैन्य पोतनपुर आया, राजा ने खूब स्वागत कर अपनी पुत्री परणाई, और उन्हे दहेज के साथ विदा किया। रतनपुर का सुखपूर्वक राज्य करते हुए प्रेमलता के प्रेमसिह नामक सुदर पुत्र जन्मा, योग्यवय मे उसे एक सौ रानिया परणा कर राज्यभार सुपुर्द किया। वे दोनों ईश्वर के भजन मे लीन रहने लगे। इस प्रकार राजा-रानी दोनो ने अपना अखड प्रेम निभाया।

३—बावनी[1]—जैसा कि नाम से ज्ञात होता है वर्णमाला के बावन वर्णो को ले कर

---

[1] **जैन साहित्य में इस के अतिरिक्त और भी बहुत सी बावनियां मिलती हैं। पाठकों की जानकारी के लिए उन की यहां संक्षिप्त सूची दी जाती है।**

१. आध्यात्म-बावनी	कान्हसुत हीरानंद	गा० ५७	रचनाकाल सं० १६६८ पूर्व
२. दुर्जनशाल-बावनी	भोजक कृष्णदास	गा० ५६	सं० १६५१ वैशाख लाहोर
३. सार-बावनी	श्री सार	गा० ५६	सं० १६८९ आसोज सु० १०
४. उपदेश (किसन) बावनी	कृष्णदास लौंका	गा० ६१	सं० १७६८ आ० सु० १०
५. आध्यात्म (प्रबोध) बावनी	जिनरंग सूरि		सं० १७३१ मि० शु० २ गु०
६. केशव-बावनी	खरतर केशवदास	गा० ६०	सं० १७३६ श्रा० कृ० ५ म०
७. जसराज (मातृका) बावनी	जिनहर्ष	गा० ५७	सं० १७३८ फा० कृ० ७ गु०
८. संवेगरसायन-बावनी	कान्तिविजय	गा० ५३	सं० १७४०
९. खेतल-बावनी	खेतल कृत	गा० ६५	सं० १७४३ मि० शु० १५ भृगु

इस की रचना की गई है। छदों के आरभ में वर्णमाला के वर्ण क्रमश' आए है। प्रथम ५ छदों के आरभ में 'ॐ न मा स ध' ये वर्ण है जो 'ॐ नमो सिद्ध' के सूचक है। इस की भाषा खडी बोली है पर पजाबी, राजस्थानी और ब्रज का काफी मिश्रण है। इस की छद-सख्या ५४ है। इस मे पवित्र जीवन, सतोष, ससार की अस्थिरता आदि नीति और वैराग्य विपयों के

---

१०. धर्म-बावनी	धर्मसिह		सं० १७२५ का० कृ० ९ रिणी
११. सुमति-बावनी	सुमतिरंग		
१२. हेमराज-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ	गा० ५७	
१३. केशरी गुरु-बावनी	पासचंदसूरि	गा० ५२	
१४. दोहा-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१५. कवित्त-बावनी	लक्ष्मीवल्लभ		
१६. मान-बावनी	मान	गा० ५७	
१७. क्षेम-बावनी	क्षेम हर्ष		
१८. मोहन-बावनी	मोहन श्रीमाल		
१९. सवैया-बावनी	विनय प्रमोद शिष्य बालचंद	गा० ५६	
२०. नेतृसिह-बावनी	नेतृसिह		
२१. निहाल-बावनी	ज्ञानसार		
२२. कुंडलिया-बावनी	धर्मसिह		सं० १७३४ भा० २ जोध-पुर
२३. छप्पय-बावनी	धर्मसिह		सं० १७५३ श्रा० सु० १३ बीकानेर
२४. वैराग्य-बावनी	हीरनन्दन	गा० ५३	सं० १६९५ भा० शु० १५
२५. सागर-बावनी	सिहविजय		सं० १६७४
२६. जैनसार-बावनी	रघुपत्ति	गा० ६२	सं० १८०२ भा० शु० १५ नापासर
२७. प्रस्ताविक छप्पय-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५८	सं० १८२५ ऋषिपंचमी तोलियासर
२८. कुंडलिया-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५७	सं० १८४८
२९. सवैया-बावनी	रघुपत्ति	गा० ५७	
३०. ब्रह्म-बावनी	निहालचंद		
३१. डुंगर-बावनी	पद्मकुल	गा० ५३	सं० १५४३ माघ शु० १२
३२. भामा-बावनी	विदुर कवि	गा० ५३	सं० १६४६ आ० शु० १०
३३. उदयराज-बावनी	उदयराज		सं० १६७६
३४. सवैया-बावनी	चिदानन्द	गा० ५२	
३५ -बावनी	चिदानंद	गा० ५२	

उपदेशात्मक कथन है। पंजाबी भाषा की प्रधानता देखते कवि के पंजाब निवासी होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। कवि की अन्य सब रचनाओं से यह अपनी निराली ही विशेषता रखती है। इस की केवल एक ही प्रति संवत् १७३३ सक्की ग्राम में लिखित श्रीपूज्य जी के संग्रह में उपलब्ध है। प्रत्येक छंद में कवि ने अपना नाम निर्देश किया है।

४—**लाहौर गजल**[1]—यह कविता खड़ी बोली में लाहौर के वर्णन रूप में लिखी हुई है। इस की ५-७ प्रतियां हमारे अवलोकन में आई हैं, जिन में तीन हमारे संग्रह में, एक श्री जिनकृपाचंद्रसूरि ज्ञानभंडार में, एक श्री जयचंद्र जी के भंडार में एवं अन्य कई संग्रहों में भी है। हमारे संग्रह की प्रतियों में गाथा के अंक ५८ और ६० और एवं श्री जयचंद्र जी की प्रति में ५६ हैं। अन्य कई प्रतियों में गाथाओं के अंक लिखे नहीं रहने से गाथाओं की हीनाधिक संख्या नहीं लिखी गई। इस में लाहौर के जैन-मंदिर, धर्मशाला के अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक स्थानों का जिक्र आया है।

५—**स्त्री गजल**—इस में लाहौर गजल की भाँति खड़ी बोली में स्त्रियों के शृंगार

---

[1] इस 'गजल' के छंद और शैली के अनुकरण में जैन कवियों ने और भी अनेक नगरों की गजलें निर्माण की हैं, जिन में से निम्नोक्त गजलें हमारे संग्रह में हैं—

१.	बीकानेर-गजल	यति उदयचंद्र		सं० १७६५ चैत्र
२.	उदयपुर-गजल	खेतल कवि	गा० ८०	सं० १७५७ मार्गशीर्ष,
३.	चित्तौड़-गजल	खेतल कवि	गा० ६२	सं० १७४८ श्रावण
४.	मरोट-गजल	दुर्गादास		सं० १७६६ पूर्व
५.	पाटण-गजल	देवहर्षकृत		सं० १८७२ पूर्व
६.	दीसा-गजल	देवहर्ष कृत		सं० १८७२ पूर्व
७.	बड़ौदा-गजल	दीपविजय कृत		सं० १८५२ मिगसर कृष्ण १
८.	आगरा-गजल	लक्ष्मी चंद्र कृत	गा० ९४	सं० १७८० आ० शु० १३
९.	बंगाल देश-गजल	निहालचंद	गा० ६५	
१०.	बीकानेर हनुमान-गजल	यति जयचंद		सं० १८७२

इन के अतिरिक्त दीपविजय-कृत (नं० ११) 'सूरत गजल' ('जैनयुग' में प्रकाशित) (१२) 'खंभात गजल,' (१३) 'जंबूसर गजल,' (१४) 'उदयपुर गजल' (१५) 'चित्तौड़ गजल' आदि सं० १८७७ में रचित उपलब्ध हैं। नगर वर्णनात्मक काव्यों में श्रीमद् ज्ञानसार जी कृत 'पूरबदेश वर्णन छंद' एवं 'सिलहट लावणी', 'कलकत्ता गजल,' 'बंबई गजल' 'स्थली वर्णन', 'गुजरात वर्णन', इत्यादि उपलब्ध हैं। श्री नाहर जी के संग्रह के सचित्र विज्ञप्ति-पत्रों में भी कई गजलें देखी गई हैं।

एव अग-प्रत्यगों का वर्णन है। इस की चार प्रतिया उपलब्ध हैं जिन मे दो हमारे सग्रह मे, एक श्रीपूज्य जी श्री जिनचारित्र सूरि जी के भडार मे और एक बाबू पूरणचद्र जी नाहर के सग्रह मे है। इन मे १ प्रति स० १७७५ लिखित और दूसरी स० १७६५ मे लिखी हुई है। अवशेष दोनो में प्रतियो का लेखन-समय नही दिया है परतु वे भी अठारहवी शताब्दी की ही ज्ञात होती है। एक प्रति मे इस का नाम 'सुदरी गजल' भी लिखा है। गाथाक प्रतियो मे नही लिखे हे पर लगभग २५ हे एवं भिन्न-भिन्न प्रतियो मे हीनाधिक्य भी है।

६—**फुटकर कविताएं**—सवत् १७६५ लिखित प्रति में जटमल कृत २८ छद मिले ह। जिन मे ४ दोहे, ३ छप्पय और २१ सवैये हैं। कवि का भाषा-सौदर्य, पद-लालित्य और कवित्व-शक्ति का इन मे भी अच्छा परिचय मिलता है।

इन के अतिरिक्त कवि की दूसरी दो कविताए (एक 'स्त्री गजल' की प्रति में, दूसरी 'प्रेमलता चौपाई' के अत मे) मिली हे। विशेष खोज-शोध करने से आशा है कि कवि की और भी कई नवीन कृतियां प्राप्त हो।

उपसंहार

खडी बोली के कवियो मे जटमल का स्थान महत्त्वपूर्ण है। हम यथोपलब्ध नवीन काव्यो का इस लेख मे वर्णन कर चुके है पर हमारे खयाल से कवि के अन्य काव्य भी उपलब्ध होने की सभावना है। जो काव्य मिले हें वे सभी खरतर गच्छ के यतियो के प्रयास से मिले है। बीकानेर खरतर गच्छ का प्रमुख स्थान है। यहा के गद्दीधर श्रीपूज्यो के आज्ञानुवर्त्ती अनेक यति सर्वत्र परिभ्रमण कर धर्मप्रचार करते थे। 'प्रेमलता चौपाई', 'बावनी' एवं अन्य कुछ प्रतिया तो सिध प्रात मे ही लिखी हुई है।

कवि पजाब का निवासी था, अत वहां के ज्ञानभडारो की पूरी खोज होने पर कवि के समय की लिखी हुई प्रतिया एव उन के काव्य भी मिलने की विशेष आशा है। अद्यावधि कवि की जो कृतिया उपलब्ध हुई हें वे रचना-काल से लगभग ५०-६० वर्ष पश्चात् लिखित प्रतिया (प्राचीन से प्राचीन) हे। समकालीन प्रतियों के उपलब्ध होने मे मूल पाठ सुनिश्चित हो जायगा। जटमल की रचनाओ से उस के व्यक्तित्व, काव्य-प्रतिभा आदि का भली भाँति परिचय मिल जाता है

हिंदी भाषा में जैन कवियो की सैकडो रचनाए साहित्यिक निद्वान्
ज्ञान-भडारो मे पडी हैं। बीकानेर में भी हिंदी के बहुत से अप्रसिद्ध ग्र
का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्राचीन वैष्णव-संप्रदाय

[लेखक—डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० (इलाहाबाद)]

(क्रमागत)

४—रुद्रसंप्रदाय

यह पहले कहा गया है कि इस सप्रदाय का विशेष प्रचार वल्लभाचार्य ने किया। इन्हो ने अपने मत को 'शुद्धाद्वैत' के नाम से चलाया। इन के मत मे ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व माना गया है। अन्य सभी वस्तुए ब्रह्म से अभिन्न है, और इसी लिए नित्य भी है।[1] यथार्थ मे जगत् अक्षय और नित्य है, किंतु विष्णु की माया मे इस का आविर्भाव और तिरोभाव या उत्पत्ति और नाश होता है।[2] व्यवहारदशा में भी सभी वस्तुए ब्रह्मस्वरूप मानी जाती है। इस सप्रदाय के लोग धर्म और धर्मी मे तादात्म्य-संबंध मानते है, इस लिए घृत के द्रवत्व रूप धर्म के समान आगंतुक प्रपचरूप धर्म को ब्रह्मरूप धर्मी से भिन्न नहीं मानते। माया को भगवान् की शक्ति मान कर शक्ति और शक्तिमान् मे अभेद मानते हुए, इन के मत मे एक-मात्र ब्रह्म ही प्रमेय रह जाता है।[3] निराकार, सच्चिदानंद तथा सर्वभवनसमर्थ (सभी होने के योग्य) ब्रह्म विना किसी निमित्त के अपने अश से, धर्मरूप मे, क्रियारूप से तथा प्रपञ्च-रूप मे देख पड़ता है। ब्रह्म धर्मरूप से पहले ज्ञान, आनद, काल, इच्छा, क्रिया, माया तथा प्रकृति के रूप मे रहता है। किंतु ऐसा सर्वदा नही रहता। आपादक-हेतुस्वरूप काल पहले नही रहता और उस के आविर्भाव होने पर वही काल इस का नियामक बन जाता है, इसी लिए उक्त अवस्था सर्वदा एक सी नही रहती है। काल के साथ-साथ उत्पन्न इच्छा आदि शक्तियो का सदा एक-सा रहना भगवान् ने ही किया, अतएव ये भी नित्य है। इस मे

---

[1] 'पुरुषोत्तम-प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४ [2] स्मृतिप्रमाण।
[3] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५४

काल ही क्रियाशक्तिरूप है। 'इच्छा' तो 'अभिध्यान-स्वरूपा' अर्थात् सकल्पात्मिका है। इसी को 'काम' भी कहते हैं, जैसा कि श्रुति मे कहा है—'सोऽकामयत'। भगवान् तदाकार ही है। संकल्प के दो भेद है—'बहुस्याम' (मै बहुत हो जाऊ) और 'प्रजायेय'[1] (उत्पन्न हो जाऊ)।

इन दोनों सकल्पो मे पहला तो भेद बतलाता है, इस लिए काल से अतिरिक्त क्रिया, ज्ञान तथा आनद-रूप सत्, चित् और आनंद-रूप ब्रह्म का धर्म अपने मे भेद दिखलाते हुए अपने आश्रय ब्रह्म को भी भिन्न करता है अर्थात् उसे भी क्रियावान्, ज्ञानी तथा आनदवान् बनाता है। इस प्रकार सत्-चित्-आनद-रूप ब्रह्म भी हाथ पैर वाला हो कर साकार रूप धारण कर लेता है। परतु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार भिन्न होने पर भी अपनी इच्छा मे अभिन्न रह कर अखड ही ब्रह्म है।

माया

ब्रह्म की शक्ति उस के सत्-अश की क्रियारूपा तथा चित्-अश की व्यामोहरूपा 'माया' है। यह त्रिगुणा है। यह ससार की कर्तृरूपा माया का अश है और जगत् की उत्पत्ति मे आनदरूप का कारण भी है।[2] किंतु जगत् का कर्तृत्व भी माया मे भगवान् की इच्छा ही से है, वास्तव मे मूलकर्तृत्व माया मे नही है।[3] ज्ञान और क्रिया ये दोनो भगवान् की शक्तिया है। आनद ज्ञानशक्तिमान् तथा क्रियाशक्ति वाला हो जाता है, क्योकि आनद तो ब्रह्म ही है। ऐसी स्थिति मे चिदश की शक्ति जो व्यामोहिका माया है (जिसे हम अविद्या भी कहते है) वह चिदश मे जब ज्ञानरूप धर्म पृथक् हो जाता है तब उसे अज्ञान मे डाल देती है।

जीव

यद्यपि भगवान् बोधरूप है तथापि ज्ञान के अभाव मे मुग्ध हो जाते है और यह समझ कर कि आनद तो अलग है उस के सबध से आनंद हो जायगा इस लिए माया के साथ मिल जाते है। तब व्याकुल हो कर आनद से किए हुए सृष्टि मे जो 'सूत्रात्मा' था, जो दशविध प्राणभूत था उस का अवलबन ले कर रहते है। इस प्रकार प्राण-धारण का प्रयत्न करते हुए चिदश को 'जीव' कहते है। सत्-अश क्रियाशक्ति के अलग हो जाने पर अव्यक्त और जड हो जाना है। पश्चात् मूलभूत जो क्रिया उस के अश से 'जीव' शरीरादि रूप से अभिव्यक्त

---

[1] 'तैत्तिरीय उपनिषद्' २ ६ [2] पृ० ५५ [3] वही

हो जाता है। और जब वह क्रिया बाद को उस के धर्म मे लीन हो जाती है तब यह भी तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार चित्-रूप भी ज्ञान-शक्ति के अंश-रूप ज्ञान के द्वारा अभिव्यक्त तथा तिरोहित होता है। इसी तरह आनद-रूप का भी विभाग होता है।

भगवान् मे ससार के पालन तथा नाश इन दोनो की इच्छा रहती है। इन दोना इच्छाओ से सत्-चित् तथा आनद रूप से क्रमश सत्-अश से जीव के बधन समूहभूत प्राण आदि जड, चित्-अश मे जीव, आनद अश से जीव का नियामक तथा अतर्यामियो के स्फुलिङ्ग की तरह आविर्भाव होता है। बद्ध जीवो को जिन्हे भगवान् उस पूर्णज्ञान-शक्ति को देते है वे उस मोहिका माया को तथा प्रयत्न को छोड देते है, केवल अपने स्वरूप चित्-रूप मे स्थित रहते है, और अपराधीन भी हो जाते है। किंतु उस जीव में जगत्-कर्तृत्व नही होता। मायाशक्ति उस मे नही रहती। उस जीव में आनद ही के उत्कृष्ट होने के कारण और दूसरा कोई उत्कर्ष नही रहता। फिर भी हीनता इस मे रहती है। आनद के साथ मिल जाने से आनद तो यह होता ही है। इसे ही वल्लभमत मे 'सृष्टि-प्रकार' कहा है।[1]

'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इस श्रुति के अनुसार 'नाम-सृष्टि' और 'रूपसृष्टि'—दो प्रकार की सृष्टि कही गई है। 'रूपसृष्टि' का कारण पचात्मक भगवान् है। अर्थात् तत्त्व तो एकमात्र ईश्वर ह, किंतु उस के पॉच अग है, जैसा कि भागवत में कहा है—

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।
वासुदेवात् परो ब्रह्मन्न चाऽन्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥[2]

'द्रव्य' से माया समझना चाहिए। पश्चात् इसी से महाभूत आदि भी लिए जाते है। 'कर्म' जगत् का निमित्त-कारण तथा भूतो का सस्काररूप भी है। 'काल' गुणो का क्षोभक अर्थात् साम्यावस्था को नाश करने वाला तथा निमित्तरूप भी है। यही 'काल' आधार-रूप मे सभी जगह दिखाई पडता है। 'स्वभाव' परिणाम का कारण है। 'जीव' भगवान् का अश-स्वरूप भोक्ता है।

अवांतर सृष्टि मे 'अधिष्ठान' अर्थात् शरीर, 'कर्ता' जीव, 'इद्रिय', 'नाना प्रकार की

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ५५
[2] सुबोधिनी पृ० ६६

चेष्टा' अर्थात् प्राण के धर्म, 'दैव' अर्थात् भगवान् की इच्छा ये माने जाते है। ये सब तत्त्व 'रूपसृष्टि' मे कहे गए है। 'नामसृष्टि' मे एकमात्र सूत्ररूप भगवान् सुषुम्ना के मार्ग मे शब्द-ब्रह्मरूप मे प्रकाशित होते है। पश्चात् यही शब्द-ब्रह्म नाद, वर्ण आदि रूप मे प्रतीत होते है।

प्रमेयनिरूपण

प्रमेय अर्थात् जानने के योग्य वस्तु एकमात्र ब्रह्म ही है यह पहले कहा गया है किंतु संसार दशा मे जब ब्रह्म साकार हो जाता है तब उसी के अनेक रूप हो जाते है। परन्तु यह सब ब्रह्म से सभी दशा मे अभिन्न रहते है। अस्तु, इन प्रमेयो को वल्लभाचार्य ने तीन भागो मे विभक्त किया है---स्वरूपकोटि, कारणकोटि तथा कार्यकोटि। इन का क्रमश यहा सक्षेप मे विवरण दिया जाता है।

स्वरूपकोटि

इस मे कर्म, काल, स्वभाव तथा अक्षर ये चार तत्त्व है। यथार्थ मे कर्म, काल और स्वभाव ये तीनो अक्षर ही के रूपातर है।[1] इस लिए सब से पहले 'अक्षर' का विचार किया जाना आवश्यक है।

१---**अक्षर**---अक्षर का लक्षण बताते हुए कहा है ---

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ परस्मात्माऽभवत् पुरा।
यद्रूपं समधिष्ठाय तदक्षरमुदीर्यते॥

'अक्षर' वही रूप है जिसे अधिष्ठान रूप मे स्वीकार कर परमात्मा ने प्रकृति और पुरुष रूप धारण किया। अर्थात् अक्षर-ब्रह्म प्रकृति और पुरुष का भी कारण है।[2] यही अक्षर ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा इन दोनो से विशिष्ट तीनो स्वरूपो का मूलभूत, ज्ञान-प्रधान, गणितानद, ब्रह्म, कूटस्थ, अव्यक्त, असत्, सत् तथा तम इत्यादि शब्दो से कहा जाता है। इसी को 'वैकुठ' भी कहते है।[3]

२---**काल**---अक्षर का स्वरूपातर 'काल' है। वस्तुत सच्चिदानंद काल का स्वरूप है, किंतु व्यवहार मे किंचित् सत्त्व के अश से प्रकट 'काल' स्वरूप कहलाता है। यह अतीद्रिय

---

[1] '**प्रस्थानरत्नाकर**', पृ० ५७
[2] **वही पृ० ५६**   [3] **वही**

है। लौकिक कार्य के अनुसार 'काल' का लक्षण 'नित्यग तथा सब का आश्रय और सब का उद्भव' है। इसी काल से चिर, शीघ्र तथा अतीत, अनागत आदि व्यवहारो की उत्पत्ति होती है। इस का प्रथम कार्य सत्त्व, रजस्, तथा तमस् इन गुणो का क्षोभ करना है। सूर्य आदि इस काल के आधिभौतिक रूप है, परमाणु[१] से लेकर चतुर्मुख के आयु-पर्यंत आध्यात्मिक रूप है, तथा भगवान् स्वयं इस का आधिदैविक रूप है, जैसा कि भगवान् ने कहा है—'कालोऽस्मि' (मैं काल हू)।

३—कर्म—'कर्म' भी 'अक्षर' ही का रूपांतर है। 'विधि और निषेध रूप से लौकिक-क्रिया के द्वारा प्रदेशत अभिव्यजन के योग्य व्यापक-क्रिया ही' 'कर्म' का लक्षण है। इसी को अपूर्व, अदृष्ट तथा धर्माधर्म भी कहते है। 'अदृष्ट' आत्मा का गुण नहीं है यह भी इसी से सिद्ध होता है। कर्म नाना नहीं है। कर्म की अभिव्यक्ति के अनन्तर तथा फल समाप्ति-पर्यंत इस का प्राकटय (अर्थात् स्थिति) रहता है और फलभोग की उत्पादक क्रिया के द्वारा क्रमश यह तिरोभूत होने लगता है। इस का प्रधान कार्य जन्म है, जैसा कहा है—

कर्मणा जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ।

४—स्वभाव—यह परिणाम का हेतु है। 'भगवान् की इच्छा का कारक' इस का स्वरूप है। भगवान् की इच्छा से यह भिन्न है। यह व्यापक होने के कारण सभी को अपने नीचे दबा कर स्वय प्रकट होता है। कभी-कभी परिणामरूप कार्य से इस का अनुमान भी होता है।

प्रमेय का दूसरा भाग 'कारण-कोटि' है। इस के अतर्गत २८ तत्त्वो का विचार है। ये भगवान् के भावरूप होने के कारण ही तत्त्व कहलाते है। भगवान् की जो कारणता

कारणकोटि

है वह लोक मे २८ प्रकार मे प्रकट होती है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् ये तीन गुण, पुरुष; प्रकृति, महत्तत्त्व, अहकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गध ये पाँच तन्मात्रा, आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथिवी ये पाँच भूत; पाँच ज्ञानेद्रिय और पाँच कर्मेद्रिय, और मनस्—कारणकोटि के अंतर्गत ये २८ तत्त्व वल्लभ ने माने है। सक्षेप मे इन का वर्णन यहा दिया जाता है।

---

[१] **'परमाणु'** उस काल को कहते है जिस में सूर्य का **रथचक्र परमाणुमात्र प्रदेश को व्याप्त करे**

१—सत्त्व—सुख का अनावरक (अर्थात् आवरण न करने वाला), प्रकाशक तथा सुखात्मक और सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से जीवो की देहादि के प्रति आसक्ति का कारण 'सत्त्व' गुण है। यह स्फटिक की तरह निर्मल है।[1]

२—रजस्—यह रागस्वरूप है। तृष्णा और प्रीति का जनक है, कर्म की आसक्ति से जीवो की देहादि के प्रति अत्यंत आसक्ति का जनक है।[2]

३—तमस्—यह अज्ञान की आवरण शक्ति से उत्पन्न है। सब प्राणियो को मोह मे डालने वाला है, और असावधानता, आलस्य तथा निद्रा से जीवो मे अपने देह के प्रति आसक्ति उत्पन्न कर उन्हे बधन मे डालता है।[3]

ये गुण जब भगवान् ही से उत्पन्न होते है तब इन्हे माया, चित्-शक्तिरूप या आनदशक्तिरूप समझना चाहिए। स्थिति अवस्था मे जब रजस् और तमस् सत्त्व को दबा कर उन्नत होते है तब सत्त्व स्वय दुर्बल हो जाता है और कार्य-रूप मे वर्त्तमान रजस् एव तमस् को दबाने के लिए भगवान् की प्रार्थना कर उन्हे अवतार-रूप मे ससार मे प्रगट करता है। भगवान् तब सत्त्व ही को प्रधान बना कर नाना स्वरूप धारण करते है। सत्त्व के अवयव भी पृथक्-पृथक् रूप धारण करते हैं। इस प्रकार सभी युग मे अपने अगभूत धर्म की स्थापना करने के निमित्त तथा सत्त्व की सहायता करने के उद्देश्य से भगवान् अवतार ग्रहण करते है।[4]

जब 'तन्मायाफलरूपेण' इत्यादि 'भागवत' के वचन के अनुसार माया उभयात्मिका चित्-शक्तिरूपा गुणमयी हो जाती है, तब ये तीनो गुण पुरुष की अनुमति से माया के द्वारा वैषम्य को पाकर प्रकृति के धर्म हो जाते है, और इन से हिरण्मय महत्तत्त्व आदि की उत्पत्ति होती है। भगवान् स्वय निर्गुण होते हुए भी सत्-अश से सत्त्व को, चित्-अश से रजस् को, तथा आनद-अंश से तमस् को उत्पन्न करते है। द्वितीय कल्प मे सच्चिदानदात्मक ब्रह्म से माया उत्पन्न होती है और उस के बाद गुणो का वैषम्यरूप तथा महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति आदि होती है।

४—पुरुष—'पुरुष' को ही 'आत्मा' भी कहते है। देह, इद्रिय आदि को दूसरे के

---

[1] 'गीता' १४—६ [2] वही- १४—७ [3] वही- १४—८
[4] 'भागवत' १ १० २४ 'गीता' ४ ७

निमित्त जो 'अतति'—'व्याप्नोति'—'अधितिष्ठति' अर्थात् धारण करता है वही 'आत्मा' है। यह अनादि, निर्गुण तथा प्रकृति का नियामक है। अहं-रूप ज्ञान से यह जाना जाता है। यह स्वय-प्रकाश है। ससार के गुण तथा दोषो से मुक्त रहते हुए भी यह सभी वस्तुओ से ससर्ग रखता है। मुक्ति का यह उपकारक है। यह देह, इद्रिय, प्राण, मन तथा अहकार से अतिरिक्त है।

इस निर्गुण आत्मा मे भी कर्तृत्व आदि गुण जो कहा जाता है वह सृष्टि के अनुकूल भगवान् की इच्छा से तथा प्रकृति आदि के अविवेक से है। अर्थात् यह सगुणत्व आत्मा मे आगतुक धर्म है, स्वाभाविक नहीं है। अन्यथा इस मे मुक्ति-योग्यता ही नहीं हो सकती थी और तब मोक्ष-प्रतिपादक सभी श्रुतिया व्यर्थ हो जाती।

यह पुरुष अनेक नही है किंतु एक ही है।[1] शास्त्र मे कहा है कि कालचक्र के कारण प्रकृतिरूपा गुणमयी माया मे शक्तिमान्-भगवान् आत्मस्वरूप-पुरुष के द्वारा अपनी शक्ति (वीर्य) को रखते है। इस प्रकार करण-रूप मे इस 'पुरुष' की अपेक्षा होती है।[2] इसी पुरुष को साख्यातर मे (अर्थात् योग मे) 'ईश्वर' कहते है। और इसी बात को आचार्य ने 'भागवत' की टीका 'सुबोधिनी' मे भी कहा है—"पुरुष एक ही है। पुरुष और ईश्वर मे कुछ भी विलक्षणता नही है, इस लिए इन्हे दो मानना व्यर्थ है।" अतएव जीव और ईश्वर मे भी स्वाभाविक भेद नही है, वे तो केवल अवस्था के भेद से दो मालूम होते है। अत: जीव, ईश्वर और पुरुष ये शब्द एक ही तत्त्व के नाम है। यह तो तत्त्वकथन है, किंतु व्यावहारिक दशा मे (प्रकृते तु)—'पुरुष' द्वारभूत भगवान् का अश है और 'ईश्वर' भगवान् स्वय है। 'जीव' पुरुष-तत्त्व से भिन्न है। परतु चित्-रूप होने के कारण एक ही जाति के दोनो है। अथवा पुरुष ही का अंश 'जीव' है। किंतु 'त्वं आत्मना आत्मानं अवेहि' इस स्थल मे अक्षराश और पुरुषांश के भेद होने के कारण 'जीव' भी दो प्रकार का माना जाता है।[3] लौकिक दशा मे जीव से भिन्न ईश्वर तो मानना ही पडेगा, अन्यथा भोग का नियम ठीक से नही हो सकता है। 'कर्म' इसी ईश्वर के अधीन है। जैसा श्रुति मे भी कहा है—"एष उ एव साधु कर्म कारयति"। प्रकृति और पुरुष का सयोग भी ईश्वर के बिना नही हो सकता। यह सयोग अनादि नही माना जा सकता, क्योकि ऐसा होने से मोक्ष की चर्चा भी नही हो

---

[1] गीता १० २० [2] पृ० ६० [3] वही।

सकती है। इस लिए ईश्वर ही इस सयोग का अधिष्ठाता माना जाता है।

५—प्रकृति—इसे 'प्रधान' भी कहते हैं। यह भगवान् का मुख्य रूप है। इसे जगत् के उपादानरूप मे भगवान् ने बनाया। यह साम्यावस्था में प्राप्त तीनों गुणो का स्वरूप-भूत तत्त्व है। जिस प्रकार सच्चिदानदरूप ब्रह्म मे क्रिया, ज्ञान और आनदरूप धर्म रहते है, उसी प्रकार यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका होती हुई भी इस मे अशत उद्गत तीनो गुण भी रहते हैं। अतएव इस मत मे प्रकृति और गुणों में 'धर्म-धर्मिभाव' भी है। तीन प्रकार की सृष्टि करने के लिए भगवान् ने प्रकृति को ये तीन ऐश्वर्य दिए है। ये सत्, चित् तथा आनद के अश माया-रूपा प्रकृति में रहते हुए प्रकृति को 'प्रधान' बनाते है।

किसी प्रकार काल आदि के द्वारा यह अभिव्यक्त नही हो सकता है अतएव यह 'अव्यक्त' है। और इसी लिए यह नित्य भी है, क्योकि अभिव्यक्त होने ही से अनित्य हो जाता और पुन इस मे सृष्टि न हो सकती थी। प्रकृति के साथ-साथ काल आदि भी उत्पन्न होते है और इसी के साथ इन की स्थिति तथा लय भी होता है।

यह सत् और असत् स्वरूपा है। कार्य और कारण मे यह भी भेद नही मानते। यह ज्ञान का हेतु भी है, अन्यथा ससारी लोग विवेक नही कर पाते और फिर न मुक्त हो सकते थे। यह वैराग्य का भी कारण है, क्योकि यह सभी विशेषों को आत्मा को दिखा कर फिर निवृत्त हो जाती है। प्रकृति और पुरुष मे यद्यपि अन्यत्र स्वस्वामिभाव सबंध है, किन्तु यहा वीर्याधान के कारण उन में सयोग-सबंध भी है। प्रकृति और पुरुष दोनो ही साकार है, यह भगवान् के साकार होने ही से सिद्ध होता है। इस लिए इन में भी शरीर, इन्द्रियादि होते हैं।[1]

प्रकृति के भी दो भेद माने गए है—व्यामोहिका माया और मूलप्रकृति। अन्यथा ससार में अवस्था का भेद नहीं हो सकता था। भगवान् की इच्छा से जब मायारूप प्रबल रहता है तब तो पुरुष बद्धावस्था मे प्राप्त हो कर 'जीव' कहलाता है, और जब मूलप्रकृति की अवस्था आती है तब स्वरूप ही मे स्थित होकर आत्मा जगत् का कारण होता है।[2]

६—महान्—यह क्षुब्ध गुणो से उत्पन्न होता है। क्रियाशक्तिमान् प्रथम विकार

---

[1] पृ० ६३ [2] वही पृ० ६०

तो 'अर्थ' है और ज्ञानशक्तिमान् 'महान्' हैं किंतु एक सूत्र मे बँधे होने के कारण अर्थात् सर्वथा एक मे मिल जाने से ये दोनो एक ही तत्त्व माने गए हैं। ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति के कारण एक ही तत्त्व दो मालूम होता है। इस महत्तत्त्व का शरीर हिरण्मय हैं। कूटस्थ मे रह कर अपने आधारभूत-विश्व का यह व्यजक है और सात्त्विक हे। जगत् का यह अकुर कहलाता है। और यह अत्यत घन तमस् का नाशक है। यह भगवान् के आविर्भाव का स्थान है। इसी को 'शुद्धसत्त्व' कहते है। इसी को 'चित्तत्त्व' भी कहते है।[1] इन के मत मे बुद्धि और महान् ये दो पृथक् पदार्थ है।

७—**अहंकार**—यह 'महत्' से उत्पन्न होता है। इसे विमोहन, वैकारिक, तैजस्, तामस्, अह, तन्मात्रा—इद्रिय एव मनम् इन तीनो का कारण तथा चित्-अचित्-मय कहते है। यह चित् का आभास होने से चित् और अचित् इन दोनो का ग्रथिरूप है। दिग्, वात, अर्क, प्रचेतस्, अश्विनीकुमार, वह्नि, इद्र, उपेद्र, मित्र, तथा रुद्र इन का भी जनक 'अहकार' है। 'सकर्षण' रूप का यह अधिष्ठान है। कर्तृत्व, करणत्व तथा कार्यत्व भी इस मे है। फिर शात, घोर और मूढ स्वरूप वाला भी यह है। प्राण और बुद्धि इसी के रूपातर है, जैसा कि कहा है—

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः बुद्धिः प्राणस्तु तैजसः।

इन्ही रूपातरो के होने से 'अहकार' मे सब इद्रियो को बल देने की शक्ति, द्रव्यस्फुरणविज्ञान, इद्रियानुग्राहकत्व, तथा सशय आदि पॉच वृत्तिया है।

८—**तन्मात्रा**—भूतो की सूक्ष्म अवस्था को 'तन्मात्रा' कहते हैं। इस मे 'विशेष' नही रहता। अहकार से यह उत्पन्न होता है और अन्य तत्त्वो को उत्पन्न करता है। इस के पॉच भेद है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गध। ये योगियो को ही दृष्टिगोचर होते है। विशेष अवस्था मे ही ये हम लोगो के दृष्टिगोचर होते है, जैसा कि साख्य मे कहा गया है—

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पंच विशेषाविशेषविषयाणि।[2]

इस विषय मे वल्लभ और साख्यमत मे कोई भेद नही है। क्रम से इन पॉच 'तन्मात्राओ' के विशेष लक्षण यहा दिए जाते है —

---

[1] **'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६४**

[2] ३४

क—शब्द—श्रोत्रेंद्रिय से ग्रहण करने के योग्य तथा धर्मवान् 'शब्द' है। शब्द को 'नभस्तन्मात्र' अर्थात् आकाश का तन्मात्र[1] तथा द्रष्टा और दृश्य का लिंग[2] भी कहा है। जैसे शब्द सुन कर उस के उच्चारण करने वाले का ज्ञान होता है तथा टकार आदि शब्द सुन कर टकार शब्द उत्पन्न करने वाले वस्तु का ज्ञान होता है।[3] कार्य-अवस्था मे शब्द सविशेष हो जाता है और यह पाँचों भूतों का गुण है, अर्थात् शब्द सभी भूत मे रहता है।[4] इस लिए भेरी से उत्पन्न शब्द पृथ्वी का गुण है, क्योकि भेरी पार्थिव वस्तु है। और कार्यभूतवस्तु मे वर्त्तमान शब्द विसरणशील तथा सावयव भी है। कार्यवस्तु मे रहने वाला शब्द उदात्त आदि वैदिक तथा षड्ज आदि लौकिक स्वर के भेद से अनत प्रकार का है। शब्द स्पर्शवान् भी है। जैसे किसी वाद्य से उत्पन्न शब्द गत स्पर्श का, तथा मर्म को छूने वाले शब्द से उत्पन्न स्पर्श का हृदय में त्वचा के द्वारा अनुभव होता है अतएव वल्लभ ने शब्द मे स्पर्शरूप गुण को माना है। इस के बिना 'न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्' (किसी को मर्मस्थान मे न छूना चाहिए) इस प्रकार की स्मृति व्यर्थ हो जायगी। 'गुणे गुणानंगीकारात्' (एक गुण मे दूसरा गुण नही माना जाता है) नैयायिको के इस कथन को ये लोक-प्रत्यक्ष-विरुद्ध मान कर टाल देते है।[5]

शब्द के नित्य होने के सबध मे वल्लभाचार्य का कथन है कि वेद को नित्य मानते हुए उसी का अगभूत वर्ण यथार्थ से नित्य है ही। फिर भी लोक मे उस का सुनाई देना या न देना यह तो शब्द के आविर्भाव और तिरोभाव रूप धर्म के कारण होता है। हृदयाकाश मे प्रथम भगवान् या ब्रह्म 'नाद'-रूप मे अभिव्यक्त होते है। शब्द पहले तो अव्यक्त रहता है पश्चात् नानावर्णादि-सकल्पक-मनोमय सूक्ष्मरूप को प्राप्त कर भगवान् के मुख से प्रकट होता हुआ मात्रा, स्वर, वर्ण रूप मे स्थूल-भाव से ब्रह्मात्मक वेद-रूप मे वही सूक्ष्म शब्द प्रकाशित होता है। वह नाद-व्यापक होने के कारण हम लोगो के अदर भी प्राणघोष रूप में रहता है। श्रोत्र (कान) की वृत्ति को निरोध करने पर भगवान् के ही द्वारा जीव उसे सुनता है, अन्यथा द्वार के बद होने के

---

[1] 'भागवत'—तृतीयस्कंध।
[2] 'वही'—द्वितीयस्कंध, २५ [3] 'सुबोधिनी', २-२५
[4] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६५
[5] वही पृ० ६५

कारण वह सुनाई नही देता। इसी नाद को 'स्फोट' भी कहते है। अतएव यही नाद सुषुम्ना-नाडी के द्वारा, मूलाधार, हृदय, कठ तथा मुख मे परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी रूप मे प्रकट होता है। जिस प्रकार ब्रह्म के सत्, चित् और आनद नाम है उसी प्रकार शब्द-रूप ब्रह्म के वर्ण, पद और वाक्य नाम है। वास्तविक भेद इन मे नही है, किन्तु काल्पनिक है। शब्द सर्वगत है अतएव नानादेश मे स्थित वक्ता के प्रयत्न से उन-उन देशो मे शब्द सहज मे अभिव्यक्त होता है। इस के सर्वगतत्व होने मे अबाधित प्रत्यभिज्ञा ही प्रमाण है। और इसी लिए सूर्य के समान एक ही समय मे अनेक स्थलो मे शब्द की स्थिति दिखाई पड़ती है।[1]

'शब्द' की उत्पत्ति मे अदर और बाहर वायु ही निमित्त कारण है। इस के समवायी तो पाँचों भूत है। विशेष कर आकाश और अन्यभूत सामान्यरूप से। जहां पर ध्वनि अभिव्यक्त होनी है, वहा से कुछ दूर तक चारो ओर तो वह स्वभाव ही से स्वय जाता है, क्यो कि यह 'विसारी' है। बाद को वायु इसे दूर-दूर ले जाता है। इस तरह स्थानातर मे जाता हुआ शब्द अपना थोडा-थोड़ा अश भिन्न-भिन्न कानो मे लीन करता (रखता) जाता है। जब इस के सभी अश लीन हो जाते है तब वह आगे को लोगो को सुनाई नही देता। अत मे स्वभाव ही से या काल आदि के द्वारा उस का नाश हो जाता है। शब्द का अश-अश कर के नाश होते हुए देख कर इसे निरवयव कहना ठीक नही है।[2]

ख—स्पर्श—त्वगिद्रिय से ग्रहण करने योग्य 'स्पर्श' है। 'वायुतन्मात्रत्व' इस का लक्षण है। कार्यवस्तु मे वर्त्तमान यह 'सविशेष' हो कर चार भूतो का गुण है। मात्रा-रूप मे मृदु, कठिन, शीत तथा ऊष्ण—ये चार इस के भेद है।[3] गुणस्वरूप मे मृदु, पिच्छिल (फिसलना) जैसे रेशमी कपडे मे, कठिन, शीत, ऊष्ण, अनुष्णाशीत, शीत, लघु, गुरु, संयोग आदि इस के अनेक भेद होते है। मृदु आदि शब्द वस्तुत. धर्मवाचक होने पर भी अधिक प्रयोग होने के कारण धर्मी के निमित्त भी प्रयोग होते है। लघुस्पर्श वायु, तेजस्, जल तथा भूमि मे रहता है। जैसे सूक्ष्म वायु का स्पर्श, ज्वाला का स्पर्श, तूल (रुई) का स्पर्श। लघुस्पर्श होने ही के कारण तेजस् ऊपर को जाता है। जल का लघुस्पर्श गगा, यमुना, कूप और नदी के जल को पीने से मुख मे स्पष्ट मालूम होता है। इसी प्रकार गुरुस्पर्श भी जल,

---

[1] पृ० २० २१ [2] वही, पृ० २३ ६५ [3] वही पृ० ६५

वायु और भूमि में है। अन्य शास्त्र मे 'गुरुत्व' स्पर्श मे अतिरिक्त गुण माना गया है किंतु यहा स्पर्श ही का भेद 'गुरुत्व' भी है जो स्पर्श होने ही के कारण तौलने पर मालूम किया जाता है। स्पर्श के बिना जहा गुरुत्व का ज्ञान होता है वहा अनुमान से होता है, न कि प्रत्यक्ष से। 'सयोग' स्पर्श मे अतिरिक्त गुण वल्लभ के मत मे नही माना जाता है। 'सयोगज-सयोग' यह नहीं मानते। 'सयोग' चक्षु से जाना जाता है और 'स्पर्श' त्वगिंद्रिय से—इस लिए ये दो गुण है, ऐसा समझना ठीक नही है, क्योकि चक्षु मे भी त्वगिंद्रिय तो है ही, इस लिए चक्षु से देखी गई वस्तु त्वगिंद्रिय से भी देखी जाती है, यह स्वीकार करना चाहिए। चक्षुरिंद्रिय मे वर्त्तमान जो वायु है उस का गुण स्पर्श है, न कि चक्षु का। अतएव मन मे भी स्पर्श है।[1] 'श्लेप' विभाग का अभावरूप है। 'स्नेह' भी स्पर्श ही का भेद है, क्योकि यह भी त्वचा ही से जाना जाता है।

ग—रूप—चक्षु से ग्रहण करने के योग्य गुण को 'रूप' कहते है। 'तेजस्तन्मात्रत्व' इस का लक्षण कहा है। जिस द्रव्य में यह रहता है उसी की आकृति के तुल्य इस की आकृति होती है।[2] तन्मात्र-स्वरूप मे यह एक ही है। कार्यस्वरूप मे भास्वर, शुक्ल, नील, पीत, हरित, लोहित आदि 'रूप' के अनत भेद है। 'चित्ररूप' भी एक अतिरिक्त रूप है। भास्वर-रूप दूसरे का भी प्रकाश करता है, इस लिए अपने आश्रय से अधिक देश में रहने वाला होता है। यह विसरणशील होता है।

घ—रस—रसनेंद्रिय से ग्राह्य गुण 'रस' है। 'जलतन्मात्रत्व' इस का लक्षण है। तन्मात्ररूप मे वह अव्यक्त मधुर है। कार्यवस्तु में होने से कसैला, मधुर, तिक्त, कडुआ, खट्टा, क्षार, (नोना) और मिश्र ये सात इस के भेद है। जल मे अव्यक्त मधुर 'रस' है। आधारभूत वस्तु के धर्म के संबंध से 'रस' मे भेद उत्पन्न होता है।[3]

ङ—गंध—घ्राणेंद्रिय से ग्राह्य गुण 'गध' है। यह 'पृथिवी-तन्मात्र' कहलाता है। व्यक्त और अव्यक्त के भेद से यह दो प्रकार का है। कार्यरूप मे करभ (दही मिश्रित सत्तू का गध,[4] या तरकारी आदि का मिश्र गध), पूति (दुर्गंध), सौरभ्य (सुगंधि), शात और उग्र (ये पूति और सौरभ्य ही के भेद है; कमल का गंध शात है और चपा या लहसुन का गध उग्र

[1] 'प्रस्थानरत्नाकर', पृ० ६७ [2] वही, पृ० ६७

[3] वहा पृ० ६८ [4] करभो , ६ ४८

है) तथा 'अम्ल', जैसे नीबू का गंध और बासी कढी आदि का गंध—ये छ प्रकार के गंध हैं। इन के अतिरिक्त आवांतर भेद तो अनंत हैं, जैसे धूप, धूम आदि के गंध। 'गंध' अपने आश्रय से अधिक देश मे रहने वाला होता है। अर्थात् इस का आश्रय-द्रव्य जहा नही रहता वहा भी उस द्रव्य ने रहने वाला गंध रहता है। नैयायिक आदि के मत मे जब किसी फूल का गंध कहीं दूर तक फैलता है तो यह समझा जाता है कि वायु के द्वारा उस फूल का भाग दूर तक चला जाता है और उसी के साथ-साथ उस की सुगंधि भी जाती है। अर्थात् द्रव्यरूप आश्रय के बिना उस का गुण कहीं नही जा सकता है। किंतु वल्लभाचार्य के अनुसार द्रव्य को छोड कर भी उस का गुण अन्यत्र चला जाता है।[1]

६—भूत—जिन मे सविशेष शब्द आदि गुण हों उन्हें 'भूत' कहते है। आकाश, वायु, तेजस्, जल तथा पृथ्वी ये पॉच भूत है। क्रमश इन का वर्णन यहा किया जाता है —

क—आकाश—'अवकाशदातृत्व' (अवकाश देने वाला), या 'बहिरन्तर्व्यवहारविषयत्व', या 'घ्राणेन्द्रियान्तःकरणाधारत्व' 'आकाश' के लक्षण कहे गए हैं। पहला लक्षण आधिदैविक है। दूसरा आधिभौतिक स्वरूप लक्षण है। यही लक्षण व्यवहार में उपयोगी भी है। आकाश जन्य है, नित्य नही, क्योंकि इस मे विकारित्व सिद्ध होता है, जैसे 'आत्मन. आकाश सभूत' इस श्रुति मे भी कहा है। आकाश में रूप नहीं है। परममहत् परिमाण वाला होने ही के कारण यह नीरूप भी है। आकाश में नील आदि की प्रतीति भ्रममात्र है। चक्षु अपने सामर्थ्य से आकाश का ग्राहक नही है, किंतु आकाश ही अपने सामर्थ्य से गंधर्वनगर अथवा पिशाच के समान अपने स्वरूप को प्रगट करता है। इस का विशेष-गुण[2] शब्द है।

ख—वायु—इस का लक्षण इन के मत में 'अरूपित्वे सति चालन-व्यूहन-द्रव्यशब्द-गन्धनयनसर्वेन्द्रियबलदानाख्यकार्यत्वम्' है। अर्थात् जिस में रूप न हो और जो डाल आदि को हिलावे, गिरे हुए पत्तों को एक जगह मिलावे, द्रव्य, शब्द, और गंध को ले जाने वाला, सभी इंद्रियों को बल (सामर्थ्य) देने वाला आदि कार्य करे वही 'वायु' है। यही प्राणरूप है। स्पर्श इस का विशेषगुण है। शब्द भी इस मे कारण से आता है। इस प्रकार इस मे दो गुण है। मीमांसक के मतानुसार इस का त्वगिंद्रिय से प्रत्यक्ष होता है।

---

[1] पृ० ६८ [2] वही पृ० ७१

ग—तेजस्—'तेजस्' से पाचन, प्रकाशन, पान जैसे जल आदि का, अदन (भोजन) जैसे अन्न का, हिम (पाला या शीत) का मर्दन (नाश करना), शोषण (सुखाना) ये छ कार्य होते हैं। यथार्थ मे पान और अदन ये दोनों कार्य जठराग्नि से ही होते हैं अतएव पाच ही कर्म 'तेजस्' के हैं। क्षुधा और तृष्णा भी तेजोरूप है। रूप इस का विशेष गुण है। शब्द और स्पर्श इस में कारण से आते हैं। इस प्रकार तीन गुण इस मे हैं।[1]

घ—जल—क्लेदन (भिगोना), पिडन (इकट्ठा करना), तृप्ति (क्षुधा आदि की निवृत्ति करना—भोजन करने पर भी बिना जल की तृप्ति नही होती), प्राणन (जीवन), आप्यायन (प्राण को सतोष देना), प्रेरण (बहा ले जाना), ताप को दूर करना तथा एक स्थान मे अधिक ही होकर रहना ये आठ कार्य जिस मे हो वही 'जल' है। बर्फ़ आदि मे दूसरे भूत के कारण कठोरपन है। जब बहुत ठडी हवा चलती है तब जल एकत्रित हो कर 'ओला' बन जाता है। रस इसका विशेषगुण है। शब्द स्पर्श, तथा रूप इस मे दूसरे से आए हुए गुण है। इस प्रकार इस मे चार गुण हैं।

ङ—पृथ्वी—साक्षात् समस्त जगत् को धारण करने वाला द्रव्य 'पृथ्वी' है। वल्लभ 'सत्कार्यवाद' ही को स्वीकार करते हैं। गध इस का विशेषगुण है। और चार गुण इस मे अन्यत्र से आते हैं। इस प्रकार पाँच गुण इस मे हैं।

१०—**इद्रिय**—'तैजसाहङ्कारोपादेयत्वे सति (तैजस्‌रूप अहकार से इद्रिय की उत्पत्ति होती है) ज्ञानक्रियान्यतरकरण 'इद्रिय' का लक्षण है। देह से संयुक्त रह कर अपने फल से आत्मा का जो ज्ञान करावे वही 'इद्रिय' है। ज्ञानेद्रिय और कर्मेद्रिय के भेद से 'इद्रिय' दो प्रकार के हैं। श्रोत्र आदि पाँच 'ज्ञानेद्रिय' हैं और वाक् आदि पाँच 'कर्मेद्रिय' हैं। ये सभी अभौतिक हैं। भगवान् की इच्छा से, गुणो के परिणाम के भेद से, तथा शरीर के अंगो के सन्निवेश के भेद से एक ही तैजस्-अहंकार से भिन्न-भिन्न इद्रियो की उत्पत्ति मे कोई बाधा नही है। ये इद्रिया अणु-परिमाण की और अनित्य भी हैं।

इन मे 'चक्षु' उद्‌भूत-रूप और उद्‌भूत-रूपवान् तथा संख्या, परिमाण, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग तथा कर्म और इनकी जाति तथा समवाय का ग्राहक है। इसी लिए परमाणु, पिशाच आदि का चक्षु से ग्रहण नही होता। रूप द्वारा ही

---

[1] पृ० ७१

'चक्षु' द्रव्य का भी ग्राहक है। त्वगिंद्रिय से उक्त सख्या आदि सभी गुण, उद्भूतस्पर्श तथा उद्भूतस्पर्श वालो का, उक्त गुणो की जाति और समवाय इन सब का ग्रहण होता है। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय से ग्रहण योग्य उद्भूतगध, और उद्भूतगध वाला, उन की जाति और समवाय है। इसी तरह रसनेद्रिय और श्रवणेद्रिय को भी जानना चाहिए।

ये दश इद्रिया राजस है, क्योकि राजस बुद्धि और प्राण से इन का ग्रहण होता है। इन मे से चक्षु, घ्राण, हाथ और पैर इन के दो-दो रूप है, किन्तु ये प्रत्येक एक ही एक इद्रिय है। ज्ञानेंद्रिया अपने वस्तुओ के साथ मिल कर ही ज्ञानजनक होती है।

११—मन—'मन' सकल्प और विकल्पात्मक है। इसे उभयात्मक कहते है, क्योकि यह दोनो प्रकार के कार्यो को करता है। इच्छा (काम) की उत्पत्ति इसी के अधीन है। यह भी एक इद्रिय है। सुख, दु ख, प्रयत्न, द्वेष, अदृष्ट, स्नेह आदि इसी 'मन' के गुण है, न कि आत्मा के। यह भी जन्य है, जैसा कि 'तन्मनोऽसृजत्' इस श्रुति मे भी कहा है। अणु इस का परिमाण है। इस के दो प्रकार के कार्य होते है—आतर और बाह्य।

सामान्य-का 'आकृति' और 'व्यक्ति' मे सन्निवेश किया गया है।

'ज्ञान' ब्रह्मस्वरूप ही है, जैसा श्रुति मे भी कहा है—'सत्यं ज्ञानमनंत ब्रह्म'।

ज्ञान

जब-जब भगवान् सृष्टि की इच्छा करते है तब-तब उन का आविर्भाव होता है, इस लिए 'ज्ञान' का अनत भेद होने पर भी यहा केवल दश प्रकार का 'ज्ञान' माना गया है। इन में चार प्रकार का 'ज्ञान' नित्य है। पहला-सब का आत्मस्वरूप, सब का उपास्य, मुख्य, विकार-रहित आत्मा का अपना ही स्वरूप है, जिसे गीता (१०-२०) मे कहा है—'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित'। स्वरूपत यह नित्य है।

यही 'ज्ञान' जब प्रकाश रूप मे आविर्भूत होता है, तब वह भगवान् का गुणस्वरूप कहलाता है, जैसा कहा है—"ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णा भग इतीरणे"। ऐश्वर्य सपन्न मे वह नित्य है और जीव तथा भगवान् के पार्षद आदि मे उन के देने से प्राप्त होता है।[1] यही 'ज्ञान' अर्थात् धर्मरूप सर्व-विषयक-ज्ञान जब सृष्टि के निमित्त भगवान् के मनोमय आदि

---

[1] पृ० १

नाडी के द्वारा 'वेदरूपशरीर' धारण करता है तब वह 'तीसरा ज्ञान' कहलाता है जैसा कि श्रुति में है—"स एष जीवो विवरप्रसूतिः" इत्यादि। वेदशरीर में भी वह ज्ञान विराट् रूप के समान अनंत है, जैसा 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में इंद्र और भरद्वाज के संवाद में स्पष्ट कहा गया है —"अनंता वै वेदा" इत्यादि। यही बाद में विशिष्ट शक्ति वाला हो कर संसार का 'बीज' हो जाता है और इसी से सभी विकृत शब्द सृष्टि के आदि में होते हैं। यही भगवान् के आश्रित होने से 'चतुर्थ प्रकार का नित्य ज्ञान' है।

यही वेदरूप-शरीर-विशिष्ट-ज्ञान समवाय-संबंध से प्रमाता में तथा निमित्तरूप से प्रमेय में रहता है। पश्यंतीरूप-शब्द तो प्रमाता का आश्रयण करता है, जैसा कि 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि ने कहा है

> **न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।**
> **अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥**[1]

अर्थात् इस लोक में (व्यवहार की अवस्था में) ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो शब्द से अनुविद्ध न हो। प्रमेय के अनंत होने से उस का आश्रयण करने वाला शब्द-शरीर-विशिष्ट-ज्ञान भी अनंत है। किंतु वास्तव में ब्रह्म ही एक मात्र प्रमेय वल्लभ के मत में है, इस विचार से यह ज्ञान एक ही है। शब्द और अर्थ तथा शब्द और ज्ञान में नित्य संबंध होने के कारण शब्दविशिष्ट ही ज्ञान प्रमेय को आश्रयण करता है। यही पंचम ज्ञान है। इस अवस्था में शब्द और अर्थ ज्ञान से अभिभूत हैं, किंतु पहले उलटा था।

प्रमाता में अंतःकरण और इंद्रिय को आश्रयण करने वाला 'ज्ञान' पाँच प्रकार का है। इंद्रिय में एक प्रकार का और अंतःकरण में चार प्रकार का। मन में संकल्प और विकल्प रूप से ज्ञान आश्रित है। विपर्यास, निश्चय, स्मृति आदि रूप में ज्ञान बुद्धि का आश्रित है। 'स्वप्नज्ञान' अहंकार का आश्रित है और 'निर्विषय-ज्ञान' चित्त का आश्रित है। इस प्रकार ज्ञान दशविध है।

कार्यरूप छः प्रकार के ज्ञान मन के धर्म हैं, आत्मा के नहीं, जैसा श्रुति कहती है—

> **कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिः**
> **ह्रीः धीः भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति।**

---

[1] **कांड १**

ज्ञान स्थिर होता है न कि केवल तीन ही क्षण रहता है। उत्पन्न हुए ज्ञान के उद्दीपक शब्द और विषय हैं। बुद्धि, चेतन आदि इसी ज्ञान के पर्याय हैं। ज्ञान पुन सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक होता है। 'सात्विक-ज्ञान' यथार्थ ज्ञान है और यही 'प्रमा' कहलाता है। 'राजसिक ज्ञान' राजस-सामग्री से उत्पन्न होता है और नाना प्रकार का होता है। यही व्यवहार का उपयोगी ज्ञान है। अतएव परमार्थ दृष्टि से राजस ज्ञान में प्रामाण्य नहीं है। 'तामस ज्ञान' भी अप्रमाण ही है। पामर तथा नास्तिकों का ज्ञान तामस है। अच्छे लोग इस की निंदा करते हैं। अतएव यह हेय है।

'राजस ज्ञान' सविकल्पक ही होता है, क्योंकि इसी से लोक में व्यवहार चलता है। ज्ञान यद्यपि पहले निर्विकल्पक ही होता है किन्तु उस में लौकिक कार्य नहीं चलता है, और यह सात्विक रूप में एक ही प्रकार का है। वल्लभ दोनों प्रकार के ज्ञान—निर्विकल्पक और सविकल्पक—स्वीकार करते हैं। पहला तो इन्द्रियाश्रित है। ... यथार्थ ... सात्विक किंतु राजस में ही परिगणित होता है।

संशय, विपर्यास, निश्चय, स्मृति तथा स्वाप ये पाँच 'सविकल्पक ज्ञान' के भेद हैं।[1] 'सुषुप्ति' भी स्वप्न का ही अवांतर भेद है। आत्मस्फुरण वहाँ स्वयं हो जाता है।[2] 'चिन्ता' स्मरण के अंतर्गत है। 'प्रत्यभिज्ञा' तो निश्चयज्ञान ही है।

कारण

वल्लभ के मत में 'कारण' दो ही प्रकार के हैं—समवायि और निमित्त। समवाय और तादात्म्य एक वस्तु है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ये ही तीन 'प्रमाण' इन्हों ने माना है।

'आकाश' और 'काल' के समान 'दिक्' को भी इन्हों ने स्वीकार किया है। इस का ग्रहण साक्षात् नहीं होता किंतु ग्राह्य-अर्थ के विशेषण रूप से।[3]

इस प्रकार संक्षेप में उक्त चारों प्राचीन वैष्णव-सम्प्रदायों का वर्णन यहाँ किया गया है। इन में से रामानुजाचार्य तथा वल्लभाचार्य का मत विशेष रूप से आजकल भी प्रचलित है। इन की अपेक्षा अन्य दोनों सम्प्रदाय गौणभूत मालूम होते हैं। ये सब भक्तिमार्ग के उपासक होते हुए भी अपने-अपने उपास्य देवता के भेद के कारण परस्पर भिन्न मालूम

---

[1] 'भागवत', तृतीयस्कंध [2] 'प्रस्थानरत्नाकर' पृ० ६
[3] वही पृ० ३७

होते हैं। इन सबों के उपर्युक्त तत्त्वों का विचार करने से बहुत कुछ समान बातें मिलती है। फिर भी भेद तो स्पष्ट ही है। तत्त्वदृष्टि से भी व्यवहारावस्था में ऐसा भेद रखना ही पड़ता है। ये भेद न केवल शास्त्रीय बातों ही में देख पड़ते हैं, किंतु उन के रहन-सहन तथा आचार और विचारों में तो और भी स्पष्ट है। पहले इन मतों के अनुयायियों में परस्पर विद्वेष नही था। सभी मत को सब कोई आदर-दृष्टि से देखते थे, और अपने मत का भी पालन सुचारु रूप से करते थे। किंतु बाद से दुराग्रह, आवेश, तथा बुद्धि में कलुषता और संकोच इतना अधिक हो गया कि इन में से एक के अनुयायी दूसरे मतवाले के शत्रु बन गए और उन के प्रति निंदा आदि कुत्सित व्यवहार करने में भी अपने वैष्णवत्व की ही रक्षा समझने लगे। इस से यह स्पष्ट है कि इन लोगों में पश्चात् भक्ति के उच्च आदर्श का ज्ञान भी नही रहा और मुझे तो यही अनुमान होता है कि ये सभी वैष्णव बहिरंग तत्त्वों ही में लिप्त हो गए हैं, और वैष्णव-संप्रदाय की अंतरंग बातों की ओर न तो इन का ध्यान है और न ये लोग उसे समझने की चेष्टा ही करते हैं। इसी कारण कहीं-कहीं इन के व्यवहार भी लौकिक दृष्टि से निंदनीय समझे जाते हैं। इन का आदर्श कितना उच्च था और किस प्रकार इन के दिव्य-दृष्टि वाले आचार्यों ने भक्ति की पराकाष्ठा का स्वयं अनुभव कर सांसारिकों के लिए भी दयावश संप्रदाय को चलाया और योग्य भक्तों को सन्मार्ग दिखाया! किंतु कैसा अधःपतन अब है! इस के यथार्थ तत्त्वों से लोग इस प्रकार अनभिज्ञ हो गए हैं कि भक्ति को 'मुक्तिप्रद' न समझकर 'भुक्तिप्रद' समझते हैं, और 'अन्धा अन्धेनैव नीयमाना.' इस कहावत को प्रत्यह चरितार्थ कर रहे है। यही एक मात्र हेतु है कि ज्ञानमार्ग को ही अभी भी लोग निरुपद्रव, कल्याणप्रद तथा मुक्ति देने वाला समझते हैं और ज्ञानपूर्वक नामधारी इन वैष्णव मतों से दूर रहना अच्छा समझते हैं।

(समाप्त)

अनारकली

[रचयिता—श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह]

कमनीय अनारकली जो थी राजमहल की वासी।
वह बनी कुमार-हृदय की स्वामिनी प्रेम की प्यासी॥

दिव में दिवांगनाएं भी थीं उसे देख कर लज्जित।
छवि के प्रकाश से उस ने नृप-सदन किया आलोकित॥

सुकुमार कुमार-हृदय की स्वर्गीय प्रेम की प्रतिमा।
ली छीन अनारकली ने नव-कुसुम-कली की सुषमा॥

अपने इस भाग्योदय पर वह फूली नहीं समाई।
पर निठुर नियति ने आकर कांटों की सेज बिछाई॥

प्रिय से मिलने को सरिता थी बहती उछल-उछल कर।
पर मिल न सकी सागर से था खड़ा बीच में भूधर॥

कामना-कुसुम तो फूले पर कभी बहार न आई।
प्रिय-प्रेम-वारि-सिंचित भी वह हेम-लता मुरझाई॥

बंदी बन गई अभागी रह सकी न सुख के घर में।
स्वप्नों का स्वर्ण-निकेतन हो गया नष्ट पल भर में॥

युवती की यौवन-सरिता मिल गई दुःख-सागर में।
जीवन की मधुर उमंगें हो गई बंद गागर में॥

दुर्लभ आकाश-सुमन-सा था उसे मिलन प्रियतम का।
पर किया प्रेम से पालन जीवन के प्रेम-नियम का॥

पल-पल प्रियतम की झाँकी देखा करती थी मन में।
बस एक यही सुख पाया उस ने बंदी-जीवन में॥

थे छिपे प्रेम-दुख दोनों उस के भीगे आँचल में।
रहती थी सदा निमज्जित वह निज अथाह दृग-जल में॥

छिप गए मनोरथ-तारे उर-नभ के दुख-बादल में।
केवल कुमार-स्मृति चपला अंकित थी अंतस्तल में॥

दुख-दलित प्राण अबला के थे नहीं निकल भी जाते।
बस प्रेम-पयोनिधि में थे डूबते और उतराते॥

कारागृह से तो छूटी पर गई अकेली वन में।
ले गई साथ स्मृति कोमल केवल कुमार की मन में॥

प्रासाद-वासिनी भावी भारत-भूपति की प्यारी।
दुखिया अनार गिरि-वन में घूमी विपत्ति की मारी॥

थी जहा-जहां वह जाती रँगती थी भूमि विपिन में।
पैरो के छाले आँसू थे बहा रहे दुर्दिन में॥

लतिकाओं से वह लिपटी फूलों को व्यथा सुनाई।
पर कहीं अनारकली ने थोड़ी भी शांति न पाई॥

सरिता के शीतल-जल में दिन भर रह गई समाई।
पर शीतलता न तनिक भी उस के जीवन में आई॥

सपने में भी प्रिय-दर्शन वह कभी नहीं थी पाती।
करने पर भी चेष्टाएं उस को थी नींद न आती॥

खाना-पीना सब छोड़ा ईश्वर में ध्यान लगाया।
तो भी सलीम तरुणी से जा सका न हाय भुलाया

दे सकी न जिस को जीवन वह बनी न उस की दासी।
पर हँसी-खुशी से तरुणी चढ़ गई प्रेम की फाँसी॥

पी गई गरल का प्याला प्रिय-अधर-सुधा की प्यासी।
छिप गई शीघ्र संध्या की वह करुण अरुण आभा-सी॥

तीन कविताएं

[रचयिता—श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत]

(१)

गंगा का प्रभात

गलित ताम्र भव : भृकुटि-मात्र रवि रहा क्षितिज से देख,
गंगा के नभ-नील निकष पर पड़ी स्वर्ण की रेख।
आर-पार फैले जल में घुल, कोमल नव आलोक
कोमलतम बन निखर रहा, लगता जग अखिल अशोक !

नव किरणों ने विश्वप्राण में किया पुलक संचार,
ज्योति-जड़ित बालुका-पुलिन हो उठा सजीव अपार।
सिहर अमर जीवन-कपन से कँप-कँप अपने आप,
केवल लहराने को लहराता मृदु लहर-कलाप।

सृजन-तत्व की सृजन-शीलता से हो अवश अकाम
निरुद्देश जीवन-धारा बहती जाती अविराम।
देख रहा अनिमेष—हो गया स्थिर, निश्चल सरिता-जल,
बहता हूँ मैं, बहते तट, बहते तरु, क्षितिज, अवनितल।

यह विराट् भूतों का भव, चिर-जीवन से अनुप्राणित,
विविध विरोधी तत्वों के संघर्षण से संचालित।
निज जीवन के हित असंख्य प्राणी हैं इस के आश्रित,
मानव इस का शासक, आतप, अनिल, अन्न, जल शासित।

मानव-जीवन प्रकृति-संचलन मे विरोध है निश्चित,
विजित प्रकृति को कर उस ने की विश्व-सभ्यता स्थापित।
देश, काल, स्थिति से मानवता रही सदा ही बाधित,
देश, काल, स्थिति को करगत कर करना है परिचालित।

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो बनना है अब जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित करनी है संस्कृति नव।
मानवता के युग-प्रभात में मानव-जीवनधारा
मुक्त अबाध बहे, मानव-जग सुख-स्वर्णिम हो सारा।

(२)

गंगा की साँझ

अभी गिरा रवि ताम्र-कलश-सा गंगा के उस पार--
क्लांत पांथ : जिह्वा विलोल जल में रक्ताभ प्रसार।
धूमिल जलदों से धूसर नभ विहग-छदों से बिखरे
धेनु-त्वचा से सिहर रहे जल में रोओं से छितरे।

दूर, क्षितिज में चित्रित-सी उस तरुमाला के ऊपर,
उड़ती काली विहग-पाँति रेखा-सी लहरा सुंदर।
संध्या का ईषत् उज्वल कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्यपटी को बना रहा गंभीर, गाढ़ रँग भर-भर।

शांत, स्निग्ध संध्या सलज्ज मुख देख रही जल-तल में
नीलारुण अंगों की आभा छहरी लहरी-दल में।
झलक रहे जल के अंचल से कंचु जलद स्वर्णप्रभ,
चूर्ण कुंतलों-सा लहरों पर तिरता घन ऊर्मिल नभ।

उड़ी आ रही हलकी खेवा दो आरोही लेकर,
नीचे ठीक तिर रहा जल में छाया चित्र मनोहर

मधुर प्राकृतिक सुषमा यह भरती विषाद है मन में,
मानव की सजीव सुंदरता नहीं प्रकृति-दर्शन में।

पूर्ण हुई मानव अंगों में सुंदरता नैसर्गिक,
शत ऊषा-संध्या से निर्मित नारी-प्रतिमा स्वर्गिक।
भिन्न-भिन्न बह रही आज नर-नारी जीवनधारा—
युग-युग के सैकत कर्दम से रुद्ध—छिन्न सुख सारा।

(३)

कुसुम के प्रति

भाव, वाणी या रूप?
तुम क्या हो, चिर-मूक सुमन!
किस के प्रतिरूप?
मौन सुमन!
सुंदरता से अपलक चितवन
छू कोमल मर्मस्थल,
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती (खुल दल पर दल),
सहज समझ लेता मन!

विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निर्भर!
मैं अवाक् हूं तुम्हें देख कर
मौन रूपधर!
रूप नहीं है नश्वर,
सत्ता का वह पूर्ण प्रकृत स्वर
सुंदर है वह . . . . अमर!

शरत्‌चंद्र की प्रतिभा

[लेखक—श्रीयुत् इलाचंद्र जोशी]

शरत्‌चद्र के प्राणावेग की तीव्रता का ही यह फल है कि साहित्य-जगत मे प्रवेश करते ही उन्हों ने जनता की प्राण-धारा को अत्यंत प्रबलता से आदोलित कर दिया। जिस द्रुत गति से शरत्‌चद्र ने लोकप्रियता प्राप्त की वह अभूतपूर्व थी। वर्तमान युग में भारत के अन्य किसी भी श्रेष्ठ कलाकार को अपनी पहली ही रचना से साहित्य मे शीर्ष-स्थान प्राप्त कर लेने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ है। जब मै शरत् बाबू से प्राय. सत्रह वर्ष पहले पहली बार मिला था तो उन्हो ने मुझ से कहा था कि जब उन की 'रामेर सुमति' शीर्षक कहानी 'यमुना' नामक एक अत्यत साधारण सामयिक पत्रिका मे छपी थी तो उस समय उक्त पत्रिका के केवल पचास ग्राहक थे। उस कहानी के छपते ही दूसरे ही महीने उस के पाँच सौ ग्राहक हो गए, और उस विशेष अक की, जिस मे उन की कहानी छपी थी, ऐसी माँग हुई कि 'यमुना' के अध्यक्ष को उसे फिर से छापना पड़ा। शरत् बाबू ने सपरिहास मुझ से कहा कि इस प्रकार वह बायरन की तरह एक विशेष रात मे सो कर जब प्रात'काल उठे तो उन्हो ने सारे बंगाल मे अपने को प्रसिद्ध हुआ पाया।

मै मानता हूं कि लोकप्रियता ही किसी कलाकार की श्रेष्ठता का प्रमाण नही हो सकती और अधिकाश श्रेष्ठ कलाकार या तो अपने जीवन के अतिम काल मे या अपनी मृत्यु के बाद मान्य हुए है। पर शरत्‌चद्र की लोकप्रियता के सबध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रारभ मे किस श्रेणी की जनता ने उन्हे वरण किया। 'यमुना' के जो पाँच सौ ग्राहक हुए उन में से अधिकाश व्यक्ति सुरुचि-सपन्न साहित्यिक थे, यह बात मैने शरत् बाबू के ही मुँह से सुनी है। उन साहित्यिको के प्रचार के फल-स्वरूप जन-साधारण भी शरत्‌चद्र की मायावी कला का रस ग्रहण करने के लिए उत्सुक हो उठे और उन्हो ने अपनी बुद्धि

की पहुँच तथा भावना की गति के अनुसार उस में एक ऐसी विशेषता पाई जो उन्हे अपूर्व तथा अनिर्वचनीय सी लगी। साधारणत जनता को वही रचनाए अधिक प्रियकर लगती है जिन मे या तो लोमहर्षक घटनाओ का वर्णन हो, या स्त्री-पुरुष सबंधी अनाचारो की उच्छृखल क्रीडा का लोल-लीला-लास्य नग्नरूप मे चित्रित किया गया हो। पर शरत्चद्र की लोकप्रियता की नीव जिन दो प्राथमिक छोटी-छोटी रचनाओ ('रामेर सुमति' तथा 'बिदुर छेले') द्वारा प्रतिष्ठित हुई है उन मे ये दोनो बाते लेश-परिमाण मे भी वर्तमान नही है। इन दोनो कहानियो में शरत्चद्र ने नारी-हृदय की अत्यत सुकुमार तथा सकरुण मातृ-वेदना को जीवन के नाना आघात-प्रतिघात, तथा सघर्ष-विघर्ष के बीच और नाना प्रति-क्रियाओ के वैपरीत्य तथा वैमनस्य के ऊपर ऐसे अदृश्य तथा अजानित रूप में विजय प्राप्त करते हुए दिखाया है कि पाषाण-प्राण भी इस मायावी कलाकार की लेखनी के मर्मस्पर्श से शत-शत अश्रुधाराओ के रूप मे उच्छ्वसित हो कर फूट न पडे, यह सभव नही। केवल इन्ही दो कहानियो मे नहीं, इस के बाद लिखी गई 'मेजदिदि,' 'बडदिदि', 'निष्कृति' आदि कहानियो मे भी हम शरत्चद्र की अनुभूति-प्रवणता की वही अत स्पर्शी सहृदयता, वही सूक्ष्मतम सवेदन-शीलता तथा वही विचक्षण मर्मज्ञता पाते है। इन सब कहानियो मे शरत्-चद्र ने कठोर वास्तविकता से ताडित जिस कमनीय आदर्श के पावन आलोक की करुण-किरणो का विकीरण किया है उस का जन-समाज मे सहजप्रिय तथा आदरणीय बन जाना कोई साधारण बात नही है।

अग्रेजी मे जिसे 'रियलिस्टिक आर्ट' कहते है शरत्चद्र ने उस के महत्व को स्वी-कार किया है। पर उसी को कला का चरम रूप नही माना है। जीवन की कठोर वास्त-विकता की अवज्ञा उन्हो ने कभी नहीं की है और स्वाभाविकता के वह सदा कट्टर अनुयायी रहे है, पर "कला केवल कला के लिए है", इस गहन तत्वयुक्त नीति के बहु-प्रचलित विकृत अर्थ का अनुसरण उन्हों ने कभी नही किया है। उन्हों ने पूर्वोक्त रचनाओं मे वास्तविकता की नीव पर सहज स्वाभाविक और साथ ही अज्ञात रूप से जिन कोमल-कमनीय तथा स्निग्ध-मधुर आदर्शो की स्थापना की है वे चिर-कल्याणोन्मुख शाश्वत मानव-मन को अदृश्य चुबक-शक्ति से बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते है। शरत्चद्र की पूर्वोल्लिखित कहानियो के नायक-नायिकाओ मे आत्म-विरोधी प्रवृत्तियो का द्वद्व अत्यत उत्कट रूप से चलता है और वे अपन मन के उलट-सीध चक्रो के जटिल जाल म बडी बुरी तरह जकड

रहते हैं। तथापि उन सब की द्वंद्वात्मक जटिलता के भीतर तरल स्नेह की एक सहज सरलता परिपूर्ण सामंजस्य के साथ विराजमान रहती है। उदाहरण के लिए 'रामेर सुमति' के राम में बाहर से अत्यंत दुष्ट-प्रकृति और उजड्ड स्वभाव दिखाई देने पर भी उस के अतस्तल मे निष्कलुष स्नेह की ऐसी अंत -सलिलधारा छिपी हुई है जिसे या तो नारायणी अपनी सहज सहृदयता की अतर्प्रेरणा से देख सकती है या स्वय कहानीकार अपनी मार्मिक अनुभूति से। 'बिन्दुर छेले' के नायक-नायिकाओं के बीच इन्ही आत्म-विरोधी प्रवृत्तियो के पारस्परिक सघर्ष मे वैमनस्य की पंकिलता मथित होते रहने पर भी उन के अतर्प्रदेश मे छिपे हुए पुण्य-प्रेम की पावन-धारा उस पकिलता को क्षालित कर देती है। 'मेजदीदी' (मँझली बहन) मे पितृ-मातृ-हीन मरभुखा लड़का केष्टो जब अनाथावस्था मे अपनी सगी बहन के पास जाने पर बहन द्वारा अत्यत कटु शब्दो मे विताडित किया जाता है तो बहन की देवरानी का सहृदय स्नेह पा कर, उसे मातृस्थानीया मान कर, 'मँझली दीदी' कह कर पुकारने लगता है। मँझली दीदी इस अनाथ बालक को सच्चे हृदय से प्यार करने पर भी अपने पति, जेठ और जेठानी (केष्टो की सगी बहन) के निरतर विरोध से उस के प्रति अवज्ञा का भाव दिखाने लगती है और केष्टो को अपने यहा आने से मना कर देती है। पर जब देखती है कि उस निरीह बालक के प्रति ससार और समाज का अत्याचार बढता चला जाता है तो वह रह नही सकती और अत में सारे परिवार के प्रति विद्रोह घोषित कर के केष्टो को साथ ले कर अपने मायके चले जाने को तैयार होती है। उस का दृढ निश्चय देख कर पति गिड़गिड़ा कर उस से क्षमा-याचना कर के दोनों को अपने घर वापस ले जाता है। 'बड़ दिदि' मे सासारिक व्यवहार से निपट अनभिज्ञ, अन्यमनस्क स्वभाव, छल-कपट-रहित एक ग्रेजुएट जतु का एक युवती विधवा के प्रति विचित्र रहस्यमय स्नेह दिखाया गया है। विधवा माधवी पर्दे की आड़ में रह कर इस जतु को (जो उस की आठ-नौ साल की बहन को पढाया करता है) एक नादान शिशु की तरह मान कर उस के प्रति स्नेह का वही भाव रखती है जो अपनी छोटी बहन के प्रति। पर एक बार जब वह जतु सामाजिक आचार-विचार के प्रति अपनी निरी अज्ञानता के कारण पर्दे की कुछ परवा न कर भीतर जा कर 'बडी बहन !' कह कर माधवी को पुकारता है तो माधवी संकुचित और त्रस्त हो कर कडे शब्दो मे अपनी छोटी बहन से कहती है कि अपने मास्टर को बाहर ले जाये इस के बाद वह 'जतु' उस घर को छोड कर किस प्रकार कलकत्ते की सड़को में मट

कता है और गाडी से दब कर अस्पताल मे किस प्रकार 'बड़ी बहन !' 'बडी बहन !' कह कर विकारग्रस्त अवस्था में कराहता है और माधवी के मन मे उस के प्रति कैसी सकरुण और सुकुमार सनवेदना उमड पडती है और अत मे किस प्रकार अत्यन्त मार्मिक परिस्थिति मे दोनो का पुनर्मिलन होता है, इन सब घटनाओ का वर्णन जिस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेपण तथा सहृदय सवेदन के साथ लेखक ने किया है वह वर्णनातीत है। 'वैकुठेर उइल' मे दो भाइयो के विचित्र मनोभावों का चित्रण करते हुए दिखाया गया है कि वडे भाई के बाहर से अत्यत रुक्ष-प्रकृति, कठोर-स्वभाव तथा लठ मालूम पडने पर भी भीतर ही भीतर विह्वल भावोद्वेग से उस का हृदय सदा तरंगित रहता है, बाहर से वह अत्यन्त स्वार्थी, और अपने छोटे भाई के प्रति अत्यंत अत्याचार-परायण मालूम पडने पर भी जी-जान से उसे चाहता है और उस के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहता है। 'निष्कृति' मे दिखाया गया है कि एक सम्मिलित परिवार मे सब भाई कमाते हैं, पर सब से छोटा भाई निकम्मा है। मँझले भाई के सिखाने से ज्येष्ठ भ्राता इस निकम्मे भाई को सब अधिकारो से वचित करने के उद्देश्य से घर जाता है, पर अपनी सहज अत करुणा तथा स्वाभाविक स्नेहभाव के कारण अपनी अज्ञात चेतना की प्रेरणा से उस को सब से अधिक उपकृत कर आता है। इसी ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी, निकम्मे भाई की पत्नी को सब समय तिरस्कृत करती रहती है पर उस का अतर-चेतन उस पर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहता है।

मै ने शरत्चद्र से एक बार चेखोव की कला का विश्लेपण करते हुए कहा था कि ऐसा सच्चा कलाकार मै ने अपने जीवन मे कोई नही पाया। शरत्चद्र ने मेरी बात का पूर्ण समर्थन किया, पर साथ ही कहा—"भारतीय सत्यता का आदर्श कुछ दूसरा ही है। निरर्थक सत्य को हमारे यहा कभी विशेप महत्व नही दिया गया। हमारे यहा कल्याण और मगल की भावना को सर्वदा उच्च स्थान दिया गया है, इस लिए जिस सत्य की पृष्ठभूमि मे यह भावना न हो उस के प्रति मेरे मन मे कभी आदर का भाव नही रहा है। मै ने कला को कभी क्रीड़ा-कौतुक के रूप मे नही देखा है। मैं उसे मनुष्य के जीवन की चरम साधना के रूप मे मानता आया हूं।"

पूर्व-वर्णित रचनाओ द्वारा शरत्चद्र साहित्य-क्षेत्र में यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे, संदेह नही। पर जिन रचनाओ द्वारा उन का जयघोष दुन्दुभि-निनाद के साथ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हो उठा वे बाद में प्रकाशित हुई थीं वे

रचनाएँ हैं—'देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत'। इन रचनाओं में शरत्चंद्र ने अपनी प्रदीप्त प्रतिभा के ज्वलंत आलोक मे सामाजिक विधि-निषेधो से विजड़ित वैयक्तिक आत्मा के भीतर स्वतन्त्रता तथा विद्रोह की वह आग भडका दी जिस की लपटे दावाग्नि की तरह थोडे ही समय मे सर्वत्र फैल गई। समाज के कुटिल चक्र के प्रति असतोष तथा आत्म-स्वातंत्र्य की आकाक्षा का अस्पष्ट भाव समाज के प्रत्येक वैयक्तिक प्राणी के भीतर वर्तमान था, शरत्चंद्र ने अपनी उद्दाम आवेगमयी, अप्रतिहत गतिमयी, मर्म-प्रवेशिनी प्राणशक्ति की विस्फूर्जना से उस भाव को वैप्लविक रूप से उद्वेलित कर दिया। समाज के बद्ध वातावरण के विषमय आक्रोश द्वारा पीडित प्रत्येक आत्मा उन्मुक्त विचार-धारा के इस परिप्लावित तरग-प्रवाह मे बह कर अपने को निर्मुक्त और निर्बंध समझ कर तरगायमान हो उठी।

'देवदास' ने जन-साधारण मे जितना आदर पाया है, कला-पारखियो की विवेचना मे भी वह उसी परिमाण मे खरा उतरा है। 'नाविक के तीरो' की तरह गभीर घाव करने वाली इस विशिष्ट रचना का जो स्थायी प्रभाव पाठको के मन पर पड़ता है, उस के अतर्गत कारण का अन्वेषण करने पर जब हम उस के नायक और नायिका के मूल चरित्रो का विश्लेषण करते है तो पार्वती के चरित्र के गंभीर जलधि के ऊपर देवदास का चरित्र एक वेगशील तरग की तरह द्रुतगति से प्रवाहमान मालूम पडता है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि नारी-प्रकृति सदा केंद्रानुग (सेंट्रीपेटल) चिर-स्थिर तथा चिर-सरक्षणशील (कन्सरवेटिव) होती है और पुरुष-प्रकृति सदा केंद्रातिग (सेंट्रीफ्यूगल) चिर-चंचल तथा चिर-परिवर्तनशील होती हैं। शरत्चंद्र की तीनों श्रेष्ठ रचनाओं ('देवदास', 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकांत') के नायक-नायिकाओं के चरित्र-चित्रण मे हम नारी-प्रकृति तथा पुरुष-प्रकृति की इन दोनों विशेषताओ को चरम रूप में प्रस्फुटित पाते है। यदि शरत्चंद्र के स्त्री-चरित्रो मे वह अतलव्यापी गाभीर्य, वह चिर-सरक्षणशील स्थैर्य, वह अनत-कालीन मूक, मौन, अटल, धैर्य न होता जैसा कि हम उन मे पाते हैं, तो उन के सब पुरुष-चरित्र हवाई बुद्बुदो की तरह अथवा वात-विताड़ित मेघ-खंडों की तरह छिन्नाधार हो कर शून्य मे विलीन होते हुए दिखाई देते। देवदास एक पतित, दुर्बल और क्षीण इच्छाशक्ति-सपन्न सहृदय प्राणी है; शरत् के प्राय सभी प्रधान-चरित्रों के सबध में यही बात कही जा सकती है। इस में सदेह नहीं कि उस की आत्मा के अनेक वाह्य स्तरो को लघित कर के उस के प्रदेश में यदि कोई प्रवेश

कर सके तो वहाँ अवश्य ही महत् प्रेम का एक अव्यक्त बीज पाया जायगा, और यही उस के भ्रष्ट चरित्र का उन्नायक तत्त्व है, जिसे अग्रेजी मे 'रिडीमिग फीचर' कहते है। इस से अधिक उस मे हम कुछ नही पाते। पर पार्वती के सबध मे यह बात नही कही जा सकती। उस के चरित्र-विश्लेषण मे ऐसा मालूम होने लगता है जैसे वह जन्म से ही जीवन की गहरी अनुभूतियो से चिर-परिचित हो कर आई हो और अपने अतल-व्यापी प्रेम की सुदृढ शक्ति के बल से अपने सारे जीवन मे मृत्यु के साथ एक सहेली की तरह क्रीडा करती चली गई हो। उस का स्वभाव आवेग-प्रवण और भाव-विभोर अवश्य है, पर वह आवेग उस की आत्मा के निगूढ स्थैर्य और अनत धैर्य द्वारा सुसयत है। यही कारण है कि देवदास पार्वती के महत् प्रेम की मर्मव्यथा का बृहत् भार न सह सकने के कारण उच्छृखल हो कर विलीन हो गया, और पार्वती देवदास के प्रेम की स्वर्गीय पीडा को वज्रमणि की तरह अपने अतस्तल मे धारण करके अटल धैर्य के साथ अपने वृद्ध स्वामी तथा सौतेले लडके-लडकियो की सेवा द्वारा अपना सासारिक कर्तव्य पूर्ण-रूप से निबाहती चली गई।

पहले ही कहा जा चुका है कि शरत् के पुरुष-चरित्र अत्यन दुर्बल इच्छाशक्ति-सपन्न उच्छृखल प्राणी है, जो गेटे के शब्दो मे ऐसे जीव है "जिन के हृदयो मे भावो का तूफान मचा रहता है, पर जिन की अस्थियो मे सारतत्त्व नाम को भी नही पाया जाता।" शरत् के 'चरित्र-हीन' का नायक सतीश भी देवदास की ही तरह इसी प्रकार का दुर्बल प्राणी है। गेटे के 'वेर्टेर' की आलोचना करते हुए फ्रेंच आलोचक गिजो ने कहा था कि "वर्तमान युग के पुरुष की आकांक्षा अत्यत प्रबल होती है, पर उस की इच्छाशक्ति अत्यन दुर्बल होती है।" देवदास और सतीश के सबध में यह बात पूरी तरह से लागू है। सतीश के जीवन के असतोप का भी यही कारण है कि वह अपने भीतर भावो का तूफान मचा हुआ पाता है और उस के भीतर हृदयहीन समाज के मृत्यु-कठिन बधनो को न मान कर चलने की एक महत् आकाक्षा भी वर्तमान रहती है, इसी कारण वह कुलत्यागिनी तथापि सदाचरणशीला सावित्री को आंतरिक प्रेम से वरण करने के लिए अधीर हो उठता है। पर सावित्री जानती है कि सतीश का उस के प्रति सहृदय प्रेम होने पर भी उस मे दैहिक आकाक्षा के भाव की प्रधानता है, इस लिए यद्यपि वह उसे अपने प्राणो से भी अधिक चाहती है, तथापि उस के प्रेम को बड़े ढग से तिरस्कृत करती चली जाती है। फल यह होता है कि सतीश सावित्री की अवज्ञा का भार न सह सकने के कारण में डूबता चला

जाता है। सावित्री नाना घटना-चक्रो द्वारा विताड़ित होने पर भी सतीश को नही भूलती और उस की परम-मंगल-कामना के भाव से प्रेरित हो कर अत मे उस के दुर्वल मन मे यह सबल भाव भरने में समर्थ होती है कि त्याग के भाव मे ही उन दोनो के प्रेम की महत्ता है, न कि वैवाहिक तथा शारीरिक मिलन मे। इस प्रकार 'चरित्रहीन' मे अनंत प्रेमपूर्ण तथा चिर-विरागिनी सावित्री के महत् चरित्र के अतर्गत महान् त्याग, असीम करुणा तथा अपरिमित आत्म-वल के भाव अत्यन सुदर रूप से अकित पाए जाते हैं।

शरत्चद्र पर सब से बडा कलक यह लगाया जाता है कि उन्हों ने अपनी रचनाओं मे असती नारियो तथा वेश्याओ के चरित्र की महत्ता प्रदर्शित की है। शरत् की सब से बडी विशेषता इस बात पर रही है कि किसी भी स्त्री अथवा पुरुष के व्यक्तित्व का विचार उन्हो ने उस के बाह्य आचरण से नहीं किया है। सब बाह्याचारो के जटिल जाल के भीतर मनुष्य के अतरतम प्रदेश मे सहृदय वेदना का जो अज्ञात स्रोत बहता है उसे उन्मुक्त करके शरत् ने पीडित मानवता के आत्मगौरव की घोषणा की है। पाप को उन्हो ने कभी प्रश्रय नही दिया है, पर पापी के प्रति उन के हृदय मे सदा करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहा है।

मैं ने एक बार शरत्चद्र से प्रश्न किया था—"भारतीय नारी के सतीधर्म के आदर्श के सबंध मे आप के क्या विचार है?"

उन्हो ने जो उत्तर दिया था उस का भाव इस प्रकार है—"मैं मानव-धर्म को सती-धर्म के बहुत ऊपर स्थान देता हूँ। सतीत्व और नारीत्व, ये दोनो आदर्श समान नही है। नारी-हृदय की निखिल-कल्याणकारी करुणा, उस की मातृवेदना उस के सतीत्व से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। बहुत सी स्त्रिया ऐसी देखी गई है जिन का किसी दूसरे पुरुष से कभी किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक सबध नही रहा है, तथापि उन के स्वभाव में अत्यत नीचता, घोर सकीर्णता, परद्रोह तथा चौरवृत्ति पाई गई है। इस के विपरीत ऐसी पतिताओं से मेरा परिचय रहा है जिन के भीतर मैं ने मातृवेदना और नारी-हृदय की यथार्थ करुणा का अथाह सागर उमडा हुआ पाया है।"

मैं ने फिर प्रश्न किया—"यदि यही बात है तो आप ने 'श्रीकात' में अन्नदा दीदी के सतीत्व की महिमा ऐसे जोरदार शब्दों मे क्यों घोषित की है कि उस की प्रदीप्त ज्योति के आगे आप के अन्यान्य नारी-चरित्र म्लान पड़ गए है?"

इस बात पर शरत्चद्र मद-मद मुसकराए और बोले—"तुम्हारी यह बात मैं

मानता हूँ। अन्नदा दीदी के प्रति वास्तव मे मेरी भी आतरिक श्रद्धा है। मेरे जन्मगत सस्कार आखिर भारतीय ही है। फिर भी तुम्हे मैं यह बात बता देना चाहता हूँ कि उस के एकनिष्ठ पातिव्रत धर्म ने मेरी श्रद्धा उतनी नही उभाडी है जितनी उस की प्रेम-प्लावित आत्मा के मुक्त प्रवाह ने।"

शरत् की रचनाओ मे वास्तविक जीवन के सबंध मे उन की गहन अनुभूति के प्रमाण घनीभूत हो उठे है। स्पष्ट ही पता चलता है कि मानव-समाज, तथा मानव-स्वभाव के नीच, सकीर्ण जघन्य तथा बीभत्स रूप से वह भली-भाँति परिचित थे। तथापि उन्हो ने इस पहलू को अधिक महत्व न दे कर सहस्रों बुराइयो के भीतर दबी हुई महत् प्रवृत्तियो को मानव-मन की गहनतम गुहा-कदराओ से बाहर निकाल कर दलित मानवता को अमर महिमा का गौरव-मुकुट पहनाया है।

मंझन-कृत 'मधुमालती'

[लेखक—श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल की निर्गुणधारा की एक शाखा प्रेम-प्रधान है, जिस के कवियो ने केवल आख्यानक-काव्यो का निर्माण किया है। ये प्रेम-गाथाएं प्राय सभी मे कुछ विभिन्नता लिए समान है और किसी-किसी ने इतिहासो से नाम ले कर इन पर ऐतिहासिक पुट भी दे दिया है। इन सब मे उसी प्रेमतत्व का वर्णन है, जो ईश्वर को मिलाने वाला है तथा सासारिक वातावरण मे उसी का आभास दिया जाता है। ये काव्य कवि की प्रतिभा तथा योग्यता के अनुसार न्यूनाधिक विशद, सुदर तथा व्यापक हुए है। हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष आरभ होने के कई शताब्दी बाद ऐसे ग्रथ रचे गए और यह परपरा बहुत दिनो तक चलती रही। इस प्रकार के कवियो मे, जो विशेषत: साधु-फकीर होते थे, स्पष्टत: दो संप्रदाय हो गए—एक हिंदू तथा दूसरा मुसल्मान। साहित्य की दृष्टि से दूसरा ही सफल हुआ और उन के काव्य विशेष महत्व के हुए। कारण यह हुआ कि हिंदू सुकवि भक्तगण विशेषत: सगुण-धारा की ओर झुके और निर्गुण-धारा वालों ने भी दूसरी अर्थात् ज्ञान-प्रधान शाखा को अधिक अपनाया। मुसल्मान कविगण ने निर्गुण-धारा की इस शाखा को अपने मनोनुकूल अधिक पाया और वे इसी ओर झुके। सूफी-मत की इसी प्रेमतत्व की ओर रुझान थी और फारसी की मसनवी की प्रथा को ग्रहण कर ये आख्यानक-काव्य बनाए जाने लगे। इन कवियो मे धार्मिक उत्साह भी भरा हुआ था और उस के प्रचारार्थ देश की भाषा को अपनाना ही उन्हे युक्ति-सगत जान पडा। मलिक मुहम्मद जायसी कहते है कि प्रेम-तत्व या प्रेम-मार्ग जिस किसी भाषा मे हो सभी उसे सराहते है—

तुरकी अरबी हिंदुई, भाषा जेतो आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि॥

इस शाखा के प्राचीनतम कवि कुतबन है, जिन का काव्य सन् ९०९ हि० (स० १५५९–६० वि०) मे शेरशाह के पिता हुसैन शाह के आश्रय मे समाप्त हुआ था। इन के

बाद मलिक मुहम्मद जायसी का समय आता है, जिन्हो ने प्रसिद्ध 'पद्मावत' को सन् ९४७ हि० (स० १५९६–७ वि०) मे आरभ किया था। उस समय "शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारिहु ओर तपै जस भानू" था। सन् का दूसरा पाठ ९२७ हि० भी मिलता है पर शेर-शाह केवल सन् १५४०–५ (स० १५९७–१६०२ वि०) तक दिल्ली का बादशाह था, इस लिए यह पाठ ठीक नही है। जायसी ने 'पद्मावत'[1] मे कुछ प्रेमियो का हाल उस समय लिखा है, जब शिव-मदिर में रत्नसेन के मूर्च्छित हो जाने पर पद्मिनी आ कर लौट गई और रत्नसेन के जागने पर सूए द्वारा सदेश भेजने पर उस ने एक पत्र उत्तर मे लिखा था। वह लिखती है कि —

हौ जो गई सिव-मंडप भोरी। तहँवाँ कस न गाँठि तै जोरी।

. . . .

अब जौं सूर होइ चढ़ै अकासा। जौ जिउ देइ त आवै पासा।।
बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला।।
बिक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।।
मधूपाछ मुग्धावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी।।
राजकुँवर कंचन पुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ।।
साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू।।
प्रेमावति कहँ सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा।।

हौं रानी पदमावती, सात सरग पर बास।
हाथ चढौ मै तेहि के, प्रथम करै अपनास।।

. . . .

ऐहुबेधि अरजुन होइ, जीतु दुरपदी ब्याहु।

पद्मावती के पत्र मे इन सब प्रेमियो का उल्लेख इसी कारण हुआ है कि इन सब ने बडे कष्ट उठा कर तथा शौर्य और वीरता दिखला कर अपनी प्रेयसियो को प्राप्त किया था और उस ने रत्नसेन को उत्साहित करने के लिए ही यह सब लिखा था। आचार्यवर पडित

---

[1] काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'जायसी-ग्रंथावली', प्रथम पृ० १०७–८

रामचद्र शुक्ल लिखते है[1] कि "इन पद्यो मे जायसी के पहले के चार काव्यो का उल्लेख है—'मुग्धावती', 'मृगावती,' 'मधुमालती' और 'प्रेमावती'। इन मे से 'मृगावती' और 'मधु-मालती' का पता चल गया है, शेष दो अभी नही मिले है। जिस क्रम से ये नाम आए है वह यदि रचनाकाल के क्रम के अनुसार माना जाय तो 'मधुमालती' की रचना कुतबन की 'मृगावती' के पीछे की ठहरती है"। पर आप ने उसी वज़न पर 'सपनावती' पर कुछ राय नहीं दी है। 'जायसी-ग्रथावली' का 'सुरसर' इतिहास मे 'सुरपुर' हो गया है, इसी से स्यात् ऐसा हो गया है। जायसी ने उक्त सब ग्रथो को देखा था या उन सब के विषय मे निश्चयपूर्वक सुना था, ऐसा कहना कहाँ तक ठीक माना जाय यह नही कहा जा सकता, पर यह अवश्य निश्चय है कि वह इन आख्यानो को जानते थे। वे काव्य-रूप मे जायसी के पहले या उन के समय मौजूद थे, इस का निश्चय केवल उक्त उद्धरण से नहीं हो सकता। जायसी के पूर्व-वर्ती कवि कुतबन की 'मृगावती' का उल्लेख हो चुका है। 'मधुमालती' की एक अपूर्ण प्रति फ़ारसी लिपि मे मिली है, अब उसी पर विचार किया जायगा।

'मधुमालती' की प्राप्त प्रति का आरभ इस प्रकार है—

यह खोती कुल नागिन कारी। त्रिभुवन मोहिनि वृद्ध कुँआरी ॥
प्रथमहिं जन्म जहाँ लहि आई। ते सब मोह भरी की खाई ॥
यह कुल बारी बहुतन्ह चाही। बरबर किए न काहूँ ब्याही ॥
इन पापिन संसार भुरावा। लोभ-बकूची लाभ न पावा ॥
अस चंचल जन चाहै कोई। लाभ मोल स्यों जाव न कोई ॥

कवि ने पाँच-पाँच चौपाई पर एक-एक दोहे दिए है, और इस प्रकार तीन दोहो तक माया के विषय मे लिख कर कथा आरभ कर देते है।

कथा एक चित········। सुनहु कान दै कहौं बखानी ॥
अमी रसिक रस कहे जो कोई। गुन औ दोस बिचारहि सोई ॥

इस प्रति का अत यो है—

कैसहिं पलक ना लागहिं, सहिर सिखान सरीर।
बिन जिव परा धरनि महँ लोटै, जान न जा कछु पीर ॥

---

[1] नागरी समा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृ० १०.

सुनतहि गइ मधुमालति धाई । बीर बीर कै रोवत आई ।।
सिर ऊँचाय कै किय तल कोरै । बिधना स्यो बिनवै कर जोरै ।।
बहु बिलाप कै रोवै रानी । पीवै बारि बारि सिर पानी ।।

इस काव्य की कहानी यह है कि कनेसर के राजा सूरजभान तथा कमला के पुत्र मनोहर को कुछ अप्सराए सोते हुए उठा कर महारस नगर के राजा विक्रमराय तथा रूप-मजरी की पुत्री मधुमालती की चित्रसारी मे ले जा कर उस के पास सुला देती है। जागने पर दोनो मे मिलाप होता है और पुन सो जाने पर वे उसे उस के घर पहुँचा देती है। दोनो प्रेम-व्यथा पाते है। मनोहर खोज मे निकलता है। जहाज के टूटने में वह एक द्वीप मे जा लगता है और चित्तबिसरामपुर के राजा चित्रसेन तथा मधुग की पुत्री प्रेमा का, उस राक्षस को, जो उसे वहा उठा ले गया था, मार कर उद्धार करता है। उसी के साथ वह उस के नगर मे आता है और जब प्रेमा का पिता मनोहर से उस का विवाह करना चाहता है तब वह अस्वीकार कर देती है। यहीं मधुमालती अपनी माता के साथ आती है और मनोहर से मिलन होता है। मधुमालती की माता इस मिलाप मे क्रुद्ध हो मत्रबल से पुत्री को पक्षी बना देती है,जो उडते हुए पीपानेर मानगढ के राजकुमार ताराचद द्वारा पकडी जाती है। मधु-मालती से कुलवृत्त जान कर वह उसे ले कर महारस नगर आता है। वह पुन. उसी प्रकार अपना रूप पाती है। ताराचद मधुमालती से अपने विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तब योगी मनोहर बुलाया जाता है और उस से विवाह होता है। एक दिन प्रेमा को झूलते हुए देख कर ताराचद बेसुध हो जाता है। यहा तक पहुँच कर प्रति खडित हो जाती है पर कथा-प्रवाह से ज्ञात होता है कि अत मे दोनों का विवाह हो गया होगा।

इस प्रति के खडित होने तथा पुष्पिका के अभाव में इस के रचयिता तथा रचना-काल का पता नहीं चलता। केवल बीच मे एक जगह एक दोहे में रचयिता का नाम आया है—

बाँकी अधर सबहि की, अकुलानी बर नारि।
आगे मधुकर खेलहीं, 'मंझन' कहै बिचारि।।

इस कवि की कोई अन्य रचना भी नही मिलती और न इस रचना ही से कोई सहायता मिलती है कि इस का रचना-काल या कवि का कुछ पता लगे केवल जायसी

के उक्त उद्धरण के निर्बल सूत्र पर उसे कुतबन का परवर्ती तथा जायसी का पूर्ववर्ती मान लेने का उचटता-सा प्रयास मात्र किया गया है।

जौनपुर-निवासी जैन कवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित स्वरचित 'अर्द्ध-कथा' मे स० १६९८ तक का अपना जीवनवृत्त किया है। इस का जन्म स० १६४३ मे हुआ था। उक्त पुस्तक के पृ० ३० पर वह लिखता है कि---

तब घर में बैठे रहे, नाहिन हाट बजार।
मधुमालति मृगावती, पोथी दोय उचार॥

यह घटना स० १६६० के लगभग की है, जब वह व्यापार मे घाटा उठा कर घर बैठ रहे थे। इस उद्धरण मे 'मधुमालती' तथा 'मृगावती' नामक दो पुस्तको का उस समय तक कवि-समाज मे प्रचार हो जाना निश्चित हो जाता है तथा वे उस के पहले की रचनाए थी, यह भी निश्चयपूर्वक माना जा सकता है।[१]

कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हाल मे सख्या ७४५ पर खानखाना के पुत्र दाराब खा का एक चित्र प्रदर्शित है, जिस के नीचे नागरी लिपि मे एक कवित्त दिया हुआ है और दोनो ओर के किनारो पर फारसी मे कुछ शैर लिखे हुए है। कवित्त इस प्रकार है---

दर्प दरबार आयो औचक ही हरबर
अंबर अनीक बर बरबर कर कै।
तरपि तुरकमान साहसी दराब खान
कीनो कतलान घमसान उग्र परि कै॥
'मझन' सुकवि कहै यहै चाह पाई जहां
जीत को नगारो बज्यौ बीतल समर कै।
जौ लौ हिमांचल तौ लौ डमरू बजावै संभु
तौलौं डाक चौकी डांकि मार्यौ हर हर कै॥

इस कवित्त मे सुकवि 'मझन' अपने आश्रयदाता तुर्कमान दाराब खां के अंबर की

---

[१] 'हिंदुस्तानी' सन १९३५ पृ० ३४५ ७३

सेना पर विजय पाने का वर्णन करता है। सम्राट् अकबर का अभिभावक बैराम खां तुर्क-मान था। उन्ही के पुत्र नवाब अब्दुर्रहीम खा खानखानां का द्वितीय पुत्र दाराब खां था। जहाँगीर के राज्यकाल मे शाहजहा के दक्षिण जाने पर जब मलिक अबर ने सधि कर ली, तब दाराब खा बरार तथा अहमदनगर का सूबेदार नियत हुआ था। सन् १६२० ई० मे अबर ने संधि तोड कर चढाई की तब दाराब खां ने उसे कई युद्धो मे परास्त किया था और सन् १६२१ ई० मे शाहजहां के द्वितीय बार दक्षिण जाने पर पुन सधि हुई थी। इस के अनतर शाहजहां ने विद्रोह किया और जब वह बगाल पहुँचा तब दाराब खा को वहा का प्राताध्यक्ष नियत किया। शाहजहा के पर्वेज तथा महाबत खा से परास्त हो कर लौट आने पर सन् १६२५ ई० मे दाराब खा जहागीर की आज्ञा मे विद्रोह पक्ष लेने के कारण मारा गया।

इस कवित्त से 'मझन' के एक आश्रयदाता दाराब खां का पता लगता है और यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सन् १६२१ ई० (स० १६७८ वि०) में जीवित थे। यदि यह इस समय वृद्ध भी माने जायँ तब भी इन का रचना-काल विक्रमीय सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का पूर्वांश हो सकता है। 'मझन' हिंदू थे अत. उन्हो ने मुसलमानी प्रथानुसार अपने काव्य के आरभ में अपने समय के सम्राट् का उल्लेख नहीं किया है और न ग्रंथ-निर्माण का समय दिया है। 'मधुमालती' के मगलाचरण से यह निर्गुण निराकार के मानने वाले ज्ञात होते हैं। इस प्रकार 'मधुमालती' का रचनाकाल स० १६५० वि० के लगभग आता है और इन्हे जायसी का पूववर्ती मानना भ्रामक है और उस के लिए कोई दृढ आधार भी नही है। यह सवत् मानने मे बनारसी दास का 'मधुमालती' का उल्लेख पोषक ही होता है, अत. यही रचनाकाल ठीक जान पडता है। अब तक किसी अन्य 'मझन' का पता भी नही चला है, इस लिए उक्त निष्कर्ष ही समीचीन है।

स्फुट प्रसंग

हिंदुस्तानी

[लेखक—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फिल्०, (आक्सन)]

'हिंदुस्तानी' शब्द का व्यवहार उस भाषा के लिए जो हिंदुस्तान के रहने वाले मध्य-काल में बोलते थे और जिस के द्वारा आपस मे विचारो का परिवर्तन करते थे, कब से आरंभ हुआ, अभी तक निश्चित ढग से मालूम नहीं। आज कल कुछ लोगो का खयाल है कि 'हिंदुस्तानी' 'उर्दू' का दूसरा नाम है, लेकिन यह ठीक नही जान पडता। उर्दू और हिंदी दोनो ही के अर्थ में 'हिंदुस्तानी' व्यवहार में आता था। 'हिंदुस्तानी' मे उस भाषा का तात्पर्य था जो अरबी और फारसी के अतिरिक्त व्यवहार मे आती थी और जिसे हिंदू ओर मुसलमान दोनो समझते थे।

इस प्रश्न पर यूरोपीयो के पत्र-व्यवहार कुछ प्रकाश डालते है। उन मे सब मे पहले पुर्तगीज़ हिंदुस्तान मे आए और उन्हो ने पश्चिमी तट पर कोठिया बनाई तथा भूमि पर अधिकार प्राप्त किया। गोआ उन का केंद्र था, जहां पुर्तगीज गवर्नर रहता था। हुकूमत के क्रम के साथ धार्मिक और प्रचार-सबंधी कार्यवाही भी आरंभ हुई और रोमन कैथलिक पादरी और 'सोसाइटी अव् जीसस' के सदस्य भी आने लगे। सोलहवीं सदी मे अकबर ने सत्य की खोज मे भिन्न धर्मो के प्रतिनिधियो को निमत्रण दिया और उस के दरबार मे ईसाई पादरी और प्रचारक गोआ से आ कर उपस्थित हुए। उन की चिट्ठिया और लेख पुर्तगाल के पुस्तकालयो मे सुरक्षित है। हिंदुस्तान के इतिहास के सबध की उन से बहुत सी आवश्यक बाते ज्ञात होती है। अतएव 'हिंदुस्तानी' भाषा की चर्चा अक्सर पत्रो मे की गई है। इन के अतिरिक्त यूरोप के देशो से हिंदुस्तान मे यात्री, व्यापारी, पर्यटक आदि इसी समय मे आने लगे थे और उन्हो ने भी यहा की बातों की चर्चा की है।

उन के वर्णनो से जो उद्धरण नीचे दिए जाते है वह मनोरजन से शून्य नही है।

सन् १५८२ ई० में पादरी एक्वा वीवा ने एक पत्र पादरी रुई विन्सेंट के नाम भेजा था। रुई विन्सेंट गोआ में रहता था, और उस सूबे का प्रधान (प्राविंशल) था। इस पत्र में एक्वा वीवा ने यह प्रस्ताव किया कि गोआ में एक मदरसा स्थापित होना चाहिए जिस में मुसलमानों के लिए फारसी और अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए हिंदुस्तानी की शिक्षा दी जाय। स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' से तात्पर्य उस भाषा से है जो हिंदू बोलते थे। एक्वा वीवा के विषय में यह भी वर्णन है कि जब वह अपने दुभाषिए डोमिंगो पीरीज का एक हिंदुस्तानी औरत के साथ निकाह पढ़ा रहा था तो उसे फारसी भाषा का व्यवहार करना पड़ा और अकबर बादशाह जो वहां मौजूद था फारसी के वाक्यों का 'हिंदुस्तानी' में अनुवाद करता जाता था।

सन् १५९८ ई० में जेरोम जेवियर ने लाहौर से एक पत्र 'सोसाइटी अव् जीसस' के प्रधान (जनरल) के नाम भेजा जिस में यह वाक्य मिलता है—"कुछ नौजवानों ने फारसी भाषा में जिस में कहीं-कहीं हिंदुस्तानी कहावतें खपाई गई हैं एक प्रबंध प्रभु ईसा के जन्म के संबंध में तैयार किया है।"

सन् १६०४ ई० में इसी जेरोम ने आगरे से एक पत्र में पादरी कोर्सी के बारे में लिखा कि—"उस ने फारसी भाषा सीख ली है और हिंदुस्तानी का सीखना आरंभ कर दिया है जो इस देश की भाषा है। उस की ज्ञान-पिपासा और योग्यता ऐसी है कि वह शीघ्र ही अरबी पर भी अधिकार प्राप्त कर लेगा।"

अकबर की मृत्यु के कुछ ही काल बाद पादरी ऐन्टनी बॉटेल्हो जो सूबे का प्रधान था, बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान के साथ अपनी बातचीत का वर्णन लिखता है और सुल्तान का यह प्रश्न उसी की भाषा में अंकित करता है—"सच है कि बड़ा बादशाह अकबर किरस्ता मुआ कि ना?"

सन् १६१५ ई० के १० वीं अप्रैल के पत्र में दे कास्ट्रो लिखता है कि आगरे के पादरी ईसाइयों से हिंदुस्तानी भाषा में पापों की स्वीकृति कराते हैं।

टेरी ने सन् १६१६ ई० की घटनाओं की चर्चा करते हुए लिखा है—"टॉम कोरयाट ने इस के बाद हिंदुस्तानी पर अर्थात् जनता की भाषा पर बड़ा अधिकार प्राप्त कर लिया। एक स्त्री जो राजदूत के यहां धोबिन (लांड्रेस) थी इतनी स्वतंत्र और जीभ की पनी थी कि सवेरे से साम तक लोगों को झिड़कती और बनाती रहती थी

एक दिन कोरयाट ने उस की भाषा में उसे आडे हाथो लिया और आठ बजे तक उस की ऐसी खबर ली कि बेचारी चुप हो गई और फिर एक शब्द मुँह से न निकाल सकी। टेरी इस भाषा के विषय मे यह भी सूचना देता है कि यह बाँए से दाहिने तरफ लिखी जाती थी।

सन् १६३० ई० मे यह वाक्य मिलता है—"पादरी साइमन दे फिग्योरेडो हिंदुस्तानी भाषा जानता है।" यह वाक्य पादरी बेसे की उस सूची से लिया गया है जो उस ने मलाबार सूबे के पादरियो की पुस्तको से तैयार की है।

सन् १६५० ई० मे पादरी केशी सूचित करता है कि उस ने कठिन हिंदुस्तानी भाषा को सीखा है।

सन् १६७२ ई० मे फ्रायर लिखता है कि—"दरबार की भाषा फारसी है और जनता मे जो भाषा प्रचलित है वह हिंदुस्तानी है।"

सन् १६७७ ई० मे एक पत्र इंगलिस्तान से कंपनी के डायरेक्टरों ने फोर्ट सेंट जार्ज भेजा था। उस मे यह विज्ञप्ति अंकित है—"जो व्यक्ति हिंदुओ (जेंटू) की भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी मे योग्यता दिखाएगा उसे २० पाउंड पुरस्कार दिया जायगा।"

हेजेज अपनी दिनचर्या मे ६ मार्च सन् १६८५ की तिथि मे लिखता है—"मैंने एक पुर्तगीज मल्लाह के साथ जो हिंदुस्तानी बोलता था अर्थात् वह भाषा जो इन टापुओ की बोली है, अभ्यास किया।"

वालेन्टीन सन् १६६७ ई० मे हिंदुस्तानी भाषा (हिंन्दोएस्तान्जी ताल) की चर्चा करता है, और लिखता है कि हब्श (अबीसीनिया) का राजदूत इस भाषा मे बातचीत करता था और टिव्यूआ के गवर्नर का मंत्री उस का मतलब समझाता था।

यही वालेन्टीन सन् १७२६ ई० मे लिखता है कि—"यहा की भाषा हिंदुस्तानी अर्थात् 'मूर' है यद्यपि जो अरबी-फारसी से अभिज्ञ है वह महामूर्ख समझे जाते है।"

हैमिल्टन सन् १७२७ ई० की घटनाओ के बारे में बयान करता है—"यह ईरानी और मै अपने संबध की बातों मे हिंदुस्तानी भाषा बोल रहे थे। यह मुग़लों के विस्तृत राज्य की प्रचलित भाषा है।"

गार्सा द तासी ने आत्मचरित मे बेंजामिन शूल्ज़ के हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्रामेटिका हिंदोस्तानिका) की चर्चा की है जो सन् १७४५ ई० मे तैयार हुआ था।

आम जो अठारहवीं सदी के ब्रिटिश युद्धो और विजयो का है सन

१८६३ ई० में लिखता है—"पार्डीचेरी के दो कौंसिली कैंप में गए। उन में से एक अच्छी तरह हिंदुस्तानी और फारसी जानता है, क्यों कि मुसल्मान सुल्तानों के दरबारों में यही दो भाषाएं व्यवहार में आती हैं।"

१७७८ ई० में इटली की राजधानी रोम में हिंदुस्तानी व्याकरण (ग्रामेटिका इंडोस्ताना) के प्रकाशित होने का हाल मिलता है।

जाकमू के पत्रों में जो सन् १८३० ई० के लिखे हुए हैं, यह लेख मिलता है—"यह जनता की बोली हिंदुस्तानी जो यूरोप जाने पर मेरे किसी काम में न आएगी कठिन है।"

सर चार्ल्स नेपियर १२ फरवरी सन् १८४४ ई० में कराची से लिखते हैं—"खेद है कि गवर्नर न हिंदुस्तानी न फारसी न मरहटी और न किसी और पूर्वी भाषा से परिचित है, इस लिए वह कलेक्टरों, उन के नायबों, उन अफसरों से जो फौजी अदालतों की कार-वाइयों को लिखते हैं और अन्य फौजी अमलों से अनुरोध करता है कि वह अपने पत्र अंग्रेजी भाषा में इस तरह लिखें कि उन में अजनबी भाषाओं के शब्द जहां तक संभव हो कम हों बजाय इस के कि वह अपने अभ्यास के अनुसार उस भाषा का व्यवहार करें जो इस तरह की हिंदुस्तानी है जिस में कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्द भी आ गए हैं।"

('जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल' सन् १८९६; हाब्सन जाब्सन से उद्धृत।)

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा साहित्य-सम्मेलन

हिंदुस्तानी एकेडेमी का छठा वार्षिक साहित्य-सम्मेलन शनिवार १९ तथा रविवार २० मार्च, १९३८ को विजयानगरम् हाल, म्योर कालिज भवन, इलाहाबाद मे हुआ। नगर की विषम सांप्रदायिक परिस्थिति के कारण सम्मेलन मे भाग लेने वाले स्थानीय तथा बाहरी सज्जनों की सख्या पर प्रभाव पडा, फिर भी हाल एकेडेमी के सदस्यो, सस्थाओ के प्रतिनिधियों और सम्मानित दर्शको से भरा हुआ था।

उपस्थित सज्जनों मे प्रमुख निम्न-लिखित थे——महामहोपाध्याय डाक्टर गगानाथ झा, सर लियाकत अली, पडित इकबालनारायण गुर्टू, पडित कन्हैयालाल, रावराजा डाक्टर श्याम बिहारी मिश्र, अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी, डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना; मौलवी अब्दुल हक, पडित अमरनाथ झा, डाक्टर अब्दुस्सत्तार सिद्दीकी, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, डाक्टर बनारसीप्रसाद, ठाकुर गोपालशरण सिह, मौलवी अब्दुस्सलाम नदवी; पंडित ब्रजनारायण गुर्टू, श्री सूर्यनारायण माथुर, श्री सदायतन पाडेय; पडित मनोहरलाल जुत्शी, मौलवी अब्दुल माजिद दरयाबादी; डाक्टर बेनीप्रसाद; डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, डाक्टर प्रसन्न-कुमार आचार्य, मिस्टर रशीद अहमद सिद्दीकी, डाक्टर मुहम्मद हफीज सैयद।

इस अवसर के लिए इलाहाबाद, लखनऊ, पटना, आगरा, बनारस और अलीगढ यूनिवर्सिटियो ने अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थे और कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने सम्मेलन की सफलता के लिए संदेश भेजा था। प्रतिनिधियो की नामावली निम्न है——

इलाहाबाद——महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल्-एल्० डी०, दि आनरेबुल डाक्टर हृदयनाथ कुजरू, डी० लिट्०

लखनऊ——मिस्टर यूसुफ हुसैन मोसवी, एम्० ए०; श्रीयुत दीनदयाल गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

पटना—श्रीयुत डाक्टर सच्चिदानंद सिनहा, डी० लिट्०

आगरा—डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, एम्० ए०, डी० लिट्०

बनारस—मौलवी महेशप्रसाद

अलीगढ—जनाब आल अहमद सरूर

इन के अतिरिक्त ईविंग क्रिश्चियन कालिज, इलाहाबाद, डी० ए० वी० कालिज, कानपूर, डी० ए० वी० कालिज, देहरादून, सनातनधर्म कालिज, कानपूर, क्रिश्चियन कालिज, लखनऊ, उदयप्रताप कालिज, बनारस तथा ऐंग्लो-बंगाली कालिज, इलाहाबाद ने भी अपने-अपने प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेने के लिए निर्वाचित किए थे।

हिंदी-साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, तथा श्री वीरेंद्र-केशव साहित्य-परिषद् ओरछा राज्य ने भी इस अवसर के लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित किए थे।

एकेडेमी के सभापति राइट आनरेबुल डाक्टर सर तेज बहादुर सप्रू, के० सी० एस्० आई०, पी० सी० ने कान्फ्रेंस का उद्घाटन किया तथा सभापति का आसन ग्रहण किया।

सभापति महोदय ने यह बताया कि हिंदुस्तानी एकेडेमी को स्थापित हुए ग्यारह वर्ष हो चुके हैं। इस बीच में उस ने उर्दू तथा हिंदी की बहुत सी पुस्तकों का प्रकाशन किया है। एकेडेमी का व्यय सरकार के प्रदान से चलता है परंतु इस की रकम में बराबर कमी होती रही है और वह अब पहले से आधी हो गई है। इस के कारण एकेडेमी को अपने निर्दिष्ट आयोजन में बराबर काट-छाँट करनी पड़ी है। यदि आर्थिक कठिनाइयों का निरंतर सामना न करना पड़ता तो निस्संदेह एकेडेमी और अधिक परिमाण में काम प्रस्तुत करती। एकेडेमी ने अब तक दो लक्ष्य अपने सामने रक्खे हैं। एक तो यह कि वह केवल ऐसे ग्रंथ जनता के सामने उपस्थित करे जो कि एक एकेडेमी जैसी संस्था की प्रतिष्ठा के उपयुक्त हों। एकेडेमी ने केवल बाजार की माँग की पूर्ति अथवा आर्थिक लाभ मात्र के उद्देश्य से प्रकाशन नहीं प्रस्तुत किए हैं। इस के अतिरिक्त एकेडेमी ने हिंदी और उर्दू के प्रति समान भाव रखते हुए पुस्तक-प्रकाशन की योजना की है। किसी एक भाषा के प्रति पक्षपात नहीं दिखाया है। अनुपातत: किसी भाषा की कम या अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हों—इस का एकेडेमी की नीति पर प्रभाव नहीं पड़ा है। सभापति महोदय ने यह भी आशा प्रकट की कि इस नीति का भविष्य में भी पालन होता रहेगा

भाषा के विषय मे सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि इसे वह स्वीकार करते हैं कि वह सरल होनी चाहिए। फिर भी उन्हो ने कहा कि यह बात छिपी नही है कि हिंदी और उर्दू भाषाए अलग-अलग मार्ग ग्रहण करती जा रही है और इस प्रकार एक दूसरे से पृथक् होती जा रही है। उन्हो ने गगा और जमुना की भाति दोनो के मिलने की आशा छोड दी। पचास वर्ष पहले जो भी सभव रहा हो, वर्तमान प्रवृत्तियां ऐसी है कि यह बहुत कम सभव जान पडता है कि हिंदी और उर्दू एक भाषा हो जायेंगी। उन्हो ने बताया कि वह हिंदी तथा उर्दू के कई पत्रो के ग्राहक रहे है और इस बात को वह निश्चित रूप से कह सकते है कि दोनो ही भाषाओ के लेखक अपनी-अपनी भाषा को कठिन बनाते जा रहे है, यहां तक कि साधारण जनता को एक-दूसरे की भाषा के ७५ फी सदी शब्द अपरिचित जान पडते है। इस प्रवृत्ति को रोकने की बडी आवश्यकता है, यदि हम चाहते है कि हिंदी और उर्दू बोलने वालों के बीच दुभाषिये की आवश्यकता न आ पडे। उन्हो ने कहा कि बनारस और कानपुर की हिंदी का मेरठ और दिल्ली में समझना कठिन होगा, इसी प्रकार पजाब की उर्दू आसानी से लखनऊ और दिल्ली मे न समझी जायेगी। सभापति महोदय ने कहा कि स्वय उन की रुचि की उर्दू वह है जो कि मौलवी अब्दुल हक के 'उर्दू' नाम के दकन से प्रकाशित होने वाले रिसाले मे लिखी जाती है।

सर तेज बहादुर सप्रू ने बताया कि यह बहुत समय से उन की निश्चित धारणा रही है कि किसी भी जाति की उच्च शिक्षा समुचित रूप से एक विदेशी भाषा द्वारा होना सभव नही है। इसी से वह हैदराबाद की उस्मानिया यूनिवर्सिटी के आयोजन को पसद करते रहे है। राष्ट्रीय शिक्षा केवल हिंदी-उर्दू अथवा प्रातीय भाषाओ के द्वारा सभव है, इस लिए इन के साहित्यो को परिपूर्ण करने का कार्य महत्तर है। उन्हो ने कहा कि वह अग्रेजी भाषा के विरोधी नही है, अथवा किसी भी विदेशी भाषा से उन्हें विरोध नही। सच तो यह है कि उन की दृष्टि मे इस देश के नवयुवक जैसा विदेशी भाषाओ को सीखना चाहिए नही सीखते। अग्रेजी से देश ने बहुत सीखा है। पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी आकाक्षाओ को जागृत किया है, फिर भी राष्ट्रीय शिक्षा का माध्यम देश की भाषा ही हो सकती है।

सभापति महोदय ने कहा कि हिंदुस्तानी एकेडेमी की तुलना अक्सर पाश्चात्य एकेडेमियों से करने का प्रयत्न होता है। ऐसा करना अनुचित है। हिंदुस्तानी एकेडेमी ने अपने जीवन के केवल ग्यारह वर्ष पूरे किए है और एकेडेमियो के पीछे सकडो वर्षों का

इतिहास है। सर तेज बहादुर सप्रू ने इस बात की चर्चा की कि केवल तीन वर्ष पूर्व वह फ्रांसीसी एकेडेमी के एक समारोह के अवसर पर पेरिस मे आमंत्रित थे। उस अवसर के लिए एक लाख टिकट बिके थे। उस संस्था की उन्नति तथा पोषण मे अरबो धन लगा है। उस के कतार के कतार विशाल भवन है, पुस्तकालय मे लाखो छपी और हस्तलिखित पुस्तके है, हजारो दर्शक नित्य वहां आते है। बड़े से बडे लेखको को उस की सदस्यता के लिए वर्षो की प्रतीक्षा करनी पडती है। अनातोल फ्रास जैसे यशस्वी लेखक को उस की सदस्यता के लिए ४० वर्षो की चिर-प्रतीक्षा करनी पडी थी।

इस के विपरीत हिंदुस्तानी एकेडेमी के पास बहुत परिमित धन है, अपनी इमारत तक नही है, केवल कुछ हजार पुस्तके इस के पुस्तकालय मे है, नए ग्रेजुएट इस की सदस्यता के आकाक्षी है। ऐसी परिस्थिति मे पश्चिम की गौरवान्वित एकेडेमियो से इस की तुलना नितान्त अनुचित होगी। फिर भी सभापति महोदय ने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि सीमित साधनों द्वारा एकेडेमी ने बहुत उपयोगी काम किया है और यदि सरकार इस के प्रति सहानुभूति दिखाती रही और जनता इस के साथ सहयोग करती रही तो यह अमूल्य राष्ट्रीय सेवा कर सकती है।

अत मे सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि वह चाहे इस सस्था के सभापति रहे चाहे न रहे इस की मगल-कामना सदा उन के हृदय मे रहेगी और जब भी आवश्यकता होगी वह इस की सेवा के लिए तत्पर रहेगे।

सभापति के भाषण के अनतर हिंदी-विभाग के सभापति रावराजा रायबहादुर डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र, डी० लिट्० का मौखिक भाषण हुआ।

डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ने यह बताया कि हिंदी और उर्दू भाषाएं वास्तव मे एक है, अर्थात् उन का व्याकरण प्राय समान है। जो भेद दिखाई पडता है वह शब्दकोष के कारण। उर्दू और हिंदी के बढते हुए भेद-भाव का कारण साहित्य से उतना सबध नही रखता जितना कि राजनीति और सामाजिक परिस्थितियो से। उन्हो ने इस बात पर जोर दिया कि दोनों के बीच के पार्थक्य को कम करने का पूर्णरूप से प्रयत्न होना चाहिए और यह भी बताया कि इस दिशा मे हिंदुस्तानी एकेडेमी ने स्तुत्य कार्य किया है। उन्हो ने कहा कि यदि हिंदू और मुसल्मान साम्प्रदायिक भावनाओ को छोड कर आपस में विशेष मेल दिखाए तो भाषा और साहित्य का प्रश्न भी सहज मे हल हो जायगा वास्तव मे यह बात नहीं

कि हिंदी केवल हिंदुओं की भाषा हो और उर्दू केवल मुसल्मानो की। वक्ता ने कहा कि यह बात इतनी स्पष्ट है कि इस के समर्थन में उन्हें साहित्यिकों तथा लेखकों के नाम न गिनाने पडेगे। डाक्टर मिश्र ने हिंदुस्तानी एकेडेमी के इस निश्चय की सूचना देते हुए कि आम भाषा के लिए दो पुरस्कार दिए जायेंगे, इसे शुभ-सूचक बताया।

उर्दू-विभाग के सभापति सैयद सज्जाद हैदर साहब का भाषण विस्तृत और लिखित था। आप ने न केवल भाषा के प्रश्न पर प्रकाश डाला वरन् लिपि-संबधी प्रश्न पर भी अपना वक्तव्य दिया। आप का भाषण 'हिंदुस्तानी' (उर्दू) अप्रैल मे प्रकाशित हुआ है और उस का एक अंश इस पत्रिका के आगामी अंक मे उद्धृत किया जायगा।

उपर्युक्त तीनो भाषणों के अनंतर हिंदुस्तानी एकेडेमी के जेनरल सेक्रेटरी महोदय डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फिल्०, ने धन्यवाद देते हुए एक भाषण दिया जिस मे कि उन्हों ने एकेडेमी के दस-ग्यारह वर्ष के कार्यों का संक्षेप मे ब्यौरा दिया और भाषा तथा लिपि के प्रश्नो पर भी प्रकाश डाला। आप का भाषण इसी अंक मे अन्यत्र दिया जा रहा है।

दूसरे दिन, २० मार्च को, ९ बजे प्रातःकाल हिंदी तथा उर्दू विभागों की अलग-अलग बैठके हुई। हिंदी-विभाग के सभापति के आसन पर रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र थे।

इस अवसर के लिए प्राप्त निबंधो की सूची इस प्रकार है—

१—पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम—श्री कालिदास कपूर, एम्० ए० (लखनऊ)

२—साहित्यिकों की स्मृतिरक्षा का प्रश्न—श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम्० ए० (इटावा)

३—हिंदी में शब्दो के लिंग-भेद—श्री किशोरीदास वाजपेयी (हरिद्वार)

४—हिंदी लिपि और भाषा मे सुधार का आयोजन—श्री रामदत्त भारद्वाज एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (कासगंज)

५—वर्तमान हिंदी साहित्य में प्रवृत्तियां—ठाकुर मार्कंडेय सिंह, एम्० ए०, साहित्यरत्न (बनारस)

६—मनु वैवस्वत से पूर्व का भारत—श्री शुकदेव विहारी मिश्र (लखनऊ)

७—हिंदी साहित्य में शृंगार आंदोलन—श्री एम्० ए०

८—चित्रकार मोलाराम—श्री मुकदीलाल, बी० ए० (आक्सन) (लैंसडाउन)

९—हिंदी में गीति-काव्य—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी (बनारस)

सब से प्रथम श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का निबंध पढ़ा गया और इस के संबंध में वाद-विवाद भी अच्छा हुआ। वाद-विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में डाक्टर बाबूराम सक्सेना, ठाकुर जयदेव सिंह, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, पंडित देवीप्रसाद शुक्ल तथा स्वयं सभापति महोदय थे।

दूसरा निबंध श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'हिंदी में गीति-काव्य' शीर्षक पढ़ा गया। इस के संबंध में वाद-विवाद में भाग लेने वाले सज्जनों में प्रमुख ठाकुर जयदेव सिंह, श्रीयुत ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल', तथा श्रीयुत नरेंद्र शर्मा, एम्० ए० थे।

तीसरा निबंध काशी के उदय प्रताप कालिज के प्रतिनिधि ठाकुर मार्कंडेय सिंह ने 'वर्तमान हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां' शीर्षक पढ़ा।

सभी निबंध गंभीर थे और सुविधानुसार प्रकाशित किए जायँगे।

चूंकि सांप्रदायिक दंगों के कारण नगर की शांति भंग हो गई थी इस लिए दूसरे समय की बैठक स्थगित कर दी गई और शेष अनपढ़े निबंध पठित स्वीकार कर लिए गए।

उर्दू-विभाग में पढ़े गए अथवा प्राप्त निबंधों की सूची इस प्रकार है—

१—बाज पुराने लफ्जों की नई तहकीक—अल्लामा सैयद सुलैमान नदवी।

२—उर्दू के कदीम कुतबे—मौलवी अब्दुल हक।

३—उर्दू नसर के एक मुतखब मजमूए की ज़रूरत—मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी।

४—इकबाल और इबलीस—जनाब आल अहमद सरूर

५—उर्दू शायरी पर हिंदू तहज़ीब व माशरत और हिंदुस्तान के जुगराफियाई असरात—मौलवी शाह मुईनुद्दीन अहमद नदवी।

६—नजीर अकबराबादी की गज़लगोई—जनाब लतीफुद्दीन अहमद, अकबराबादी।

७—तारीख अवध—जनाब मुहम्मद तकी अहमद, एम्० ए०

डाक्टर ताराचंद का वक्तव्य

इस साल हिंदुस्तानी एकेडमी के जीवन के दस बरस पूरे होते है। इन बरसो मे एकेडमी ने कहा तक अपने मकसदो को पूरा किया, किस हद तक हिंदी और उर्दू भाषा की सेवा की, पुराने साहित्य की रक्षा और नए साहित्य की रचना के लिए क्या-क्या जतन किए, यहा इन सब बातो का थोडा बर्नन साहित्य के गाहकों के जानने के लिए जरूरी है।

एकेडमी के सामने जो काम है उस की कठिनाई वही लोग भली-भाँति जान सकते है जिन्हे इस तरह के काम का कुछ तजरुबा है। साहित्य ऐसी चीज तो है नही कि उसे मशीन मे ढाल कर तुरत तैयार कर लिया जाय। साहित्य न रुपये के ज़ोर से न नाम के लालच से बन सकता है। न यह मुमकिन है कि मदरसो और पाठशालाओ में साहित्य के रचने वाले कारीगरो की तरह सिखा-पढा लिए जायें। साहित्य की रूह अपनी इच्छा से जहा चाहती है विचरती है, मनमाने आती और जाती है। न उसे कोई ताकत पकड सकती है न कोई बधन बाँध सकता है। किस देश मे किस समय क्यो साहित्य के बाद-शाह पैदा होते है, इस का न कोई कायदा मालूम होता है न कानून। चौदहवी पद्रहवी सदी मे इटली के समाज की हालत बहुत गिरी हुई थी लेकिन साहित्य आसमान की चोटियो से बाते करता था, डाटे, पीट्रार्क, एरीऔस्टो, बोकाचीयों ने इतालवी भाषा का माथा ऊँचा किया था। अठारहवी सदी के आखीर और उन्नीसवी के शुरू मे हिंदुस्तान की हालत कहने लायक न थी लेकिन इसी अँधेरे जमाने मे मीर और गालिब सरीखे कवि फले फूले। अठा-रहवी सदी इंगलिस्तान की तारीख मे वह जमाना है जिस मे समदरो और महाद्वीपो पर उस का साम्राज्य कायम हुआ लेकिन इसी सदी का अग्रेजी साहित्य बिल्कुल ही रूखा और फीका है।

इस से यह नतीजा निकालना कि एकेडमी एक व्यर्थ संस्था है ठीक नही। क्योंकि अगर कवि, नाटककार, नावेल लिखने वाले, बनाए से नही बनते, कुद्रत की अपनी मर्जी

से पैदा होते है तो इस का अर्थ यह नही कि फल्सफा (दर्शन), इतिहास (तारीख), समाज-विज्ञान (मदनियात और सियासियात), ज्योतिष (नजूम), गणित (रियाजीयात), जैसे अनेक शास्त्रो पर किताबे लिखने वाले मुहैया नही हो सकते। यह जरूर है कि इन विषयो पर अच्छे लेखक आसानी से नही मिल सकते क्योकि अभी तक हमारे देश मे अपनी भाषा से ऊँचे दर्जे की शिक्षा नही होती और इल्म की किताबो के पढने वालो की बहुत कमी है। लेकिन ऐसी किताबो को तैयार कराना और इस तरफ लोगो की रुचि मोडना एकेडमी जैसी सस्थाओ का काम है।

यह किताबे कई तरह की हो सकती है। कुछ तो अग्रेजी या दूसरी भाषाओ से तरजुमा कर के, कुछ अग्रेजी किताबो के सहारे लिख कर और कुछ नए सिरे से और मौलिक ढग पर तैयार की जा सकती है।

हिंदुस्तानी एकेडमी ने पिछले दस बरस मे इन्ही तरीको पर काम किया है और साहित्य यानी अदब की छे, जीवन-चरित (अदबी सवानिह-उम्री) की पाच, पुराने साहित्य की नौ, इतिहास (तारीख) की तेरह, इतिहास के नेताओ (तारीखी रहनुमाओ) पर पॉच, विज्ञान की छै, कारीगरी की तीन, दर्शन (फल्सफे) पर चार, समाज-विज्ञान पर आठ, चित्रकला (मुसव्विरी) पर दो, हिंदी और उर्दू की किताबो की जॉच पर दो, कुल जोड़ कर इक्यासी किताबें छपवाई है। साहित्य या अदब की आठ और विज्ञान की दो किताबो का तर्जुमा इस के अलावा है।

साहित्य की तरफ लिखने वालो का ध्यान दिलाने के लिये २३ इनाम पॉच-पाच सौ रुपये के और आठ सौ-सौ रुपये के बाटे है। अपने विषय के पडितो और आलिमो से लेक्चर दिलवाए है। कान्फ्रेसो मे हिंदी और उर्दू से दिलचस्पी रखने वालों को इकट्ठा करने की कोशिश की है और इन जलसो मे भाषा (जबान) और साहित्य (अदब) के बड़े-बडे सवालों पर विचार हुआ है। हिंदुस्तान भर मे अपनी भाषा और अपने साहित्य की उन्नति के लिए बड़े जोर की कोशिश हो रही है। इस में हिंदुस्तानी एकेडमी ने जो भाग लिया है वह सराहने योग्य है। एकेडमी ने न केवल ज्ञान के भडार में अच्छा इजाफा किया है, इस ने उन रुकावटों की तरफ ध्यान दिलाया है जो हमारे आगे बढने के रास्ते मे बाधा डाल रही है।

इन में से दो तीन का जिक्र कर देना अनुचित नही होगा पहली कठिनाई जिस

का सामना करना है वह हिंदी और उर्दू लिपि या रस्मुल खत से संबंध रखती है। यह विचार दिन पर दिन फैलता जाता है कि हिंदी और उर्दू एक ही तरह लिखी जायें तो इस से देस की बहुत भलाई होगी। देस के नेताओं मे कई ने यह खयाल जाहिर किया है कि नागरी और अरबी खतो की जगह रोमन खत इख्तियार कर लेना चाहिए। इस मे फायदे बहुत से है, लिखने और छापने के लिए रोमन लिपि औरों मे कही अच्छी है। इस मे वर्ण थोडे है इस लिए बच्चो को सीखने मे आसानी है। दुनिया की सभी अगुआ कौमें रोमन का इस्तैमाल करती है, एशिया मे तुर्को ने इसे अपनाया है और जापान मे जतन हो रहा है कि रोमन लिपि जापानी की जगह ले ले। हिंदुस्तान मे रोमन के २६ वर्णो से आसानी से काम नही चल सकता। इस लिए इस मे काट-छाँट करनी पडेगी और वर्ण बढाने होंगे। इस पर भी बहुत से लोग अपनी पुरानी जानी-बूझी लिपियों को छोडना पसद नही करेगे। इन मे बहुत से तो लकीर के फकीर है लेकिन बहुत से सचमुच नागरी को और लिपियो के मुकाबले मे जियादा वैज्ञानिक समझते है।

यदि हम अभी इस बात के लिए तैयार न हो कि बिल्कुल नई लिपि को स्वीकार कर ले, तो भी हमें नागरी और उर्दू के सुधार की कोशिश करनी चाहिए। नागरी के लिखने का ढंग ऐसा है कि समय अधिक लगता है और इस के छापने मे बडी कठिनाइया है। इस मे कई वर्ण हमारी बोली के लिए फिजूल है जैसे ङ, ञ, ष, ऋ, लृ, और कई जरूरी स्वर और व्यजन नही है जैसे औ, और ऐ, क, ख. ग, वगैरा।

उर्दू रस्मुल खत मे और भी जियादा दोष है। ث, س और ص के लिए हमारे गले से एक ही आवाज निकलती है, इसी तरह ز, ذ, ظ और ض के लिए और ت और ط के लिए। वर्णो की बहुतायत सीखने वालो की दिक्कतो को बढाती है। उर्दू का इमला जैसा कठिन और बेकायदा है उसे सभी जानते है। लिपि ऐसी होनी चाहिए जिस में एक वर्ण एक आवाज के लिए नियत हो। न कई आवाजो के लिए एक वर्ण और न एक आवाज के लिए कई वर्ण हो। नागरी और उर्दू दोनो को ही इस तरफ़ ध्यान देना उचित है।

उर्दू लिपि की बड़ी खराबी यह है कि लिखी तो जाती है नस्तालीक तर्ज मे और जब सीसे के हर्फो मे छपती है तो नस्ख के तर्ज़ मे। बहुत से लोग जिन की आँखे नस्तालीक की आदी है नस्ख को पसंद नही करते। इसी वजह से पुरानी पत्थर की छपाई अभी तक जारी है और उर्दू को न लाईनोटाइप नसीब है और न और छापे की सुभीताए। नतीजा

यह है कि बडी तादाद मे उर्दू की चीजो का छापना और उन्हें सस्ते दामों मे बेचना असभव सा है। इस हालत पर गौर करने की जरूरत है।

दूसरा प्रश्न इमला का है। हिंदी और उर्दू दोनो मे हर्फो के जोड़ने और इस्तेमाल करने के बारे मे मतभेद है। संस्कृत मे जो शब्द आए है उन्हे ज्यो का त्यो रखा जाय या उस तरह जैसे वे अब बोले जाते है। नाक मे निकलने वाली आवाज के लिए संस्कृत मे पॉच-छै हर्फ है। हिंदी मे उन सब की जरूरत नही। राम लिखना हो तो आ की मात्रा र के पीछे लगती है रिम लिखना हो तो इ की मात्रा र से पहले आती है। रेफ का भी झगड़ा है भ्रम मे भ के नीचे और भर्म्म मे म के ऊपर। यह ऐसी गुत्थिया है जिन के सुलझाने की जरूरत है।

उर्दू के इमला का हाल और भी बेढब है। अरबी के शब्द अरबी के तरीके पर फारसी के फारसी के मुताबिक और हिंदुस्तानी हिंदी ढग पर लिखे जाते है। लेकिन तलफ्फुज (उच्चारण) सब का हिंदुस्तानी है और इस कारण अरबी फारसी से अनजान लोगो के लिए इन के हिज्जे करने मे बड़ी कठिनाई होती है। बहुत से हिंदी शब्द भी फारसी ढग पर लिखे जाते है। उर्दू के फैलाव के लिए यह बडी रुकावट है। सब जानते है कि अमरीका मे अग्रेजी के इमला के सुधार की कोशिश हो रही है। कितना अच्छा होता कि हम भी इस तरफ तवज्जह देते।

तीसरा सवाल जबान का है। कई साल से इस पर बहस जारी है। थोडे दिन हुए विहार की सरकार ने एक कमेटी इस पर गौर करने के लिए नियत की है। सवाल बड़े महत्व का है क्योंकि इस के ठीक-ठीक हल होने पर हमारी शिक्षा का भविष्य मुनहसिर है। इस सवाल के कई पहलू है इन मे से एक इस्तलाहो (पारिभाषिक) का है। हिंदी और उर्दू की विज्ञान की पुस्तको के लिए अलग-अलग पारिभाषिक शब्द (इस्तलाहे) गढे जायँ या एक समान। प्रश्न कठिन है लेकिन नया नही। दुनिया की और जबानो के सामने भी यह उठ चुका है। जिन मुल्कों में सजीव और बलवान जातिया है उन्हो ने दूसरी जबानो से इस्तलाहो के लिए माद्दे लिए और उन्हे स्वदेशी सॉचो मे ढाला। मिसाल के तौर पर अग्रेजी है। इस की इस्तलाहों का सोता लातीनी और यूनानी भाषाएं है। मगर इन जबानों के लफ्जो को ठोक-पीट कर अग्रेजी बना लिया है। यही हाल यूरोप की दूसरी

वा है

एशिया की जबानों का इतिहास कुछ अनोखा है। अरबी ने सीरीयन और यूनानी से पारिभाषिक शब्द लिए। अरबी सेमेटिक और यूनानी आर्यन है लेकिन अरबों ने इस का कुछ ख्याल न किया। जब पुरानी पहलवी की जगह फारसी ने ली तो कुछ ही अर्से में मुसल्मानों ने ईरान फतह कर लिया। फारसी पर जो आर्यभाषा है अरबी का रंग चढ़ने लगा। फिरदौसी ने कोशिश की कि इस झुकाव को रोके। उस ने अरबी की जगह ठेठ फारसी की इस्तलाहों का इस्तेमाल किया। जैसे—

माद्दा (अरबी)	सरमाया (फारसी)
उन्सर ,,	गौहर ,,
सुकून ,,	आराम ,,
दौरान ,,	गश्त ,,
फना ,,	तबाही ,,
वुजूद ,,	तवानाई ,,
हरकत ,,	जुंबिश ,,
मतहर्रिक बिल इरादा (,,)	पोयंदा ,,
तग़ैयुर ,,	फरसूदन ,,

अफसोस है कि फिरदौसी की कोशिश निष्फल साबित हुई।

लेकिन हज़ार बरस पीछे आज ईरान और टर्की में फिरदौसी की नीति पर ही इस्तलाहों का चुनाव हो रहा है।

हिंदुस्तान में कई बार ऐसी घटनाएं हुई हैं। जब बुद्ध ने अपना मत चलाया तो उस ने संस्कृत छोड़ आम लोगों की बोली को प्रचार का जरिया ठहराया। उस के चेलों ने इसी बोली में दर्शन और धर्म की पुस्तकें रचीं। उन की इस्तलाहें संस्कृत की नहीं पाली भाषा की थीं। जैसे पुग्गल, अत्तन, धम्म, सखार, कम्म, कप्प, मेत्ता, करुस, सन्ना, तन्हा, विसक्का, पीति, चद, विन्नान इसी तरह जैनियों ने अपभ्रंश और कबीर और संत-मार्ग वालों ने बोल-चाल की भाषा से पारिभाषिक शब्द लिए। जब गदर बाद बिहार और उत्तरी हिंदुस्तान में नीचे, बीच के और ऊँचे दर्जे की शिक्षा का बंदोबस्त होने लगा और बीच के दर्जे की किताबों की देस की बोली में जरूरत हुई तो सवाल इस्तलाहों का उठा। राजा ने तारीख की ऐसी किताब लिखा जो सब पढ़ सकें और जिन की ज़बान

एक हो। उन्हो ने इन किताबों के आरभ मे केवल २४ या २५ शब्दों की फेहरिस्त लगा दी जो उर्दू और हिंदी मे अलग अलग थे।

मिर्जा कतील ने मतिक (तर्क) की इस्तलाहे बनाई। उन का नमूना यह है—

ज्यू का त्यू	तस्दीक	Judgment
भरपूर	महमूल	Object
पूरा तोड	सालिबा	Negative
इकहरी ऊँच नीच	उमूमो खसूस मुतलक	Absolute—general and particular
असल असल	हद	Term
ठिकाना	मौजू इल्म	Subject
अपना अपना काम	खास्सा	Property
बोल	मौजू	Subject
पूरा जोड़	मूजिबा	Affirmative proposition
अछूती	जुजई	Particular
मुराद का घर	मानी	Import
वह और वह और	तबायन	Difference

इस तरह की ओर भी कोशिशे हुई लेकिन सफल नही हुई। नतीजा यह हुआ कि बजाय अपनी भाषा के शिक्षा अंग्रेजी के जरिए होने लगी। बीसवी सदी के शुरू से स्वदेशी आदोलन ने इस तरफ फिर जोर से ध्यान दिलाया है। इस समय राष्ट्रीयता की लहर वेग के साथ बढ रही है और हिंदुस्तानी भाषाओ को ऊँची से ऊँची शिक्षा का जरिया बनाने का जतन हो रहा है। ऐसे अवसर पर हमे फैसला करना चाहिए कि बुद्ध, कबीर और मिर्जा कतील के रास्ते पर चले या मजहबी और समाजी काँटो मे उलझ कर रह जायें ओर साहित्य, दर्शन और विज्ञान के उमड़ते दरिया को दो अलग-अलग धाराओ मे बॉट कर धीमा और कमजोर कर दे। इन और ऐसे ही और प्रश्नो पर विचार करने के लिए यह कान्फ्रेंस हो रही है। मुझे आशा है कि राइट आनरेबल सर तेज बहादुर सप्रू, जिन के ज्ञान, अनुभव और विवेक के लिए हमारे दिलो में बना श्रद्धा ह हमारे विचारो को अच्छे रास्ते पर डालग

हम सब उन के आभारी है कि उन्हों ने कामो मे बझे होने पर भी कान्फ्रेंस के लिए समय निकाला। मै आप सब की तरफ से उन को धन्यवाद कहता हूं। रावराजा पडित श्यामविहारी मिश्र सदा ही हिंदुस्तानी एकेडमी की तन मन से सहायता करते रहते है। बहुत थोडी सूचना होते हुए भी आप ने सभापति का पद स्वीकार कर हमे बाधित किया।

मिस्टर सज्जाद हैदर से एकेडमी के सब मेबर और उर्दू से प्रेम रखने वाले सज्जन खूब परिचित है आप का उर्दू के लेखको मे बडा नाम है। हमारी दावत, कबूल कर के आप ने हम पर जो इहसान किया है उसे हम नही भूल सकते। आप की सदारत मे उमेद है हमारा जलसा कामयाब होगा।

समालोचना

रागतरंगिणी—कवि लोचन कृत (दर्भगा राज प्रेस, दर्भगा)

सगीत के विषय पर पुरानी पुस्तकें संस्कृत में तो मिलती है, परन्तु भाषा में बहुत कम। और पुराने गाने भी बहुत कम मिलते हैं। परतु पुराने कवियों को सगीत का पूर्ण ज्ञान था, और पद्य-रचना में सदा इस का ध्यान रखते थे कि पद्य किस राग में गाए जा सकते है। सगीत-शास्त्र पर फिर भी भाषा मे पुस्तकें कम मिलती है। मिथिला में, उजान ग्राम मे, एक लोचन कवि रहते थे। इन के वशज अब भी उसी गाँव में रहते हैं। लोचन कवि का जीवन-काल लगभग १५८० शाके था। अर्थात् लगभग १६६० ईस्वी। उस समय राजा महिनाथ ठाकुर मिथिला के राजा थे। लोचन कहते है—

"वीर' श्रीमहिनाथभूपतिलक. शास्तेऽधुना मैथिलान्".

उन के छोटे भाई नरपति ठाकुर की आज्ञा से कवि ने "रागतरगिणी" की रचना की। इस पुस्तक मे पाँच तरग है। पहले मे रागस्वरूपकथन; दूसरे मे रागिनीस्वरूपकथन; तीसरे मे उत्पत्ति और नाद-निरूपण, चौथे मे तिरहुतदेशीय सकीर्ण रागविवरण; और पाँचवे मे स्वरप्रकरण, वीणावाद्यक विषय, रागगान-समय इत्यादि का वर्णन है।

ग्रथकार ने राग और रागिणियो का यो विभाग किया है—

(१) राग—भैरव

रागिणी—बगाली, मधुमाधवी, बराडी; भैरवी, सिंधु

(२) राग—कौशिक

रागिणी—टोड़ी; खभावती; गोरी; कुकुभ; गुणकरी

(३) राग—हिंदोल

रागिणी—वेलावली; देशाख; रामकली; ललित; पटमजरी

(४) राग—दीपक

रागिणी—केदारा; कानरा, देश; कामोद, विहाग

(५) राग—श्रीराग

राागिणी—वसत, मालव, मालश्री; धनाश्री, असावरी

(६) राग—मेघराग

रागिणी—मलारी, देशिका, भूपाली, टक, दक्षिण गुर्जरी

विशेष उल्लेखनीय विपय यह है कि इस पुस्तक मे सस्कृत, ब्रजभाषा, और मैथिली, तीनो भाषाओ का प्रयोग किया गया है। और उदाहरण में जिन मैथिली कवियो के पद्य दिए गए हैं, उन की सख्या ३९ है। उन में से प्रधान कवियो के ये नाम है—विद्यापति, लोचन, गदाधर, हरिदास, धरणीधर, गोविंद, जीवनाथ, गगाधर, प्रीतिनाथ, भवानीनाथ, पूरनमल्ल, जयदेव। एक विलक्षण कवि ग्यासदेव सुलतान मुसलमान भी मैथिली मे कविता करते थे।

ग्रथ के आरभ मे कवि लिखता है कि सकल-साधारण के समझने के लिए कही-कही "मध्यदेश भाषा"—अर्थात् ब्रजभाषा—मे उदाहरण दिए जाएगे। इस से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा का आधिपत्य उस समय भी—लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व भी—प्राय: समस्त उत्तरीय भारत पर था। इस से यह भी स्पष्ट है कि मैथिली मे काव्य-रचना उस युग मे भी अनेक कवि करते थे, और कई तो बहुत ही ललित पद्य इस ग्रथ मे है।

पहले कुछ हिंदी कविता के उदाहरण लीजिए। हिंदोल का स्वरूप वर्णन—

रूप गर्वयुत खर्व पर्व हिमधाम समानन,
गन्धर्वाधिक सर्वकला विद्या कुल कानन।
नटवर कलित सुवेश विमल पारावत सुन्दर,
कुण्डल ललित कपोल लोल हिन्दोल पुरन्दर।
करें पकरि नारि उर आनि मुख निरखि मुसकाय पुनि,
रास करत लघु लोल गति सो कह्यो वीर हनुमन्त मुनि।
खर्वरूप गुनगर्व गहत सर्वाधिक सुन्दर,
तन कपोत सम वरन करन कुण्डल कामुक वर।
नवल नितम्बिनि अङ्क अङ्क भरि निरखि निरखि मुख।
धोर धोर हिन्दोल चलत करत केलि सुख

सब राग राग राजत रमन गावत जेहि गन्धर्व जन,
लघु लोल गमन बहु मोल मह कह हिन्दोल जेहि जति अजन ।।

मैथिली के पद अनेक कवियो के रचित है, और भिन्न-भिन्न श्रेणी के है। एक सुदर पद यह है—

की पर वचनै कन्त देल कान।
की पर कामिनि हरल गेयान।।
की तन्हि विसरल पुर्बक नेह,
की जीवन आबे पड़ल सँदेह।
की परिनत भेल पूर्बक पाप,
की अपराधे कयल बिहिँ साप।
की सखि कौन करब परकार,
की अविनय दहुँ परल हमार।
की हमें काम कला एक घाटि,
की दहुँ समयक यैह परिपाटि।
मधुसूदन भन मनेै अवधारि,
की धैरजें नहि मिलत मुरारि।।

अमरनाथ झा

लाला देवराज—लेखक सत्यदेव विद्यालंकार। प्रकाशक, मत्री मुख्यसभा कन्या-महाविद्यालय, जालधर। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक पजाब के कवि स्वर्गीय लाला देवराज की जीवनी है। पजाब मे स्त्री-शिक्षा तथा उस के द्वारा हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रचार का श्रेय जालधर के कन्या-महाविद्यालय को है और उस के सस्थापक लाला देवराज थे। इस तरह स्वर्गीय लाला जी आधुनिक भारत के निर्माताओ मे से एक थे। उन के कार्य का क्षेत्र ऐसा था कि उन की ख्याति राजनीति आदि अन्य क्षेत्रो मे कार्य करने वालो के समान नहीं हो सकती। जीवनी सुदर और आकर्षक शैली मे लिखी गई है और हिंदी के सीमित जीवनी-साहित्य को परिपुष्ट करेगी।

धीरेंद्र वर्मा

हिंदी गद्य-निर्माण—संपादक, श्रीयुत पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

संपादक महोदय हिंदी के सुपरिचित साहित्य-सेवी हैं और एक ऐसा संग्रह निकाल-कर आप ने शिक्षा-कार्य में अच्छा सहयोग किया है। हिंदी गद्य-निर्माण का कार्य (यदि ब्रजभाषा-गद्य को हिंदी-गद्य में न गिनें) तब भी लल्लूलाल, इंशा आदि के समय में ही आरंभ हो चुका था और उन्हें भी इस संग्रह में स्थान मिलना चाहिए था। हाँ, यदि पुस्तक का शीर्षक वर्तमान या आधुनिक शब्द-संयुक्त होता तब कदाचित् इस की आवश्यकता न होती। संपादक महोदय ने राजा शिवप्रसाद को हिंदी-उर्दू-संबंधी झगड़े को सुलझानेवाला लिखा है, पर वास्तव में उन्हें कितनी सफलता मिली इस का निर्देश भी उचित होता।

इस संग्रह में संपादक महोदय को ले कर तेईस ग्रंथकारों की रचनाओं से उद्धरण लिए गए हैं। भूमिका में अपने को छोड़ कर सभी का संक्षिप्त परिचय संग्रहकार ने दिया है, जिस से इस की उपादेयता और भी बढ़ गई है। लेखों के संग्रह भी विद्यार्थियों की आव-श्यकता को दृष्टि में रख कर किए गए हैं और विविध विषयों पर हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

कवितावली—(गोस्वामी तुलसीदास कृत) संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यद्यपि गोस्वामी जी ने कवितावली में श्रीराम कथा ही कही है पर इस का अधि-कांश श्री हनुमान जी की वीरता-वर्णन तथा उन के प्रति विनय-निवेदन में ही लग गया है। यह समग्र ग्रंथ कवित्त तथा सवैयों ही में है और प्रथम ही अधिक है, इसी से ऐसा नामकरण हुआ है। उक्त छंद के कारण इस ग्रंथ में ओज की मात्रा पूरी है और वास्तव में यह ग्रंथ गोस्वामी जी की रचनाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। गुप्त जी ने भूमिका में इस ग्रंथरत्न की विशिष्टता अच्छी प्रकार दिखलाई है और अंत में टिप्पणी दे कर इस संस्करण की उपादेयता बढ़ा दी है।

पार्वतीमंगल—संपादक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

गोस्वामी तुलसीदास जी की यह एक छोटी-सी रचना है, जिस में शिव-पार्वती-विवाह सोहर छंद में वर्णित है, बीच-बीच में कुल मिला कर १६ छंद हरिगीतिका के हैं। यह विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है, अत अंत में प्राय सौ पदों के अनुवाद

दिए गए हैं और पाद-टिप्पणियां भी दी गई हैं। इस प्रकार यह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हो गया है।

अलंकार-प्रकाश और पिंगल-कौमुदी—लेखक, आर्येंद्र शर्मा। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

इस रचना के दो भाग हैं। प्रथम में मुख्य-मुख्य शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की सरल भाषा में विवेचना की गई और द्वितीय में गुरु, लघु, मात्रा आदि तथा वर्णवृत्त और मात्रिक मुख्य छंदों को समझाया गया है। पुस्तक नए विद्यार्थियों के काम की है।

सती कण्णकी—लेखक, डाक्टर गोपालनाथ 'दया'। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यह तामिल भाषा के एक काव्य के कथानक का उसी ओर के एक विद्वान् द्वारा किया हुआ हिंदी रूपांतर है। राष्ट्रभाषा हिंदी में भारत की सभी भाषाओं के ग्रंथरत्नों का रूपांतर होना वाञ्छनीय है, इस कारण तथा कथानक के निजी गुणों और सरल अनुवाद होने से यह रचना सभी के संग्रह योग्य हो गई है। इस से सतीत्व के प्रताप की गाथाओं के साथ-साथ दक्षिण के अनेक रस्म-रिवाज आदि का भी परिचय मिलता है।

हिंदी पर फ़ारसी का प्रभाव—लेखक, पंडित अंबिकाप्रसाद जी वाजपेयी। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

यद्यपि विद्वान् लेखक ने इतना लंबा निबंध लिख कर हिंदी पर (उर्दू द्वारा) फारसी का प्रभाव दिखलाने का पूरा प्रयास किया है पर वह इस कार्य में विशेष सफल नहीं हो सके हैं। अधिकांश निबंध तो संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं ही की विवेचना में ख़र्च हो गया है और अकारण ही लंबे-लंबे उद्धरण दे कर उस की कायवृद्धि की गई है। सूफ़ी-मत और इश्क पर सोलह पृष्ठ लिख कर यही निष्कर्ष निकाला कि 'हिंदी पर सूफियों के साहित्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।' रेख़ता और रेख़्ती का कई पृष्ठों में अर्थ लगा कर उसी को हिंदी की जननी मान लिया है क्यों कि वह 'आर्श अपभ्रंश प्राकृत से उत्पन्न हुई है।' हिंदी (खड़ी बोली) उर्दू से उत्पन्न हुई है, ऐसा कुछ लोग कुछ दिनों तक कहते रहे थे, पर उर्दू किस से उत्पन्न हुई है, इसे इन निबंधकार ने अब बतलाया है। इस निबंध की यही विशेषता है। पुस्तक लेखक के की परिचायिका मात्र है।

सृष्टि की कथा—(सचित्र) लेखक डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० । प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

सरल भाषा तथा रोचक शैली मे विद्वान् लेखक ने इस छोटे से ग्रथ मे सृष्टि की बहुत-सी बाते लिख डाली हैं, जिसे पढ कर साधारण पाठक भी बहुत-सा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पृथ्वी के जल-स्थल भाग तथा आकाश के सूर्य से ले कर उल्का और धूमकेतु तक सभी का विवरण दिया है और इस पृथ्वी पर जीवन का आरंभ किस प्रकार हुआ है, इसे भी दिखलाया है। पुस्तक सभी के पढने योग्य है।

ब्रजरत्न दास

शिक्षा-मनोविज्ञान—लेखक श्रीयुत हंसराज भाटिया, एम्० ए०, प्रकाशक, दि न्यू ईरा पब्लिशर्स, लाहौर। मूल्य २॥)

शिक्षण के क्षेत्र मे पाश्चात्य मे बहुतायत से मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए है और हो रहे हैं और उन के परिणाम-स्वरूप वहां की शिक्षा-पद्धति मे बराबर उन्नति होती रहती है। यह बात नही इस विषय मे विवादास्पद मत न हो ; फिर भी यदि सतर्कता से काम लिया जाय तो विवादो से अलग रहते हुए अनेक तथ्यो पर प्रकाश डाला जा सकता है। सुयोग्य लेखक ने इसी बात का प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तक मे किया है। हिंदी मे शिक्षण-सिद्धात तथा मनोविज्ञान दोनो ही विषयो पर पुस्तके इनी गिनी है अतएव इस पुस्तक का सहर्ष स्वागत होना चाहिए।

यह बात पुस्तक को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाती है कि लेखक अपने विषय पर अधिकार रखता है और पढी-पढाई पुस्तको का रूपातर मात्र नही प्रस्तुत करता है। लेखक ने अपने विषय के स्पष्टीकरण मे भारतीय छात्रो की मनोवृत्ति का ध्यान रक्खा है। पुस्तक व्यावहारिक ढग से लिखी गई है और इस से न केवल शिक्षको को वरन् माता-पिताओ को भी लाभ होगा।

ऐसे वैज्ञानिक विषय पर हिंदी में लिखने मे पारिभाषिक शब्दों की कठिनाइया पद-पद पर आती हैं। लेखक ने इन का साहस के साथ सामना किया है। पुस्तक के अत मे जो पारिभाषिक शब्दों की एक सूची दी गई है उस से इस बात का पता चलता है कि लेखक ने अव्यावहारिक गढ़त नही की है। इस विषय पर आगे लिखने वाले लेखकों को इन शब्दो की सूची से भी पूर्ण लाभ उठाना चाहिए

लेखक ने पुस्तक की वैज्ञानिक मर्यादा बनाए रखते हुए भी विषय का प्रतिपादन बड़े रोचक ढग से किया है।

भाषा के सबध मे लेखक महोदय लिखते है—"प्राय ऐसे विषयो पर लिखे हुए ग्रथ 'शुद्ध' हिंदी का ही प्रयोग करते है और उर्दू, फारसी तथा अग्रेजी शब्दो से सख्त परहेज करते, है चाहे वह रोज व्यवहार मे क्यो न आते हों। सभवत. यह दृष्टिकोण साहित्य की दृष्टि मे उचित हो पर यहा तो हमेशा यही ध्येय रखा है कि पुस्तक की भाषा को जितना स्पष्ट, सरल और सुबोध बनाया जा सके बनाया जाय जिस से विषय के समझने मे कोई कठिनाई न हो। यदि कही कठिन वाक्यों और शब्दों का प्रयोग हुआ है तो बहुधा मजबूर हो कर कि कही सरलता के लिए विषम भावो का लोप न हो जाय।"

इस उद्धरण से लेखक की नीति भी स्पष्ट हो जायगी और उस की भाषा का नमूना भी मिल जायगा। हम लेखक को आश्वासन दिला सकते हैं कि उस की भाषा को 'हिंदी' मानने में किसी को आपत्ति न होगी।

रा० ट०

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम-सहित अंकित किए गए हैं।]

आचार्य द्विवेदी जी का भाषा-सुधार कार्य—श्री प्रेमनारायण टंडन, दक्षिण भारत; जनवरी '३८

आजकल की हिंदी कविता—श्रीमती राजेश्वरी, साहित्य-संदेश; फरवरी '३८

उर्दू की उत्पत्ति—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

कवींद्र रवींद्र के मृत्यु-संबंधी विचार—श्री कामेश्वर शर्मा, हंस; मार्च '३८

खड़ी बोली की निरुक्ति—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

गोरखनाथ और उन का साहित्य—श्री रामकुमार वर्मा, एम० ए०; वीणा, मार्च '३८

ग्राम-सुधार—श्रीमती रजनी; माधुरी, मार्च '३८

छायावाद—श्री नगेंद्र; हंस; फरवरी '३८

जयशंकर 'प्रसाद'—श्री रामनाथ 'सुमन'; माधुरी; फरवरी '३८

'जोश' मलीहाबादी और उन की कविता—श्री चंद्रभूषण सिंह, माधुरी, मार्च '३८

डाक्टर उमेश मिश्र के विद्यापति ठाकुर—श्री भुवनेश्वर झा और श्री रामनाथ झा, विशाल-भारत, मार्च '३८

ढोला मारू रा दूहा का परिचय—स्वर्गीय श्री मुंशी अजमेरी; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

तासी लामा की वैचित्र्यपूर्ण जीवन-कहानी—श्री राजेश्वर प्रसाद, एम्० ए०; विश्वमित्र; जनवरी '३८

तिब्बत की चित्रकला—श्री राहुल सांकृत्यायन, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ३

द्विवेदी जी की शैली—श्री प्रेमनारायण टंडन, माधुरी, मार्च '३८

नागौद की प्राचीन मूर्तियां—रायबहादुर पंडित ब्रजमोहन व्यास, सरस्वती, मार्च '३८

निःशुल्क, अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा-प्रचार—श्री महेशचंद, बी० एस्० सी०; सुधा, मार्च '३८

पदमावत (पद्मावती)—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०, सम्मेलन-पत्रिका; पौष-माघ '९४

पृथ्वी का प्रलय और मनुष्य जाति का सुदूर भविष्य—श्री संतराम, बी० ए०, माधुरी; मार्च '३८

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध'—श्री आत्मानंद मिश्र, एम् ए०; माधुरी, मार्च '३८

प्रगतिशील काव्य-साहित्य—श्री देवीशंकर बाजपेयी, बी० ए०; विशाल-भारत; फरवरी '३८

'प्रसाद' की नाटयकला—श्री प्रकाशचंद्र गुप्त; हंस; जनवरी '३८

'प्रसाद' जी की अंतिम कृति—श्री नंददुलारे बाजपेयी, एम्० ए०; वीणा; जनवरी '३८

प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय ज्ञान-संशोधक डाक्टर केतकर—श्री भाष्कर रामचंद्र भाले-राव; माधुरी, मार्च '३८

बघेलखंड का कलचुरि-राज्य—श्री लाल भानुसिंह बाघेल, सरस्वती, फरवरी '३८

बाण के काव्य-संबंधी विचार—श्री सूर्यनारायण चौधरी; विशाल-भारत; मार्च '३८

बिहार के भावुक कवि 'द्विज' जी का काव्य—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र, निर्मल, विश्वमित्र, मार्च '३८

बुद्धधर्म की रूप- मदंत आनंद वीणा मार्च ३८

भाट लोग ब्राह्मण है या नहीं ?—रावराजा रायबहादुर डाक्टर श्यामविहारी मिश्र, तथा रायबहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र; सुधा; फरवरी '३८

भारतीय साहित्य में शरद—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, हंस; फरवरी '३८

भारतवर्ष मे सिकंदर का पराभव—श्री वनमालीप्रसाद शुक्ल; सरस्वती, मार्च '३८

भोटियों की शिल्पकला—डाक्टर शिवदर्शन पंत, एम् ए०, पी-एच्० डी०; सरस्वती; मार्च '३८

मराठी साहित्य की वर्तमान प्रगति—श्री भास्कर रामचंद्र भालेराव; साहित्य-संदेश, मार्च '३८

महाकवि अलसानि पेद्दना—श्री जे० योगानंदम्; सरस्वती, फरवरी '३८

महान् युगप्रवर्तक वैज्ञानिक आचार्य जगदीशचंद्र वसु—श्री श्यामनारायण कपूर; माधुरी; फरवरी '३८

मैथिल ग्राम्यगीत के कुछ पहलू—श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश'; हंस, मार्च '३८

रत्नाकर की काव्यकला—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, वीणा, मार्च '३८

राष्ट्रलिपि—श्री मनमोहन चौधरी, हंस; मार्च '३८

राष्ट्रलिपि की समस्या—श्री रामनाथ 'सुमन'; माधुरी; मार्च '३८

लुई पाश्चियर—श्री देवीदत्त शुक्ल, सुधा, मार्च '३८

वर्तमान काव्य-साधना—श्री दीनानाथ व्यास, विशारद; सुधा; फरवरी '३८

वर्तमान वैज्ञानिक युग—डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, वीणा, मार्च '३८

विकासवाद तथा धर्म—श्री मन्मथनाथ गुप्त; माधुरी, फरवरी '३८

वेद में कृषि और कृषक—श्री गणेशदत्त 'इंद्र', विश्वमित्र: मार्च '३८

वेदों में भगवन्नाम महिमा—श्री स्वामी भागवतानंद महाराज, कल्याण, फरवरी '३८

शरच्चंद्र—श्री नंदगोपाल सेनगुप्त; हंस; फरवरी '३८

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय—श्री जैनेंद्र कुमार; विशाल-भारत; फरवरी '३८

शिक्षा-संबंधी नई योजना—श्री ईलम् चंद्र शर्मा, एम्० ए०: वीणा, मार्च '३८

शिशु-व्यक्तित्व का विकास—श्री इद्रमोहिनी सिनहा; विशाल-भारत; मार्च '३८

श्री वल्लभाचार्य—श्री कंठमणि शास्त्री, 'विशारद'; सुधा, जनवरी '३८

समाजवाद—श्री प्रेमनारायण माथुर, एम्० ए०, बी० काम०; विश्वमित्र, जनवरी '३८

सुमेरी संस्कृति का भारतीयत्व—श्री सूर्यनारायण व्यास, सरस्वती, फरवरी '३८

संतों ने हमारे लिए क्या किया?—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, सुधा, फरवरी '३८

हिंदी एवं द्राविड़ भाषाओं का व्यावहारिक साम्य और उन का हिंदी पर संभावित प्रभाव—श्री ना० नागप्पा, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

'हिंदी याने हिंदोस्तानी' में 'संस्कृत' का स्थान—श्री धर्मदेव शास्त्री, सरस्वती, फरवरी '३८

हेगेल और मार्क्स—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०, विश्व-मित्र, मार्च '३८

हैदरअली—एक इतिहास-प्रेमी, वाणी, फरवरी '३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६।।)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३।) सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुल्फज्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद हिंदुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जुलाई, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जूलाई, १९३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

// हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } जुलाई, १९३८ { अंक ३

मनु वैवस्वत से पूर्व का भारत

[लेखक—रायबहादुर पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र]

भारतवर्ष मे सब से पुराना ऐतिहासिक मसाला मोहजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त हुआ है। इस का समय डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने चालीसवी शताब्दी ईसा पूर्व स्थिर किया है और सर जान मार्शल ने ३२५० से २७५० ई० पू० तक कोई समय। पीछे से पुरातत्व के कुछ पडित यही समय २३०० ई० पू० भी बतलाने लगे है। इस में योनि-लिंग-युक्त शैव मूर्तिया, ध्यान-मग्न शिव, पशुपति शिव, सिहवाहिनी पृथ्वी माता, एक श्रेष्ठ नर्तकी, सैकड़ो मोहरो, आभूषणो आदि के असख्य चित्र और सामान मिले है। कई स्नानागार, मकान, गाड़ी आदि भी प्राप्त है तथा बहुतेरे लेख भी जो अब तक पढ़े नही गए है। अस्थियो से मनुष्य की लबाई ६१ इच से कुछ अधिक तक मिलती है। और बहुत सी ज्ञानप्रद वस्तुएं प्राप्त हुई है।

अपने यहां समय नापने के दो प्राचीन विधान थे, अर्थात् चतुर्युगी और मन्वंतर। प्रथम माप मे कई कारणों से दृढता नही मिलती। मन्वतरो का भी कथित समय गडबड हो गया है, किन्तु राज्यो की सख्या से वर्तमान ऐतिहासिक निष्कर्षो के अनुसार मोटे-मोटे समय प्राप्त हो जाते हैं। चौदह मन्वतर पुराणो मे कथित है जिन मे से छै गुजर चुके है। सातवा अब भी चल रहा है तथा शेष सात भविष्य मे आवगे जो छै

मन्वतर बीत चुके हैं, उन के नाम हैं स्वायभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुप। स्वायंभुव के वंश में उन को भी मिला कर २७ राजाओ के नाम दिए हुए हैं, जिन मे मुख्य नाम हैं स्वायंभुव, प्रियव्रत, भरत, पृथु और अंतिम २७वा विपग्ज्योति। इन सब के नाम पुराणो मे कथित हैं, तथा उन के सबंध में कुछ घटनाएं भी वर्णित है। स्वायभुव मनु का दूसरा वंश इस प्रकार है —

(१) मनु (स्वायंभुव), (२) उत्तानपाद, (३) ध्रुव, (४) शिलष्टि, (५) ऋपु, (६ से ३५ तक) अज्ञातनाम, (३६) चाक्षुप मनु, (३७) ऊरु, (३८) अग, (३९) वेन, (४०) पृथु, (४१) अतर्द्धान, (४२) हविर्द्धान, (४३) प्राचीन वर्हिष, (४४) प्रचेतस, (४५) दक्ष।

नं० ३६ चाक्षुप मनु के नाम पर बीता हुआ अंतिम मन्वंतर (चाक्षुप मन्वनर) था। इसी के पीछे से वैवस्वत मन्वतर चल रहा है। स्वायभुव और चाक्षुप मन्वतरो के बीच मे स्वारोचिष, उत्तम, तामस, और रैवत के नामो पर जो चार मन्वंतर चले, उन के विषय मे राजाओ की सख्या आदि कुछ ज्ञात नही है। 'विष्णुपुराण' मे केवल इतना कथित है कि ये चारों मनु भी स्वायभुव के बडे पुत्र प्रियव्रत के ही वंशधर थे। जब इन चारो के नामो पर मन्वतर तक चले तब इतना मानना ही पडेगा कि इन प्रत्येक मन्वंतरो में मनु के अतिरिक्त कम से कम एक-एक राजा और था। इस प्रकार चाक्षुप मनु से पूर्व स्वयंभुव मन्वतर के २७ नरेश तथा इन चार मन्वंतरों के कम से कम आठ नरेश हो चुके थे। पुराणो मे नवर ६ से ३५ तक नरेशो के अस्तित्व का कोई इशारा नही है, किंतु जब चाक्षुप छओ मे अंतिम मन्वंतर था, तब साफ है कि उन के पूर्व स्वायंभुव मन्वतर के २७ राजे तथा अन्य चार मन्वंतरो के आठ राजे, जोड ३५ राजे हो चुके थे, और चाक्षुप का नवर कम मे कम ३६ वा था। इन के पीछे ९ राजो के नाम लिखे ही हुए है, सो चाक्षुप मन्वतर के अंत पर्यंत कम से कम ४५ राजे हो गुज़रे थे। आज कल के ऐतिहासिक प्रति शताब्दी मे ६ राज्यो का पड़ता जोड़ते है। इस प्रकार बीते हुए छओ मन्वतरो का यह समय कम से कम ७५० वर्षो (साढे सात शताब्दियो) का था।

वेदर्षियों के नाम हमारे यहां सब ज्ञात है। सब से पुराने वेदर्षि यही चाक्षुप मनु थे। इन से पूर्व वेदर्षियो मे ध्रुव और पृथु के भी नाम है किंतु यह निश्चित नही है कि उन नामों वाले वेदर्षि -वंशी यही नरेश थे अथवा इन्हीं नामो के कोई और

मनुष्य। इधर चाक्षुष इसी मनु-सयुक्त नाम से साफ-साफ वेदर्षि लिखे हुए हैं। अतएव दृढता-पूर्वक पहले वेदर्षि यही चाक्षुष मनु थे। अतिम वेदर्षि मदपाल ऋषि से शूद्रा पत्नी मे उत्पन्न द्रोण, मंदपाल आदि वे चार ऋषि थे जो बालवय मे खाडव-दाह से युधिष्ठिर के अनुज अर्जुन द्वारा बचाए गए थे। अतएव ऋग्वेद का समय युधिष्ठिर से चाक्षुप मनु पर्यंत पड़ता है। डाक्टर सीतानाथ प्रधान ने युधिष्ठिर से रामचद्र तक का समय १४ पीढियो अर्थात् २८० वर्षो का प्रमाणित कर दिया है तथा डाक्टर रायचौधरी और पार्जिटर महाशय के ग्रथ पढने से प्रकट है कि महाभारत युद्ध का समय दशवी शताब्दी ईसा पूर्व है। डाक्टर जायसवाल यही समय १५वी शताब्दी ईसा पूर्व मानते है और डाक्टर प्रधान १२ वी। रामचद्र से मनु वैवस्वत तक ठीक हिसाब जोडने से ३९ राज्यो अर्थात् साढे छै शताब्दी का समय बैठता है। इस काल के तेरह वश-वृक्ष पुराणो मे प्राप्त है जिन मे से प्राय. ९ पूर्ण है। इस प्रकार महाभारत युद्ध का पीछे से पीछे तक का समय मानने मे वह दशवी शताब्दी ईसा-पूर्व आता है, राम-काल तेरहवी शताब्दी और मनु वैवस्वत काल बीसवी शताब्दी से प्रारभ हुआ बैठता है। अत वैवस्वत से पूर्व वाला काल मन्वतर काल माना जाने से यह मन्वतर काल बीसवी से २६ वी या २७ वी शताब्दी ईसा पूर्व तक आवेगा। वेदो का गायन इस के प्राय. अत मे २१ वी शताब्दी से प्रारभ हुआ।

ऐतिहासिको का विचार है कि भारत मे आर्य लोग दो धाराओ मे आए। पुराणो मे कथित है कि ब्रह्मा ने दो बार कर के सृष्टि रची। इन दोनों कथनों का सामजस्य बैठता है। समझ पड़ता है कि दूसरी आर्यधारा मनु वैवस्वत और उन के दामाद (चद्रात्मज) बुध के नेतृत्व मे भारत पहुँची। हम इसी मन्वतर काल को सत्ययुग, वैवस्वत से रामचद्र तक त्रेता, इस से पीछे महाभारत काल तक द्वापर और पीछे कलियुग मान सकते है।

ऋग्वेद मे अनार्यो के जो कथन है वे बहुधा मन्वतर-कालीन अनार्यो से ही सबद्ध है। वे काले, भाषाहीन, अनास आदि कहे गए है, किंतु साथ ही साथ उन मे से कुछ सर-दारो के सौ-सौ तक दुर्ग लिखे हैं। प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास रामचद्र के प्राय. सम-कालीन थे, ऐसा वेदो तथा पुराणो की घटनाओ के मिलाने से प्रकट है। अतएव स्पष्ट है कि पूर्णतया हारने के पूर्व अनार्यो ने आर्यो से बहुत कुछ सीख भी लिया था। वेदो और पुराणो के अनुसार अनार्यो की जातिया निम्नानुसार भी थी—महिष- कपि- नाग- मग राक्षस यातुधान व्रात्य महाव्रष मूजवत कोल आदि स्वायभुव के पुत्र प्रतापी राजा

प्रियव्रत ने राज्य अपने पुत्रो मे बॉट दिया। अग्नीध्र को जबूद्वीप (शायद एशिया) मिला, द्युतिमान को क्रौचद्वीप, भव्य को शकद्वीप, तथा औरो को अन्य प्रात। षष्ठी देवी का पूजन प्रियव्रत का ही चलाया हुआ है। अग्नीध्र ने भी अपना राज्य नौ पुत्रों में बॉट दिया। नाभि को हिमवर्ष नामक वह देश मिला जो हिमालय से अरब समुद्र पर्यंत कहा गया है। हरि को नैषध उपनाम हरिवर्ष (रूसी तुर्किस्तान) मिला, इलाव्रत को इलावर्ष (पामीर), रम्यक को चीनी तातार, हिरण्य को मंगोलिया, कुरु को कुरुवर्ष (साइबेरिया), किंपुरुष को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन, और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान। नाभि भारत का शासक हुआ। हरिवर्ष को कहीं-कहीं अरब या तिब्बत का भी मिलना कहा गया है। इंद्र की कन्या जयती का विवाह अग्नीध्र के पौत्र ऋषभ देव से हुआ। आप जैनो के प्रथम तीर्थंकर माने जाते है। जान पड़ता है कि इन्हो ने कुछ धार्मिक नवविचारोत्पादन किया जिस का मूल समय के साथ उन्नति करता हुआ जैन मत बना। इन के पुत्र भरत ने अष्टद्वीप जीते जिन के नाम थे इंद्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गोभस्तिमान, नागवर, सौम्य, गधर्व और वरुण। मजुमदार महाशय इन्हें सिधु, कच्छ, सीलोन, अडमन, नीकोबार, सुमात्रा, जावा और बोर्नियो समझते है।

स्वारोचिष मन्वतर मे दुर्गापाठ के अनुसार सुरथ नामक एक सार्वभौम राजा हुआ। इसी का सावर्णि मनु होना भी लिखा है। सुरथ के कोला नामक नगर या प्रात का विध्वस शत्रुओ ने किया। अनतर उन से हार कर सुरथ जगल को भाग गया किंतु मत्रियों के पुरुषार्थ से फिर जीत कर राजा हुआ। जगलो मे ऋषियों का सशिष्यवर्ग निवास उसी काल से लिखित है। ऋषियो ने सुरथ से कुछ ऐतिहासिक घटनाए भी कही, जिन का होना इस काल से पूर्व सिद्ध है। महिष जाति का आर्यो से युद्ध, महाप्रलय और शुभ-निशुभ के कथन इसी काल हुए है। तामस मनु उत्तम मनु के पुत्र थे। तामस के पुत्र ख्याति, शतहय, जानुजघ आदि थे। रैवत मन्वतर मे बैकुठ-निर्माण कथित है। यह कोई उत्कृष्ट नगर होगा।

श्रीभागवत के अनुसार समुद्र-मथन और बलि-बंधन चाक्षुष मन्वंतर की मुख्य घटनाए है। इस से जान पडता है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की भी कथाए इसी मन्वतर की हैं। चाक्षुष स्वायभुव के पत्र [illegible] के वशधर थे। इस वंश मे ध्रुव वेन पृथु और दक्ष महापुरुष थे वेन ने कोई नया मत [illegible] चाहा जिस से रुष्ट

हो कर प्रजा ने उन का वध कर डाला। पृथु इतने महान थे कि पृथ्वी उन की पुत्री मानी गई।

चाक्षुप मन्वंतर में देवासुर-संग्राम एक भारी घटना थी। असुरो मे दैत्य, दानव आदि की सज्ञा थी। समझ पडता है कि वेदो मे भी कथित सुरो और असुरो का युद्ध यही देवासुर-वैमनस्य था। पहले तो देवताओ ने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि आदि को जीत लिया, किन्तु पीछे प्रह्लाद नामक कोई दैत्य-सरदार उद्र हो गया, अर्थात् इद्र-पद देवताओं से छिन गया और इन में से कुछ पामीर आदि मे बस गए और शेप वैवस्वत मनु तथा चद्र-पुत्र बुध की अध्यक्षता में भारत चले आए। दैत्य दानवादि जूरास्ट्रियन समझे जाते है। वैदिक पडितो का मत है कि इन्ही से फारस मे हार कर देवता भारत में आए। अतएव बलिबधन आदि की घटनाएं फारस की समझ पडती है। 'योगवाशिष्ठ' ग्रथ में भी लिखा है कि विष्णु ने प्रह्लाद का देवताओं से मेल करा दिया और यह वचन दिया कि उस काल से दैत्यो का रुधिर पृथ्वी कभी पान न करेगी।

सब बातो का प्रयोजन यह निकलता है कि मन्वंतर काल मे आर्य लोग फ़ारस और भारत दोनो देशो में थे, किंतु चाक्षुप मन्वंतर में फारस मे हार कर केवल भारत मे रह गए। मन्वतर काल मे भारतेतर देशो की भी घटनाएं मनुवो से सबद्ध है।[१]

---

[१] हिंदुस्तानी एकेडमी के छठे साहित्य-सम्मेलन के लिए प्राप्त।

महाराष्ट्र के चार प्रसिद्ध संत-संप्रदाय

[लेखक—श्रीयुत बलदेव उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य]

भारतवर्ष मे संत-महात्माओ की संख्या जिस प्रकार अत्यत अधिक रही है, उसी प्रकार उन के द्वारा स्थापित सप्रदायों की भी मख्या बहुत ही अधिक है। समग्र भारत के सप्रदायो के मक्षिप्त वर्णन के लिए कितने ही बडे बडे ग्रथो की जरूरत पडेगी। वह भी किसी एक विद्वान् के मान की बात नही। इस लेख मे केवल महाराष्ट्र देश मे ही समुद्भूत सतो के द्वारा सस्थापित, सुप्रसिद्ध चार सप्रदायो का सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। अपेक्षाकृत नवीन सप्रदाय का पहले, तदनन्तर क्रमशः प्राचीन सप्रदायो का विवरण उपस्थित किया जावेगा।

१—रामदासी

इन चारो सप्रदायों में से अपेक्षाकृत सब से अर्वाचीन यही रामदासी सप्रदाय है। फिर भी यह तीन सौ वर्ष से कम पुराना नही है। इस की स्थापना छत्रपति शिवाजी के गुरु, समर्थ स्वामी रामदास जी ने की थी। स्वामी जी का जन्म १६०८ ई० मे हुआ था और वैकुंठ-लाभ १६८२ ई० मे। इस प्रकार १७वी शताब्दी के लगभग मध्यकाल में इस सप्रदाय की स्थापना हुई। स्वामी रामदास के जीवन की मोटी-मोटी घटनाए इतनी प्रसिद्ध है कि उन्हे दुहराने की जरूरत नही। इतना तो सब लोग जानते है कि यह स्वामी जी की ही शिक्षा तथा उपदेश का फल था कि छत्रपति शिवाजी के मन में सनातनधर्म के ऊपर अवलबित हिंदू-राष्ट्र की संस्थापना का विचार उत्पन्न हुआ, और उन्हो ने उस विचार को कार्य-रूप मे भी बड़ी योग्यता से परिणत कर दिखाया। ससार के दुःखद प्रपंच से घबडा कर निवृत्ति मे ही सुख के मार्ग को बतलाने वाले बहुत से महात्मा मिलेगे, परतु
का विशद् विचार कर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों के यथायोग्य सम्मेलन पर

महात्माओं मे अग्रणी थे। अत इस रामदासी सप्रदाय का मुख्य अग समाज की ऐहिक तथा पारलौकिक दोनो तरह की उन्नति करना है। स्वय स्वामी जी ने हरिकथा-निरूपण, राजकारण तथा सावधानपना या उद्योगशीलता को अपने सप्रदाय का मुख्य लक्षण बतलाया है। प्रयत्न, प्रत्यय और प्रबोध—इन्ही तीन शब्दों मे रामदास के जीवन तथा ग्रथो का सार है।

रामदासी तथा वारकरी सप्रदायो में इसी कारण भेद दिखाई पडता है। वारकरी सप्रदाय तो संपूर्ण रूप से निवृत्तिपरक है, परतु रामदासी सप्रदाय मे प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनो का यथानुरूप मिश्रण किया गया है। यही इस की विशिष्टता है।

'मानपंचक' मे स्वामी जी ने कहा है—

रामदासी ब्रह्मज्ञान सारासारविचारणा।
धर्मसंस्थापने साठीं कर्मकांड उपासना॥

सदा जागरूक रहना और यत्न करते रहना—इन दोनो पर स्वामी जी का विशेष पक्षपात था। इन दोनो के आश्रय से केवल ऐहिक सुख की ही प्राप्ति नही मिलती, प्रत्युत पारलौकिक सुख की भी प्राप्ति सहज में हो सकती है। यहा राज्य की प्राप्ति हो सकती है, तो वहां स्वाराज्य की। अत इन्हे उन्हो ने बडे महत्त्व का बतला कर सदा जागरूकता की सुंदर शिक्षा दी है।

राक्षसो के बंदीगृह से ऋषियो और देवताओ के उद्धार करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम रामचद्र इस सप्रदाय के उपास्य देवता है, तथा दासमारुति के स्थान पर भीममारुति की उपासना यहां प्रचलित है। रामदास को महात्मा लोग हनुमान जी का अवतार मानते है। सं० १५६७–७१ शक में हनुमान जी की भिन्न-भिन्न स्थानों पर ११ मूर्तियो की स्थापना स्वामी जी ने की। काशी में भी रामदास द्वारा स्थापित हनुमान जी हैं। इस संप्रदाय का मुख्य उद्देश्य यह है कि इस के अनुयायी गीता मे प्रतिपादित कर्मयोग के सच्चे मार्ग पर शुद्ध मन से चले, जिस से उन का दोनो लोक बन जाय। इस मे गृहस्थ भी है और विरक्त भी। विरक्तो के लिए ब्रह्मचारी रह कर भिक्षा पर अपनी जीविका चला कर निष्काम बुद्धि से समाज का धारण-पोषण करना और साथ ही आत्मज्ञान का करना आदर्श गया है

'दासबोध' तथा स्वामी जी के अन्य ग्रथ इस सप्रदाय के भाषा-ग्रथो में परम माननीय हैं। सं० १५७० शक से स्वामी जी ने जो रामनवमी का उत्सव आरभ किया वह आज तक बड़े समारोह के साथ किया जाता है। हज़ारों की भीड सिंहगढ आदि स्वामी जी से सबद्ध पवित्र स्थानो पर जुटती है, और कई दिनो तक लगातार 'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम' मत्र का गगन-भेदी कीर्तन होता रहता है। इस की सांप्रदायिक पद्धति अलग है, तथा रामनवमी के उत्सव मनाने की भी विधि रामदास जी ने ही लिख रक्खी है। स्वामी जी ने राममत्र के ४६ श्लोक लिखे है जो प्रख्यात है। उन मे से केवल दो श्लोकों को यहा उद्धृत कर और 'मनोबोध' का परिचय दे कर 'रामदासी' के सक्षिप्त वर्णन को समाप्त करते है—

तुला हि तनू मानवी प्राप्त झाली।
बहू जन्म पुण्यें फला लागिं आली॥
तिला तूं कसा गोंविसी विषयीं रे।
हरे राम हा मन्त्र सोपा जपा रे॥
कफें कंठ हा रुद्ध होईल जेव्हां।
अकस्मात तो प्राण जाईल तेव्हां॥
तुला कोण तेथें सखे सोयरे रे।
हरे राम हा मंत्र सोपा जपा रे॥

रामदास स्वामी ने मन को सबोधन कर ससार की माया को छोड़ देने और भगवान् की ओर लगने के जो विमल तथा स्फूर्तिदायक उपदेश दिए है वे 'मनोबोधाचे श्लोक' के नाम से प्रसिद्ध है। रामदासी लोगों मे ये पद्य भी खूब प्रसिद्ध है। ये सुदर श्लोक मन पर तुरत असर करने वाले है। प्रात काल उठ कर राम का चितन और रामनाम का भजन करने तथा सदाचार न छोडने की कैसी सुदर शिक्षा मन को दी गई है—

प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।
पुढें वैखरी राम आधी वदावा॥
सदाचार हा थोर सोडूं नये तो।
जनीं तोचि तो मानवीं धन्य होतो।

मन ! तू सकल्प-विकल्प छोड़ कर एकांत मे रमाकांत के भजन में सदा लगा रह—

मना ! अल्प संकल्प तोही नसावा ।
सदा सत्यसंकल्प चित्तीं बसावा ॥
जनीं जल्प विकल्प तोही त्यजावा ।
रमाकांत येकांत काळीं भजावा ॥

२—सत्पंथ

यह विचित्र पथ महाराष्ट्र के धार्मिक सप्रदायों मे अन्यतम है। विचित्रता यह है कि इसे चलाया एक मुसलमानी फकीर ने, पर इसे मानते है हिंदू और इसे वैदिक धर्म के विधि-आचार जैसे मौजी-बधन, शिखा-सूत्र, चार वर्ण और चार आश्रम आदि सब मान्य है। खानदेश के फ़ैज़पुर मे (जहा गत कांग्रेस हुई थी) सत्पथियो का एक प्रसिद्ध धर्म-मंदिर है। उसी मठ के अधिकारी ने इस संप्रदाय का सक्षिप्त वर्णन लिखा है जो महाराष्ट्रीय 'ज्ञानकोश' के २०वे भाग मे प्रकाशित हुआ है उसी के आधार पर यह प्रामाणिक वर्णन दिया जाता है।

सन् १४४६ ई० में इसे इमाम शाह नामक मुसलमानी फकीर ने स्थापित किया। ये ईरान के निवासी थे और घूमते-घामते गुजरात में आए थे। अहमदाबाद से नौ मील दक्षिण गीरमथा गॉव के पास ये रहते थे। पहुँचे हुए सिद्ध थे। इन के चमत्कार को देख कर अनेक लोग इन के भक्त बन गए। बाबा के पाँच पट्ट शिष्य हुए जिन में एक मुसलमान था और चार हिंदू। मुसलमान शिष्य का नाम हाजर बेग, तथा हिंदू शिष्यो का भाभाराम, नागाकाका, साराकाका था। पॉचवी शिष्या थी। यह चिचिबाई भाभाराम की बहिन थी। इस पंथ के अनुयायियों की संख्या काठियावाड़, गुजरात मे खूब अधिक है। महाराष्ट्र मे खानदेश के गॉवो में ही विशेष कर के सत्पथी गृहस्थ पाए जाते है।

'पिराणा' नामक स्थान मे इमाम शाह की गद्दी है, जहाँ पर प्रत्येक मास की शुद्ध द्वितीया, गोकुलाष्टमी, रामनवमी, ध्रुवाष्टमी तथा भाद्र के शुद्ध एकादशी को बडा मेला लगता है जिस में हिंदू लोग हजारों की संख्या में भाग लेते हैं। इस मत मे ब्राह्मण भी है परतु अधिक संख्या बनियों कुनबी तथा मोमिया आदि जातियो की है जो इमाम

शाही कहलाते हैं। इस शाखा मे मुसलमान शिष्य बिल्कुल नही है। गद्दी पर ब्रह्मचारी के ही बैठने की चाल है और वह लेवा (घर बनाने वाले) पाटीदार जात का होता है। फैजपुर मे और खानदेश के अन्य गाँवों मे भी इन की खासी सख्या है।

ये लोग भागवत, रामायण, गीता आदि धर्म-ग्रथो को तो मानते ही है, साथ ही इमाम शाह के लिखे गुरूपदेश को भी मानते है, जिस में हिंदू-धर्म के ग्रथों के वचन सग्रहीत है। इस के अतिरिक्त इस मत के २१ विशिष्ट ग्रंथ है जो अधिकाश गुजराती और हिंदी मे लिखे गए हैं। कुछ के नाम ये हैं—'जोगवाणी' (गु०), 'बोधरास' (गु०) 'सत्-वचन' (गु०, हि०), 'ब्रह्मप्रकाश' (हि०) आदि। इन के देखने से इन के मत का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। इन लोगो का गुरु-मत्र है—'शिवोऽहम्'। यह बाल-विवाह करते है। विधवा-विवाह की भी चलन है। श्राद्ध करते है। साथ ही मंदिरो मे प्रेतात्मा की उत्तम लोक की प्राप्ति की इच्छा से 'उच्चासन' नामक विधि भी की जाती है। इस मत का साहित्य अल्प ही है।

३—महानुभाव पंथ

इस पथ के भिन्न-भिन्न प्रातो में भिन्न-भिन्न नाम है। महाराष्ट्र मे इसे महात्मा पथ तथा मानभाव (जो महानुभाव शब्द का अपभ्रंश है) पथ कहते है। गुजरात में अच्युत पथ और पजाब मे जयकृष्णि पथ के नाम से पुकारते है। इस नामकरण का कारण पथ मे कृष्णभक्ति की प्रधानता है। इस पथ के वास्तविक इतिहास का पता अभी लगा हैं क्योकि इस के अनुयायी अपने धर्म-ग्रथो को अत्यत गुप्त रक्खा करते थे। वे उसे अन्य मतावलबियों की दृष्टि मे भी आने नही देते थे। इस पथ की भिन्न-भिन्न शाखाओ ने अपने धर्म-ग्रंथ के लिए एक साकेतिक लिपि बना रक्खी है जो शाखा-भेद के अनुसार छब्बीस है। अत सयोगवश इन के ग्रथ इतर लोगों के हाथ मे भी आ जायँ तो आना न आना बराबर रहता था, क्योकि लिपि के साकेतिक होने से वे उस का एक अक्षर न बाँच सकते थे और न समझ ही सकते थे। परतु इस बीसवीं सदी के आरभ से इन का कुछ रुख बदला है, इतर लोगों ने इन के ग्रंथो को पढा है, और प्रकाशित किया है। स्वयं लोकमान्य तिलक ने १८६६ ई० के 'केसरी' मे मानभावो पर अनेक पाडित्य-पूर्ण लेख लिखे थे। परंतु इन की लिपि के रहस्य को ठीक-ठीक समझाने का काम किया प्रसिद्ध इतिहासज्ञ राजवाडे न

और इन के ग्रथों के मर्म बतलाने का काम किया 'महाराष्ट्र-सारस्वत' के लेखक भावे ने और 'महानुभावी मराठी वाङ्मय' के रचयिता श्री यशवंत देशपांडे ने। इन्हीं विद्वानो के शोध के बल पर आज इन के मत, सिद्धात, ग्रथ तथा इतिहास का बहुत कुछ प्रामाणिक पता चला है।

महाराष्ट्र देश मे मानभावो के प्रति लोगो मे बड़ी अश्रद्धा है। सवेरे-सवेरे मानभाव का मुँह देखना ही क्यो उस का नाम लेना भी अपशकुन माना जाता है। एक प्रचलित कहावत है---'करणी कसावाची, बोलणी मानभावाची', अर्थात् करनी तो कसाई की है और बोली मानभाव की। साधारण बोलचाल मे मानभाव और कसाई दोनो को एक ही श्रेणी मे रखने मे लोग नहीं हिचकते। मानभाव गृहस्थ अपने धर्म को कदापि नही प्रकट करता था। वह छिप कर अपना जीवन बिताता था। बड़े-बडे सतो की भी यही बात थी। एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओ की बानी में भी मानभावो के प्रति अनादर भरा हुआ है। इस प्रकार इन का सर्वत्र तिरस्कार होता था, इन के प्रति सर्वत्र द्वेष फैला हुआ था। आज कल यह कुछ कम हुआ है, परन्तु फिर भी यह है ही। इस तिरस्कार का कारण इन के इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट मालूम पड़ता है। शक की १२वी सदी में यह मत जनमा। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय मत के उपास्य देवता है। देवगिरि के यादव नरेश महादेव और रामराय इन के गुरुओं और आचार्यो को बडे सम्मान के साथ सभा में बुलाते थे। मुसलमानो के आने से वह समय पलट गया। मानभावो ने भी मुसलमानो के हिदूधर्म के प्रति किए गए छल और अत्याचार को देख कर अपने धर्म के रहस्यो को छिपाया। ये लोग मूर्तिपूजा को नही मानते। अत यवनो ने इन्हे मूर्तिपूजक हिंदुओ से अलग समझा और इन के साथ कुछ रियायत की। बस हिदू लोग इन से बिगड गए और इन्हे दगाबाज समझने लगे। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय से सबद्ध तीर्थ-स्थानो पर ये अपना 'चबूतरा' बनाने लगे; स्त्री शूद्रों के लिए भी संन्यास की व्यवस्था की। भगवाधारी संन्यासी से भेद बतलाने के लिए इन के सन्यासी काला कपडा पहनने लगे। इन्ही सब 'अहिदू' आचारो से हिंदू जनता बिगड़ गई और इन्हे कपटी, छली, दुष्ट तथा वचक समझने लगी। सौभाग्य-वश यह भाव समय की अनुकूलता से पलट रहा है।

इस मत का आज कल प्रचार केवल महाराष्ट्र ही मे नही है, प्रत्युत गुजरात, पजाब यू० पी० के कुछ भाग कश्मीर तथा सुदूर काबुल तक है हिंदुओं म वर्ण-भद को

मिटा कर सब मे समानता तथा मैत्री का प्रचार करना ही इस पथ का उद्देश्य है। इस के सस्थापक हे चक्रधर जो भड़ोच के राजा थे और जिन का असली नाम था हरपाल देव। पीछे इन्ही का नाम चक्रधर पडा। ११८५ शक मे इन्हो ने सन्यास की दीक्षा ली और शिष्य-मडली इन के विचित्र चमत्कार को देख कर जुटने लगी। इन्हो ने ५०० शिष्य किए जो गुजराती थे। पीछे महाराष्ट्र में यह मत फैला। इस की भिन्न-भिन्न १३ शाखाए हे, जिन्हे 'आम्नाय' कहते है। इन शिष्यों मे प्रधान नागदेवाचार्य थे, जिन के सतत उद्योग से इस का प्रचुर प्रचार हुआ। इन्हे वेदशास्त्र सब मान्य है। सस्थापक भी ब्राह्मण थे तथा तीन सौ वर्षो तक ब्राह्मण ही इस के प्रमुख नेता होते थे। इन के दो वर्ग है—उपदेशी और सन्यासी। उपदेशी गृहस्थ है, वर्ण-व्यवस्था मानते है और उन का विवाह स्वजातीयो मे ही हुआ करता है। सन्यासी स्त्री और शूद्र भी हो सकते है। श्रीकृष्ण और दत्तात्रेय उपास्य देवता हैं। गीता मान्य धर्मग्रंथ है। इस कारण चक्रधर के समय से ले कर आज तक अनेक मानभावी सतो ने स्वमतानुसार गीता पर टीकाएं लिखी है। ये लोग द्वैतवादी है। परमेश्वर को निर्गुण निराकार मानते है, जो भक्तो पर कृपावश साकार रूप धारण कर लेता है।

महानुभाव संप्रदाय में जितने ग्रथ उपलब्ध है, उतने शायद ही तत्सदृश अन्य मत मे हो। सब से बडी विशेषता इन का प्राचीन साहित्य है। 'ज्ञानेश्वरी' (श० १२१२) ही मराठी साहित्य का आद्य-ग्रंथ अब तक माना जाता था, परतु मानभावो के प्राचीन ग्रथो की उपलब्धि के कारण यह मत अब बदल गया है क्योकि ज्ञानेश्वर महाराज से पूर्व के भी अनेक मानभावी गद्य तथा पद्य ग्रंथ उपलब्ध हुए है। महीद्र भट्ट का 'लीला-चरित्र' (चक्रधर स्वामी का जीवन-वृत्त, श० ११९५), भास्कर कवि का ओवी बद्ध 'शिशुपाल-वध' और 'एकादश स्कध भागवत', और 'कृष्णचरित्र' (गद्य), केशव व्यास और गोपाल पडित का 'सिद्धांत-सूत्रपाठ' (गद्य) जो इस मत का प्रधान दर्शन-ग्रंथ माना जाता है और जिस की व्याख्या मे अनेकानेक ग्रंथ बने है—आदि बहुत ग्रथ 'ज्ञानेश्वरी' से भी पूर्व के है। अत मानभावों का उपकार मराठी साहित्य पर बहुत अधिक है। इतना ही नही, इन्हो ने पजाब जैसे यवन-प्रधान देश मे अहिंसा का प्रचार किया; काबुल मे हिंदू मदिर बनाया, जिस का पहला पुजारी नागेंद्र मुनि बीजापुरकर नामक दक्षिणी ब्राह्मण था, खास महा-राष्ट्र में भी के निवारण का प्रयत्न किया मराठी भाषा के ऊपर भी इन का

उपकार कैसे गिनाया जाय ? इन्हो ने गजनी, काबुल तक मराठी भाषा का प्रचार किया। दोस्त मुहम्मद का प्रधान विचारदास, और कश्मीर के महाराज गुलाब सिह का सेनापति सरदार भगत सुजन राय दोनो मानभावी उपदेशी थे। अत इन्हो ने मराठी को धर्म-भाषा अपने राज्य मे बनाया था। आज भी लाहौर मे बहुत से व्यापारी मानभावी है, जो अपने खर्चे से मानभावी ग्रथो का प्रकाशन भी कर रहे है। इस मत के महन्त लोग भी अब अपने धर्मग्रथो को, जिन की विपुल सख्या आज भी मराठी भाषा में विद्यमान है, प्रकाशित करने की ओर अग्रसर दीखते है। यह मराठी साहित्य के लिए शुभ अवसर है।

४—वारकरी पंथ

यह संप्रदाय महाराष्ट्र देश की धार्मिकता की बहुमूल्य विभूति है। यह वही जनमा, वही पनपा, वही इस ने शाखाओ का विस्तार किया और आज भी वही पूरे देश भर में अपनी शीतल छाया मे हजारो भक्त नर-नारियो को विश्राम दे कर सासारिक ताप से उन्हे मुक्त कर रहा है। इस संप्रदाय का इतिहास लिखना क्या है पूरे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध संतों के जीवन, प्रभाव, और कार्य का प्रदर्शन करना है, क्योकि रामदासियो की सख्या छोड देने पर अधिकांश महाराष्ट्रीय सत इसी पथ के अनुयायी थे। इन सतो से परिचित होने के पहले इस पथ के नाम का ठीक-ठीक अर्थ जान लेना नितात उचित है।

महाराष्ट्र में पढरपुर नामक एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। वहा विट्ठलनाथ जी की मूर्ति है। 'विट्ठल' शब्द विष्णु शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। अत विट्ठलनाथ जी कृष्णचद्र के बाल-रूप है। आषाढ की शुक्ला एकादशी और कार्तिक की शुक्ला एकादशी को साल मे कम से कम दो बार विट्ठल के भक्तजन पंढरपुर की यात्रा किया करते है। इसी यात्रा का नाम है—वारी। अत. इस पुण्य-यात्रा के करने वालो का नाम हुआ—वारकरी। इसी कारण इस पंथ का नाम वारकरी पथ पडा है। महाराष्ट्र मे एक बडे महात्मा पुडलीक हो गए है, जिन की भक्ति से प्रसन्न हो कर स्वय कृष्णचंद्र बाल-रूप धारण कर उन के सामने प्रकट हुए, और उन्हों ने उन के बैठने के लिए एक ईंट रख दी जिस पर वे खडे हो गए। ईंट पर वह खडी मूर्ति श्री विट्ठलनाथ जी की है। बाल-कृष्ण को तुलसी बडी प्यारी है अत भक्त लोग गले में तुलसी की माला डाल कर पूर्वोक्त

एकादशी को लाखों की सख्या में विट्ठल जी के मधुर दर्शन कर अपने जीवन को सफल करने के लिए जब इकट्ठे होते है और जब उन के भक्त कंठ से 'पुंडलीक वरदा हरि विट्ठल' मत्र की सांद्रध्वनि गगन-मडल को भेदन करती हुई निकलती है, तब का दृश्य शब्दो मे वर्णन करने के योग्य नही। उस समय प्रतीत होता है कि धार्मिकता की बाढ़ आ गई हो। भक्तजनो के मनोमयूर नाचने लगते है। आनंद की सरिता बहने लगती है। इन मे आषाढ़ी एकादशी (हरिशयनी) को तो सब से अधिक भीड होती है। तीन लाख से भी ऊपर भक्तजन एकत्र होते है। इस दृश्य की कल्पना भी वारकरी सतो के व्यापक प्रभाव को आज भी बतलाने मे समर्थ हो सकती है।

यह वारकरी सप्रदाय पूर्णतया वैदिक धर्मानुकूल है। जिन्हे इस की उत्पत्ति मे अवैदिकता की बू आती है, वे गलती पर है। यह बिल्कुल भागवत-संप्रदाय है। भगवान् कृष्ण की भक्ति ही मोक्ष का प्रधान साधन है। भक्तिमार्गी होने पर भी यह पंथ माध्वादिमतो के सदृश द्वैतवादी नही है, प्रत्युत पक्का अद्वैतवादी है। अद्वैतवाद के साथ भक्ति का मेल करा देना इस मार्ग की अपनी विशेषता है। यह भक्ति ज्ञान के प्रतिकूल नही है, प्रत्युत एकनाथ महाराज के कथनानुसार भक्ति मूल है और ज्ञान फल है। जिस प्रकार विना मूल रहे फल पाने की संभावना नही रहती, उसी तरह बिना भक्ति के, ज्ञान के उत्पन्न होने की भी बात असभव है। भक्ति तथा ज्ञान दोनो का समन्वय इस मार्ग मे है। एकनाथ जी ने अपने 'भागवत' में स्पष्ट कहा है—

भक्ति तें मूळ ज्ञान तें फळ।
वैराग्य केवळ तेथीं चें फूल॥
भक्ति युक्त ज्ञान तेथें नाही पतन।
भक्ति माता तयां करित से जतन॥

भगवान् की प्राप्ति के लिए अन्य साधन बड़े कठिन है। यदि कोई सुलभ और सहज साधन हाथ के पास है, तो वह हरिभजन ही है। इसी लिए इन सतों ने हरिभजन पर इतना जोर दिया है। इन का निश्चित मत है कि श्री पंढरीनाथ की भजन द्वारा उपासना करने से भक्तों के अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की सिद्धि होती है।

इस पथ मे चार सप्रदाय है—(१) चैतन्य सप्रदाय—इस मत मे दो भेद है। एक में 'राम-कृष्ण-हरि' यह षडक्षरी मत्र ह और दूसरे में प्रसिद्ध मंत्र (२

स्वरूप संप्रदाय—इस का 'श्री राम जय राम जय जय राम' यह त्रयोदशाक्षरी मंत्र है। इस के दो छोटे-छोटे उप-संप्रदाय है। (३) आनद संप्रदाय—इस का त्र्यक्षरी मत्र है 'श्री राम' और द्वयक्षरी मत्र केवल 'राम'। इस के अतर्गत नारद, वाल्मीकि, रामानद, कबीर आदि सत माने जाते है। (४) प्रकाश सम्प्रदाय—इस का मत्र है 'ॐ नमो नारायण। इस प्रकार मंत्र के भेद से वारकरी पंथ के इतने प्रभेद है।

यह पथ प्रधानतया कृष्णभक्ति-मूलक होने पर भी शिव का विरोधी नहीं है। इस मे हरि और हर दोनो की एकता ही मानी जाती है। यह इस की बड़ी विशिष्टता हे। स्वय ण्ढरीनाथ के सिर पर शिव की मूर्ति विराजमान है, तब पंढरीराय के भक्त का शिव से विरोध भला कभी हो सकता है? ये लोग जिस प्रकार एकादशी के दिन व्रत रहते है, उसी भाँति शिवरात्रि और सोमवार को भी। इन्ही के कारण महाराष्ट्र देश मे दक्षिण-देश के समान शिव-विष्णु के मतभेद का नाम निशान भी नही है। यद्यपि प्रधानतया विट्ठल नाथ ही उपास्य देवता है, पर साथ ही साथ अन्य हिंदू देवताओं की भी पूजा और आराधना इस मत में चलती है। ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम जी इस सप्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा हो गए है जिन से संबद्ध सब स्थान तीर्थ के समान पवित्र माने जाते है। इन के मान्य ग्रंथ 'भागवत' तथा 'गीता' तो है ही, साथ ही मराठी ग्रंथो मे 'ज्ञानेश्वरी', 'एकनाथी भागवत' तथा तुकाराम के 'अभग' इन के मान्य धर्मग्रथ है जिन का पठन-पाठन गुरु-परपरा से लिया जाता है। महाराष्ट्र मे आज भी अनेक कीर्तनकार है जो इन ग्रंथो के सांप्रदायिक अर्थ की व्याख्या बड़ी विद्वत्ता और मार्मिकता के साथ करते है ओर आज भी इन कीर्तनकारो की बानी मे ज़ोर है, प्रभाव है, और महात्माओ की वाणी को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य है।

इस मत के सब संतो के परिचय देने के लिए यहां स्थान नहीं है। इस के लिए तो एक पुस्तक लिखी जा सकती है। यहां पर केवल प्रसिद्ध सतो के ही कुछ नाम दिए जाते है—

संतनाम	काल : शक	समाधिस्थान
निवृत्तिनाथ . .	११९५–१२१९	त्र्यंबकेश्वर
ज्ञानेश्वर महाराज .	११९७–१२१८	आलदी
सोपान देव	११९९ १२१८	

संतनाम	काल : शक	समाधिस्थान
मुक्ताबाई . .	१२०१–१२१९	एदलाबाद
विसोबा खेचर . .	१२३१	..
नामदेव . .	११९२–१२७२	पढरपुर
गोरा कुंभार . .	११८९–१२३९	तेर
सावता माली .	१२१७	अरणभेंडी
नरहरी सोनार .	१२३५	पढरपुर
चोखा मेला . .	१२६०	पढरपुर
जगमित्र नागा . .	१२५२	परली (बैजनाथ)
कूर्मदास . .	१२५३	लऊल
जनाबाई . .	..	पढरपुर
चागदेव . .	१२२७	पुणतांबे
भानुदास . .	१३७०	पैठण
एकनाथ . .	१४७०–१५२१	पैठण
राघव चैतन्य . .	..	ओतूर
केशव चैतन्य . .	१३९३	गुलबर्गा
तुकाराम . .	१५७२	देहू
निळोबा राय . .	..	पिंपलनेर
शंकर स्वामी . .	..	शिरूर
मल्लाप्पा . .	..	आलदी
मुकुंद राज . .	..	आवे
कान्होपात्रा . .	..	पंढरपुर
जोगा परमानंद . .	..	बार्शी[1]

ये सब संत महात्मा कृष्णभक्ति के प्रसारक हुए। इन मे बड़ा-छोटा कहना अपराध है। फिर भी इन मे मे चार महात्माओ ने कृष्ण-भक्ति के देवालय को महाराष्ट्र मे बनाया और सजाया। पथ की उत्पत्ति का पता नही, परंतु ज्ञानदेव महाराज ने इस मदिर का पाया 'ज्ञानेश्वरी' के द्वारा खडा किया, नामदेव ने अपने भजनों से इस का

---

[1] यह सूची प्रोफ़ेसर शंकर वामन दांडेकर के लेख 'महाराष्ट्रीय ज्ञान' के भाग २० के पृ० १७६ से यहा उद्धृत की गई है

विस्तार किया; एकनाथ महाराज ने अपने 'भागवत' की पताका फहराई और तुकाराम महाराज ने अपने अभंगो की रचना कर इस के ऊपर कलश स्थापन किया। तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई ने अपने निम्नलिखित अभगो मे इसी बात को कितने सरल शब्दो मे कहा है—

संत कृपा झाली।
इमारत फला आली ॥१॥
ज्ञानदेवें रचिला पाया।
रचियेलें देवालया ॥२॥
नामा तया चा किंकर।
तेणें केला हा विस्तार ॥३॥
जनार्दन एकनाथ।
ध्वज उभारिला भागवत ॥४॥
भजन करा सावकाश।
तुका झाला से कलश ॥५॥

जब इतने बडे सिद्ध पुरुषो ने अपना चित्त लगा कर इस भक्ति-मदिर का निर्माण किया है तथा उसे अलकृत किया है, तब उस की महिमा कैसे बतलाई जा सकती है? धन्य है वह देश जहां ऐसे सिद्ध पुरुष जनमे, और धन्य है वे महात्मा-गण जिन्हो ने सहज भाषा मे भगवान् की प्राप्ति का सुगम और सुलभ मार्ग कर जन-साधारण का कल्पनातीत उपकार किया! अंत मे शकराचार्य के 'पाडुरगाष्टक' से विट्ठलनाथ की स्तुति मे एक पद्य तथा 'ज्ञानेश्वरी से' कुछ ओवियां उद्धृत कर यह लेख समाप्त किया जाता है—

महायोग पीठे तटे भीमरथ्यां
वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं
परब्रह्म लिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥

जय जय देव निर्मल। निजजनाखिलमंगल।
जन्म जरा जलद जाल १

जय जय देव प्रबल । विदलितामङ्गलकुल ।
निगमागम द्रुमफल । फलप्रद ॥२॥
जय जय देव निश्चल । चलित चित्तपान तुन्दिल ।
जगदुन्मीलनाविरल । केलिप्रिय ॥३॥
जय जय देव निष्फल । स्फुरदमन्दानन्द बहल ।
नित्यनिरस्ताखिलमल । मूलभूत ॥४॥

आधुनिक उर्दू कविता में गीत

[लेखक—श्रीयुत उपेंद्रनाथ, 'अश्क']

'हिंदुस्तानी' के पिछले अक मे आधुनिक उर्दू कविता के विषय मे कुछ निवेदन किया जा चुका है। हम ने कृष्ण, बसत और होली, एकता और देश, माया, ससार और जीवन सबधी गीतो से परिचय प्राप्त किया है। लेख के इस उत्तरार्द्ध मे उर्दू के गीत-साहित्य के अवशिष्ट अंगो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न होगा।

रहस्यवादी गीत

हिंदी मे आज कल छायावाद की बडी धूम है। रहस्यवाद का ही दूसरा नाम छायावाद है। हिंदी का सब से पहला रहस्यवादी कवि कबीर हुआ है। आज कल तो हिंदी मे रहस्यवाद की बडी सुदर कविता हो रही है। उर्दू साहित्य भी हिंदी की इस धारा से प्रभावित हुआ है। मौलाना 'वकार' ने 'उस पार' शीर्षक कविता में लिखा है—

मुझ पै चला है मंतर किसका ?
धरती किस की अंबर किसका ?
सूरज किस का सागर किसका ?
कौन बसत उस पार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?
नीला अंबर सुंदर तारे,
यह सागर वे मोती सारे,
चाँद की नैया धारे-धारे—
किरणों की पतवार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

बन के ऊँचे वृक्ष घनेरे,
चीते शेर और लाल बघेरे,
फिरते है दौड़े शाम-सबेरे—
मोरों की झंकार,
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

हिंदी के छायावादी कवियो के सम्मुख यह चीज कदाचित् बहुत फीकी जान पडेगी, किंतु इस से यह तो ज्ञात हो ही जायगा कि हिंदी भाषा ही नही, उस के भावो का भी उर्दू गीतों पर प्रभाव पडा है।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' अपने काव्य 'अनत के पथ पर' मे ऐसी ही अनत के पथ पर चलने वाली का चित्र खीचते है जो सृष्टि और इस की अद्‌भुत चीज़ो को देख कर आश्चर्यान्वित रह जाती है और उस के हृदय मे ऐसे ही प्रश्न उठते है। वह भी पूछती है—

इस रत्न-जटित अंबर को
किस ने वसुधा पर छाया ?
करुणा की किरणें चमका
क्यों अपना आप छिपाया ?
नभ के परदे के पीछे
करता है कौन इशारे ?
सहसा किस ने जीवन के
खोले है बंधन सारे ?

इसी 'किस' की तलाश मे वह अपनी कुटिया से चल देती है। 'वकार' साहब लिखते है—

पीत का किस की रोग लिया है ?
ऐश को छोड़ा सोग लिया है—
याद में किस की जोग लिया है ?

त्याग दिया घर बार
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

जोत जगी है किस की मन में ?
बीत रही है किस की लगन में ?
ढूँढ रही हूं किस को बन में ?
किस के हूं बलिहार ?
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

ज्ञान का सागर लहरें मारे
ध्यान की नैया धारे-धारे
साँस है नैया खेवन हारे
कठिन बड़ी मँझधार
सजनी,
कौन बसत उस पार ?

प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' चल निकलने वाली भी ऐसे ही कहती है--

किस का अभाव मानस में
सहसा शशि-सा आ चमका ?
है क्या रहस्य, बतला दे
कोई इस अंतर-तम का ?

इन सरल-तरल नयनों में
किस की उज्ज्वल छबि छाई ?
किस ने मेरे प्राणों में
अपनी तस्वीर बनाई ?

अब पथ भूली उस सुख का
पाया यह कंटक-कानन
किस ओर बहा जाता है
अब मेरा आकुल जीवन ?

इन दोनो कविताओ को देने से मेरा तात्पर्य कदापि यह दर्शाना नही कि 'वक़ार' साहब ने प्रेमी जी की कविता को देख कर अपनी कविता लिखी है। कहना केवल यह है कि उर्दू मे भी हिंदी जैसो, हिंदी के भावो से ओत-प्रोत कविताएं लिखी जा रही है।

यो तो उर्दू के कवियो पर रहस्यवाद का प्रभाव खूब रहा है। ग़ालिब का शेर

नक़्श फ़रियादी है किस की शोख़िए तहरीर का।
काग़ज़ी है पैरहन हर पैकरे तस्वीर का॥

रहस्यवादी कविता का उत्तम उदाहरण है। उर्दू गजलो में बीसियो ऐसे शेर मिल जायँगे और प्राचीन ढग की गजलें कहने वाले आज कल के उर्दू कवियो मे भी यह रहस्यवाद किसी न किसी अश मे पाया जाता है। 'बर्क़' का एक सरल पर रहस्यवादी शेर है—

सौ बार यहां हम आए भी यह बात न लेकिन जान सके।
यह आना-जाना कैसा है क्यो आते-जाते रहते है?

परंतु इस विषय के जो गीत उर्दू के कवि आज कल लिख रहे हैं उन मे हिंदी से जो भाषा-साम्य है मेरा तात्पर्य उस की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करना ही है।

विरहिन के गीत

संसार का साहित्य वियोग की करुण भावनाओं से भरा हुआ है। श्रीयुत पत लिखते है—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।

उर्दू मे भी हिज्रो-फिराक सदैव से कवियो के आकुल मन मे उथल-पुथल मचाते रहे हैं। वियोग चाहे किसी का हो हृदय को विकल कर देता है, रुला देता है। कौन जाने इस संसार मे दिन-रात वियोग की अग्नि मे कितने हृदय जल कर भस्म हो रहे है! भावुक पजाब के प्राणो पर तो वियोग का साम्राज्य ही है। अपने माता-पिता की जुदाई के ख़याल से ही पंजाबी बहन सिहर उठती है और जी में रो कर गा उठती है—

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असां उड़ जाना।[1]

---

[1] **ऐ पिता हम सहेलियों का गुट तो चिड़ियों के चंबे (झुंड) जैसा है हम तो एक न एक दिन विभिन्न दिशाओं में उड़ जाना है**

और फिर

खेडन दे दिन चार नी माएं
बरजत नाहीं।[1]

पंजाबी युवती फुरक़त की मारी बैठी है। कव्वा मुंडेर पर आ कर कायँ-कायँ करता है परंतु निराशा इस हद तक बढ गई है कि कव्वे के बोलने से भी आशा नही बँधती। जल कर उसे कहती है—

तेरी कांकां कागा अड़िया, हुन मेरे जी नू साड़े।
ओह न आए अखां पक गइयॉ बीते कई दिहाड़े।
चंगा है जल जल बुझ जाइये भुकन सगर पुआड़े।
दोस भला की तेरा कागा हैं कर्म असाड़े माड़े।[2]

उर्दू कविता मे विरहिन के गीत हिंदी के प्रभाव के बाद ही लिखे गए हैं। उर्दू का हिज्रो-फिराक प्रेमी को ही तडपाता रहा है, प्रेमिका को नही, परंतु जहां हिंदी ने अन्य बातो मे पंजाब की उर्दू कविता पर प्रभाव डाला है, वहां हिंदी की कविता के करुण स्रोत ने भी उर्दू शायरों को मोहित किया है।

विरहिन के गीतों का आरंभ कैसे हुआ, इस विषय पर मैं कुछ नहीं कह सकता। इतना ही कहना काफी है कि इस शीर्षक से अनगिनत गीत लिखे गए हैं। आठ-नौ साल पहले जब पंजाब मे ऐसे गीत नज़र न आते थे मैं ने स्वयं एक गीत 'विरहिन का बसंत' शीर्षक से लिखा था, जो गवर्नमेंट कालिज होशियारपुर के हिंदी कवि-सम्मेलन मे पढा गया था। श्री 'हफीज' होशियारपुरी[3] ने भी जो उस समय उस कालिज के छात्र थे

---

[1] ऐ माता, ये चार दिन ही तो खेलने के हैं तू क्यों मुझे रोकती है?—इस एक ही वाक्य में जुदाई के ख़याल और सुसराल के व्यस्त जीवन की झलक और उस से उत्पन्न होने वाली कैसी हसरत मौजूद है इस का पाठक भली भाँति अनुमान कर सकते हैं।

[2] 'ऐ काग अब तेरी कायँ-कायँ मेरे जी को जलाती है। प्रतीक्षा करते करते मेरी आँखें पक गई है, कई दिन बीत गए है पर वे नहीं आए। अब तेरे बोलने से आशा बँधे तो कैसे बँधे? विरह की आग में तिल तिल जलने से तो यह अच्छा है कि मै शीघ्र ही जल कर सदैव के लिए बुझ जाऊँ।' फिर दूसरे क्षण जब निराशा चरम सीमा तक पहुँच कर हृदय में कुछ शांति उत्पन्न करती है तो, विरहिन कहती है, 'ऐ कव्वे मैं तुझे तो व्यर्थ में दोष दे रही हूं वास्तव में दोष तो सब मेरे भाग्य का ही है।

[3] 'हफ़ीज़' जालंधरी और 'हफ़ीज़' होशियारपुरी दो भिन्न व्यक्ति हैं।

हिंदी मे एक गीत लिखा था और मुसलमान होते हुए भी हिंदी में अच्छा गीत लिखने पर उन की विशेष प्रशंसा भी हुई थी।

मौलाना, 'वकार,' पंडित बिहारी लाल, पंडित इंद्रजीत शर्मा, श्री 'कैस' और दूसरो ने विरह भावनाओ को प्रदर्शित करने वाले बीसियों गीत लिखे हैं। हाल ही में उर्दू के प्रख्यात कवि मौलाना 'फ़ाखिर', हरियानवी, जिन्हों ने 'वहां ले चल मेरा चरखा, जहां चलते हैं हल तेरे', 'जफावाले', आदि नज़्में लिख कर उर्दू में काफी ख्याति प्राप्त की है, 'विरहिन का गीत' शीर्षक से एक गीत लिखा है:—

घर है सूना रात उदास

दीरघ दिन अंधियारी रातें
कैसे गुज़रेंगी बरसातें
झूठी थीं सब उन की बातें
रहता है अब यह विश्वास
घर है सूना रात उदास

मैं दुखियारी पीत की मारी
पड़ गई मुझ पर बिपता भारी
मन में सुलग रही अँगियारी
कौन बुझाये दिल की प्यास
घर है सूना रात उदास

छाई है घनघोर घटाएं
चलती है पुरशोर हवाएं
मन के मीत अगर आ जाएं
तो पूरी हो मन की आस
घर है सूना रात उदास

इसी संबंध मे श्री 'हफ़ीज' होशियारपुरी का गीत देने योग्य है। कोई विरह की मारी बैठी है, प्रतीक्षा करते-करते संध्या हो जाती है. परंतु उस का प्रियतम नही आता, जल कर कह उठती है

आग लगे इस मन में आग

लो फिर रात बिरह की आई
चारों ओर उदासी छाई
जान मेरी तन में घबराई
अपनी किस्मत अपने भाग
आग लगे इस मन में आग

काली और बरसती रैन
उस बिन नींद को तरसे नैन
जिस के साथ गया सुख चैन
उस की याद कहे अब जाग
आग लगे इस मन में आग

जिस दिन से वह पास नहीं है
कोई ख़ुशी भी रास नहीं है
जीने तक की आस नहीं है
जान को है अब तन से लाग
आग लगे इस मन में आग

कौन जिए और किस के सहारे
मीठे-मीठे बोल सिधारे
गीत कहां वे प्यारे-प्यारे
अब न तान न अब वे राग
आग लगे इस मन में आग

और फिर जल कर ताना देते हुए कहती है—

दरस दिखा कर जो छुप जाए
कौन ऐसे से प्रीत लगाए
क्यों अपनी कोई दसा सुनाए
छोड़ मुहब्बत का खटराग
आग लगे इस मन में आग

श्री अमरचंद 'क़ैस' का गीत 'पी दर्शन की प्यास' भी काफी लोक-प्रिय हुआ है। वह लिखते हैं—

फुलवाड़ी में फूल हैं फूले,
सखियों ने डाले हैं झूले,
वह अपनी दासी को भूले—
हो कर किस के दास?
लगी है पी दर्शन की प्यास।

सुख को मतलब बेचैनो से,
काम है सारा दिन बैनों से,
कितने दूर हैं वे नैनों से—
जो थे हर दम पास?
लगी है पी दर्शन की प्यास।

बरसों बीते आँख लगाए,
इक जाँ पर सौ-सौ दुख पाए,
ये दिन आए उन ना आए—
टूट चली है आस;
लगी है पी दर्शन की प्यास।

मैं मानता हूं कि इन गीतो में 'आज क्यो तेरी वीणा मौन?', 'प्रेम-पथ पर दुख ही दुख है' और ऐसे ही दूसरे उच्च कोटि के हिंदी गीतो की उडान नही, परतु इतना मैं कहूँगा कि इन सब मे दिल है, दिल की कसक और दिल के उद्गार भी है और भाषा के अत्यत सरल होने के कारण यह दिल मे घर भी कम नही करते!

स्मृति के गीत

स्मृति के गीत भी वास्तव मे विरह के गीत ही है परंतु गत शीर्षक मे मैं ने उन गीतो मे से कुछ दिए है जो 'विरहिन' के नाम से लिखे गए है और यह शीर्षक तनिक व्यापक है। इस बात के अतिरिक्त मै वर्तमान शीर्षक मे यह भी दिखाना चाहता हूं कि किस भाँति विभिन्न कवियो न एक ही भाव से प्रेरित हो कर गीत लिखे है कविता में

भावो का चित्र होती है और चूँकि इस ससार मे एक-जैसी परिस्थितियो मे फँसे हुए मनुष्यो के दिलो मे एक-जैसे भाव उठ सकते है इस लिए उन भावो को जिस भाषा का चोला पहनाया जाता है, वह भी एक-जैसी हो सकती है। अच्छी कविता है भी वही जिसे पढ कर उस परिस्थिति से दो-चार होने वाले उस मे अपने ही हृदय की प्रतिच्छाया देखे।

प्रियतम या प्रेयसी की स्मृति भी दिल वाले लोगो के जीवन मे काफ़ी काम करती है। श्रीमती महादेवी जी वर्मा की एक कविता मे विरहिन का सारा जीवन बरसात की रात बन कर रह गया है, क्योकि जीवन-आकाश पर कोई सुधि बन कर, स्मृति बन कर छा रहा है। लिखा है—

बाहर घन तम, भीतर दुख तम
नभ में विद्युत्, तुझ में प्रियतम
जीवन पावस रात बनाने
सुधि बन छाया कौन ?

हां तो वर्षा ऋतु मे, वर्षा ही क्यो, शीत, ग्रीष्म, पतझड वसत, सब ऋतुओ मे ही कौन जाने किस की सुधि किस के दिल को तडपाती रहती है !

पजाबी भाषा के कवि नंदकिशोर 'तेरी याद' नामक कविता मे लिखते हैं—

जिस वेले पत्तियां दे पक्खे, हस हस पौन हिलांदी ए।
जिस दम कुदरत धरती उत्ते पल्ले नवें बिछांदी ए।
फुलां दे जद मुख्खां उत्ते ओस आँसू टपकांदी ए।
अग मुहब्बत दी दिल जिस दम बुलबुल दा गरमांदी ए।
तेरी याद दिलां दे जानी क्यों उस वेले आंदी ए॥[1]

श्री अखतर हुसेन रायपुरी के भाई श्री मुजफ्फर हुसेन 'शमीम' ने, जो अपनी कविताओ मे सरल हिंदी शब्द भर कर उन्हे सगीत-मय बना देते है, एक गीत लिखा है। वह ऐसे ही भावो से परिपूर्ण है—

---

[1] जिस समय बयार हँस-हँस कर पत्तों के पंखों को हिलाती है, जिस समय प्रकृति धरती पर नए पल्लव बिछा देती है, जब फूलों के मुखों पर ओस अपने आँसू टपकाती है और जब बुलबुल के हृदय में प्रेम की आग धधक उठती है · ऐ हृदयों के प्यारे उस समय मुझ तेरी स्मृति क्यों नूतन बन बन आती है ?

जब पिछले पहर की कोयल उठ कर प्रीत के गीत सुनाती है,
जब शब के महल से सुबह की दूल्हन आँखें मलते आती है,
जब सर्द हवा हर पगडंडी पर लहराती बल खाती है,
जब बात सबा से करने में एक एक कली शरमाती है,
जब पहली किरण सूरज की उठ कर सैरे चमन को जाती है,
आकाश से ले पाताल तलक इक मस्ती सी छा जाती है—
तब क्या जाने कम्बख्त सबा चुपके से क्या कह जाती है ?
फिर दर्द-सा दिल में होता है, फिर याद तुम्हारी आती है !

पजाव के तरुण उर्दू कवि रणवीर सिह 'अमर' ने भी अपनी एक कविता मे बिलकुल एक ऐसा ही चित्र खीचा है। लिखते है—

जब नीले-नीले अंबर पर घनघोर घटा छा जाती है,
और सावन की मख्मूर हवा जब रिंदों को बहकाती है,
खामोश अँधेरी रातों में, जब बिजली दिल दहलाती है,
और काली-काली बदली जब नयनो से नीर बहाती है—
उस वक्त मेरे प्रीतम मुझ पर मदहोशी-सी छा जाती है,
इक दर्द-सा दिल में उठता है और याद तुम्हारी आती है।

प्रेम के गीत

प्रेम के विना दुनिया मे कुछ नही। यही स्वर्ग है, नरक भी यही है। कही यह अपनी प्रशसनीय सूरत मे मौजूद है और कही अपने निदनीय रूप मे।

एक आत्मा एक बार एक फरिश्ते से दो-चार हुई और उस से पूछने लगी—"स्वर्ग का सब से निकटवर्ती मार्ग कौन सा है, ज्ञान का या प्रेम का ?"

फरिश्ते ने आश्चर्य से आत्मा को ताकते हुए कहा, क्या ये दो पृथक् मार्ग है ?"

विख्यात कवि हजरत 'आजर' जालधरी ने भी लिखा है—

जो दिल कि मुहब्बत का गुनहगार नहीं,
वो दिल कि मुहब्बत का नहीं

पत्थर है उसे दिल न कहो ऐ 'आज़र',
जिस दिल को मुहब्बत से सरोकार नहीं।

फिर आप जानते है कवि और सब कुछ होते होंगे, पत्थर दिल नही होते और फिर पजाब के कवि जहा प्रेम का शाश्वत दरिया 'हीर-राँझा', 'सस्सी-पुन्नू', 'सोहनी-महीवाल' जैसे प्रेमियो के अमर अफसानो की सूरत मे बहता है, जहा रिंद और सूफी एक ही समय इस चश्मे से स्फूर्ति प्राप्त करते है। अपनी प्रेमिका की संग-दिली को देख कर पंजाब का सच्चा प्रेमी पुकार उठता है—

हीरे नी सुन मेरी ये हीरे असां वांग राँझन मर वहना[1]।

और पजाब के देहात की प्रेमिका साफ शब्दों मे कह देती है :—

राँझा जोगी ते मैं जोगियानी,
उस दी ख़ातिर भर सां पानी।

तो फिर यह कैसे सभव था कि पंजाब मे कविता का कोई युग आता और उस मे प्रेम के गीत न लिखे जाते ? इस युग के प्रत्येक कवि ने प्रेम के गीत लिखे है। मै इन में से केवल दो यहा देना चाहता हूं एक उर्दू के प्रसिद्ध कवि और लेखक डाक्टर महम्मद दीन 'तासीर', प्रिंसिपल इस्लामिया कालेज, अमृतसर का और दूसरा फ़ार्मन क्रिश्चियन कालेज के किसी मुसलमान छात्र सिराजुद्दीन 'ज़फ़र' का। पहला गीत इस प्रकार है—

तुम भी प्रीत करो तो जानो
हम दुखियों की फ़रियादों को
दिल से टीस उठे तो दिल से
तुम भूलो सब बेदादों को
प्रीत करो तो जानो

प्रीत करो अपने जैसे से
सुंदर सूरत पत्थर दिल से

---

[1] ऐ मेरी हीर जैसी प्रेमिका, सुन मै तो तेरे ख़ातिर राँझे की भाँति मर —
पजाब का हर प्रमी राँझा ह और हर प्रेमिका हीर

दर दर सर टकराओ जैसे
दीवानी मौजें साहिल से
प्रीत करो तो जानो
प्रीत के शोले ऐसे लपकें
जल-बुझ जाएं सब गुन-औगुन
ना कोई अपना ना कोई दूजा
ना कोई बैरी ना कोई साजन
प्रीत करो तो जानो
तुम भी प्रीत करो तो जानो

'ज़फर' का गीत है—

रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत
मेरी ठंडी सॉसें आग
मेरी आहें दीपक राग
मेरे नगमे दुख के गीत
रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत
मेरी आँखें वर्षा रैन
मेरा हर आंसू बेचैन
रोते रहना मेरी रीत
रोग लगा बैठा——कर के तुझ से प्रीत

प्रकृति के गीत

मैं वसंत के संबध मे लिखे गए गीतों का पहले उल्लेख कर चुका हूं। वे भी एक प्रकार से प्रकृति से ही सबध रखते है। परतु सर्दी-गरमी, चॉद-सितारो, वाग-वाटिकाओ, पहाडो और वनो के सबंध मे भी इस दौर मे गीत लिखे गए है।

मौलाना मकबूल अहमद ने सर्दी को ले कर एक गीत लिखा है। मौलाना ने सर्दी के साथ ही एक देहाती कुटुब का जो वर्णन किया है वह बहुत सुदर है। लिखते हैं

आया है जाड़े का मौसम, सन सन चले हवा पिछवाई।
शाम हुई सूरज है पीला, धूप में हलकी जरदी छाई।
गिरे कबूतर कव्वे लौटे, कॉव-कॉव कर धूम मचाई।
आया है जाड़े का मौसम, सन सन चले हवा पिछवाई ॥
मातादीन, बिहारी, हीरा, हैं ये तीनों भाई भाई।
नंबरदार के खेत में मिल के, करते है तीनो नरवाई।
आया है जाड़े का मौसम, सन सन चले हवा पिछवाई ॥
घास का गट्ठा सिर पर रक्खे, नदी पार से तीनों भाई।
आए और बहन ने जल्दी, कड़वा डाल चिलम सुलगाई।
आया है जाड़े का मौसम, सन सन चले हवा पिछवाई ॥
आग ताप के बैठे तीनों, जब तन में कुछ गरमी आई।
ढोल उठा कर बिरहे छेड़े, कवित पढ़े गाई चौपाई।
आया है जाड़े का मौसम, सन सन चले हवा पिछवाई ॥

और फिर सर्दियों की रात का वर्णन करते हुए लिखते है—

पंख पखेरू कोई न डोले, सायँ-सायँ दे कान सुनाई।
हवा बजाए सीटी बन में, काली रात अँधेरी छाई।

खाते-पीते कुनबे का जिक्र करने के बाद लिखते है—

ऐसी रात में ऐ परमेश्वर रास आई कब कड़ी कमाई।
मेहनत करने वाले ने जब, पूरे पेट न रोटी खाई ॥

भारत के सुप्रसिद्ध उर्दू कवि मौलाना 'सीमाब' अकबराबादी के सुपुत्र श्री आजाज सिद्दीकी ने तुहिन-कण और तारों पर एक सुंदर गीत लिखा है—

ऐ सुंदर ऐ अचपल तारो ऐ रब के ज्ञानी सय्यारो
साँझ भई और लगे चमकने काले बदरा बीच दमकने
जग को सीधी बात बताते ईश्वर का उपदेश सुनाते
दूर भई जग की अँधियारी
सोवन लागी दुनिया सारी

ओस पड़ी मोती बरसाए फूल औ' पात के मुँह धुलवाए
दूब पै अपना रंग जमाया सब्ज़े को पुखराज बनाया
भर दी ओस से डाली-डाली सगरी रात करी रखवाली
भोर भई तो मॉद पड़े तुम
पापी जग से रूठ गये तुम

लोरियां

हर देश मे और देश की हर भाषा मे लोरिया है। लिखने मे यह बहुत कम आती हैं, पर हर देश, हर नगर और हर गॉव मे स्त्रियां अपनी सीधी सरल जबान मे लोरियां गाती है। कवि भी कभी-कभी लोरिया लिखते है और उन की लिखी हुई लोरियो में सरलता के साथ-साथ कविता भी होती है।

'यशोधरा' मे श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने बहुत सुदर एक लोरी लिखी है। लोरी का यह निम्नलिखित पद दु:खिनी यशोधरा के हृदय मे प्रति-पल जलने वाली अग्नि का द्योतक है—

मंद होने दे दीपक माला
तुझे कौन भय कष्ट कसाला?
जाग रही है मेरी ज्वाला

उर्दू कविता के इस रग मे भी लोरियां लिखी गई हैं। पडित सोहन लाल 'साहिर' बी० ए० ने भी एक लोरी लिखी है। लोरी देने वाली मा यहा भी यशोधरा जैसी परि-स्थिति में हैं, और भाव इस मे भी गुप्त जी की लोरी जैसे ही हैं। लडके का पिता उस की मां को छोड़ गया है। मा बच्चे को सुलाती और अपने दु ख की कहानी कहती है। एक बंद देखिए—

सो जा मेरे राजदुलारे
सो जा मेरी आँख के तारे
तेरी मां ने ग़म का गहना
बच्चे तेरी ख़ातिर पहना
मैं न रहूँगी तब तू रहना
जब वह आए तब यह कहना

रो रो के अम्मा बेचारी
तक तक कर थक थक कर हारी
गिन गिन कर रातों के तारे
सो जा मेरे राजदुलारे

एक मुसलमान मां की लोरी है—

सो जा मेरे प्यारे, सो जा
मेरे राजदुलारे, सो जा

नींद की परियो आओ मीठी मीठी लोरियां गाओ
मेरी जान है नन्हा प्यारा मेरा मान है नन्हा प्यारा
ज्यों-ज्यों तू परवान चढ़ेगा जग में मेरा नाम बढ़ेगा

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

हिम्मत अज़मत चाकर तेरी हशमत शौकत चाकर तेरी
तख़्त भी तेरा ताज भी तेरा बख़्त भी तेरा राज भी तेरा
कैसे कैसे काम करेगा पैदा जग में नाम करेगा

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

धूम से तेरा ब्याह रचाऊं गोरी चिट्टी बेगम लाऊं
धन और दौलत तुझ पर वारूं राज को तेरे सदक़े, वारूं
गोद खिलाऊं तेरे बच्चे सो जा सो जा मेरे बच्चे

सो जा मेरे प्यारे सो जा
मेरे राजदुलारे सो जा

एक दूसरी लोरी सुनिए। देहात की मुसलमान मां लोरी दे रही है—

चमगादड़ ने धूम मचाई, धुमसा छाया राम दोहाई
आई रात अँधेरी छाई, हरयाली[1] ने लोरी गाई

---

[1] लोरी देने वाली का नाम

अगला झूले बगला झूले
सावन मास करेला फूले[1]
प्यारी नींद का प्यारा आना, भारी पलकों से पहचाना
लो हम गाएं प्रेम का गाना, अल्लाह, आ भी तुम सो जाना
अगला झूले बगला झूले
सावन मास करेला फूले
हामिद, सरवर, नैयर सोया, मोहन अपने घर घर सोया
जो था बाहर भीतर सोया, सोजा सो जा सब घर सोया
अगला झूले, बगला झूले
सावन मास करेला फूले

बच्चे को नींद मे जगाने के लिए भी लोरियां गाई जाती है। पंजाब मे मां अपने 'कान्ह' को जगाने के लिए पल भर मे यशोदा बन जाती है और बच्चे को प्यार से जगाती हुई कहती है—

बासी रोटी सजरा मक्खन नाल देनियां दही
जागियें गोपाललाल, जागदा क्यों नही[2] ?

गीतो के इस रंग मे भी जगाते समय गाई जाने वाली लोरी के दो बंद देता हूं—

जागो मेरे प्यारे जागो
दिल में बसने वालो जागो मनमोहन मतवाले जागो
घर भर के उजियाले जागो गुलशने दिल के लाले जागो
मादकता के प्याले जागो
जागो मेरे प्यारे जागो
तुतली बोली बोल सुनाओ उट्ठो दौड़ो, गोद में आओ
लस्सी पीओ माखन खाओ गुड़िया ले कर उसे नचाओ
घर भर में इक रास रचाओ
जागो मेरे प्यारे जागो

---

[1] एक देहाती लोरी का पहला बंद जिस का लोरी से कोई संबंध नहीं होता।

[2] बासी रोटी और ताजा मक्खन तेरे लिए तैयार है मैं तुझे साथ में दही भी दूँगी ऐ मेरे गोपाल, जाग तू जागता क्यों नहीं ?

मज़ाक़ और व्यंग्य के गीत

मैं ने गीतो के विभिन्न रूप केवल यह दर्शाने के लिए दिए है कि उर्दू काव्य के इस रग ने भी व्यापक सूरत प्राप्त की है। इस युग मे गीत काव्य के हर पहलू पर लिखे गए है। इन में व्यथा है, विरह है, प्रेम है, अग्नि है, प्रकृति-सौदर्य है, रहस्यवाद या छायावाद है, और बहुत कुछ है। एक रस है जिस के सबध मे मै अभी तक कुछ नही कह सका, और वह है हास्य रस। परतु यदि इस युग की कविताओ की छानबीन की जाए तो आप को हास्य रस की कविताए भी मिलेगी। यह बात और है कि कही हम जोर से हँस दें और कही मुसकरा कर रह जाए, और कही हमारी हँसी दिल की चारदीवारी तक ही परिमित रह जाय। 'वक़ार साहिब के 'मेरे फूट गए है भाग' नामी गीत को ही लीजिए। देखिए पजाब के अनपढ कुटुब के द्वद्वमय गृह-जीवन के चित्र के साथ ही गीत मे व्यग की कितनी अधिक पुट है। सास बहू की नालायकियो का रोना रोती है, उसे गालिया देती है और साथ वावेला भी किए जाती है—

चरखे तार न चूल्हे आग
मेरे फूट गए है भाग

बहू अभागिन जब से आई
रहती है हर रोज लड़ाई
पीने खाने में चतुराई
काम को कहती है खटराग
मेरे फूट गए है भाग

इधर-उधर की बातें कर ले
स्वाँग हजारों दिन में भर ले
नाम जो चाहो लाखों धर ले
मुँहफट, बोले जैसे काग
मेरे फूट गए है भाग

चटक-मटक में सब से न्यारी
गुन जो देखो औगुनहारी
यह चचल नारी

इस को डस ले काला नाग
मेरे फूट गए हैं भाग

मि० 'मुज़फ्फर' अहसानी ने शिक्षित बेकारों की दशा का कैसा व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है। लिखते हैं—

भूक लगी है भूक
मुज़फ्फ़र
भूक लगी है भूक
बी० ए० कर के बेकारी है
जीने तक से लाचारी है
नादारी ही नादारी है
हूक उठती है हूक
मुज़फ्फ़र
भूक लगी है भूक
नादारी में प्रीत लगाई
प्रीत लगा कर मुँहकी खाई
बिन पैसे का बाप न भाई
चूक गया मैं चूक
मुज़फ्फ़र
भूक लगी है भूक

'आज़र' जालंधरी ने लिखा है—

पैसे के हैं दुनिया में तलबगार बहुत
बन जाते हैं पैसे से यहां यार बहुत
पैसा हो अगर पास तो फिर ऐ 'आज़र'
ग़मख्वार बहुत, मूनसो दिलदार बहुत

इसी पैसे के विषय में पंडित इंद्रजीत शर्मा ने एक गीत लिखा है

पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज
पैसे ही की सरदारी है पैसे ही का राज
पैसा है तो मान है प्यारे पैसा है तो लाज
पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज
जब तक पैसा रहे गाँठ में कोई न बिगड़े काज
पैसा है तो सेठ कहावे बिन पैसे मुहताज
पैसा है सरताज
जगत में
पैसा है सरताज

'ईंट को पत्थर' शीर्षक कविता मे 'आतिश' हरियानवी लिखते है—

भेड़ ने बरसों ऊन कटाई
क्यों खाएं पर तरस कसाई
शेर की मूँछ से बाल जो तोड़े
किस ने इतनी हिम्मत पाई
क्यों करता है उस को "जी, जी"
जिस ने तुझ पर ईंट उठाई
जिसने तुझ पर ईंट उठाई
उस को पत्थर मार

अंतिम शब्द

उपसंहार के रूप मे कुछ बाते निवेदन करना अनुचित न होगा।

पहली बात तो यह है कि शायद उच्च कोटि की हिंदी कविता का रसास्वादन
वाल पाठको को इन में हिंदी गीतो की उडान तथा उन के गूढ भाव न दिखाई दें अ

इन को देख कर आधुनिक उर्दू कविता पर गलत राय कायम कर ले। उन पाठको से मै केवल इतना कहना चाहता हू कि इन गीतो को समालोचना की कसौटी पर कसते समय यह बात भूल नही जाना चाहिए कि गीत उर्दू के शायरो के लिखे हुए है, जिन मे से अकसर हिंदी लिपि तक से अपरिचित है, जिन के पास सुंदर तथा जँचे-तुले हिंदी शब्दो का इतना आधिक्य नही जितना हिंदी कवियो के पास है, और उन्हे शब्दो की उपयुक्तता का भी इतना ज्ञान नही। उन की कठिनाइयो को हिंदी का वह कवि भली-भाँति समझ सकेगा जो उर्दू-लिपि तक से अपरिचित हो और फिर भी उर्दू नज्मे तथा गजले अथवा उर्दू मसनविया व रुबाइया लिखने का प्रयास करे। फिर भी जैसा मै ने पहले कहा था हिंदी और उर्दू के मिश्रण से पैदा होने वाले इन गीतो मे बहुत कुछ है। व्यथा-वेदना, आशा-निराशा, हर्ष-उल्लास, उमग-तरग, विषाद-अवसाद के साथ-साथ इन मे हृदय है और उस की कसक तथा उस के कोमलतम उद्‌गार भी है। यदि सरलता और भाव-प्रधानता उत्तम कविता की खूबिया है, तो यह गीत अवश्य ही उत्तम कविता है और साहित्य मे इन का अपना स्थान रहेगा, और मैं यह कह दू कि जन-साधारण को क्लिष्ट और दुरूह शब्दो से पुर, गूढ भावो वाली कविताओ के मुकाबले में ये गीत अधिक अपने समीप जान पडेंगे और जनता इन्हे अधिक प्यार करेगी और गाएगी।

दूसरी बात मैं इन गीतो मे प्रयुक्त हिंदी शब्दो तथा उन के उच्चारणो के बारे में कहना चाहता हू और वह, जैसा मै पहले भी कह चुका हू, यह है कि इन गीतो में हिंदी शब्द कुछ तब्दीलियो के साथ प्रयोग किए गए है। इस के तीन कारण हैं। सब से बडा कारण इस तब्दीली का यह है कि हिंदी के बहुत से शब्द उर्दू लिपि मे शुद्ध लिखे ही नही जा सकते और चूँकि यह गीत उर्दू लिपि मे लिखे गए है, उर्दू कवियो द्वारा लिखे गए है और उर्दू मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों में छपे है, इस लिए जैसे ये शब्द उर्दू लिपि में आ सकते थे वैसे ही कवियो ने इन का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर 'शक्ति', 'शाति' आदि शब्दो को उर्दू में लिखते हुए 'शक्ती' तथा 'शाती' ही लिखा जायगा और इस लिए महा-कवि इकबाल तथा दूसरे कवियो ने इन्ही बदले हुए उच्चारणो से इन का प्रयोग किया है। जैसे—

शक्ती भी शांती भी भक्तों के गीत में है।

दूसरा कारण इस तब्दीली का पजाबी भाषा है पजाबी भाषा वास्तव में सस्कृत से ही

निकली हुई है, परतु शताब्दियो के फेर से इस मे बहुत अंतर आ गया है। उर्दू के इन गीतो मे प्रयोग होने वाले शब्दो मे बहुत से कवियों ने वही उच्चारण हिंदी का उच्चारण समझ कर प्रयुक्त किया है। उदाहरण के तौर पर 'तत्व' का पजावी भापा मे 'तत' और 'सत्य' को 'सत' कहा जाता है। कवि इकबाल ने पजावी होने के कारण इन सस्कृत शब्दो का वही उच्चारण किया है जो पजाव मे प्रचलित है। उदाहरणतया—

जान जाए हाथ से जाए न सत
है यही इक बात हर मजहब का तत

मै ने इस सग्रह मे जो गीत दिए है उन मे आप को ऐसे हिंदी शब्द भी मिलेगे जो पजाबी भापा में तब्दील होने के वाद उर्दू मे लिए गए है।

तीसरा कारण यह है कि आधुनिक उर्दू काव्य पर हिंदी का जो प्रभाव पडा है वह हिंदी की आधुनिक कविताओ का ही नही वरन् ब्रजभापा से ले कर खडीबोली में लिखी जाने वाली सव कविताओ का है। इस लिए इन गीतो मे आप को ब्रजभापा के शब्द भी वहुतायत से मिलेगे। यह विपय अपने मे ही काफी लवा है और मैं इसे भापा-संबंधी छान-वीन करने वालो के लिए छोड़ कर संग्रह मे दिए गए गीतों के सबध मे कुछ कहूँगा।

उर्दू काव्य के इस युग मे इतने गीत लिखे गए है कि उन से कई पुस्तके वन सकती है। इस छोटे से निबंध में सब गीत देना न तो ठीक है न संभव ही। इस लिए जहा तक मुझ से हो सका है मै ने हर 'स्कूल' के कवियों के गीत देने का प्रयास किया है, परतु फिर भी हो सकता है कुछ रह गए हो। मेरा उद्देश्य केवल हिंदी-भाषियों को उर्दू के इस युग की कविताओं से परिचित कराना था, और साथ ही मै इस अभियोग का उत्तर देना चाहता था जो पजाव पर लगाया जाता है कि पजाव हिंदी के लिए मरु-भूमि है। इन गीतों मे मै ने श्री मकबूल हुसेन और 'सागर' निजामी को छोड कर अधिकतर गीत पजाव के उर्दू कवियों के ही दिए है और उन मे भी उर्दू के मुसलमान कवियो को अधिक स्थान दिया है। उर्दू कविता की वर्तमान धारा को देख कर कौन कह सकता है कि पजाव हिंदी के लिए मरु-भूमि है, और यहा हिंदी से का बर्ताव किया जाता ह ?

अंत में यह कृतघ्नता होगी यदि मैं उन कवियों को धन्यवाद न दूं जिन्होंने मुझे अपनी कविताएं इस लेख में छापने की आज्ञा देने की कृपा की है। मैं इस के लिए उनका बहुत आभारी हूं।

पारिभाषिक शब्द और शिक्षा का माध्यम

[लेखक—श्रीयुत कालिदास कपूर, एम्० ए०]

इस लेख मे मैं हिंदी और उर्दू की व्युत्पत्ति तथा सबध की बात नही बढाना चाहता। परन्तु इस मे सदेह नही कि जिस साहित्यिक हिंदी और उर्दू का ऊँची श्रेणी के पाठको मे मान है वह एक-दूसरे से बहुत कुछ भिन्न है और जिस भाषा का हम सभ्य समाज ने आपस के व्यवहार मे प्रयोग करते है वह प्राय एक ही है। उदाहरण के लिए यदि हैदराबाद की उस्मानिया युनिवर्सिटी का एक ग्रैजुएट सयुक्त प्रात के पूर्वी देहात मे जा कर उस उर्दू मे व्याख्यान दे जो उस ने वहां सीखी है तो उस का व्याख्यान वहां के देहाती अधिक समझ सकेगे उस वक्ता के व्याख्यान की अपेक्षा जो—बँगला और मराठी को जाने दीजिए—वहाँ जा कर उन्हे पंजाबी भाषा अथवा राजस्थानी मे व्याख्यान दे। उसी प्रकार मद्रास के हिंदी साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा पास किया हुआ वक्ता यदि अलीगढ विश्व-विद्यालय अथवा इस्लामिया कालिज पेशावर के छात्रो से अपनी हिंदी मे बातचीत करे तो उस के समझने मे उन्हे उतनी दिक़्क़त न होगी जितनी कि उस दशा मे जब कि कोई वक्ता सयुक्त प्रात की किसी भी देहाती भाषा में उन्हें अपनी बात समझाने का प्रयत्न करे। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक उर्दू और हिंदी मे उतना भेद नही है, जितना कि प्रांतीय भाषाओ मे है। जो कुछ भेद है वह तीन मदो मे है—

(१) दोनो भाषाओ को अलग-अलग लिपि मे लिखते है। यही सब से बडा भेद है।

(२) हिंदी मे हम सस्कृत के शब्द भर देते है और उर्दू में फ़ारसी और अरबी के। इतना ही नही, इन प्राचीन भाषाओ के व्याकरण को भी हम काम मे लाते है, जिस से भेद और भी बढ जाता है। कोई हर्ज नही अगर हम 'आवश्यकता' की जगह 'जरूरत' लफ्ज इस्तेमाल करे, परतु हम यही नही रुकते, बहुवचन मे 'जरूरते' न कह कर 'जरूर-यात' इस्तेमाल कर के अपनी काबिलियत दिखाते है। यो यह भेद और भी बढ़ जाता है।

(३) किसी वैज्ञानिक विषय पर लिखने या बोलने की नौबत आती है तो हम चलते हुए अंग्रेजी अथवा हिंदुस्तानी के शब्द काम मे नही लाते। हम संस्कृत अथवा अरबी-फारसी की शरण मे जाते है और उन की शब्दावली को तोड़-फोड़ कर शब्द तैयार करते है। ये शब्द उर्दू मे आ कर हिंदी के पाठको की समझ मे नही आते और हिंदी मे आ कर उर्दू के पाठको की वही हालत करते है।

इस लेख मे भेद के पहले दो भागो मे मेरा संबंध नही है। लिपि का रोना और संस्कृत-फारसी का झगड़ा शीघ्र शांत होने का नही है। परंतु तीसरा भेद ऐसा है जिस का अभी तक बहुत महत्व नही था, क्योकि हमारी भाषाओ मे ऊँचे दरजे के वैज्ञानिक साहित्य की बहुत कमी है, जो कुछ है वह पाठ्य पुस्तको मे है और ये पाठ्य पुस्तके अभी तक हाई स्कूल कक्षा तक के लिए ही थी। यदि अलग-अलग पारिभाषिक शब्द काम मे लाए भी गए तो बहुत मुसीबत नही बरपा हुई, क्योकि उन की संख्या इन कक्षाओ मे कम ही रहती है। परंतु अनुमान तो कीजिए यह भेद कितना बढ जायगा जब अलग पारिभाषिक शब्दो का सहारा ऊँची कक्षाओं की पढाई के लिए भी लिया जायगा। मुझे हाई स्कूल कक्षा मे इतिहास की शिक्षा का अनुभव है। इतिहास में पारिभाषिक शब्दो की संख्या बहुत कम है, परंतु भाषा-भेद ही इतना है कि नोट लिखाते समय मुझे हिंदी और उर्दू के विद्यार्थियो के लिए अलग-अलग शब्दो का प्रयोग करना पड़ता है। अनुमान तो कीजिए अन्य विषयो मे अलग-अलग पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करते हुए शिक्षकों और शिष्यो की क्या दशा होगी !

हमारे बीच भाषा की झूठी शुद्धता का इतना विवाद कुछ साहित्यिको ने खड़ा कर दिया है कि उस के कारण कोई ऐसा निश्चय नही होने पाता जो व्यवहार की दृष्टि से सुलभ हो। जापानियो ने जिस समय पश्चिमी सभ्यता के अनुसार अपने देश को उन्नत करने का निश्चय किया उस समय उन के साहित्य मे वैज्ञानिक साहित्य नही के बराबर था। और अब से एक शताब्दी पहले जो कुछ साहित्य उन की भाषा मे था वह उतना भी नही था जितना हमारी भाषाओं में था। उन की भाषा पश्चिमी भाषाओ से कही भिन्न है, उन की लिपि की कठिनता का कोई ठिकाना नही। परंतु जापानियो के दृढ निश्चय के आगे कोई भी कठिनाई नही ठहर सकी। बहुत से रोजमर्रा के वैज्ञानिक शब्द तो उन्हो ने चीनी भाषा के सहारे अपनी भाषा म बना लिए जसे एलक्ट्रिसिटी के लिए दकी टलीफोन

के लिए देन्वा और एलेक्ट्रिक लाइट के लिए देतो। परतु उन्हो ने विदेशी पारिभाषिक शब्दो का बहिष्कार नही किया। जापानी विश्वविद्यालयो को जाने दीजिए, उन के माध्यमिक शिक्षालयो में भी मैं ने अध्यापको और शिष्यो को व्यापार, शिल्प, विज्ञान और गणित के पठन-पाठन मे अंग्रेजी भाषा के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करते देखा, यहां तक कि बीजगणित के अध्ययन में मै ने उन को अपनी लिपि की जगह अंग्रेज़ी के (रोमन) अक्षरो को प्रयोग करते पाया।

फिर भी अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दो का इतना स्वतंत्र व्यवहार यह नही सूचित करता कि वैज्ञानिक विषयो पर जापानी भाषा मे साहित्य की कमी है। कमी की बात दूर है, उस का बाहुल्य है। इस बाहुल्य का अनुमान यो किया जा सकता है कि तोकियो इपीरियल यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय की आठ लाख पुस्तको मे ८ लाख जापानी भाषा मे है। सर्वोच्च कक्षाओ तक जापानी भाषा ही शिक्षा का माध्यम है। जापानी मेडिकल डिग्रियो को ब्रिटिश मेडिकल कौंसिल उस समय से मान रही है, जब वह हमारी डिग्रियो को नही मानती थी। उन की इंजिनियरिंग, ऐग्रिकल्चर और सोस्यालोजी की पढ़ाई का जापान के बाहर भी मान है, यद्यपि शिक्षा का माध्यम जापानी है, और अंग्रेजी के बडे-बडे अध्यापको तक को ठीक ढग से अंग्रेजी बोलना नही आता। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि विदेशी पारिभाषिक शब्दो को अपना कर जापानी वैज्ञानिक साहित्य उन्नति करता रहा तो क्या कारण है कि हमारा साहित्य भी इन पारिभाषिक शब्दो को काम में लाते हुए उन्नति न कर सकेगा। मेरा यह मतलब नही है कि पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी मे ही रहे, हम उन को स्वदेशी न बना सके। जिस पारिभाषिक शब्द का, साधारण श्रेणी के लोगो मे प्रचार हो जायगा उस का चलता हुआ कोई न कोई रूप बन जायगा। वह रूप न संस्कृत का होगा न अरबी-फारसी का, क्योंकि साधारण जनता के लिए अंग्रेजी उतनी ही विदेशी है जितनी संस्कृत-फारसी। वह रूप हिंदुस्तानी होगा। उदाहरण के लिए, विद्युत्-विज्ञान के संबंध मे हमे बोलचाल की भाषा मे बहुत से शब्द मिलने लगे है, जैसे एलेक्ट्रिसिटी को बिजली कहते है और पाजिटिव तथा निगेटिव तारो को गरम और ठंढा तार कहते है। एलेक्ट्रिक बल्ब को बिजली की बत्ती या कुप्पी कहते है। इस प्रकार बिजली और इंजिनियरिंग के मिस्त्रियों ने जिन पारिभाषिक शब्दो को अपनी भाषा का जामा पहना दिया उन को स्वीकार करने मे आपत्ति न होनी चाहिए मिस्त्री और श्रेणी के लोग अपना

जाहिर करने के लिए सस्कृत अथवा फारसी की शरण मे नही जाते, वे तो चलते हुए शब्दो द्वारा काम लेते हैं और यदि उन्हे किसी वैज्ञानिक विचार की परिभाषा करने की आवश्यकता पडती है तो भी वे अपने परिमित शब्द-भाडार का ही सहारा लेते है। क्यो न हम उन्ही के चलाए हुए पारिभाषिक शब्दो को अपनाए? अभी इन की सख्या बहुत कम है क्योकि जनता मे पश्चिमी विज्ञान का अभी प्रसार नही हुआ है। प्रचार के साथ-साथ स्वदेशी पारिभाषिक शब्दो की सख्या भी बढ़ती जायगी। परन्तु इस की भी सीमा है। साधारण श्रेणी की जनता मे उस उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार होना असभव है जिस का अध्ययन ऊँची कक्षाओ और विश्वविद्यालयो मे ही होता है। उस श्रेणी के साहित्य के लिए विदेशी पारिभाषिक शब्दो की आवश्यकता बनी रहेगी और अंग्रेजी भाषा से पारिभाषिक शब्द ले कर हमारी देशी भाषाओं के साहित्य की हानि न होगी। क्योकि भाषा की जान क्रम और अन्वय मे है, पारिभाषिक शब्दो मे नहीं। जहां तक हिंदी-उर्दू से सबध है ये दोनो भाषाओ के लिए एक है। अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दो को अपना कर हम हिंदी-उर्दू का भेद कम कर सकेंगे, जो राष्ट्रीय सगठन के लिए ही नहीं, शिक्षा-प्रचार के लिए भी आवश्यक है।

प्रश्न यह है कि ये पारिभाषिक शब्द किस लिपि मे लिखे जायँ? रोमन लिपि अथवा देवनागरी और फारसी लिपि मे?

उन शिक्षालयो के लिए जहा अंग्रेजी न पढ़ाई जाती हो यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्द देशी लिपि मे ही लिखे जायँ। ऐसे शिक्षालय अभी तक निचली श्रेणी के ही है। आगे बढ कर अंग्रेजी एक अनिवार्य विषय हो जाता है। इस लिए इन छोटी श्रेणी के शिक्षालयो के लिए जो पाठ्य पुस्तके हो उन मे पारिभाषिक शब्दो का देशी लिपि में लिखा जाना आवश्यक होगा। परंतु ऊँची श्रेणी की पाठ्य पुस्तको मे यदि ये शब्द अपनी रोमन लिपि मे ही लिखे जायँ तो कोई हर्ज नही। देवनागरी लिपि मे यह शक्ति है कि वह कठिन से कठिन विदेशी पारिभाषिक शब्द को व्यक्त कर सकती है। परतु यह क्षमता उस की फारसी बहिन मे नही है, तो फिर दोनो साम्यभाव से पारिभाषिक शब्दो को रोमन लिपि में क्यो न अपनाएं।

हिंदुस्तानी एकेडेमी के द्वारा कुछ निवेदन करने का यह मेरा पहला अवसर है। इस एकेडमी का प्रथम उद्देश्य हिंदी और उर्दू के भेद को घटा कर एक राष्ट्रीय भाषा के साहित्य

का प्रचार करना है। मैं इस उद्देश्य से सहमत हू। मेरा विश्वास है कि पारिभाषिक शब्दो के सबंध मे जो निवेदन मै ने ऊपर किया है वह इस उद्देश्य के अनुकूल है। कठिनाई रूढियो की ही है, परतु राष्ट्रीयता के मार्ग मे यदि रूढियां रोड़े अटकाती हो तो उन्हे हटाना हमारा कर्तव्य है, और इन रूढियो से हम तभी स्वतंत्र हो सकेगे जब राष्ट्रीयता के दृष्टि-कोण से ही इस प्रश्न पर विचार करे और निर्णय होने पर उस के अनुसार सेवा-कार्य मे अग्रसर हो।[1]

---

[1] हिदुस्तानी एकेडेमी के छठ साहित्य के लिए प्राप्त

हसरत मोहानी

[लेखक—प्रोफेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०]

हसरत मोहानी के विषय मे यह कहना यथार्थ होगा कि उन की जो योग्यता हम राजनीति मे देखते ह उस का वास्तविक क्षेत्र साहित्य है। उन की व्यापक सहानुभूति, चमत्कारिक बुद्धि, सौंदर्य के प्रति चेतना, साहित्य के उत्कृष्ट अगो से परिचय, कोमल भावुकता—यह सब ऐसे गुण है, जिन्हो ने उन्हे समसामयिकों की श्रेणी मे उच्चतम आसन का अधिकारी बनाया था। उर्दू कविता के गहन ज्ञान और रूढियो के प्रभाव से मुक्त होने के कारण यह बात आरभ मे ही स्पष्ट हो गई थी कि वह साहित्य मे प्रकाशमान होगे, और विशेष कर गजल के प्रात मे विशिष्टता प्राप्त करेगे। अपने प्रारभिक वर्षो मे उन्हो ने जो कार्य किया वह बड़े महत्व का था। उन्हो ने पुराने लेखको की रचनाओ का संपादन किया और इस प्रकार उन की कृतियो को लोप होने से बचाया। 'उर्दू-ए-मोअल्ला' की कई जिल्दे, गालिब के दीवान का टिप्पणी-सहित सस्करण, हातिम, जौक, मौमिन, मीर, दर्द, नसहफी और अन्य कवियो की रचनाओ मे सग्रह द्वारा हसरत मोहानी ने यह प्रकट कर दिया था कि उर्दू का उन का ज्ञान बहुत विस्तृत है, और साहित्य मे उन की रुचि अत्यत परिमार्जित ह। इन प्रकाशनो द्वारा हसरत की विद्वत्ता प्रतिष्ठित हो चुकी है और यह भी स्थापित हो चुका है कि साहित्य-सबधी बातों मे उन के मत का बहुत मूल्य है। सुरुचि, भावुकता, कल्पना, विचार-शक्ति और नई युक्तियो के लिए साहस—इन गुणो ने हसरत को प्रथम श्रेणी का कवि बनाया। उन मे इस बात की क्षमता थी कि बिना परपरा से सबध तोड़े हुए वह नए प्रयोग कर सके।

सैयद फैजुल हसन ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की बी० ए० की परीक्षा सन् १९०३ मे एम्० ए० ओ० कालिज, अलीगढ़ मे पास की। जान पड़ता है कि उन्हो ने गजल-रचना सन् १८९५ से ही आरभ कर दी थी। और उन के दीवान का अतिम भाग—जहां तक मेरे संग्रह मे है—जो दसवा भाग है सन् १९२४ मे प्रकाशित हुआ। इन दस भागो मे

सब मिला कर २६० पृष्ठ के लगभग होंगे। मौलाना हसरत मोहानी की धर्मपत्नी अपनी भूमिका मे लिखती हैं कि दीवान के पहले भाग मे १६०३ से १६१४ के बीच मे लिखी हुई गज़ले है, और यह कि इस काल का एक हिस्सा उन के पति ने जेल मे बिताया। दीवान का दूसरा भाग १६१४–१६ की रचनाओं से संबंध रखता है। इस बीच में वह अलीगढ़, ललितपुर, झाँसी और इलाहाबाद के जेलो मे रहे। अन्य गजलो का अधिकांश भी फैजाबाद, लखनऊ, मेरठ और अहमदाबाद के जेलो मे रचा गया। पाँचवे भाग की भूमिका स्वयं कवि ने यरवदा जेल मे १६२३ मे लिखी, और उन का कहना है कि कुछ कविताए जो उन्हो ने केंद्रीय खिलाफ़त कमेटी के नेताओं के पास भेजी थीं वह गुम भी हो गई। छठे भाग की भूमिका में हमे कुछ मूल्यवान् सामग्री कवि के जीवन-चरित्र के संबंध मे मिलती है। उसी से हमे पता चलता है कि हसरत का कवि-जीवन १८६५ से आरंभ होता है, और यह कि उन की प्रारंभिक रचनाओं मे से कई संग्रहो मे प्रकाशित हुई है। सन् १८६८ और १६०२ के बीच की अपनी रचनाओं के विषय मे उन्हे उत्साह नहीं है और वह लिखते है कि इन रचनाओ को वह पुन. न प्रकाशित करेंगे। इन भूमिकाओं में हमें इस बात की सूचना मिलती है कि कवि ने ठीक-ठीक कितना समय कहा पर जेल में व्यतीत किया। कदाचित् जेल के जीवन ने उन्हे वह एकांत और अवकाश दिया जिस के बिना कवि का रचनात्मक कार्य संभव न होता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस प्रकार के जीवन के परिणाम-स्वरूप ही उन की अनेक कविताओं मे राजनीतिक रंग आ गया है।

हसरत मोहानी जैसे नए प्रयोगों के लिए साहस रखने वाले कवि ने भी पद्य के शास्त्रीय नियमो का कितनी सूक्ष्मता से पालन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। वह परंपरा द्वारा नियत कला-संबंधी बंधनों के मूल्य को स्वीकार करते है। किसी-किसी भूमिका मे तो उन्हो ने प्रकट संतोष के साथ बताया है दीवान मे वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर 'रदीफ' (अंत्याक्षर) के रूप मे आ गए है और ث 'ص' ض' ط ' ف' ک' خ' ط जैसे कठिन रदीफ़ मे भी अच्छी गज़ले बन पड़ी है। केवल एक कुशल शिल्पी, जिसे अपने उपकरणो के व्यवहार में उचित गर्व है, इस प्रकार की विज्ञप्ति कर सकता है। कवि के शिल्प-ज्ञान के विषय में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। बेन जान्सन का स्पेंसर के विरुद्ध यह उलाहना था कि प्राचीनो के अनुकरण करने मे जिस भाषा का उस ने प्रयोग किया वह कोई भाषा न रह गई थी कवित्व के ह्रास का एक अचूक चिह्न शब्दो पर अत्यधिक

ध्यान दिया जाना तथा काव्य-भाषा की एक रूढि का स्थापित हो जाना है। ऐसी भाषा शीघ्र ही यत्रवत् और निर्जीव हो जाती है। वर्ड्सवर्थ ने अपने समय मे जो प्रतिवाद किया उस की बडी आवश्यकता थी। कोलरिज ने भी उन पुराने शब्दो के व्यवहार को चलाया जिन्हे रूढि तिरस्कृत कर चुकी थी। बहुधा पुनरुद्धार ही क्राति होती है। स्वतंत्रता की जो ज्वलन्त भावना हसरत की रचनाओ को आधुनिक उर्दू साहित्य मे विशेषत: प्रदान करती है वही शब्दो के चुनाव के विषय मे बधनो के प्रति उपेक्षा का रूप ग्रहण कर लेती है। एक प्रसिद्ध उर्दू कवि ने, जो कुछ वर्ष हुए दिवगत हुए है, अपने दीवान मे हिंदी शब्द 'लाज' के व्यवहार पर क्षमा-याचना करना उचित समझा था। इस प्रकार की मनोवृत्ति हसरत को कदापि रुचिकर नही हो सकती। फलत: हम देखते है कि उन्हो ने ऐसे अनेक शब्दो का व्यवहार किया है जो कि आज कल के उर्दू कवि साधारणत प्रयोग मे नही लाते। म ठुमरी जैसी हिंदी शब्दावली वाली कविताओ की ओर सकेत नही कर रहा हू, जिन मे कि कवि ने श्रीकृष्ण और उन के चरित्र की चर्चा की है, यही प्रवृत्ति उन की गजलो तक मे दिखाई पडती है। 'न दीजियो', 'पुजारी', 'पगडी', 'जाइयो' आदि शब्द, जो उर्दू कविता की पुरानी शैली के स्मारक है हसरत की रचना मे बहुतायत से मिलते है।

इस प्रसग मे यह कहना अनुचित न होगा कि नजीर अकबराबादी के बाद कदाचित् ही कोई उर्दू कवि ऐसा हुआ हो जिस ने अपनी कविता मे श्रीकृष्ण की इतनी चर्चा की है। ईश्वरीय अवतार के रूप मे, अथवा वशी बजाने वाले के रूप मे, जिस के स्वर को सुन कर समस्त सृष्टि आनदित हो नर्तन करती है, अथवा आदर्श प्रेमी के रूप मे जो कि अपनी लीलाओ के साथ-साथ राजनीति की गहन समस्याओं को भी सुलझाता है श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व एक परम अद्भुत व्यक्तित्व है और यह किंचित् आश्चर्य की बात है कि और अधिक उर्दू कवियो ने इस चरित्र की निधि से लाभ नही उठाया। अपने दीवान के सातवे-आठवे भागों की भूमिका मे कवि ने और 'बुजुर्गो' के साथ जिन्हो ने उन के जीवन को प्रभावित किया है श्रीकृष्ण का नाम भी लिया है। वह श्रीकृष्ण के प्रति अपनी विशेष श्रद्धा प्रकट करते है।

(१) 'हसरत' की भी क़बूल हो मथुरा में हाज़री,
सुनते ह आशिक़ों प तुम्हारा करम ह ख़ास।

(२) मनमोहन श्याम से नैन लाग,
निस दिन सुलग रही तन आग।

(३) तन मन धन सब वार के 'हसरत',
मथुरा नगर चल धूनी रमाई।

*　　　　*　　　　*

पस्ता कद, अबरें बाल, पहनावे की तरफ से लापरवाही, तेज चाल—देखने मे तो 'हसरत' अपने कवि होने का प्रभाव नही डालते। उन के सिर के चारो ओर 'तेज-मडल' नही है। उन के पीछे अनुयायियो का ऐसा समूह नहीं जो उन की प्रशसा पर तुला हुआ हो। उन की कविताओ को ऐसे कृत्रिम सहारे की आवश्यकता नही जैसे अच्छा टाइप, बढिया कागज, आकर्षक बेठन वास्तव में वह ऐसे भद्दे ढग मे घटिया कागज पर छपी हुई है कि उन के प्रकाशन का एकमात्र तात्पर्य ग्राहको को विमुख करना जान पडता है। परतु एक बार इस भद्दे बहिरग पर विजय प्राप्त कर लेने पर, पाठक के सामने कसी सुदर सपन्न दुनिया खुल जाती है। ईश्वर की कृपा से यहा बाहुल्य है, बहुत कुछ चितन है, प्रेम के अनेक वचन है, जीवन के लिए उमग है, और किंचित् ऐसा अवसाद भी है जो हमारे विश्वास पर आघात नही करता। इन में कोई रोग या दूषण नही है, दया के लिए दीन प्रार्थना नही है बरन् है एक सबल आशा, हलका कौतुक, और तर्कसिद्ध विश्वास और महदाकाक्षा।

कवि और कविता के सबध में हमे हसरत के विचार उन की रचनाओ मे बिखरे हुए मिलेगे। उन्हो ने मीर और मोमिन को बारंबार सराहा है —

(१) 'हसरत', यह वह गजल है जिसे सुन के सब कहें;
मोमिन से अपने रंग को तुमने मिला दिया।

(२) शेर मेरे भी है पुरदर्द लेकिन 'हसरत';
मीर का शेवए गुफ़्तार कहां से लाऊं।

(३) गुजरे बहुत उस्ताद मगर रंगे असर में;
बेमिस्ल है 'हसरत' सुखने मीर अभी तक।

कविता के विषय पर अनेक उक्तिया है और दिल्ली तथा　　　के कवियो के आपस मे

झगडे के विषय पर भी। कविता के सहज, सीधे प्रभाव के संबंध मे हसरत कहते हैं :—

शेर दर अस्ल है वही 'हसरत';
सुनते ही दिल में जो उतर जाएं।

गजल के प्रति अपने अनुराग को लक्षित करते हुए वह कहते हैं :—

इश्के 'हसरत' को है ग़ज़ल के सिवा;
न क़सीदा न मसनवी की हवस।

लखनऊ-दिल्ली विवाद पर वह लिखते हैं :—

रखते हैं आशिक़ाने हुस्ने सुखन;
लखनवी से न देहलवी से ग़रज़।

गजल के संबंध में उन की पुनः उक्ति है :—

लिखता हूं मर्सिया न कसीदा न मसनवी;
'हसरत', ग़ज़ल है सिर्फ़ मेरी जाने आशिक़ां।

नीचे की पंक्तियों में व्यंजित गर्व क्षम्य है :—

'हसरत', उर्दू मे है ग़ज़ल तेरी;
परतवे नक़्शए सादी ओ जामी।

ग़ज़ल के क्षेत्र मे हसरत की वास्तविक विशेषता क्या है? उन की मौलिकता किस बात मे है? वह शराब और साकी, वायज, शमा व परवाना, बहार व दाम शिकारी, के उपयोगी रूपक का परित्याग नहीं करते। परंतु यह निश्चय है कि वह अपने निजी, व्यक्तिगत दृष्टिबिंदु को प्रकट करते हैं। इस बात को देख मुझे अत्यंत संतोष होता है कि उन मे एक स्फूर्ति है, मनुष्योचित दृष्टिकोण है, विजय पाने का निश्चय है। साधारण ग़ज़ल-गो की रीति कोमल अवसाद वर्णन करने की, बीते हुए दिनों पर आंसू बहाने की, व्यर्थ प्रयत्न और अंत मे विफलता प्रदर्शित करने की होती है। इन सब बातो से हसरत बहुत दूर हैं। परंतु उन के बल में एक सौंदर्य, मिठास और प्रकाश है। यही है कि वह शहद और शक्कर का ऐसा ढेर नहीं लगा देते कि जी ऊब जाय। क्या पवित्र ग्रंथ यह नहीं

बताते कि जो कडुआ चाखने के लिए तैयार नही वह मीठा चाखने का अधिकारी नही ?

*　　　　*　　　　*

आइए हम उन पंक्तियो को देखे जहा कि मुख्य विषय दु ख और वेदना का है :—

(१) सब ने छोड़ा तुझे, मगर 'हसरत' ;
　　दर्द की गमगुसारियां न गईं।

(२) वह तुम हो, या तुम्हारा दर्द हो, कोई हो दुनिया में ;
　　किया जिस से तअल्लुक़ हम ने पैदा, उम्र भर रक्खा।

(३) उन से कुछ तो मिला, वह गम ही सही ;
　　आबरू कुछ तो रह गई दिल की।

(४) हर हाल में रहा जो तेरा आसरा मुझे ;
　　मायूस कर सका न हुजूमे बला मुझे।

(५) क्यों इतनी जल्द हो गए घबरा के हां फ़ना ?
　　ऐ दर्दे-यार, कुछ तेरी ख़िदमत न हो सकी।

(६) आई बुझने को अपनी शम्मए हयात ;
　　शबे गम की मगर सहर न हुई।

इन पंक्तियों से यह ज्ञात होगा कि—यद्यपि दु.ख और वेदना का निवेदन रूढ़ियो में बंधा नहीं है, साथ ही उस की उदासी मे भी एक मृदुता है। परंतु वेदना की देवी बना कर वह उस की पूजा नही करते। आकाक्षा और इच्छा का प्रत्यावर्तन होता है—स्वप्नो का और उमगो का—'पुरानी ओस अब भी पुराने मीठे पुष्पो को भरती है, पुराने ग्रीष्म अब भी नए उपजे गुलाबो को पालते हैं।' और इन के परे ईश्वर की अतुल दया, शान और अच्छाई है :—

(१) पहले इक जर्रए-जलील था मैं,
　　तेरी निस्बत से　　　हुआ

(२) हवा से दीद मिटी है न मिटेगी, 'हसरत'।
देखने के लिए चाहो उन्हें जितना देखो।

परंतु पेशावर शांति दिलाने वाले और नीति की शिक्षा देने वाले द्वारा वह अपने अंतिम ध्येय को प्राप्त करेंगे। वायज तो बुराई और पाप और दुष्कर्म की चिंताओं में फँसा रहता है। वह जो बुराई और पाप के संसर्ग में इतना रहता है इन से कैसे बच सकता है ? वह उदारता क्या जाने ?

अजब क्या, जो है बदगुमां सब से वायज़;
बुरा सुनते सुनते, बुरा कहते कहते।

* * *

जब 'हसरत' उर्दू कविता के साधारण रूपक ग्रहण करते है तब भी उन मे मौलिकता रहती है और पुरानी कल्पनाएं एक नवीनता धारण कर लेती है —

मैं गिरफ़्तार उल्फ़ते सैयाद ;
दाम से छुट के भी रिहा न हुआ।

शमा पर एक शेर देखिए —

आई जो तेरे रूए मुनव्वर के करीं शम्अ ;
हम लोग यही समझे कि महफ़िल में नहीं शम्अ।

बहार और तज्जनित प्रेम के संबंध मे और उस की मादकता और उल्लास के विषय मे भी हसरत खूब ही लिखते हैं:—

(१) सब्र मुश्किल है जप्त है दुश्वार ;
दिल वहशी है और जुनूने बहार।

(२) हाय जुनूने शौक़ अभी से बक़रार अब की बरस ;
क्या गजब ढाएगा तूफ़ान बहार अब की बरस।

(३) हंगामए बहार का देखा कभी न रंग ;
हम ने की मुश्किलए बालए सिजा रह

(४) कुछ दिल ही बुझ गया है मेरा वर्ना आज कल ;
वैफ़ीयते बहार की शिद्दत चमन में थी।

(५) सब हँस पड़े खिलखिला के गुंचे ;
छेड़ा जो लतीफा सबा ने।

(६) फला फूला रहे गुल्जार यारब हुस्ने खूबां का ;
मुझे इस बाग के हर फूल से खुशबूए यार आई।

हाथों में साकी का आनंद-दायक और मादक जाम लिए रहना, मगर उसे देने में पशोपेश करना, झुंड के झुंड लोगों का घुटना टेके हुए उस की कृपा के लिए प्रार्थी होना और उस मे प्रेम जताना तथा उस की प्रशंसा करना; साक़ी का बड़ी कठिनाई से चंद कत्रे जाम का देना, वायज का दूर से उन पर निगाह रखना और तबीह के शब्द उच्चारण करना और उपदेश देना और खुदा के कह्र का डर दिखाना—यह चित्र सभी उर्दू कविता के पढने वालों के लिए परिचित होंगे परंतु इन पिटे हुए विषयों पर भी हसरत ने बहुत सुंदर पंक्तियां लिखी है —

(१) जब दिया तुम ने रकीबों को दिया जामे शराब ;
भूल कर भी मेरी जानिब को इशारा न किया।

(२) खुम लगा दे हम बलानोशों के मुँह से साकिया ;
काम आएगा न सागर आज न पैमाना आज।

(३) यारब हमारे बाद भी बज्मे शराब में ;
साकी के दम से दौरे-मए-अर्गवां रहे।

(४) बज्म साकी में चले भी तो कहीं हजरते शैख ;
शर्त हम करते है रह जाय जो ईमां का होश।

(५) बडे अजाब में है जाने मैकशो साक़ी ;
नहीं शराब तो जिक्रे शराब रहने दे।

(६) मर जाऊँगा मैखाने से निकला जो कभी मैं ;
नज्जारए म स्हे फिजा मेरे लिए ह

(७) नही पानी, तो मैख़ाने में ऐ शेख़ ;
जो कुछ मौजूद है लाऊँ वज़ू को।

(८) साकी न पूछ कितनी, जहां तक पिऊ पिला ;
आदत नही है मुझको सवालो जवाब की।

(९) आज तो मुँह लबे सागर से भिड़ा दे मेरा ;
साकिया, तुझ को मेरी सुस्तिए पैमां की कसम।

(१०) मश्विरे दे जो तर्के मै के हमें ;
ऐसे ग़मख़्वार से ख़ुदा की पनाह।

* * *

उन कविताओ के विषय मे भी जिन का लक्ष्य स्पष्टत राजनीतिक है दो शब्द कहने की आवश्यकता है। हसरत की योग्यता की सराहना करनी चाहिए कि उन्हों ने प्रेम-काव्य के रूपको को और शब्दावली को कायम रखते हुए भी अपने शेरो मे राजनैतिक सकेत भरे है। बदीगृह के दीर्घ-कालीन निवास ने भी उन के मनुष्य की भलाई के प्रति विश्वास मे धक्का नही पहुँचाया है। वह होरेस की कसौटी पर सच्चे उतरते हैं। और प्रकाश मे धुआ न उत्पन्न कर के धुए से प्रकाश उत्पन्न करते है ——

(१) रस्मे जफ़ा कामयाब देखिए कब तक रहे ;
हुब्बे वतन मस्ते ख़्वाब देखिए कब तक रहे।
नाम से कानून के होते है क्या क्या सितम ;
जब्र ब-ज़ेरे नकाब देखिए कब तक रहे।
दौलते हिंदोस्तां कब्ज़ए अग़यार में ;
बईदो बेहिसाब, देखिए कब तक रहे।
है तो कुछ उखड़ा हुआ बज़्मे हरीफ़ां का रंग ;
अब यह शराबो-कबाब देखिए कब तक रहे।

(२) मै मुब्तिलए रंजे-वतन हूं वतन से दूर ;
बुलबुल के दिल म यादे चमन ह चमन से दूर

(३) सब हमारी जिंदगी ही तक है उन के हौसले ;
वर्ना यह नाज़ो-नख़रे दिलरुबाई फिर कहाँ।

(४) उस बुत के पुजारी हैं मुसलमान हज़ारों ;
बिगड़े हैं इसी कुफ़्र में ईमान हज़ारों।

*　　　　*　　　　*

इस के अनंतर आइए, हम देखें कि हसरत ग़ज़ल के मुख्य विषय अर्थात् प्रेम का कैसा चित्रण करते हैं। उन के तग़ज़्ज़ुल का क्या रंग है। सभी भाषाओं में प्रेम गीति-काव्य का मुख्य विषय रहा है। उर्दू प्रेम-काव्य के रचयिताओं में ग़ालिब और मीर के स्वर मुख्य हैं। यों तो दिल्ली और लखनऊ के अनेक अपेक्षाकृत छोटे कवियों ने इस में साथ दिया है। हसरत मोहानी इस परंपरा के साथ यहाँ तक हैं कि वह माशूक़ को अस्थिर और कठिनाई से प्रसन्न होने वाला मानते हैं। परन्तु उन में एक विनोद और चतुराई की मात्रा है जो कि उन की कविता को नवीनता प्रदान करती है। वह साधारणतः माशूक़ की क्रूरताओं को तद्वत् नहीं मान सकते। वह भी एक भाव-प्रदर्शन है और वास्तविक प्रेम का सूचक है। यहाँ या अन्यत्र, जल्दी अथवा देर में मिलन हो कर ही रहेगा। इस बीच में यदि माशूक़ कठोरता दिखाता है, तंग करता है, छेड़ता है, दिल दुखाता है तो इस की कोई चिंता नहीं। सच्चे प्रेम का मार्ग कब सीधा, कंटक-रहित रहा है। प्रेम के साथ वेदना लगी हुई है। कवि यह सब जानता है फिर भी उसे प्रेम की शक्ति में विश्वास है। इसी लिए हसरत की कविता में हमें विनोद और गंभीरता का ऐसा विचित्र संमिश्रण मिलता है। गहन से गहन परिस्थिति में हम उन में कौतुक की मनोवृत्ति देखते हैं —

(१) मानूस हो चला था तसल्ली से हाले दिल ;
फिर तू ने याद आ के बदस्तूर कर दिया।

(२) गर जोशे आरज़ू की है कैफ़ीयते यही ;
मैं भूल जाऊँगा कि मेरा मुद्दआ है क्या।

(३) इश्क़ की रूहे पाक को, तुहफ़ए ग़म से शाद कर ;
अपनी जफ़ा को याद कर मेरी वफ़ा को याद कर

(४) हक़ीक़त खुल गई 'हसरत' तेरे तर्के मुहब्बत की :
तुझे तो अब वह पहले से भी बढ़ कर याद आते हैं।

(५) मजहबे आशिक़ों में है ऐ अक्ल ;
ब-ख़ुदी इंतिहाए दानाई।

(६) बर्क़ को अब के दामन में छुपा देखा है ;
हम ने उस शोख़ को मजबूरे-हया देखा है।

(७) जाहिर में जफ़ा करते बातिन में वफ़ा होती ;
सौ ढब से करम होता मंजूर अगर होता।

(८) हैफ़ है उस की बादशाही पर ;
तेरे कूचे का जो गदा न हुआ।

(९) इश्क या हुस्न कौन है ग़ालिब ;
आज तक इस का फ़ैसला न हुआ।

(१०) मर मिटे हम कि दे वह दादे वफ़ा ;
और जो इस का भी कुछ असर न हुआ ?

(११) पहले इक जर्रए ज़लील था मैं ;
तेरी निस्बत से आफ़ताब हुआ।

(१२) यह क्या मुंसिफ़ी है कि महफ़िल में तेरी ;
किसी का भी हो जुर्म पाएं सज़ा हम।

(१३) ग़म का न दिल में हो गुजर, वस्ल की शब हो यों बसर ,
सब यह कबूल है मगर, ख़ौफ़े सहर को क्या करूं।

(१४) कहीं वह आ के मिटा दें न इंतजार का लुत्फ़ ;
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तिजा मेरी।

(१५) वह बिगड़े बैठे हैं इस पर कि हम को क्यों चाहा :
हुई भी गर तौबा साबित हुई ख़ता मेरी।

(१६) उसी से छिपते हैं होती है जिस पै उन की नजर ;
अगर यही है तो उम्मीदवार हम भी हैं।

(१७) दुश्मन के मिटाने से मिटा हूं न मिटूंगा ;
और यों तो मैं फ़ानी हूं फ़ना है मेरे लिए।

(१८) हाल सुनते वह क्या मेरा 'हसरत' ;
वह तो कहिए सुना गईं आँखे।

(१९) शिकवए जौर, तकाजाए करम, अर्जे वफ़ा ;
तुम जो मिल जाओ कहीं हम को तो क्या क्या न करें।

(२०) खाकसारों में अपने दे के जगह ;
तुम ने मग़रूर कर दिया हम को।

(२१) रहमत ने हम से फेर लिया मुँह जो हश्र में ;
सूरत नज़र में फिर गई तेरे हिजाब की।

(२२) सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार ;
क्या करें आशिकी में, क्या न करें ?

(२३) गोया व सब सुना ही तो देगी वहां का हाल ?
क्या क्या सवाल करते हैं बादे सबा से हम।

(२४) हरदम है यह डर फिर न बिगड़ जायें वह 'हसरत' ;
पहरों जिन्हें रो रो के हँसाने में लगे हैं।

हसरत की कविताओ की अतिम जिल्द को प्रकाशित हुए लगभग चौदह वर्ष बीत गए। कौन इस बात पर खेद किए बिना रह सकता है कि इतने वर्ष उन के परिपक्व जीवन के साहित्य-सेवा मे न व्यतीत हो कर राजनीति के अखाडे मे संघर्ष मे बीते है ? यह उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक है कि उन के जीवन के शेष वर्ष—जो हम आशा करते है कि अनेक होंगे—अब भी अमर काव्य की सेवा में व्यतीत हों।

तूने हसरत यह निकाला है अजब रंगे ग़ज़ल ;
अब भी क्या हम तेरी यकताई का दावा न करें।

सैयद सज्जाद हैदर का भाषण

[हिंदुस्तानी एकेडेमी के छठे साहित्य-सम्मेलन के अवसर उर्दू-विभाग के सभापति-पद से दिए गए भाषण के कुछ उद्धरण लिप्यंतर मात्र से यहां दिए गए हैं। संपादक।]

(१)

अब तो दोनों (हिंदू और मुसल्मान) एक जगह रहते-सहते हैं। जब मुसल्मान हिंदुस्तान में दाखिल भी नहीं हुए थे, उस जमाने से भी एक दूसरे की जबान और लिटरेचर से ऐसे बेगाना न थे, जैसा कि आमतौर पर ख्याल किया जाता है।

एक पुर अज माल्मात व पुर अज तहकीकात मकाले में, जो पंडित बृजमोहन दत्तातिरिया ने, अलीगढ़ में पढ़ा था, यह साबित किया था कि फारसी का पढ़ना हिंदुओं में मुसलमानों के यहां आने से पहले जारी था, गो आम न हो। और हिंदुस्तान के हिंदू राजा कब्ल इस के कि मुसल्मान यहां हम्ला-आवर हुए काबुल और वस्त एशिया की इस्लामी सल्तनतों से, फारसी जबान में खत व किताबत करते थे और हिंदू दरबार के हिंदू मुंशी उन मरासलात को फारसी में लिखते थे। 'हिंद व अरब के ताल्लुकात' में मौलाना सैयद सुलैमान नदवी साहब ने बताया है कि जनूबी हिंद में अरब ताजिरों और अरब जहाजरानों की बदौलत मुसल्मानों और वहां के हिंदुओं में मआशरती और तिजारती ताल्लुकात मुसल्मानों के हिंदुस्तान में फातिहाना हैसियत से दाखिल होने से कब्ल कायम हो चुके थे। इसी तरह फारसी जबान का 'बुत' असल में 'बुध' है, यानी हजरत गौतम बुद्ध का मुजस्समा, और यह तो आप भी देख रहे हैं कि नैपाल जो कि कभी मुसल्मानों के जेरनगीं नहीं रहा, वहां भी शमशेर जंग राना, बबर जंग राना, तेजबहादुर राना जैसे नाम बता रहे हैं कि मुसल्मानों की जबान का असर उन के सियासी असर के हुदूद से बाहर पहुँच गया था।

ऐसी हालत में मैं नहीं मान सकता कि उर्दू जो कि सिर्फ मुसल्मानों की जबान नहीं, अगरचे उस में फारसी असर ज्यादा है, वह महज मुसलमानों में महदूद हो कर रह जायगी, या हिंदी को मुसल्मान न समझ सकेंगे। आखिर अब भी तो हिंदी ठुमरियों और गानों को

मुसल्मान सुनते हैं और उन से लुत्फ़ उठाते हैं। उर्दू का असर मुसल्मानों और हिंदुओं पर कम व बेश होगा—हिंदुओं पर कम, मुसल्मानों पर ज्यादा। इसी तरह हिंदी का असर हिंदुओं और मुसल्मानों पर होता रहेगा—मुसल्मानों पर कम, हिंदुओं पर ज्यादा।

मगर जब अमदन यह कोशिश की जाय कि दोनों जबानें इस कद्र अलहदा और एक दूसरे से दूर हो जाएं, कि उन में मशारकत का इमकान ही बाकी न रहे, रस्मुल्खत तो अलहदा है ही, अल्फाज भी ९९ फी सदी अलहदा हों तो फिर अगर आइन्दा की तरफ से नाउमेदी की जाय तो कोई जाय ताज्जुब नहीं।

(२)

उर्दू से उन फारसी अल्फाज के निकालने की कोशिश जो उस के जिस्मो जान में पैवस्त हो गए हैं, नाखून को गोश्त से जुदा करना है।

मौलाना सैयद सुलैमान नदवी ने अपने खुतबए-सदारत में जो लखनऊ की हिंदोस्तानी कांफ्रेस में गुजिश्ता साल इरशाद फरमाया था, कहा था कि उर्दू ने जिन फारसी अल्फाज को अपना लिया है उन को उन्ही मानों में और वैसे ही तलफ्फुज और इमला के साथ इस्तैमाल करना चाहिए जिन मानों और जैसे तलफ्फ़ुज और इमला के साथ उर्दू में वह रायज हो गए हैं। मौलाना ने इस की मिसालें भी दी हैं, मसलन 'मवाद', 'अस्ल', 'शहवत', 'मशकूर', 'मसाला', 'मशाल'। इसी तरह संस्कृत के अल्फाज जिस तरह उर्दू में या हिंदुस्तानी में रायज हैं, उन को छोड कर, असली संस्कृत के तलफ्फुज के साथ उन के बोलने की कोशिश को भी बिल्कुल बजा तौर पर अदबी पाप करार दिया है।

उन फारसी अल्फाज से जिन्हे हम फारसी समझ कर फारसी में इस्तैमाल करते हैं, अह्ल ईरान उन पर चौंकते हैं, और हमारी हँसी उडाते हैं, यानी वह अल्फाज फारसी नहीं रहे। हम ने उर्दू में उन को दूसरे मानी दे दिए हैं, और अब वह लफ्ज बिल्कुल हमारे हो गए हैं। आप उन को अपनी जबान से निकाल दीजिए, आप के यहां से निकल कर वह बिल्कुल निघरे हो जायँगे, क्योंकि फ़ारसी या अरबी इन मानों में उन्हे कबूल न करेगी।

मसलन इन दो लफ्जों को लीजिए जिन को फारसी में इस्तैमाल करने से, जब कि वह ईरान में सफ़र करते हैं, अह्ले हिंद ठोकर खाते हैं—

	असल मानी	**उर्दू में**
तकलीफ	फर्ज, जिम्मेदारी	जहमत
खफ़ा	गला घोटना	नाराज होना

यह न खयाल कीजिए कि हम ने अल्फाज़ के मानी बदल दिए। ईरानियों ने भी ऐसा किया है, मसलन 'नाखुशी' हम असली मानी 'नाराजी' में इस्तैमाल करते हैं, ईरानियों ने 'नाखुशी' को 'बीमारी' के मानी दे दिए हैं।

(२)

यह जो आम शिकायत की जाती है कि आज कल उर्दू लिखने वाले जान जान कर गैर मानूस और सख्त अरबी-फ़ारसी के अल्फाज अपनी तहरीरों में ठूँसते हैं, और रोजमर्रा के सादा अल्फाज के इस्तैमाल को अपने खिलाफ़ शान समझते हैं, यह एक हद तक सही है। मगर मेरा खयाल है कि एक जिंदा और तरक्की करने वाली जबान हमेशा नए नए लफ्ज अपने में जज्ब करती रहती है। इस को कतअन रोकने की कोशिश करना मुजिर होगा। अब यह मजाक सलीम और हिंदोस्तानी एकेडेमी के अहकामात पर मौकूफ़ है कि लिखने वाला कौन से लफ्ज अख्तियार करे और उन को रवाज देने की कोशिश करे। 'नान कोआपरेशन' के जमाने में अखबारात और तकरीरों में 'अदम तआउन' और 'मुकावमत मजहूल' पढने और सुनने में आते थे। मुकावमत मजहूल लाहौल बिला कूअत ! सिवाय इस के कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' का एक भोंडा सा तर्जुमा कर दिया, मक्खी की जगह मक्खी मार दी, मगर सुनने वाला खाक़ नहीं समझा कि यह 'मुक़ावमत मजहूल' क्या बला है ! मैं अब भी कहता हूं कि अगर जेह्न में 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अल्फाज पेश्तर से न हों तो कोई अरबीदां भी इस के वह मानी नहीं बता सकता जिस के लिए 'मुकावमत मजहूल' गढा गया। बहर-हाल 'मुकावमत मजहूल' अपनी मौत मर गया, मगर 'अदम तआउन' जिंदा व कायम है, इसी तरह 'मंदूब', 'मबऊस', 'नुमाइंदा' तीन लफ्ज निकले। यह उर्दू में 'रिप्रेजेंटेटिव' या 'डेलीगेट' के मानों में नए लफ्ज थे। 'मंदूब' व 'मबऊस' का इस्तैमाल इस कदर कम है कि बमंजिले न होने के हैं, मगर 'नुमाइंदा' चल पडा है। 'एक्टिंग' की जगह 'अदाकारी' ने ली है और यह अच्छा लफ्ज है।

बाज अच्छे खासे लफ्ज़ छोड कर, नए लफ्ज महज इस लिए कि वह शानदार हैं, अख्तियार किए जा रहे हैं। 'नाजरीन' करीब क़रीब मरहूम है, उस की जगह 'कारईन कराम' ने ली है। 'हीरो' को छोड कर 'बतल' को रायज करने की कोशिश की गई, मगर शुक्र है कि उस में कामयाबी नहीं हुई।

मैं ने एक उसूल क़ायम किया है या यों कहिए कि यह मेरा एक नजरिया है अरबी

के जो अल्फाज फारसी के जरिए से हम तक पहुँचे है, उर्दू उन्हे हज्म कर लेती है मगर जो अल्फाज बराहेरास्त अरबी मे लिए जाते हैं उर्दू का माद्दा उन्हे कबूल करने से इन्कार करता है। फारसी भी सादी व हाफिज की नरम व शीरीं फारसी, न कि आज कल की करख्त ईरानी, अब तो फारसी के लिए अरबी के लफ्ज का इस्तेमाल भी ममनूअ है, चुनाचे 'तनल', 'फकाहात', 'शुजरात' हज्म न हो सके। इस बात पर गौर करना भी दिलचस्प है कि नैपाल मे शमशेर जग, तेग बहादुर, बबर जग तो चला, सैफुल्मुल्क व जीगमुद्दौला न चला।

(४)

यह इल्जाम भी गलत है कि हिंदी के लफ्ज जान जान कर निकाले जा रहे हैं। 'समाज' (बमानी सोसायटी), 'परचार', 'चुनाव', 'शाती' जो पहले इस्तैमाल न होते थे, अब मुसल्मानों की तहरीरो मे मिलते है। बल्कि मै तो कह सकता हू कि हिंदू लिखनेवाले फारसी के मुरव्विजा और जबानजद व आम अल्फाज के साथ ज्यादा अदम तआउन बरतते हैं।

और यह बात कि मुसल्मानो की उर्दू मे फारसी अल्फाज निस्बतन ज्यादा मिलते है और हिंदुओं की जबान मे सस्कृत के कुदरती बात है। जिस लिटरेचर और जबान से जो शख्स ज्यादा मुतास्सिर हुआ है उस की तहरीर व तकरीर मे उसी की झलक पाई जायगी।

पारसियो की गुजराती हिंदुओ की गुजराती से एक हद तक मुख्तलिफ होती है। पारसियो की गुजराती मे फारसी और उर्दू के अल्फाज ज्यादा होते है। 'जाम-जमशेद' जो पारसियो का मशहूर अखबार है और गुजराती मे शाया होता है, अगर आप के सामने पढ़ा जाय तो उस में आप बहुत से अल्फाज ऐसे पाएँगे जिन्हें हम बोलते है और लिखते है। अखबार का नाम ही फारसी है। 'मझवर्तमान' जो हिंदुओं का कसीरुल-इशाअत गुजराती जबान का अखबार है उस मे फारसी और उर्दू के अल्फाज कम है, वजह यह है कि बावजूदे कि पारसियो ने गुजराती जबान, अख्तियार कर ली है, लेकिन उन मे एक काफ़ी तादाद अब भी फारसी पढती है और उस की तहरीर व तकरीर मे उस का असर नुमाया होता है। इसी तरह काजी नजरुलिस्लाम जो बगाल के नौजवान शायरो में बेहद शोहरत व मकबूलियत हासिल कर रहा है, कहा जाता है कि उस की शायरी मे गुल व बुलबुल, जुल्फ़ व काकुल सागर व शराब और इसी क़िस्म के और फारसी कसरत से आते है सिर्फ़

देखना यह चाहिए कि जान जान कर और तास्सुब मे तो अल्फाज का इस्तैमाल नही किया जा रहा है। अगर बेसाख्ता जबान पर आता है ठीक है।

(५)

यह कोशिश कि हिंदी से फारसी अल्फाज यानी विदेशी अल्फाज खारिज कर दिए जायें, नैशनलिस्ट शराब के नशे का नतीजा है। ईरान और तुर्की के कौम-परवर भी इसी नशे से बदमस्त है। फारसी मे अरबी अल्फाज को देस-निकाला मिल रहा है। तुर्की मे इस का जोर है कि फ़ारसी और अरबी दोनो को निकाल दो। मेरा ख्याल है कि तुर्कों और ईरानियो की यह कोशिश कामयाब होती नजर नही आती। शुरू शुरू मे तो मैं ने देखा कि ऐसी तुर्की लिखी जाती थी जिस का समझना अजबस दुश्वार था, मगर अब मै देखता हू कि फिर वही मामूली तुर्की है जिस मे फारसी के लफ्ज भी है और अरबी के भी। हिंदी की इस नेशनलिस्ट तहरीक जदीद का क्या हश्र होगा, इस के मुताल्लिक इस वक्त कोई अदाजा नही लगाया जा सकता, मगर मेरा दिल गवाही देता है, कि यह शिद्दत, यह तास्सुब कायम नही रहेगा।

(६)

मुश्तरक जबान का हल मेरे नजदीक यह नहीं कि एक ऐसी जबान बनाई जाए जो न आज कल की सख्त उर्दू हो और न आज कल की सख्त हिंदी, क्योंकि जब ऐसी रीडरें तैयार की जाती है तो दोनो तरफ से उन पर एतराज शुरू होते है। उर्दू वाले कहते हैं कि मुश्तरक जबान के परदे मे हिंदी को रवाज दिया जा रहा है। हिंदी वाले कहते है कि यह तो वही उर्दू रही। मेरे नजदीक इस मुश्किल का हल यह है कि हर तालिब इल्म को उर्दू और हिंदी दोनो जबानो के सीखने पर मजबूर किया जाय। फिर आहिस्ता आहिस्ता खुद-बखुद एक घुली-मिली जुबान पैदा हो जायगी।

शायद यह कहा जाय कि तालिब इल्म पर कितनी जबानें सीखने का बार डाला जायगा! इस का मेरे पास यह जवाब है कि उर्दू और हिंदी दो मुख्तलिफुलअस्ल जबानें नही है। जब जनूबी अफरीका मे डच और अंग्रेजी, और कैनाडा मे फ्रेंच और अंग्रेजी पहलू-ब-पहलू चल सकती है, हालांकि अंग्रेजी और डच और फ्रेंच और अंग्रेजी दो बिल्कुल जुदा जुदा जबानें है, तो कोई वजह नही कि उर्दू व हिंदी जो हकीकत मे एक ही जबान है क्यों साथ साथ न चल सकेगी

हिंद मुसन्निफ़ीन से मेरी दर्ख्वास्त है कि वह ऐसी उर्दू लिखें जैसी मेरे देरीना मुहिब मुकर्रम मुंशी दयानरायन साहब निगम, पंडित कौल, पंडित जुत्शी लिखते है। मुसल्मान ऐसी लिखें जैसी सैयद सुलैमान साहब नदवी, मौलवी अब्दुलहक़, हसन निजामी, डाक्टर जाकिर हुसैन लिखते हैं। काश मुंशी प्रेमचंद जैसे मुसन्निफ़ीन हम मे पैदा हो जिन की क़ादिरुल्कलामी उर्दू और हिंदी जबानो मे यकसा थी, और जिन्हे उर्दू और हिंदी अपना सब से बडा अदीब शुमार करने मे मुसाबक़त कर रही है!

एक हद तक यह मसला फरसूदा हो गया है। मै देख रहा हू कि जब से हिंदुस्तानी एकेडेमी कायम हुई है, उस के हर साल्याना जल्से मे, हर खुतबए-सदारत में, इस के मुत-ल्लिक इजहार खयाल किया गया है। सर तेज बहादुर सप्रू, मिस्टर सच्चिदानद, मौलवी अब्दुलहक़ साहब, मौलाना सैयद सुलैमान नदवी, डाक्टर गंगानाथ झा, एकेडेमी मे और एकेडेमी के बाहर बतौर कौल फैसल के पंडित जवाहरलाल नेहरू, निहायत क़ाबलियत मगर निहायत ठडे दिल से इस मसले के हर पहलू पर नजर डाल चुके है। लेकिन मसला इतना अहम है कि हमारे मुफक्करीन की तवज्जेह तमामतर उस की तरफ है। फिर भी कोई माकूल हल, ऐसा हल जिसे आम राय खुशी मे कबूल कर ले नजर नही आता। तो फिर इस गुत्थी को सुलझाने का क्या दावा कर सकता हू। लेकिन अपनी बिसात भर कोशिश मैं ने भी की।

हज़रात, हिंदुस्तानी एकेडेमी की इल्मी और अदबी खिदमात काबिल तहसीन है। इस कलील अर्से मे उस ने बहुत किया है, लेकिन काम की इब्तिदा ही है और इस वक्त ही अपना प्रोग्राम पूरे गौर और खौज से मुअय्यन कर लिया जाय तो बेहतर है।

(७)

हमारी जबान के लिए यह दौर दौर तर्जुमा है। उस्मानिया यनिवर्सिटी हो कि अंजुमन तरक्की उर्दू, हिंदुस्तानी एकेडेमी हो कि कोई और जमायत दूसरी जबानो के बुलंद पाया मुसन्निफ़ीन की किताबो के तर्जुमे से वह बे-नेयाज नही। यही नही कि बे-नेयाज नही, बल्कि उन की कोशिशो के बेशतर हिस्से का इन्हेसार उम्दा किताबो के तर्जुमे कराने या ऐसी तालीफात पर है जिन का माखज कोई मुस्तनद किताब या मुस्तनद मुसन्निफ है और यह तरीक अमल सही भी है। तख्लीकी दौर तर्जुमे के दौर के बाद आता है। पहले अपनी ज़बान के खज़ाने उन जवाहिरात से भर लीजिए जो आप को आसानी से मिल सकते

है, फिर नई कानो की तलाश मे निकलिएगा। लेकिन मै देखता हू कि इस पर ज्यादा जोर दिया जाता है कि साइंस और फलसफे की किताबों का ही तर्जुमा किया जाय। बेशक उन का तर्जुमा लाबदी और जरूरी है। लेकिन दूसरी जबानो के लिटरेचर से हमें बेरावर नही रहना चाहिए। इन्सानी रूह की तडप और उस तडप से जो सोजो-गुदाज कौमों मे पैदा हुआ है, वह हमें लिटरेचर ही मे मिलता है।

सैयद हुसैन बिलगरामी मरहूम ने अलीगढ मे एक लेक्चर के दौरान मे किस कदर सही फरमाया था कि अरबो ने यूनानियो के उलूम व फनून, हिकमत व फिलसफा मतक व तिब को अपनी जबान मे मुनकिल कर के, उन के दिमाग, उन के गोश्त व पोस्त को ले लिया। मगर उन के लिटरेचर से बे-एतनाई बरतने की वजह से यूनान की रूह, यूनानियो के दिल तक उन की रसाई नही हुई। यूनान की खुश्की व यबूस्त तो उन मे आ गई, मगर यूनान की लताफत हुस्न व जमालियात की फरेफ्तगी की अकलीम से वह दामनकशा निकले चले गए। इस लिए वह एक बहुत बड़ी न्यामत से महरूम रहे।

यूरोप जब करूवस्ता के ख्वाब से बेदार हुआ तो इन्सानियत परस्ती की लहर, इसी लिटरेचर के मुनाले से उस मे दौड़ गई। इस लिटरेचर को उस ने 'ह्यूमैनिटीज' के निहायत मौजूं नाम से याद किया। इस लिए मेरी अर्ज है कि आप लिटरेचर के तर्जुमे की अहमियत को मामूली नजर से न देखे और यूनान और कदीम रोमा का लिटरेचर हमारी जबान मे मुतकिल होना चाहिए।

जिस लिटरेचर ने बायरन को यूनान का ऐसा आशिक बना दिया कि उस ने उस के लिए अपनी जान दे दी, वह कुछ जादू अपने अंदर रखता होगा। बायरन ही क्या इंग्लिस्तान और यूरोप के कुल शायरो, कुल अदीबो को इसी लिटरेचर से इल्हाम हुआ है। मिल्टन, कीट्स, शैली की शायरी मे यूनान व रोमा के लिटरेचर से मुतास्सिर हिस्से को निकाल डालिए तो फिर क्या रह जाता है? गरज कि होमर, वरजिल, हेरोडोटस, सफाकलिस और दीगर खुदायाने सखुन की तसानीफ हमारी जबान मे बराहरास्त आनी चाहिए।

मै ने बराहरास्त अमदन कहा। मुझे हँसी आती है जब मै पढता हू कि रूसी और फ्रांसीसी अदबियात के शाहकारों के तर्जुमे उर्दू मे हो रहे हैं। जब देखिए तो मुराद यह है कि मैक्सिम गोर्की, टाल्स्टाय, चेखाव, अनातोल फ्रांस के जो तर्जुमे अंग्रेजी मे हुए हैं उन मे से कुछ किताब या कुछ फिसाने उर्दू मे तर्जुमा किए गए है यानी तर्जुमा दर तर्जुमा

यह कहने की जरूरत नही कि बेहतरीन तर्जुमा असल की खूबियों का धुंधला सा नक्शा होता है : यह नक्शा और भी धुंधला हो जाता है जब कि वह तर्जुमे का तर्जुमा हो। एकेडेमी को इस कायदे की सख्ती से पाबंदी करनी चाहिए कि वह किसी तर्जुमे को कबूल न करे जब तक कि वह असल जबान से उर्दू मे न किया गया हो। अफसोस है कि उर्दू मे खुद हिंदोस्तान की दूसरी जबानों के तर्जुमे अंग्रेजी से किए जाते हैं।

टैगोर ने अपनी तसानीफ के अंग्रेजी तर्जुमे खुद किए है, लेहाजा यह कहा जा सकता है कि वह तर्जुमे नही हैं, उस की तसनीफे है। इस लिए टैगोर की अंग्रेजी तसानीफ से तर्जुमा करना जायज है। लेकिन बंकिमचंदर और दीगर बंगाली मुसन्निफीन की जो किताबें उर्दू मे तर्जुमा हुई है, मेरा खयाल है कि वह उन के अंग्रेजी तर्जुमो से उर्दू मे तर्जुमा की गई है। गजब खुदा का ! मैं ने अल्फिलैला का एक तर्जुमा देखा जो अंग्रेजी से किया गया था ! मेरी इल्तिजा है संस्कृत लिटरेचर के तर्जुमे भी, उर्दू और संस्कृत के आलिम उर्दू मे कर के हम को इनायत करे।

(८)

हिंदुस्तानी एकेडेमी ने एक कमेटी इस गरज से कायम की थी कि वह इस मसले पर गौर करे कि एक मुश्तरिक जबान किस तरह आलम वजूद मे लाई जा सकती है। इस कमेटी ने १२ नवंबर १९३१ को अपना इजलास मुनक़द किया, और अपनी रिपोर्ट तैयार की। एकेडेमी की कौंसिल मे ७ मार्च, १९३२ को यह रिपोर्ट पेश हुई और कौंसिल ने रिपोर्ट से इत्तिफाक़ राय करते हुए यह रिजोल्यूशन पास किया कि एकेडेमी एक ऐसी डिक्शनरी शाया करे जिस मे उर्दू और हिंदी के तमाम वह अल्फाज हो जो रोजमर्रा की बोलचाल मे इस्तैमाल किए जाते हैं। १६ जनवरी, १९३७ ई० को मौलाना सैयद सुलैमान नदवी ने अपने खुतबए सदारत मे यह तजवीज पेश की कि ऐसे आसान हिंदी लफ्जो का एक लुगत फारसी खत मे लिखा जाय और उन के हम-मानी हिंदोस्तानी लफ्ज लिखे जायं, ताकि वह आसानी से हिंदोस्तानी में शामिल हो सके। मेरी दरख्वास्त इस से ज्यादा है। एक मुकम्मल हिंदी डिक्शनरी फारसी खत में छापी जानी चाहिए। हिंदी अल्फाज को खतूत वहदानी मे नागरी हरूफ़ मे भी लिख दिया जाए। मगर मानी और तशरीह सब फारसी खत और हिंदोस्तानी म हो

(९)

जब एकेडेमी कायम हुई उस की इब्तिदा ही मे, यानी ९ दिसंबर, १९२८ ई० को मैं ने एक रिजोल्यूशन रोमन हरूफ के रवाज देने के मुतल्लिक पेश किया था। फिर गुजश्ता साल लखनऊ मे हिंदुस्तानी एकेडेमी की काफ्रेंस मे, उर्दू सेक्शन मे, इस के मुतल्लिक एक मक़ाला पढा। अब फिर आप को बहकाने और आप के दर्द-सर का बाअस होने के लिए म उसी राग को अलापता हू।

लेकिन इस मरतबा मेरी हिम्मत बढी हुई है। हिंदुस्तान की उस अजीमुश्शान जमाअत के सद्र ने (जिस के हाथ मे इस मुल्क के सात सूबो की हुकूमत की बाग है) हरीपुरा कांग्रेस के प्लैटफार्म से इस मसले पर इजहार ख्याल फरमा कर, इस की अहमियत को कही से कहीं पहुँचा दिया। 'मिस्टर सुभाष बोस रोमन हरूफ के रवाज के हामी है', यह आवाज तमाम मुल्क मे गूज रही है। इस मसले पर जो और आवाजे, कमजोर आवाजे, कमजोर आदमियो की तरफ से उठती थीं उन को कोई वकत नही दी जाती थी। लेकिन जब एक बडे गिरजा के बड़े आरगन की पुर अजमत आवाज़ से वही लै निकल रही है तो मुझे यकीन है कि वह अकीदत व एहतेराम से सुनी जायगी।

निहायत मुख्तसर तौर से यह अर्ज कर दू कि मै यह नही कहता कि टर्की की तरह कानूनन हिंदोस्तानी का फ़ारसी हरूफ या नागरी हरूफ मे लिखना बंद कर दिया जाय और हर शख्स मजबूर किया जाय कि वह रोमन मे लिखे पढे। नही, मेरी गरज यह है कि मौजूदा फारसी खत और नागरी खत जारी रहे। मगर साथ ही इस के रोमन का भी रवाज देने की कोशिश की जाय और उर्दू व हिंदी की किताबे और अखबारात इन हरूफ़ मे भी छापे जायें। ताकि मुल्क के उस तबक़े तक जो कि हिंदुस्तानी ज़बान मे बोलता और समझता है मगर ब-सबब इस के कि फारसी रस्मुलखत और नागरी रस्मुलखत से नाबलद है, उसे पढ नही सकता, हमारे लिटरेचर की रसाई हो सके।

(१०)

खातमा कलाम पर मै उर्दू और हिंदी के हमागीर असर के मुतल्लिक अर्ज करना चाहता हू। इस मे तो कोई कलाम नहीं कि वह जबान जिसे उर्दू कहिए या हिंदी, या सुलह-जूयाना तरीक़ से हिंदुस्तानी इस मुल्क के एक बडे हिस्से पर छाई हुई है और छाती जाती है लेकिन मेरा अक़ीदा है कि हिंदुस्तान मे ज़बान का भी फेडरेशन होगा लेकिन यह

दो फेडरेशन होंगे। पंजाब, सिंध, सूबा सरहद, उर्दू के फेडरेशन में शामिल होंगे, यहा उर्दू हाकिम आला होगी। मुकामी हुकूमत खुद इख्तियारी पंजाब में पंजाबी को, सिंध में सिंधी को, सूबा सरहद में पश्तो को दी जाएगी। बलूचिस्तान के मुताल्लिक मैं कोई राय कायम नहीं कर सकता कि आया वह इस फेडरेशन में शामिल होगा या नहीं।

दूसरा हिंदी का फेडरेशन होगा। इस में मुमालिक मुतवस्सिता, महाराष्ट्र, बंबई शामिल होंगे। हमारा सूबा और बिहार हिंदी के फेडरेशन में होगा। मगर उर्दू का फेडरेशन यहा हम्लाआवर रहेगा और बहुत मुमकिन है कि यहा लसानी तवायफुलमुलूकी (लिंग्विस्टिक अनार्की) रहे। जिस तरह बलूचिस्तान के मुताल्लिक मैं कोई राय नहीं दे सकता, बंगाल के मुताल्लिक भी मैं ने कोई राय क़ायम नहीं की।

बलूचिस्तान का उर्दू के फ़ेडरेशन में शामिल होना इस लिए मुशतबा है कि वहा जबान व लसान के बारे में कोई अहसास, कोई बेदारी नहीं। बंगाल की हालत इस के बिल्कुल खिलाफ है। वहा खुददारी का एहसास इस कदर तेज है कि बंगाली हिंदी के फेडरेशन में शामिल होना अपनी कसर शान समझेगा।

जनूबी हिंद इन दोनों फेडरेशनों से कुल्लियतन आजाद रहेगा। मिस्टर गोपालाचार्या जनूबी हिंद में हिंदी की तरवीज की कोशिश कर रहे हैं। मगर 'ऐंटी हिंदी कांफ्रेंस' के कयाम ने उन्हें साबित कर दिया होगा कि वह जनूबी हिंद में बजब्र हिंदी को रवाज नहीं दे सकते। इस की वजह यह है कि गो हिंदू मजहब की वजह से हिंदू माशरत का असर वहा हावी है और संस्कृत लिटरेचर वहा अकीदत और शौक से पढ़ा जाता है, लेकिन चूंकि वहा की जबानें 'ड्राविडियन' हैं, वह अपने को हिंदी से बिल्कुल अलहदा और दूर पाती हैं। रस्मुल्खत, अल्फाज, ग्रामर, हर चीज अलहदा है।

सूबा सरहद के उस बदनाम 'ऐंटी हिंदी सर्कुलर' ही को लीजिए जिस की वजह से अखबारात के सैकड़ों कालम सियाह हुए और सैकड़ों प्रोटेस्ट रिजोलूशन पास हुए। नतीजा क्या हुआ? सरहद में न हिंदी रही न उर्दू। वहा की असेंबली के नेशनलिस्ट मेंबर ने यह रिजोलूशन असेंबली में पेश कर दिया कि वहा की मादरी जबान पश्तो है, लेहाजा वहा जरिए तालीम पश्तो ही हो।

मैं ने जो यह कहा कि सूबा सरहद पंजाब और सिंध में ग़ालिबन उर्दू कामियाब होगी यह इस बिना पर कहा कि वहा के बाशिंदे मैं का ज़िक्र कर रहा हूं)

जिस रस्मुल्खत में अपनी अपनी जबान पढते लिखते है वह वही रस्मुल्खत है जिस मे उर्दू लिखी जाती है, अलावा अजी उन की जबानो मे फारसी और अरबी अल्फाज उसी निस्बत से शामिल है जिस निस्बत से कि उर्दू मे। इस लिए वह उर्दू को बमुकाबले हिंदी के अपनी जबान के करीबतर पाएँगे।

इसी बिना पर सूबा मुतवस्सित, बरार, बबई, महाराष्ट्र के लोग हिंदी को अपनी जबान के करीबतर पाएँगे।

गरज कि हर जगह जहा हिंदी कामयाब होगी वहा समझना चाहिए कि उर्दू भी कामयाब होगी। इसी तरह जहा उर्दू ने घर कर लिया, वहां हिंदी भी दाखिल हो गई। मदरास का रहने वाला जो तेलगू या कनारी या मलयालम बोलता है, जब हिंदी बोलने और पढने लगेगा तो क्या वह उर्दू नही समझेगा ?

दुर्योधन का क्षोभ

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र]

[हिंदी के प्रसिद्ध नाटक-कार तथा कवि, पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र, महाभारत के कर्ण-पर्व के आधार पर अतुकांत छंद में एक महाकाव्य की रचना कर रहे हैं। इस का प्रथम सर्ग तैयार हो चुका है, और उसी का एक अंश नीचे दिया जा रहा है। द्रोणाचार्य के निधन के पश्चात्, उस कराल रात्रि में शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शकुनि आदि वीरों के साथ दुर्योधन अपने शिविर में बैठा हुआ है। सब लोग द्रोणाचार्य की मृत्यु पर खेद प्रकट कर रहे हैं। इसी के बीच कृतवर्मा के कुछ कहने के पश्चात् दुर्योधन कुछ निराशाजनक स्वर में बोलता है। अश्वत्थामा जो अपने पिता की मृत्यु से क्षुब्ध है, उत्तेजित हो उठता है।]

मौन कृतवर्मा हुआ। मर्म भेदी साँस ले
बोला यों सुयोधन सखेद धीर वाणी में,
"भाई क्या कहूं मैं और आज किस योग्य हूं ?
रक्षक बने हो तुम मेरी कालरात्रि के,
धो सकोगे किंतु क्या लिखा है जो विधाता ने
मेरे हीन भाल में ? नियति चक्र मेरा जो
घूमता रहा है प्रतिकूल, पलटोगे क्या
गति उस की ? जो कहूं मैं भी सदा दास सा
प्रस्तुत रहूँगा धन-धर्म, प्राण देने को
सेवा में तुम्हारी, यह आशा तो दुराशा है।
हाय भाई कैसे कहूं चाहता हूं कितना,
कितना ऋणी हूं, मैं तुम्हारे उपकार का

बदला चुकाता कभी! किंतु देखता हूं मैं
अंत इस जीवन का अंत इस युद्ध में।
कौन जानता था हाय! कुरु-कुल-उग्र वे
मृत्युंजय, भीष्म-व्रती भीष्म इस रण में
आ गिरेंगे पृथ्वी पर बाणों से शिखंडी के
भाग्य की विडंबना से? नारी है कि नर है
राहु वह बोलो सखे कुरु-कुल-रवि का?
अंजन से रंजित वे आँखें पद्म-दल सी,
और वह वेणी गुँथी पीठ पर उस के,
कंचुकी विलोक वह, देख चंद्रहार को
कौन कह देगा वह नारी नहीं नर है?
छलती मरीचिका है जैसे मरुभूमि में
पथिक पिपासाकुल, वैसे छला नीच ने
माया-जाल डाल इस वंश की विभूति को।
देवव्रत धर्मधीर हैं वे, भला अबला
मारने कभी हैं महावीर भूल कर भी?
देखा एक दृष्टि अरे नारी पार्थ रथ में
फेर लिया आनन तुरंत; पर-नारी को
देख सकते थे कभी विश्व वंद्य वीर वे?
और वे पड़े हैं आज काल शर-सेज में,
काल शर-सेज में पड़े हैं बंधु आज वे,
विस्मय जगत के वे देव नर दैत्यों के,
मन्मथ-जयी वे, योगिराज सम धीर वे!

कामिनी की कामना न डोली कभी जिस के
मानस में; बाहुबल्लरी में पद्मिनी की रे
बाँधा गया जो न कभी; चंद्रमुखी-मुख की
आभा से न दीप्त हुई आभा की

जिस के लिए; न जाना जिस ने कि कैसा है
मंजु अधरों का रस उन्नत उरोजों का,
कैसे तीक्ष्ण नेत्र-शर होते मृगनैनी के,
बेधते अचूक नर-सिंह योगिजन जो;
हाव, भाव, मादक कटाक्ष षोड़शी के वे,
वासती वसंत में ज्यों, यामिनी शरद में
पूर्ण शशि, कोकिल की कूक अर्ध-निशि में,
व्याप्त करते जो मन-प्राण क्षण-भर में,
व्याप्त करते जो, यह सृष्टि मधु-मद से
होती है द्रवित यों शिला ज्यों शिलाजीत की।
कहते इसी से कुसुमायुध अजेय है;
जीता जिसे केवल था शंकर ने तप से,
और जिसे जीता नर-देही देवव्रत ने।
देव-देही किंवा दैत्य-देही और कौन है
भाई इस विश्व में लगाई नहीं जिस ने
फाँसी स्वयं आप आत्म-रस में विभोर हो
विषधर नाग तुल्य मानिनी की वेणी की ?

और वे ही जा पड़े जो देखो काल-मुख में
नीति से, तुम्हारे कुलभूषण की नीति से।
माधव मुकुंद जो तुम्हारे दिव्य चक्षु है,
देखते है स्वार्थ साधना जो शत नेत्र से,
जान गए वे जब पितामह अजेय है,
साध्य नही पार्थ का जो मारे उन्हें रण में,
और यदि वंद्यकीर्ति लड़ते रहेंगे जो,
पूरी हो सकेगी नहीं पांडवों की कामना,
कौशल से काम लेना जानते मनस्वी है,
और वे मनस्वी है तभी तो शिशुपाल को

मारा था उन्हों ने सभा-मध्य जो निरस्त्र था,
तर्कपूर्ण वाणी युद्ध करने उठा था जो,
जानता नहीं था जो कि उत्तर में तर्क के
चक्र चलता है। वह दृश्य इन आँखों में
घूमता है बार बार, उस ने कहा था जो—
'योग्य क्या यही है जहाँ पूज्य गुरुजन हैं,
शस्त्र-पूज्य, शास्त्र-पूज्य, आयु-पूज्य जन ये
हीन हो रहे हैं आज मध्यस्थ की पूजा से
कैसा है अनर्थ यह ?'

तत्क्षण ही व्योम में
फूटी अग्नि आभा, झँपी पलकें, खुलीं जो वे
देखा भूमि-लुंठित था शीश शिशुपाल का।
काँप उठी सारी सभा विस्मय से भय से,
नीचे झुका शीश चक्रवर्ती धर्मराज का,
धर्म-यज्ञ-मंडप में हत्या यों अधर्म से!
बात बिगड़ी थी, जो न होते पितामह तो
निश्चय था होती क्रांति और रक्त-धारा से
बुझती हविष्य अग्नि। साम, दाम, भेद से
शांत कर क्रोधानल शिष्टाचार वारि से,
क्रोध नृप-वर्ग का किया था यज्ञभूमि में
तात देवव्रत ने, बचाई धर्मसुत की
लोकलाज, धर्मलाज। बदला उसी का तो
उन को मिला है इस रण में शिखंडी से।

देखते नहीं हैं कभी नारी ब्रह्मचारी वे
विश्व में विदित यह निष्ठा उन की जो है,
भीष्म व्रत भीष्म का न डोलेगा जगत में,
चाहे डोल जाए धरा सूर्य शशि डोल ये

दुर्योधन का क्षोभ

डोले ध्रुवलोक, ध्रुव धारणा जो उन की
डोलेगी कदापि नहीं, कौशल रचा गया
और वह क्लीव द्रोण-द्रोही सुत निंद्य रे!
निंद्य जिस का है जन्म, आचरण निंद्य है,
मर न गया जो हाय मा के ही उदर में!
धारण किया था वह गर्भ किस लोभ से
जननी अभागिनी ने? ग्लानि नर-वंश की
पैदा किया लाभ क्या था? लज्जित हुई न जो
प्रसव किया क्यों सुत ऐसा नारि-वृत्ति का?
नारि वेश, आभरण, भूषण में हाय रे!
मिलता जिसे है रस जीवन-जगत का।
किंतु दोष क्या है जननी का? किस भांति से
जान सकती है वह क्या है उस गर्भ में,
कालकूट किंवा सुधा, लोहा है कि सोना है?
आशा तो सदा ही उसे रहती मनोज्ञ है
होगा शिशु वीर, गुणी और इस लोक की
गुणिजन-गणना में जिस की सुकीर्ति से,
धन्य होगी जननी की यातना प्रसव की,
धन्य होगी कोख वह। किन्तु दुर्दैव का
कैसा है विधान यह क्रूर, सखे, देखो तो,
होते उसी गर्भ से है निंद्य जन विश्व के!
कुलटा सुताएं और पापी सुत माता का
पीते वही पय, जो कि पीते गुणी जन हैं,
पीते महावीर, महादानी, महाज्ञानी जो
योगिजन जीवन-मरण-हीन जग में।
कहना ही होगा सखे क्रूर कर्मरेखा की
क्रूर दुर्दैव की जगत में

जलती निरंतर है।"

भीम ध्वनि पौंड्र की

गूंज उठी बेधती धरा को और व्योम को।
चौंके सब वीर, चौंकी सृष्टि वज्र-नाद से,
फूट पड़े ज्वालामुखी, किंवा भूमि-कंप हो,
काँप उठी सारी सृष्टि त्रस्त प्राण-भय से।

"देता है चुनौती भीमसेन कुरु-दल को,"
बोला द्रोणि,—"लाओ बनूं दूत मैं प्रलय का,
लाओ रथ, लाओ तूण, भीषण पिनाक रे!
आज मैं पिनाकी बनूं और इस सृष्टि को
भेजूं मैं रसातल को फूंक अग्नि बाणों से,
बोरूं इसे छोड़ वरुणास्त्र आज रण में,
मेटूं अपवाद पांडवों का और कृष्ण का,
भोगें राज-वासना विपक्षी यमलोक में।
एक संग भेजूं धृष्टद्युम्न, धर्म-सुत को
संग सग पार्थ, कृष्ण, भीमसेन, सात्यकी
और उस विश्व-ग्लानि युवती शिखंडी को,
द्रुपद-सुता का पद ले जो उस लोक में,
रानी बने पाँच भाइयों की, इस लोक की
संपदा जो सारी मिले यमपुर में उन्हें,
राज्य करें राज्यवासना हो तृप्त उन की।
मेरे दिव्य शस्त्र, देवशस्त्र, विश्वनाशी वे
ब्रह्मशिरा, सर्वग्रासी, नारायण अस्त्र को
रोक सके ऐसा कौन है जो इस लोक में?
देव हो कि दानव हो, शक्ति किस की है जो
मेट सके ब्रह्मशर-महिमा जगत में?
पापी धृष्टद्युम्न को सुलाऊं में

मारे गए तात पुत्र-शोक में विकल हो,
और वही पुत्र हूं मैं, धिक् मुझे धिक् हैं
जीवित हूं अब तक मैं, पापी पितृ-ऋण से
उऋण हुआ न जो हा मार पितृघाती को
ग्लानि वीरकुल की मैं पुण्यक्षीण धिक् है
जीवित हूं!"

थरथर काँपा वीर रोष से,
काँपता है जैसे सिंधु झंझा की झकोर में।
तत्क्षण ही वाणी रुकी, क्रोध की लपट मे
मानो जली जीभ, जली आँखें धकधक सी
आहुति पड़ने से यथा अग्नि। श्रमबिंदु से
शोभित था भाल हेमकूट रत्नमय ज्यों।

कहने लगा यों तब आश्वासन-स्वर में
अंधनृप-नंदन, "हे वीर गुरु-पुत्र हे
कर्म-रेख मिटती कभी क्या पुरुषार्थ से?
भाई अनुकूल पांडवों का दुर्दैव है,
हो रहा तभी तो हाय नित्य क्षीण-बल मैं,
करता तभी तो उपहास शंख-ध्वनि से
देखो यह शत्रु, आज संकट की रात में।
सहना पड़ेगा हमें भाग्य में लिखा है जो
निर्दय विधाता ने।"

"परंतु कर्मलिपि की
(हाथ फेंक द्रोण-सुत बोला ग्लानि व्यंग से)
निर्दय विधाता और भाग्य की विडंबना,
देखी नहीं तुम ने क्या राजकुल-रत्न हे
कुरु-कुल चूडामणि! माँगा जब तुम से
पाड के सुतों न राज्य-भाग था अनय से

और जब तुमने कहा था वीर-दर्प से
होते अधिकारी क्या अनौरस तनय हैं—
सिंहासन, राजछत्र, राजदंड-पद के ?
धरती न दूंगा प्राण दे दूं भले किंतु मैं
लूंगा अपवाद नहीं शत्रु-शस्त्र-भीति का !
और जब आज जली अग्नि इस रण की
दे रहे हो दोष दुर्दैव कर्म-लिपि को !
भूल चुके राजनीति और वीर व्रत हो।
भूले यदि जीवन के मोह में समर में,
संधि करो पांडवों से और संधि-दूत मैं
आज बनूं। किंतु जब पद्मपति प्राची में
आकर करेंगे अनुरंजित जगत को,
मेरी प्रतिहिंसा, प्रतिहिंसा द्रोण-सुत की
दावानल बन कर जलेगी शत्रु बन में।
एकाकी लड़ूंगा। पितृदेव के निधन का
बदला न लूं जो धृष्टद्युम्न के रुधिर से,
तर्पण उन्हें कर न सींचूं धरातल को
शत्रुओं के शोणित से, जाऊं मैं नरक मे,
घोर कुंभीपाक में जलूं मैं। यदि जन्म हो
मेरा फिर जग में तो दैव ! रे कहूं मैं क्या
याचना है दूसरा शिखंडी बनूं लोक में,
वीर-कुल ग्लानि बनूं जग का कलंक मैं।"

कौंधती है चंचला ज्यों वेग से गगन में
घोर घन बेधती हुई ज्यों लुप्त होती है,
देखी वही शक्ति, वेग शक्ति गुरु-पुत्र की
बाहर शिविर के हुआ था जो निमेष में.
अंबर म गूंजती थी वाणी अभी जिस की

और वह अग्नि आत्म-ग्लानि प्रतिहिंसा की
धधक उठी जो महावीर के हृदय में,
जलती चतुर्दिक् थी मानो विश्व-व्योम में,
जल उठा मानो कुरुराज उस वह्नि में,
कहने लगा यों—

"पितृ-शोक में विकल हो
खोई तुम ने है ज्ञान-चक्षु, प्रतिहिंसा की
भावना में भूले महावीर वीरव्रत हो।
जा रहे हो जाओ, गुरु-पुत्र जानता हूं मैं
संकट में कौन किस का है इस लोक में?
छोड़ते हैं पक्षी वृक्षराज जब वन में
जल उठता है घोर ज्वाला में दवाग्नि की।
जैसे जब पुष्प-शर प्रेरणा से इंद्र की
तोड़ने चला था जो समाधि योगिराज की,
देव-कुल मंगल की कामना थी मन में,
किंतु जब हाय! नेत्र-ज्वाला में त्रिनेत्र की
भस्म हुआ, उस को बचाया क्या सुरेंद्र ने?
चंद्र ने बचाया, या कि वायु ने, वरुण ने
तीन लोक त्राहि त्राहि करता फिरा था जो?
आश्रय मिला न कहीं। विश्व के विधान में
आता नहीं आड़ कोई भीषण विपत्ति में।
जाओ, उपालंभ नहीं मेरा कुछ तुम से,
कूदा था स्वयं मैं इस विग्रह-समुद्र में
लोकनीति रक्षा करने को; बाहु-बल से
पार मैं करूँगा इसे या कि डूब जाऊँगा,
चिंता नहीं, डूबता तो अखिल जगत है
डूबता है आज कोई और कल कोई है,
डूबती है सारी सृष्टि वेला में प्रलय की।"

दो कविताएं

[रचयिता—श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत]

(१)

ठङ – ठङ – ठन !
लौह-नाद से, ठोंक पीट घन,
निर्मित करता श्रमिकों का मन
ठङ – ठङ – ठन !

"कर्म-क्लिष्ट मानव-भव-जीवन,
श्रम ही जग का शिल्पि सनातन,
कठिन सत्य जीवन की क्षण-क्षण
घोषित करता घन वज्र-स्वन,—

व्यर्थ विचारों का संघर्षण,
अविरत श्रम ही जीवन-साधन;
लौह-काष्ठमय, रक्त-मांसमय
वस्तु-रूप ही सत्य चिरंतन।"
ठङ – ठङ – ठन !

अग्नि-स्फुलिंगों का कर चुंबन
जाग्रत करता दिग्-दिगंत घन,—
"जागो श्रमिको, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी हैं श्रमजन !"

"मांस-पेशियां हृष्ट-पुष्ट, घन,
बटी शिराएं, श्रम-बलिष्ठ तन,

भू का भव्य करेंगे शासन;
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण।"
ठङ् – ठङ् – ठन!

(२)

ताक रहे हो गगन?
मृत्यु - नीलिमा - गहन
गगन?
अनिमेष, अचितवन
काल-नयन?
निःस्पंद, शून्य, निर्जन,
निःस्वन?
देखो भू को!
जीव-प्रसू को।
हरित-भरित
पल्लवित-मर्मरित
कुंजित-गुंजित
कुसुमित
भू को!
कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल,–
कलकल
छलछल
निर्मल

कुसुम-खचित,

मारुत-सुरभित,

खगकुल-कूजित,

प्रिय पशु-मुखरित,--

जिस पर अंकित

सुर-मुनि-वंदित

मानव पद-तल!

देखो भू को,

स्वर्गिक भू को!

मानव पुण्य-प्रसू को!

असितकुमार हल्दार की चित्रकला

[लेखक—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

अब से तिहाई सदी पहले भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में जो नवजागृति बंगाल में हुई, वह वास्तव में हमारे देश में विस्तार पाती हुई पाश्चात्य शैली के विरुद्ध एक प्रबल प्रतिक्रिया थी। हिंदुस्तान में पश्चिमी चित्रकला की जिस 'एकेडेमिक' परंपरा का अनुकरण हो रहा था, वह ऐसी थी जो यूरोप में ही शंका की दृष्टि से देखी जाने लगी थी। भारतीय आंदोलन का उद्देश्य यह था कि इस देश के शिल्पी अपने ही अतीत से प्रेरणा प्राप्त करें और अपनी शक्ति को पश्चिम की नकल में व्यर्थ न गंवावें। किंचित् आश्चर्य की बात है कि यह स्फूर्ति बंगाली चित्रकारों को एक अंग्रेज द्वारा प्राप्त हुई। यह सज्जन थे स्वर्गीय ई० बी० हैवेल, जिन का नाम हमारी चित्रकला के इतिहास में अमिट रहेगा। हमें ज्ञात है कि इस आंदोलन को आरंभ के दिनों में, विशेष कर बंगाल में ही बड़े विरोध का सामना करना पड़ा था। इस का उपहास भी हुआ, परंतु अब विरोध और उपहास प्रायः दोनों ही शांत हो चुके हैं, और अब हम जब पिछली सदी की अंतिम दशाब्दी में प्रचलित कला-संबंधी विचारों पर ध्यान देते हैं और उन का मिलान आज के विचारों से करते हैं तो हमें आश्चर्यजनक परिवर्तन मालूम पड़ता है। यह बात बहुधा बताई जाती है कि बंगाल के कला-संबंधी आंदोलन का बड़ी योग्यता के साथ नेतृत्व श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर और उन के बड़े भाई श्री गगनेंद्रनाथ ठाकुर ने किया। मेरी ऐसी धारणा है कि ठाकुर बंधुओं को इस कार्य में अपने प्राथमिक शिष्यों से जो सहायता प्राप्त हुई है उस पर कम जोर दिया गया है। श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर एक योग्य गुरु थे और एक योग्य गुरु की भांति ही उन्हों ने अपने शिष्यों को अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुरूप भाव-प्रदर्शन के कार्य में प्रोत्साहित किया। परिणाम यह हुआ कि बंगाल की कला-संबंधी जागृति में इन प्राथमिक शिष्यों का भी पूरा-पूरा हाथ रहा है। इन में से दो के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। एक तो श्री नंदलाल बोस का, जिन की प्रतिभा बहुमुखी रही है और दूसरे श्री असितकुमार हल्दार का जिन्हों

ने अपने सुकुमार चित्रांकण द्वारा अपने लिए कला-जगत में एक विशेष स्थान बना लिया है।

असितकुमार का जन्म कलकत्ता मे १० सितंबर १८९० में हुआ था। यह बंगाल के चौबीस-परगने के जगद्दल नामक स्थान के प्रसिद्ध हल्दारवंश में उत्पन्न हुए हैं। इन के पिता, श्री सुकुमार हल्दार ने 'ए मिड-विक्टोरियन हिंदू' नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिस मे कलाकार के पितामह श्री राखालदास हल्दार के जीवन पर अच्छा प्रकाश मिलता है। श्री राखालदास हल्दार एक स्वतंत्र आचार-विचार के सुधारवादी हिंदू थे, जो ब्रह्म-समाज के कार्यों में बहुत उत्साह प्रदर्शित करते थे और जिन्हो ने एक बार अपने यज्ञोपवीत का भी त्याग कर दिया था। यह इंग्लिस्तान की हवा खाए हुए थे और अपना जीवन सरकारी नौकरी मे बिताते हुए भी साहित्य से बहुत प्रेम रखते थे। वह कला-प्रेमी भी थे। परंतु कला के संबंध मे उन का मत था कि कला को प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए। पूर्वीय कला की कृतियो में पाए जाने वाले शरीर-विन्यास से वह असंतुष्ट रहते और पूर्वीय चित्रो मे प्राप्त अलंकार के प्राधान्य के विरोधी थे। मूर्तिकला के विषय में वह यूनान और रोम के आदर्शों के भक्त थे। इस प्रकार के विचार प्रायः आज से दो-तीन पीढी पूर्व के अंग्रेजी शिक्षित हिंदुस्तानियो मे साधारण थे। यह बात किंचित् कौतूहल-जनक है कि असितकुमार ने अपने पितामह के कला-संबंधी विचारो का अपनी आलोचनाओ और रचनाओ द्वारा बराबर प्रतिवाद किया है। कलाकार के पिता श्री सुकुमार हल्दार बिहार के एक अवकाश-प्राप्त सरकारी कर्मचारी है जो अब रॉची मे बस गए है। अपने पुत्र की कलाभिरुचि को देख कर उन्हो ने असितकुमार को सन् १९०५ मे कलकत्ता के स्कूल आव् आर्ट्स मे भरती कराया। अवनींद्रनाथ इस समय अपना कार्य आरंभ कर चुके थे और सन् १९०५ से १९११ तक इस स्कूल मे रह कर असितकुमार ने न केवल अपने समय का छात्र-रूप मे सदुपयोग किया वरन् उस कार्य में अपने गुरु के सहायक हुए जिस ने कि एक प्रकार से हमारे देश मे कलाभिरुचि मे क्रांति उत्पन्न कर दी। असितकुमार के सहपाठियो मे इस काल मे श्री नंदलाल बोस, श्री समरेंद्रनाथ गुप्त, श्री क्षितींद्रनाथ मजूमदार, श्री शैलेंद्रनाथ दे और श्री वेंकटप्पा थे। इन सभी ने अपनी-अपनी कला के कारण देश मे प्रतिष्ठा पाई है। असितकुमार को मूर्तिकला सीखने का भी शौक़ था और मूर्तिकला मे उन्हों ने शिक्षा श्री लेओनार्ड जेनिंग्स से ग्रहण की जो कि उस समय भारतीय के शिल्पी थे

जैसा कहा जा चुका है अवनीद्रनाथ आदि बगाली शिल्पियो का आदर्श भारतीय कला का पुनरुद्धार करना था। लार्ड जेटलैंड (जो पहले लार्ड रोनाल्डशे तथा बगाल के गवर्नर थे) ने लिखा है कि "इन के अस्तित्व के अचेतन तथा गहरे स्तरो मे प्राचीन भारतीय कलाकारो की प्रवृत्तियां तथा भावनाए प्रकट होने के लिए जोर लगा रही थी।" फिर भी, यह किंचित् आश्चर्य की बात है कि—जैसा इन शिल्पियों ने स्वयं लार्ड जेटलैंड से स्वीकार किया—यह लोग भारतीय कला की परपरा और शिल्पशास्त्र मे अंकित नियमादि से अनभिज्ञ थे। परतु एक बार अपने कार्य मे सलग्न हो जाने के अनंतर इन्हो ने न केवल संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन और मनन द्वारा प्राचीन चित्रकारो की शिल्प-परंपरा का ज्ञान सीखा वरन् प्राचीन चित्रकारों की कृतियो से भी यथा-सभव साक्षात् प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी निमित्त डाक्टर अवनीद्रनाथ ठाकुर ने प्रथम अवसर से लाभ उठा कर १९०९–१० में अपने शिष्यो को लेडी हेरिंघम की प्रसिद्ध यात्रा मे अजंता के भित्तिचित्रो के अध्ययन के लिए और तत्सबंधी शिल्पज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा। इन शिष्यो मे प्रमुख श्री नंदलाल बोस तथा श्री असितकुमार हल्दार थे। यहा पर असितकुमार हल्दार ने सर्वप्रथम उन विशाल भित्तिचित्रों का निरीक्षण किया जिन्हें समय तथा मनुष्य के आक्रमणों ने अब भी संपूर्णतया नष्ट नहीं किया था। असितकुमार का अपना कार्य केवल दो चित्रों की नकल उतारने तक सीमित रहा। यह नकले आज लदन के साउथ केंजिग्टन म्यूजियम के भारतीय विभाग में सुरक्षित है। हल्दार ने अपने चित्रो में अजता का अनुकरण करने का विशेष प्रयत्न नही किया है, परंतु अजंता ने उन पर जो प्रभाव डाला वह गहरा था और उन्हें प्राचीन भित्तिचित्रो की शैली के अध्ययन का जो अवसर प्राप्त हुआ वह मूल्यवान् था। तब से इस ज्ञान को विस्तार देने के और भी अवसर उन्हे मिले है। सर जान मार्शल ने भारतीय सरकार के पुरातत्व-विभाग की ओर से उन्हें मध्य-भारत की सिरगुजा रियासत में स्थित जोगीमारा गुफाओ के चित्रो की नकल करने का कार्य सौंपा। और १९०७ तथा १९२१ में ग्वालियर दरबार के आदेश से उन्हों ने बाग की गुफाओं से भित्तिचित्रो की नकले तैयार की। भित्तचित्रों के सबध के अपने ज्ञान को और भी पूर्ण करने का असितकुमार हल्दार को तब अवसर मिला जब उन्हो ने जयपूर मे रह कर वहा की आधुनिक चित्रशैली से परिचय प्राप्त किया। उन्हो ने भित्तिचित्रो की इटालियन शैली का भी ज्ञान प्राप्त किया है और आज भारतीय चित्रकारो मे बहुत कम ऐसे मिलेंगे

जिन का इस विषय का ज्ञान हल्दार जैसा हो।

शिक्षक के रूप में श्री हल्दार को विस्तृत अनुभव प्राप्त है। सन् १९१८ मे इन्हो ने कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्ट्स मे एक शिक्षक का पद पाया। परन्तु वहा पर यह थोडे ही काल तक रहे, क्योकि १९१९ मे यह श्री रवीद्रनाथ ठाकुर की अतर्जातीय सस्था शातिनिकेतन मे कलाभवन के प्रिंसिपल नियुक्त हो गए। यहा पर अपने युग के एक महान् व्यक्ति से निकट संपर्क मे रहते हुए असितकुमार ने न केवल बहुत कुछ रचनात्मक कार्य किया वरन् अपने उत्साह और सलग्नता द्वारा इन्हो ने कई ऐसे शिष्य तैयार किए जो कि इस समय भी भारतीय चित्रकारो के बीच आदरणीय स्थान रखते है। कलकत्ता गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्टस् के प्रिंसिपल श्री मुकुलचद्र दे और वहा के हेडमास्टर श्री रामेद्रनाथ चक्रवर्ती दोनो ही हल्दार के शिष्य रह चुके है। इन के अतिरिक्त श्री धीरेद्रकुमार देव वर्मन जिन्हो ने लदन के इडिया हाउस मे चित्रण किया, श्रीमती प्रतिमा ठाकुर, श्रीमती सविता ठाकुर, बबई की श्रीमती हथीसिंघ (जो अपनी नृत्यकला के लिए भी विख्यात है) आदि के भी हल्दार गुरु रहे है। सन् १९२३ मे हल्दार ने यूरोप की यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य प्रसिद्ध यूरोपीय चित्रकारो की कृतियो से परिचय प्राप्त करना था तथा यूरोपीय शिल्पज्ञान की सूक्ष्मताओ का अनुशीलन करना भी था। वहा से लौटने पर सन् १९२४ मे वह जयपुर के प्रसिद्ध महाराजाज स्कूल आव् आर्टस् के प्रिंसिपल नियुक्त हो गए और इस पद पर बडी योग्यता के साथ काम किया। सन् १९२५ में यह लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आव् आर्टस् ऐड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल हो गए। तब से वह इसी पद पर काम कर रहे है। इन के लखनऊ के शिष्यो मे विशेष प्रसिद्ध श्री ए० डी० टामस है जिन्हो ने ईसाई धार्मिक विषयो पर चित्रण द्वारा अच्छा नाम पाया है और जिन्हो ने दिल्ली मे वाइसराय के गिरजा-घर मे चित्रकारी की है। इन के अतिरिक्त सर्वश्री श्रीराम व्यास, राधेश्याम तथा पी० एन्० जिज्जा है जो सभी होनहार चित्रकार है।

लखनऊ स्कूल की चित्रकला शैली की दृष्टि से बगाली शैली की एक प्रशाखा मात्र है। यहां के चित्रकारो ने, जैसा स्वाभाविक था, विशेष कर हल्दार से ही प्रेरणा प्राप्त की है। साहित्य मे जो अतर महाकाव्य और गीति-काव्य में है वही चित्रकला के क्षेत्र मे नदलाल बोस और हल्दार की कृतियो मे समझना चाहिए। मिस्टर जेम्स कजिन्स ने ठीक ही लिखा है कि श्री हल्दार बगाल शैली के चित्रकारो म 'रगो के कवि है उन के चित्रो

मे हम उन के काव्यमय चिंतन के साथ ही रहस्यवाद का पुट भी पाते है। रेखाओं द्वारा उन मे मृदुल कल्पनाओं को साकार करने की क्षमता है। आधुनिक भारतीय चित्रकारो मे बहुत कम ऐसे होगे जिन्हे रेखाओ के अकन मे वह पटुता प्राप्त है जो कि हल्दार को है। मै श्री अब्दुल रहमान चुगताई की भावपूर्ण तथा कोमल रेखाकृतियो को भूल नहीं रहा हू। परन्तु वही प्रभाव जो कि चुगताई महोदय अनेक सूक्ष्म रेखाओ को खीच कर उत्पन्न करते है, हल्दार रेखाओ के मितव्यय द्वारा ही उत्पन्न कर लेते हैं। फिर निश्चय ही इन के चित्रो मे सजीवता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

सन् १९२२ मे श्री जेम्स कजिन्स तथा अर्द्धेंदुकुमार गागुली ने हल्दार की कला पर एक पुस्तक प्रकाशित की थी जो कि कलकत्ता के 'रूपम्' कार्यालय मे निकली थी। इस पुस्तक मे हल्दार की उस समय तक की कृतियो का अच्छा मनन किया गया है और पुस्तक मे हल्दार के प्रसिद्ध चित्रो का भी समावेश किया गया है। इन चित्रो की सहायता से हम कलाकार के विस्तृत वस्तुचयन का अनुमान कर सकते है। हमारे इतिहास, पुराण तथा काव्य-ग्रथो के कथानको को ही रेखाओ और रगो द्वारा साकार नही किया गया है, वरन् शिल्पी ने अपनी कवि-कल्पना द्वारा अनेक चित्रो का सृजन भी किया है। चित्रकार की कृतिया अधिकाश भावो के चित्रण मे विशेषता रखती है। उन में रहस्यवाद का पुट रहता है यह कहना अनुचित न होगा। फिर भी विषयो की प्रचुर विभिन्नता है। कुछ ऐसे चित्र हैं जो हमारी प्राचीन कथाओ की स्मृतिया जागृत करते है। 'रामायण' से 'अशोकवन मे सीता' और 'राम-गुहक मिलन' के विषय लिए गए है। इन मे से पहले चित्र ने तो भगिनी निवेदिता पर बडा प्रभाव डाला था। रगो की अद्भुत योजना है। दूसरा चित्र बहुत विस्तृत चित्रपट पर तैयार किया गया है और भित्तिचित्र का आभास देता है। मूर्तियो के आकार-प्रकार और व्यवधान अजता के चित्रों की सुधि दिलाते हैं। कृष्ण की कथा से लिए गए दो सुदर विषय चित्रित हुए है। 'यशोदा और बालकृष्ण' कलाकार की आरभिक रचना होते हुए भी बडी मार्मिक है। यह चित्र प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ डाक्टर आनदकुमार स्वामी के सग्रह मे है। दूसरा चित्र 'रासलीला' शीर्षक है। अत्यत मनोमोहक है। डाक्टर कजिन्स ने इस की मुक्तकंठ से प्रशसा की है। वह लिखते है कि "इस चित्र की प्रत्येक आकृति की प्रत्येक रेखा मे गूढ आनंद का भाव है—एक सहज, पवित्र उल्लास है, जो सत्य और सौंदय के नियमो से पोषित है हल्दार ने अपने 'सयालिया' नामक काव्य

सग्रह मे एक जगह लिखा है, "तुम्हारे नृत्य की भगिमा मे ताल और लय साकार हो गए है, और सारी सृष्टि जीवन से प्रकपित हो कर सगीत में प्रस्फुटित हो गई है।" कुछ ऐसे ही भाव इस चित्र के देखने वाले के मन मे भी उठते है। 'मूल्यवान् भेट' शीर्षक चित्र मे बुद्ध-देव के जीवन से लिया गया एक आख्यान है। एक भिखारिनी अपना एक मात्र परिधान भगवान् को भेट कर के झाडियो की ओट मे अपनी नग्नता छिपाती है। 'अज्ञात यात्रापथ' मे नवीन विवाहित जीवन की कल्पना की गई है। युगल एक नाव मे एक दूसरे मे मिल कर बैठे दिखाए गए है। पुरुष अपनी वशी बजा रहा है और उस की सगिनी उस वशी की स्वर-लहरी पर मुग्ध है। नौका अज्ञात दिशा की ओर बह रही है। 'वर्षा का दिन' हृदय मे करुणापूर्ण वेदना उपजाने वाला चित्र है। एक गृह-विहीन, जर्जर वस्त्र धारण किए हुए, असहाय स्त्री, मूसलाधार वर्षा मे भीग रही है। अपने नन्हे बालक को छाती से लगाए हुए है, और इस प्रकार उसे ठंड से बचाती हुई स्वय भी सात्वना प्राप्त कर रही है। 'जल-प्रपात' और 'रहस्यमयी प्रकृति' शीर्षक चित्रो द्वारा कलाकार ने यह बोध उत्पन्न कराने का प्रयत्न किया है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच एक मौन सहानुभूति रहती है। 'तूफान की देवी' चित्राकण की दृष्टि से बड़ी प्रभावशाली कृति है। एक श्यामवर्ण तरुणी बडी तेजी से नौका चला रही है। उस के काले लबे घने केश हवा मे उड़ते हुए काले बादलो का आभास देते है। चित्र की रग-व्यवस्था भी वर्षा के आगमन की सूचक है। इन चित्रो के अतिरिक्त इस सग्रह मे कई सुदर पेसिल से बने रेखाचित्र भी है। इस चित्रसमूह को देख कर विचार उठना स्वाभाविक है कि कलाकार ने भावों के चित्रण पर विशेष ध्यान दिया है। और इस मे उसे सफलता भी प्राप्त हुई है।

हल्दार ने अपनी विशेष प्रतिभा के अनुकूल अपना चित्रण-कार्य जारी रक्खा है। साथ ही शिल्पज्ञान की दृष्टि से और वस्तु-योजना की दृष्टि से भी उन्हो ने नए-नए क्षेत्रो मे भी प्रयास किया है। इसी प्रसंग में हम उन के उन चित्रो के नाम ले सकते है जो उन्हो ने ईरान के प्रसिद्ध सूफी कवि उमर खय्याम की रुबाइयो के भावो के चित्रण मे बनाए है। हल्दार ने ईरानी चित्रकारों की शैली का गूढ अध्ययन और अभ्यास करने के अनतर उमर खय्याम के अनेक पद्यो को चित्रित किया है। यह चित्र मदरास के श्री रामस्वामी मुदा-लियर के चित्र-सग्रह को सुशोभित करते है। यह सुदर ढंग से इडियन प्रेस, इलाहा-बाद द्वारा प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस सग्रह की भूमिका म प्रसिद्ध कलाविद् स्वर्गीय

ई० बी० हैवेल महोदय ने लिखा है कि "इन रुबाइयों पर अनेक बार चित्र बनाए गए हैं—हिंदुस्तान में और यूरोप में भी। परंतु किन्हीं चित्रों ने कविता के मृदुल भावों को इतने सहज और स्पष्ट ढंग से नहीं ग्रहण किया है। शिल्प-शैली के विषय में मुगल दरबार के चित्रकारों की श्रेष्ठतम परंपरा का अनुसरण करते हुए भी इन चित्रों में श्रीयुत हल्दार ने प्रत्येक विषय पर अपनी रचनात्मक कल्पना और सौंदर्य की अनुभूति द्वारा अपनी विशेष छाप लगा दी है।"

हल्दार ने इधर हाल में कुछ ऐसे चित्र बनाए हैं जो शैली की दृष्टि से बिल्कुल नए हैं। ये चित्र आन्वीक्षिक तथा लाक्षणिक हैं। इन चित्रों की एक विशेषता यह है कि इन में चित्रकार ने किसी विशेष विषय के चित्रण का प्रयास नहीं किया है। यह चित्र डिजाइन या विन्यास मात्र प्रतीत होते हैं। फिर भी इन में रेखाओं की सजीवता, रंग भरने का सौष्ठव प्रत्यक्ष है। इन का नामकरण चित्रकार ने नहीं किया है। यह दर्शक अपनी चाह के अनुकूल कर सकते हैं।

हल्दार के नए चित्रों का एक और वर्ग भी उल्लेखनीय है। चित्रकार ने इस बात की कल्पना की है कि एक मछली, एक मंडूक, एक मधुमक्खी, एक पक्षी और एक पशु की दृष्टि से इस संसार की रूपरेखा कैसी जान पड़ती है, और इस कल्पना के आधार पर इन प्रत्येक जीवों का दृष्टिकोण लेते हुए एक-एक चित्र अंकित किया है। इन चित्रों में भी विषय-चित्रण अथवा भाव-प्रदर्शन की अपेक्षा विन्यास पर अधिक ध्यान दिया गया है।

हल्दार निरंतर नई-नई रचना-प्रणाली का आश्रय लेते रहे हैं। बंगाल के चित्रकारों में वह इने-गिने लोगों में हैं जिन्हों ने सब से पहले छोटे चित्रपटों तक अपने को सीमित न रख कर बड़े और विस्तृत चित्रपटों के चित्रण की ओर ध्यान दिया था और इस प्रकार अपने चित्रों में कुछ-कुछ भित्तिचित्रों का प्रभाव ला सके थे। 'राम-गुहक मिलन', जिस की चर्चा हो चुकी है इसी प्रकार का चित्र है और विशेष रूप से उल्लेख्य है। इधर हाल में इन्हों ने लकड़ी की भूमि पर कुछ अत्यंत सुंदर लाक्षाचित्र तैयार किए हैं। यह शैली उन की अपनी है। उन का यह प्रयोग बहुत रुचिकर हुआ है और अब और लोग भी लाक्षाचित्र बनाने लगे हैं, विशेष कर लखनऊ स्कूल आव् आर्टस् के उन के ही शिष्य। रवींद्रनाथ ठाकुर, जो चित्रकार से बहुत वर्षों से परिचित हैं और जिन के आश्रय में चित्रकार काम कर चुके हैं इस शैली से बहुत संतुष्ट हुए ह हल्दार के कुछ लाक्षणिक को देख कर

उन्हों ने लिखा था कि "तुम्हारे लाक्षाचित्र बहुत भले लगते है। अनभ्यस्त नेत्रो को वह किंचित् विभ्रांत करे। उन की रेखाओ मे जो सजीवता और सौष्ठव है उस का अनुभव करने के लिए बोध और जानकारी की आवश्यकता है।" हल्दार के लाक्षाचित्रो मे कदाचित् सब से सफल चित्र 'निर्माता अकबर' का है। इस मे हम अकबर को एक किले के निर्माण का निरीक्षण करते हुए देखते है। एक ओर अकबर और उस के भृत्य के चित्रण में वह सूक्ष्मता दिखाई गई है जो पुराने उस्तादो का स्मरण करा देती है, दूसरी तरफ किले का पत्थर चुनने वाले मजदूरो के चित्रण मे अद्भुत सादगी है। और इन दो विभिन्न बातो का चित्र मे सुदर संतुलन हुआ है। यह चित्रपट बड़ा है और न केवल हिंदुस्तान की कई प्रदर्शिनियो मे वरन् लदन मे भी प्रदर्शित हो चुका है और कलाविदो द्वारा प्रशंसित हो चुका है। हल्दार के बडे लाक्षाचित्रो मे दो अन्य चित्रो का वर्णन भी होना उचित है। एक का शीर्षक तो 'उपहार' है। इस मे एक स्त्री पुष्पो की माला श्रीकृष्ण के सम्मुख भेट करती हुई दिखाई गई। वशी फूँकते हुए स्वर्णिम तेजोमडल वाले श्यामवर्ण बालक कृष्ण का चित्र बड़ा ही रमणीय है। उस मे एक विचित्र स्फूर्ति और आध्यात्मिक भाव का सम्मिश्रण है। और यह प्रभाव कलाकार इतनी थोडी रेखाओ द्वारा प्रस्तुत कर सका है कि उस की प्रतिभा को कोई स्वीकार किए बिना नही रह सकता। 'विश्वमातृका' चित्र मे विश्व की पोषिका जननी विश्वरूपी बालक को अपनी गोद मे लिए दिखाई गई है। जननी की मूर्ति चतुर्भुजी है। अपने इस लाक्षणिक चित्र मे हल्दार ने प्राचीन भारतीय कल्पना का सुदर रीति से समावेश किया है। रजत तेजोमडल वाली इस प्रतिमा मे अद्भुत शांति दिखाई देती है। हल्दार ने कई छोटे लाक्षाचित्र भी बनाए है। इन का एक सुदर वर्ग वह है जिस मे जल-प्रपात, वन, अग्नि और वायु की आत्माओ का चित्रण किया गया है। कलाकार ने इन चित्रो को भी लकडी पर चित्रित किया है और अपनी स्वतत्र रेखाए न खीच कर लकडी मे पाई जाने वाली रेखाओ का अनुगमन करते हुए अत्यंत सुदर चित्र उपस्थित किए है। एक प्रकार से वह प्राकृतिक विन्यास मे सहायक मात्र हुए है।

ऊपर बताए गए यह तथा और भी अनेक चित्र अब इलाहाबाद म्यूनिसिपल अजायबघर मे स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हुए है। यहां पर हल्दार के नाम पर एक कमरा ही अलग कर दिया गया है जिस का उद्घाटन पिछली फरवरी में कलाविद् श्री राय राजेश्वर बली के हाथो से हुआ है इस कमरे में प्रवेश करते हुए हम दाहिने हाथ ऊपर 'राम-गुहक मिलन'

का बड़ा चित्र देखेंगे। यह भित्तिचित्र का प्रभाव डालता है इस का वर्णन हो चुका है। उस के नीचे 'षड् ऋतु' शीर्षक एक बड़ा चित्र है। बड़ी कोमल रेखाओं द्वारा चित्रकार ने कृष्ण को नर्तन करने की मुद्रा में दिखाया है और उन के साथ नृत्य करने वाली छ गोपियां ही छ ऋतुएं हैं। इस के सामने की दीवार पर बृद्ध सम्राट् अशोक के भिक्षुओं को आमलक भेंट करने का विषय केवल रेखाओं द्वारा चित्रित हुआ है। चित्रपट 'राम-गुहक मिलन' के इतना ही बड़ा है। परंतु इस में रंगों का आयोजन नहीं। पश्चिम की दीवार पर 'निर्माता अकबर' का चित्र है, जिस का भी वर्णन हो चुका है। एक दूसरा चित्र इसी की बराबरी में चैतन्य महाप्रभु के जीवन की एक घटना का चित्रण करता है जिस में कि कुछ डाकुओं ने उन पर आक्रमण कर के उन्हें आहत किया था परंतु महाप्रभु के मुख पर इस अवस्था में भी दयाभाव देख कर स्तब्ध रह गए थे। 'विश्वमातृका' और 'उपहार' शीर्षक लाक्षा-चित्र पूर्व की दीवार में लगे हुए हैं। इस हाल में छोटे चित्र भी अनेक हैं जिन में मुख्यतया वह हैं जो कलाकार की 'खेयालिया' शीर्षक कविता संग्रह को चित्रित करते हैं। इस चित्र-संग्रह को इलाहाबाद के रोरिक सेंटर आव् आर्ट ऐंड कल्चर ने प्रकाशित भी किया है। 'खेयालिया'-संबंधी चित्रों के साथ-साथ हमें हल्दार की सुंदर पक्की बँगला लिखावट का परिचय भी मिलता है।

'खेयालिया' की चर्चा इस बात की सुधि दिलाती है कि हल्दार न केवल चित्रकार हैं वरन् स्वयं एक सफल कवि भी हैं। रवीन्द्रनाथ ने इन्हें अपने कवित्वपूर्ण ढंग में लिखा था —"तुम केवल चित्रकार नहीं, कवि भी हो। इसी लिए तो तुम्हारी तूलिका में दो धाराएं प्रस्फुटित होती हैं। और इसी कारण जब एक कवि को चित्रों की आवश्यकता होती है तो वह तुम्हारी अपेक्षा करता है।' हल्दार की कविताएं रवीन्द्रनाथ से प्रेरणा पाती हुई भी मौलिक हैं। उन में माधुर्य है और रहस्यवाद है। चित्र-जगत में हल्दार की विशेष प्रतिभा का अनुमान लगाने में हमें उन की कविताओं से पर्याप्त सहायता मिलती है।

चौदह वर्ष की अवस्था से ही हल्दार बँगला की कविताएं रचते रहे हैं। समय पा कर उन के उद्गार और परिपक्व हुए हैं। 'खेयालिया' में संगृहीत कविताओं के अतिरिक्त भी उन्हों ने कविताएं रची हैं जिन में से कुछ बँगला पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'खेयालिया' के कुछ गीतों का अनुवाद अंग्रेजी में भी प्रकाशित हो चुका है।

हल्दार की साहित्यिक कृतियां कविताओं तक सीमित नहीं हैं वह बँगला पत्र

पत्रिकाओ मे कला-विषयक लेख बहुधा लिखते रहते है। सन् १९०९ में उन्हों ने अजंता की कला पर 'भारती' पत्रिका मे अपना पहला लेख लिखा था। तब से अब तक वह पचासों लेख लिख चुके है और हाल मे एक विस्तृत पुस्तक भी उन्हों ने बँगला मे लिखी है, जिस मे कि पूर्वी और पाश्चात्य कला पर धारावाहिक रूप से समीक्षाए प्रस्तुत की गई है। यह पुस्तक अनेक चित्रो से सुसज्जित होगी और इस के प्रकाशन की योजना कलकत्ता विश्व-विद्यालय कर रहा है। 'भारती' के अतिरिक्त हल्दार ने 'प्रवासी', 'भारतवर्ष', 'उत्तरा', 'परिचारिका', 'रोचना', 'वदा', आदि प्रतिष्ठित बँगला पत्रिकाओ मे लेख छपाए है। अंग्रेजी मे भी उन्हो ने कई निबंध प्रकाशित कराए है जिन में से कुछ विदेशी पत्रो मे भी सम्मान पा चुके है। सन् १९३५ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय की तरफ से यह 'अक्षयचंद्र मुकर्जी' के नाम पर दिए जाने वाले व्याख्यानो के सिलसिले में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित हुए थे और "भारतवर्ष के कला-कौशल" पर उन्हो ने व्याख्यान दिए थे जो कि बाद मे 'कलकत्ता रिव्यू' मे प्रकाशित हुए थे। इसी वर्ष इन के अंग्रेजी निबंधो का एक संग्रह 'आर्ट ऐड ट्रेडीशन' ('कला और परपरा') शीर्षक आगरे से प्रकाशित हुआ है। हल्दार ने बालको के लिए भी कुछ सचित्र पुस्तके तैयार की है जिन मे कि संयुक्ताक्षरो का उपयोग नही होने पाया है। यो बालको की रुचि के लिए इन्हो ने बहुत से चित्र बनाए है जिन मे से कुछ इलाहाबाद अजायबघर के संग्रह में सुरक्षित है।

सब से बडी बात यह है कि हल्दार अपने को निरंतर कला का विद्यार्थी मात्र जानते रहे हैं। एक बार उन्हो ने इस लेखक को लिखा था—"मै आजन्म विद्यार्थी रहने में विश्वास रखता हू। यदि मै कला की कुछ भी सेवा करने मे सफल हुआ हूं तो इस का एक मात्र कारण यह है कि मै ने इस मंत्र को ग्रहण किया है। और जब कभी मुझे कुछ नई बात सीखने का अवसर मिला है तो उसे यथाशक्य ग्रहण किया है।"

जिस निष्ठा के साथ हल्दार अपने कला के धंधे को सँभालते है, और कला के महान् उद्देश्य के संबध मे जो उन की धारणा है उस का पता हमे कलाकार के एक लेख से मिल जायगा जो उन्हो ने डाक्टर कजिन्स के पास अपने चित्र 'शिल्पीर मोहभंग' ('शिल्पी का मोहभंग') की व्याख्या करते हुए भेजा था। इस चित्र का विषय यह है कि एक मूर्तिकार एक मूर्ति निर्माण कर रहा है और उस का कार्य प्राय समाप्त हो रहा है। ठीक जब काम समाप्त होने के निकट है तो वह इस बात का अनुभव करता है कि वह सत्य और सौंदर्य

के आदर्श को मूर्तिमान करने के बजाय अपनी ही वासना को साकार कर सका है। अतएव वह क्षुब्ध हो कर तैयार मूर्ति को नष्ट कर देता है। हल्दार ने लिखा था—"कलाकार का उद्देश्य रूप का प्रस्तुत करना मात्र नहीं है। उस का उद्देश्य इस से ऊँचा है, अर्थात् चिर सत्य और सौंदर्य को अपनी रचनाओं के माध्यम द्वारा प्रकट करना। यदि उस की रचना सत्य और सौंदर्य के आदर्श को स्पष्ट करने में सफल नहीं होती तो वह उस के लिए असह्य हो जाती है। वास्तविक और आदर्श उस के मस्तिष्क में अभिन्न है। जब यह भिन्नता धारण करले है तो उस के लिए कोई आनंद नहीं रह जाता। जब कि महादेव अपनी सृष्टि में सत्य के साथ असत्य का मिश्रण देखते है तो असत्य के विनाश के लिए रुद्र रूप धारण कर लेते है।"

कला के प्रति ऐसी उच्च भावना रखते हुए हल्दार महोदय अपने रचनात्मक कार्य मे अधिकाधिक सफल होंगे यह आशा रखना व्यर्थ न होगा।
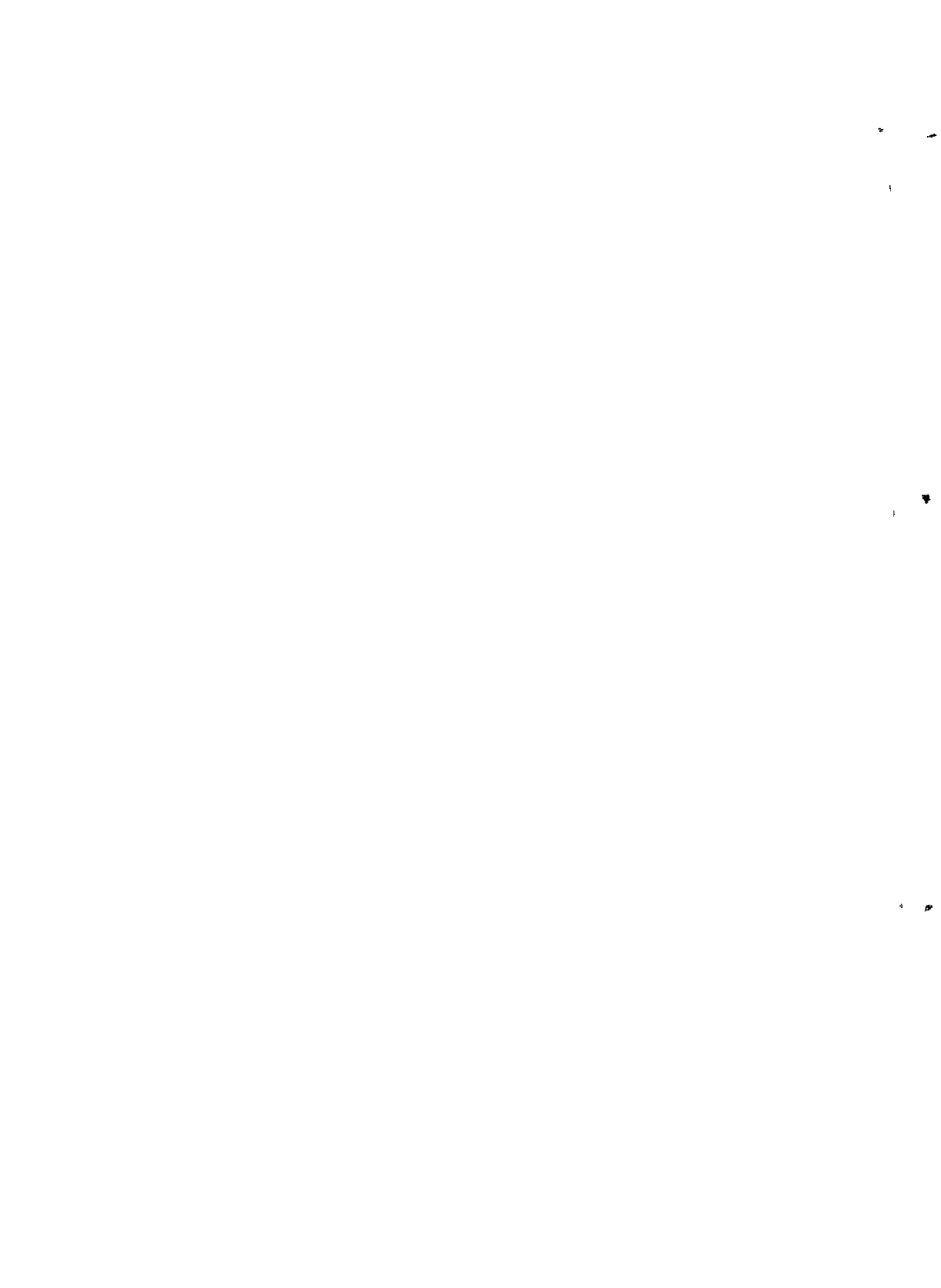
स्फुट प्रसंग

१—एक ऐतिहासिक भ्रम-संशोधन

भारतीय इतिहास के मुसलमान-काल के इतिहास का मुख्य साधन फ़ारसी में लिखी गई तवारीख़े है। अंग्रेज़ी मे प्राय इन सब के सुसंपादित अच्छे अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके है, पर राष्ट्रभाषा हिंदी मे इन के अनुवाद का अभाव बना हुआ है। इन्ही ग्रथो के आधार पर ७० वर्ष हुए आठ जिल्दो मे एक बडा ग्रथ अंग्रेजी भाषा मे प्रकाशित हुआ था, जिस का नाम 'दि हिस्टरी आव् इंडिया एज टोल्ड बाई इटस् ओन हिस्टोरियन्स' है। इस मे मुसल्मानो के भारत मे आगमन से मुगल-साम्राज्य के अत तक का इतिहास उक्त फारसी तवारीखों से लबे-लंबे उद्धरण ले कर पूरा किया गया है। इस की उपादेयता इतनी है कि आज भी मुसल्मान काल के इतिहास-प्रेमी के लिए इस का पठन आवश्यक है और साथ ही यह अत्यत मान्य ग्रथ भी है। ऐसे ही ग्रथ की एक ऐतिहासिक भूल हाल मे छपे हुए वैसे ही वृहत्काय, उपादेय तथा मान्य ग्रथ 'दि केम्ब्रिज हिस्टरी आव् इडिया' मे ज्यों की त्यो मौजूद है। इस मे यह तात्पर्य न समझ लिया जाय कि इस ग्रंथ में यही एक भूल है या इस से इस ग्रथ की महत्ता मे कुछ कमी होती है। अस्तु, यह देख कर कि यह अशुद्धि इतनी प्राचीन हो जाने पर भी प्रचलित है, यह संशोधन लिखना मुझे उचित ज्ञात हुआ। यह अशुद्धि फारसी लिपि को शुद्ध न पढ़ने के कारण ही हुई थी। अब सक्षेप मे ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कर के शका-समाधान का प्रयत्न किया जायगा।

जौनपुर की शर्क़ी सल्तनत की स्थापना सन् १३९४ ई० मे हुई थी और सन १४७६ ई० के लगभग दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने अतिम शर्की सुल्तान हुसैनशाह को परास्त कर उस पर अधिकार कर लिया था। इस ने अपने बडे पुत्र बर्बकशाह को वहा का प्रान्ताध्यक्ष नियत किया। सन् १४८९ ई० मे बहलोल लोदी की मृत्यु पर उस का द्वितीय

पुत्र सिकदर लोदी दिल्ली के तख्त पर बैठा, और उस ने अपने बडे भाई बर्बकशाह पर चढाई की। उसे परास्त कर अपनी ओर से उसे पुन वहा का प्रांताध्यक्ष नियत कर दिया, परन्तु वह उस प्रात के उपद्रवियो को शात न रख सका। इस कारण सिकंदर लोदी ने उसे कैद कर लिया और दो बार विद्रोहियों को दमन करने के लिए जौनपुर पर चढाई की थी। "जौनपुर से समाचार आया कि उक्त प्रांत के जमीदारो ने बछगोनियों से मिल कर एक लाख पैदल तथा सवार सेना एकत्र कर ली और जौनपुर के सूबेदार मुबारक खा से शासन छीन कर उस के भाई शेर ख़ां को मार डाला है। मुबारक खां झूँसी घाट से गगा पार करने पर मुल्ला खा के हाथ पड गया, जिस पर पन्ना के राजा रायभिद ने उसे पकड लिया और कैद कर ले गया। .. सुल्तान सिकदर उस ओर चला . रायभिद ने सुलतान की अप्रसन्नता के भय से मुबारक खा को विदा कर दिया। . पर वह कतित की ओर बढा, जो पन्ना के अतर्गत है। यहा का राजा रायभिद मिलने के लिए बाहर आया और उस ने अधीनता स्वीकार कर ली, जिस पर सुल्तान ने उसे कतित मे बहाल रक्खा और अरैल तथा बयाक की ओर चला। इसी समय रायभिद अपने शकापूर्ण स्वभाव के कारण पडाव तथा अपना कुल सामान आदि छोड कर भाग गया। . . वर्षा व्यतीत होने पर सन् ९०० हि० में सुल्तान पन्ना की ओर राजा भिद को दड के देने के लिए चला पर रेवान घाटी पहुँचने पर इस का सामना उस के पुत्र वीरसिह देव से हो गया, जो लडने को उद्यत हो गया। परास्त होने पर पन्ना की ओर भागा, जिस का पीछा इस्लाम की सेना ने किया। मु तान के पन्ना पहुँचने पर राजा भिद सरगुजा की ओर भागा पर रास्ते मे मर गया। तब सुल्तान सिकदर पन्ना के अतर्गत फफूँद पहुँचा पर .... . कमी के कारण उसे जौनपुर लौट आना पडा। इस के सिवा इस के प्राय' सब घोडे मर गए . । राजा भिद के एक पुत्र लक्ष्मीचद तथा अन्य ज़मीदारो ने सुल्तान हुसैन को लिखा कि सिकदर के पास एक भी घोडा नही है, सब नष्ट हो गए है। इस पर हुसैन ने भारी सेना तथा सौ हाथी के साथ बिहार से सिकदर को परास्त करने को कूच किया। सिकदर कंतिल उतार से गगा पार कर पहले चुनार और तब बनारस गया। यहा से उस ने खानखाना को राजा भिद के पुत्र शालवाहन के पास भेजा कि उसे समझा कर अपने साथ लावे।. . . . सुल्तान सिकदर न भी की सहायता से जो ठीक अवसर पर आ गया था युद्ध आरम

कर दिया।"[1]

इस के अनतर सिकदर ने हुसैनशाह को परास्त कर बिहार पर अधिकार कर लिया और बगाल के सुल्तान से संधि हो गई। तब "सिकदर ने भट्टा के राजा पर भारी सेना भेजी और आप भी पीछे-पीछे चला। इस के पहले सुल्तान ने राजा की पुत्री माँगी थी पर उस ने अस्वीकार कर दिया था, जिस पुरानी घटना का बदला लेने के लिए अब उस के राज्य पर चढाई की गई और कुल खेती का निशान तक नष्ट कर दिया गया। इस के बडे-बडे वीरो ने बाँधू दुर्ग पर साहस दिखलाया, जो उस प्रात का दृढतम दुर्ग है।"[2]

'केम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया' मे, भाग ३, पृ० २७३–४ पर यही घटना ठीक इसी प्रकार दुहराई गई है पर इस मे कुछ नाम कुछ हेर-फेर के साथ आए है, जैसे इस ग्रंथ के फाफामऊ के राजा भील फारसी तवारीखो के भट्टा या पन्ना के राजा रायभिद है। अब प्रश्न यह उठता है कि सिकदर शाह से युद्ध करने वाला तथा उसे सहायता देने वाला यह राजा कौन है, और कहा का राजा है? यह अब तक हल नही हो सका है। इस मे भ्रमोत्पादक मुख्य शब्द भट्टा है, जिस के विषय मे कई पाश्चात्य विद्वानो ने बुद्धि लडाई है पर अत मे वे कहते है कि "ठीक पढने के लिए यह अत्यत कठिन नाम है और किसी भी मूल-लेखक ने इसे शुद्ध रूप मे नही दिया है। पाठांतर पटना, पन्ना और ठट्टा मिलते है। जेनरल ब्रिग्ज (जि० १, पृ० ५७३) ने पन्ना का राजा शालिवाहन लिखा है, और डा० डार्न ने पृ० ५९ पर शालिबाहन और पन्ना दिया है। इस प्रात का नाम वास्तव मे भट्टा या भटघोड़ा या केवल घोडा है, जैसा कि 'आइन-अकबरी' मे परगनो के बिना ठीक विवरण के दिया हुआ है। यहा बाँधू दुर्ग के उल्लेख मे, जो अब बदरीगढ़ के नाम से अधिक ज्ञात है, कुछ भी सशय नही रह जाता कि किस प्रात मे मतलब है, पर अन्य उद्धरणो में, जैसा दूसरे स्थानो पर लिखा गया है, प्रायः इसी कठिनाई मे हम लोग पडे है।"[3]

इलिअट की हिस्ट्री के भाग ४, पृ० ४७८ पर लिखा है कि "जब शेरशाह ने कालिंजर मे प्राण खोया तब उस का सब से छोटा पुत्र रेवान बस्ती मे था, जो भट्टा प्रात में है।"

यही से बुलाए जाने पर यह इस्लाम शाह के नाम से दिल्ली का सुल्तान हुआ था। इस से इतना ज्ञात हो जाता है कि भट्टा मे रेवान बस्ती है और वह कालिंजर के पास है। उर्दू मे भट्टा इस प्रकार लिखा जाता है بهٹہ जिसे केवल इसी रूप मे अनेक प्रकार से पढ़ सकते है। यदि इस पर बिंदी बदलते चले तो दस-बीस प्रकार से और भी पढ़ सकते है। यदि बिंदी, हे का चिह्न, और टे का 'तो' चिह्न न हो तो पत्ता, पट्टा आदि भी पढ लीजिए। फारसी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो को उठा देखिए, जेर, जबर, पेश देना दूर, बिंदी तक पूरी सही रहती। 'गाफ' के दो मरकज भी न रहेगे केवल काफ का एक ही दिया रहेगा, आप उसे 'क' पढे या 'ग' पढे, लेखक की बला से। ऐसी हालत मे भ्रम हो जाना आश्चर्य नही है।

बॉधू या बाधव (باندهو) तथा रीवा या रेवान (ريوان) उर्दू मे एक-सा, नुकता आदि सहित लिखा जायगा। बाधवगढ तथा रीवा और इन के सिवा अन्य स्थान सरगुजा तथा फफूंद भी उसी प्रात मे है, जो बघेलखड कहलाता है और यही प्राचीन भट्टा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि झूसी तक यमुना और उस के बाद गगा के दक्षिण नर्मदा नदी तक और चबल नदी के पूर्व उडीसा तक जो पार्वत्य प्रांत है उस का पश्चिमी भाग बुदेलखड तथा पूर्वीय भाग बघेलखड कहलाता था और है। बघेलखड को भीटा या भट्टा प्राचीन काल से कहते आए है। ऊपर लिखा गया है कि मुबारक खा को झूसी के पास गगा पार करने पर राजा भिद ने क़ैद किया था। रायभिद को कतित का राजा कह कर लिखा है क्योकि यह भट्टा के अतर्गत है। कतित वास्तव मे बघेलखड के अतर्गत था और है। पहले बघेलखड की राजधानी बाधवगढ़ थी पर अब रीवा है। इस प्रकार यह निश्चय हो गया कि पूर्वोक्त उद्धरणो का भट्टा प्रात वास्तव मे बघेलखड है, जिस के अतर्गत उक्त सभी स्थान स्थित है। यहा तक लिख जाने पर अब यही निश्चित करना रह जाता है कि भट्टा प्रात के राजवश मे इन नामो के राजाओ का ठीक-ठीक पता मिलता है या नही तथा उन से दिल्ली के सुल्तानो से उस समय किस प्रकार का संबध था।

'मआसिरुल् उमरा'[1] नामक प्रसिद्ध फारसी इतिहास-ग्रंथ मे राजा रामचद्र बघेला की जीवनी दी हुई है, जिस से उस के पौत्र के पौत्र अमरसिंह तक का हाल दिया है। इस

---

[1] हिंदी पृ० ३३०–४ नागरी प्रचारिणी सभा काशी)

ग्रथ मे बांधवगढ पर अकबर के सेनापति राय रायान पत्र दास की चढ़ाई तथा उस के उजाड होने पर रीवा के राजधानी होने का भी विवरण है।[1] रामचद्र अकबर का समकालीन था। उक्त रामचद्र के पिता वीरभानु का उल्लेख जौहर आफ्ताबची तथा गुलबदन बेगम ने किया है, जिस ने हुमायू की सहायता की थी।[2] इन के सिवा रायभिद तथा उन के तीन पुत्रो वीरसिंह, शालिवाहन तथा लक्ष्मीचद का उल्लेख हो चुका है, जो सिकंदर लोदी तथा बाबर के समकालीन थे। फारसी की तवारीखो मे दिए हुए उक्त नामो को भट्टा-नरेशो की राज-वशावली से मिलान कर अब देखना चाहिए कि ये नाम उस मे है तो किस क्रम से है।

रीवा-नरेश महाराज रघुराजसिंह बघेला ने अपने ग्रथ 'आनदाबुनिधि' मे अपनी वशावली इस प्रकार दी है—

> सिंहदेव, भैरोदेव, नरहरि, भयददेव
>
> त्यों शालिबाहन, बीरसिंह देव जानिए।
>
> बीरभानु, रामसिंह, बीरभद्र, बिक्रमजू,
>
> अमर, अनूप, भावसिंह को बखानिए॥

'मआसिरुल्उमरा' के भट्टा-नरेशगण रामचद्र (रामसिंह) बघेला, वीरभद्र, विक्रमाजीत, अमरसिंह तथा अनूपसिंह इस मे ठीक क्रम से मिल गए। उक्त ग्रथ मे विक्रमाजीत के भाई दुर्योधन के भी बादशाह की ओर से बलात् गद्दी पर बैठाए जाने तथा दो वर्ष तक राज्य कर के मर जाने का उल्लेख है। वशावली मे रामसिंह के पिता वीरभानु का नाम दिया है और वीरभानु तथा भयद देव के बीच वीरसिंह देव और शालिवाहन का नाम है, जो ऊपर

---

[1] 'हिंदी मआसिरुल् उमरा', पृ० ३८०

[2] बढ़ी बादशाही जैसे सलिल प्रलै को बढ़ै,

> राना राव उमराव सब को निपात भो।
>
> बेगम बिचारी बही कतहुं न थाह लगी
>
> बाँधौगढ़ गाढो गूढ़ ताको पक्षपात भो॥
>
> शेरशाह सलिल प्रलै को बढ्यो 'अबवेस'
>
> बूडत हुमायू के बडोई उत्पात भो

भयद देव के पुत्र बतलाए गए है। ये दोनों क्रमश राजा हुए थे इस लिए दोनो के नाम राजवशावली मे दिए गए है। भयद शब्द उर्दू अक्षरो मे بهيد लिखा जाता है, जिसे सहज ही भेद या भिद पढ सकते है पर 'केम्ब्रिज हिस्ट्री' मे वह किस प्रकार भील हो गया, यह नही कहा जा सकता।

इस प्रकार राजा भयद देव से लेकर अनूपसिंह तक आठ पीढी नामो का मिलान ठीक बैठ जाने पर यह निश्चय हो गया कि लोदी वश की सहायता करने तथा उस वश से लडने वाले भट्टा के नरेश बघेला राजवश ही के थे, जिन की राजधानी पहले बाधवगढ थी तथा बाद को रीवा हुई।

ब्रजरत्न दास

२—बनारस का एक उर्दू-हिंदी लेख

यह लेख विश्वनाथ मदिर के मुख्य द्वार के सामने वाले मकान की दीवार मे खुदा है, और ३ फीट लबे तथा १½ फीट चौड़े पत्थर पर खुदा है, जो बरामदे की बाहरी पश्चिम की दीवार मे लगा हुआ है। इस के अक्षर उभरे हुए है। लेख की लिपि उर्दू तथा हिंदी है। भाषा हिंदुस्तानी है। ऊपर उर्दू तथा नीचे हिंदी अक्षर खुदे है। विषय एक है केवल भिन्न-भिन्न लिपि मे अक्षर खुदे है।

मकान की बनावट से प्रगट होता है कि यह मकान (नौबतखाना) एक मजिला था जो सन् १७८५ मे तैयार किया गया था। कुछ समय के पश्चात् दो मजिले और जोड दी गई। यह आजकल विश्वनाथ जी के पुजारी का निवास-स्थान है।

लेख का ऊपरी भाग कही-कही अक्षरो के टूट जाने से स्पष्ट नही है। हिंदी लेख ज्यो का त्यो सुरक्षित है। उस में केवल एक अक्षर नष्ट हो गया है, जिसे कोष्ट मे दिया गया है। नीचे की पक्ति सस्कृत भाषा में है, परतु अशुद्ध है। यह लेख निम्नलिखित है —

"यह नौबतखाना विश्वेश्वर का नवाब अजीजुल्मुल्क अली इब्राहिम खा सवत् १८४२ मे नवईमादुद्दौला गवरनर जनर(ल) अमीरुल्म मालिक वारन हिटिस जलादत जग के फर्मान से बनाया। निपिरिय[1] राय ब्रजलालस्य"

---

[1] निपिरिय शब्द लिपिरिय का अशुद्ध रूप है

यानी सवन् १८४२ मे गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिग्स की आज्ञा से अली इब्राहीम खा ने विश्वनाथ के नौबतखाना को बनवाया। ब्रजलाल राय ने इस लेख को लिखा था।

इस शिला-लेख के अध्ययन करने से कई प्रकार के प्रश्न उठते है—

(१) अली इब्राहीम कौन था ?

(२) वारेन हेस्टिग्स ने विश्वनाथ के मदिर के समीप नौबतखाना बनाने की क्यो आज्ञा दी ?

(३) क्या दोनो व्यक्तियो मे से किसी को हिंदू धर्म से प्रेम था ? यदि नही, तो यह भवन क्यो बनवाया गया ?

इन समस्त प्रश्नो का उत्तर तत्कालीन परिस्थिति से परिचय प्राप्त करने पर स्वय मिल जाता है। भारतवर्ष मे अंग्रेजी राज्य को सुदृढ बनाने का श्रेय वारेन हेस्टिग्स को दिया जाता है। इस की जानकारी से पूर्व पहले प्रश्न का उत्तर आवश्यक ज्ञात होता है। अतएव अब यह विचारना चाहिए कि तत्कालीन राजनैतिक अवस्था मे अली इब्राहीम का कौन स्थान था। अब्दुल अली ने फारसी पत्रो की जो सूची निकाली है, उस के चौथे भाग के दूसरे पत्र मे इस का नाम उल्लिखित है। उस पत्र से ज्ञात होता है कि अली इब्राहीम वारेन हेस्टिग्स का एक विश्वासपात्र आदमी था तथा उस के सुदर कार्यो से वह मुग्ध हो गया था। "सैरउल मुताख़रीन" नामक पुस्तक मे भी अली इब्राहीम का नाम आया है। उस के वर्णन से ज्ञात होता है कि वह नवाब अलीवर्दी खा के साथ मुर्शिदाबाद गया था और वही पर वह बस गया। मीर कासिम की ओर से उस ने बगाल के नवाब सिराजुद्दौला से सधि की। दोनो ने मिल कर अंग्रेजो का मुकाबला किया। अली इब्राहीम बक्सर की लडाई मे भी सम्मिलित था तथा पराजित होने के पश्चात् भी वह मीर कासिम की तरफ सहयोग देता रहा।

वह अपनी योग्यता से मुसलमानी सल्तनत का दीवान बनाया गया। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिग्स उस को बहुत मानता था। कहा जाता है कि वारेन हेस्टिग्स ने एक मुसलमान-रजा खां नामक व्यक्ति को कैद करा लिया था, परन्तु अली इब्राहीम खा के कहने से वह मुक्त कर दिया गया। वह एक योग्य तथा न्यायपरायण व्यक्ति था। उसे बगाल की फौजदारी का पद दिया गया था, लेकिन उस ने इस पद को स्वीकार न किया, क्योंकि इस कार्य मे मार-पीट के अतिरिक्त कुछ न था अली इब्राहीम एक ऊंचे दर्जे के

सभ्य, सरल व उदार-चित्त व्यक्ति था। इन सब गुणो के अतिरिक्त वह एक अच्छा साहित्यिक भी था। यही सब कारण है कि वह वारेन हेस्टिंग्स का विश्वासपात्र होने तथा उस की आज्ञानुसार हिंदू मदिर के नौबतखाने के निर्माण मे तनिक भी आगा-पीछा न कर सका। मुसलमान होते हुए भी केवल आज्ञा-पालन के भाव को लेकर ही उस ने उस भवन को तैयार कराया।

इस के पश्चात्, जैसा ऊपर कहा गया है, दूसरा प्रश्न यही होगा कि कौन से ऐसे कारण थे जिस से बाधित हो कर वारेन हेस्टिंग्स ने ऐसी आज्ञा दी। इस का कोई विशेष कारण था। वारेन हेस्टिंग्स ने तत्कालीन काशी-नरेश चेतसिह को पराजित किया था। अग्रेजो के दुर्व्यवहार से काशी की जनता क्षुब्ध थी। अपने शासक की ऐसी हालत देख कर वह क्रोधित तथा अग्रेजो के खिलाफ थी। इसी जनता को शात तथा उन के मनोभाव को बदलने के लिए गवर्नर-जनरल ने एक चाल चली, जो अद्यावधि नौबतखाने के रूप मे वर्तमान है। हिंदू जनता, विशेषत काशी-वासी धार्मिक होते है। वारेन हेस्टिंग्स ने उसी जनता के प्रसन्न करने के लिए विश्वनाथ मदिर के नौबतखाने के निर्माण की आज्ञा दी। उस समय काशी बंगाल के शासक द्वारा ही शासित होने जा रहा था, इस लिए गवर्नर-जनरल ने कूटनीति द्वारा अपने विश्वास-पात्र और एक उच्च पदाधिकारी को इस भवन को तैयार कराने का भार सौपा, जिस के द्वारा जनता का धार्मिक भाव जागृत हो जाय और वे अग्रेजो को शत्रुवत् न समझे। यही कारण है कि वारेन हेस्टिंग्स ऐसे अग्रेज ने एक मुसलमान द्वारा नौबतखाने को तैयार करवाया।

वासुदेव उपाध्याय

समालोचना

परमात्मप्रकाश तथा योगसार—संपादक श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, एम्० ए०। प्रकाशक, सेठ मणिलाल रेवाशंकर जौहरी, परमश्रुत-प्रभावक-मंडल, बंबई। १९३७। पृष्ठ-संख्या १२+१२८+३९६। सजिल्द, मूल्य ४॥)

प्रस्तुत जिल्द में श्री योगीदुदेव कृत दो ग्रंथ उपस्थित किए गए हैं—'परमात्म-प्रकाश' और 'योगसार'। जैन-संप्रदायों के मानने वाले सभी भक्त इन ग्रंथों को बड़ी श्रद्धा से पढते हैं। 'परमात्मप्रकाश' के रचयिता भी बड़ी उदार प्रकृति के थे, सांप्रदायिक भेद-भाव की अवहेलना कर उन्हों ने शिव, ब्रह्मा आदि देवों का भी उल्लेख समान भाव में परमात्मा के अर्थ में किया है। फिर उन के यह ग्रंथ क्यों न सर्वमान्य हो?

(क) 'परमात्मप्रकाश' बड़ा ग्रंथ है, 'योगसार' छोटा। दोनों अपभ्रंश में हैं। प्रस्तुत संस्करण में संपादक की ९२ पृष्ठ की सारगर्भित और गवेषणापूर्ण भूमिका है। उस के बाद इस भूमिका का ३२ पृष्ठों में हिंदी में सार। फिर ३५२ पृष्ठों में 'परमात्म-प्रकाश' का मूल पाठ, संस्कृत टीका तथा हिंदी टीका, १० पृष्ठों में पाठभेद और ८ पृष्ठों में दोहानुक्रमणिका आदि। बाकी के २६ पृष्ठों में 'योगसार' पाठभेद और हिंदी अनुवाद समेत है।

श्री आदिनाथ उपाध्याय जैन प्राकृत तथा इतर जैन साहित्य के प्रगाढ पंडित हैं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रवचनसार' का सुंदर और सर्वांगपूर्ण संस्करण निकाल कर उन्हों ने पहले ही विद्वन्मंडली में आदर और सत्कार पाया है। प्रस्तुत ग्रंथ के द्वारा उन्हों ने अपनी कीर्ति को और उज्ज्वल किया है।

'परमात्मप्रकाश' का पाठ स्थिर करने में उन्हों ने दस हस्तलिखित प्रतियों का उप-योग किया। भूमिका में इन प्रतियों के तुलनात्मक महत्व पर प्रकाश डाल कर ग्रंथ का संक्षिप्त सार प्रस्तुत कर आप ने, ग्रंथ की साहित्यिक दृष्टि से महत्ता तथा आत्मिक उन्नति की दृष्टि से उस का उपयोग, ग्रंथ की भाषा और उस की व्याकरण का ढाँचा, ग्रंथकार के

समय, ग्रंथ आदि का परिचय, सस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव, ग्रथ की कन्नड टीका आदि सभी प्रश्नों की विवेचना की है।

'परमात्मप्रकाश' ऐसे महत्वपूर्ण ग्रथ का ऐसा सुसपादित सर्वांगपूर्ण सस्करण निकालने के लिए सपादक विद्वन्मडली के धन्यवाद के पात्र है। भूमिका मे प्रदर्शित यत्र-तत्र सपादक जी के मत से विभिन्नता हो सकती है। (उदाहरणार्थ पृष्ठ ४४ पर स के ह मे परिवर्तित होने पर, अथवा पृष्ठ ६५ पर जोइंदु और कुमार के समय-प्रतिपादन पर) किंतु इस से इस ग्रथ पर जो उन्हो ने परिश्रम किया है उस का मूल्य घटता नही। इतने सुसपादित ग्रथ विरले ही देखने को मिलते है।

(ख) 'योगसार' छोटा ग्रथ है। इस में कुल १०८ दोहे है। प्रत्येक दोहे के नीचे उस की सस्कृत छाया, पाठातर तथा हिंदी अनुवाद दे दिया गया है। पाठांतर मूल पाठ के अनंतर ही दिया जाना अधिक उपयोगी है। इस बात मे 'परमात्मप्रकाश' की अपेक्षा इस मे विशेषता है। सस्कृत छाया कही-कही विचारणीय है, क्योकि वह मूल प्राकृत मे भाषा की दृष्टि से मेल नही खाती। परतु भाव मे इस मे कोई अतर नही पडता। योगसार में आत्मा किस प्रकार परम पद को पा सकती है इस का सक्षेप में व्याख्यान है।

बाबूराम सक्सेना

* * *

महाकवि पुष्पदंत कृत महापुराण, भाग १—सपादक डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य, प्रोफेसर, नौरोसजी वादिया कालेज, पूना। प्रकाशक, मत्री, माणिकचद दिगबर जैन-ग्रथमाला, हीराबाग, गिरगॉव, बंबई। १९३७। पृष्ठ ४२+६७२। सजिल्द, मूल्य १०)

* * *

पुष्पदंत ने अपभ्रंश मे तीन ग्रथ लिखे थे। उन मे से 'जसहरचरिउ' और 'णाय-कुमारचरिउ' क्रमश डा० प० ल० वैद्य और प० हीरालाल जैन द्वारा सपादित पूर्व ही प्रकाशित हो चुके है। इन मे से 'जसहरचरिउ' की आलोचना 'हिंदुस्तानी' के एक पिछले अक मे निकल चुकी है। पुष्पदंत का प्रस्तुत तीसरा ग्रंथ पूर्व-प्रकाशित दो ग्रंथो से आकार और महत्व दोनों दृष्टियो से वृहत्तर है।

'जसहरचरिउ' की ही भाँति विद्वद्वर डा० वैद्य ने प्रस्तुत ग्रंथ का सपादन बडी योग्यता और परिश्रम से किया है पाँच ९ पस्तको के पर मूल पाठ स्थिर

किया गया है। आरभ मे एक सविस्तर भूमिका और अन्त मे अंग्रेजी टिप्पणी तथा कतिपय प्राकृत शब्दो की सूची दे दी गई है। मूल पाठ के साथ ही साथ नीचे प्रतियो के अन्य पाठ तथा संस्कृत टिप्पण से आवश्यक उद्धरण दे कर संस्करण और भी उपयोगी बना दिया गया है।

'महापुराण' एक भारी ग्रथ है। प्रस्तुत भाग मे ग्रथ की १०२ संधियों मे से केवल ३७ आ पाई है। शेष दो भागो मे बाकी ग्रथ समाप्त होगा।

'महापुराण' जैनियो के लिए प्राय वही महत्व रखता है जो वैदिक धर्मावलंबियो के लिए 'महाभारत' और 'रामायण'। इस मे ६३ जैन महापुरुषो के जीवन-चरित संचिहित होते हैं। प्रस्तुत भाग मे केवल प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और प्रथम चक्रवर्ती भरत का वर्णन है।

डा० वैद्य तथा माणिकचद्र दिगबर जैन-ग्रथमाला के सचालक को धन्यवाद है कि उन्हो ने इतने महत्वपूर्ण ग्रथ को प्रकाशित किया और आर्यभाषा तत्वज्ञो और आर्य संस्कृति के रसिको के सामने अपूर्व सामग्री उपस्थित की।

शेष दो भागो की प्रतीक्षा उत्सुकता से की जावेगी।

बाबूराम सक्सेना

* * *

व्रजभाषा-व्याकरण—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा। प्रकाशक, लाला रामनरायन लाल, इलाहाबाद। १९३७। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक मे हिंदी भाषा के प्रगाढ तथा लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् के कई वर्षो के परिश्रम का फल सन्निहित है। दुर्भाग्य मे हिंदी के प्राचीन ग्रथो के सुसपादित संस्करणो का अभी भी अभाव है। परिणाम-स्वरूप इन ग्रथो के आधार पर कोई वैज्ञानिक व्याकरण प्रस्तुत करना कितनी टेढी खीर है यह वही जानते है जिन्हों ने इस ओर कोई कार्य किया है।

इस व्याकरण को तैयार करने में धीरेंद्र जी ने विक्रमी २०वीं शताब्दी के पूर्व के ग्रथो का उपयोग किया है। आरभ मे लेखक ने ४४ पृष्ठ की गवेषणापूर्ण भूमिका दी है, जिस मे 'व्रज' शब्द, व्रजभाषा की अन्य बोलियो मे तुलना, व्रजभाषा की उत्पत्ति और उस के सामान्य लक्षण, उस की अध्ययन सामग्री, उस का शब्दसमूह और उस की लिपि-शैली आदि विषयो पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस के उपरात उन्हो ने वैज्ञानिक रीति से इस भाषा के अगो का [illegible] कर के भेदो और उस के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है

रचना सर्वथा सुंदर और उपादेय है और प्रत्येक पृष्ठ लेखक की विद्वत्ता का परिचायक है। डा० धीरेंद्र वर्मा ने यह पुस्तक उपस्थित कर के हिंदी की बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है।

बाबूराम सक्सेना

*　　　*　　　*

अभिषेक नाटक—मूल संस्कृत ग्रंथकर्ता महाकवि भास। अनुवादक, श्री प्रेमनिधि शास्त्री, 'व्यास'। प्रकाशक, स्वाध्याय-सदन, मोहन लाल रोड, लाहौर। १९३७। प्रथम संस्करण। पृष्ठ ३० |-६२। सजिल्द। मूल्य १२ आने।

कोई पच्चीस वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय पंडित गणपति शास्त्री ने तेरह नाटक खोज निकाले थे और कतिपय लक्षणों के कारण उन्हों ने उन सब को भास महाकवि की कृति बताया था। यह ग्रंथ भास कवि द्वारा रचित है अथवा नहीं इस विषय पर संस्कृत साहित्य की विद्वन्मंडली में ऐसा विवाद उठ खड़ा हुआ जो अभी भी शांत नहीं हुआ है। अनुवादक ने अपनी भूमिका में केवल पंडित गणपति शास्त्री की युक्तियां उपस्थित की हैं और इस विवाद से अनभिज्ञ मालूम पड़ते हैं।

अनुवादक ब्रजभाषा के पुजारी हैं और अपने 'नम्र-निवेदन' में उस की वर्तमान अधोगति पर उन्हों ने आंसू बहाए हैं। पद्य-भाग की रचना ब्रजभाषा में है। अनुवाद साधारण रीति से अच्छा है।

बाबूराम सक्सेना

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक लेखकों के नाम सहित अंकित किए गए हैं।]

अमर कलाकार शरच्चंद्र—श्री भारतभूषण अग्रवाल, सुधा, मई, १९३८

अलेक्ज़ेंडर की भारत में पराजय और दुर्गति—प्रोफेसर हरिश्चंद्र सेठ, एम्० ए०, पी०-एच्० डी०, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, ३

आधुनिक हिंदी कविता—श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, विश्वमित्र, अप्रैल-मई, १९३८

आधुनिक हिंदी कहानी—श्री जीवानंद, विशाल-भारत, अप्रैल, १९३८

इस्लाम का कवि-दार्शनिक इकबाल—मौलवी जियाउद्दीन, विशाल-भारत, जून, १९३८

उड़िया साहित्य का आधुनिक रूप—श्री कालिंदीचरण पाणिग्राही, बी० ए०, विशाल-भारत, मई, १९३८

उत्कलमणि गोपबंधु दास—श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक, विशाल-भारत, मई, १९३८

एक बिंदो पर ६ सहस्र सैनिक बलिदान !—श्री व्रजरत्न दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सुधा, अप्रैल, १९३८

एक लिपि ('देवनागर' से उद्धृत)—उत्थान, मार्च, १९३८

एकांकी नाटक—श्री प्रकाशचंद्र गुप्त, हंस; मई, १९३८

कन्नौज के संकलन—श्री उमेशचंद्र देव, साहित्यरत्न सरस्वती, अप्रैल, १९३८

कविवर कुंचन नमपियार—श्री एम्० वेंकटेश्वर, दक्षिण भारत, फरवरी-मार्च, १९३८

कला और साहित्य—श्री गजानन-त्र्यंबक माडखोल्रकर, वीणा, जून, १९३८

काका साहब का पत्र-व्यवहार—श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शनकेसरी, सुधा; मई, १९३८

कुषाण राजगण—श्री सुदरलाल त्रिपाठी, उत्थान, मार्च, १९३८

कोरेकियो ताकाशाही का विचित्र जीवन—श्री विश्वनाथ सेठी, बी० एस्-सी०, विश्वमित्र; अप्रैल, १९३८

क्या एकाकी (नाटक) का साहित्य में कोई स्थान नही ?—श्री उपेद्रनाथ अश्क; हस; जून, १९३८

गढ़वाली भाषा के 'पखाणा'—श्री शालिग्राम वैष्णव; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८,४

गुप्तवंश—श्री सुदरलाल त्रिपाठी, उत्थान; अप्रैल, १९३८

गोविददास—श्री नरेद्रदास विद्यालकार, साहित्य, भाग २–२

गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी—श्री रामवहोरी शुक्ल, एम्० ए०, साहित्य-रत्न; वीणा; मई, १९३८

चीन को भारत की देन—श्री माहेश्वरी सिह 'महेश', एम्० ए०, विश्वमित्र, अप्रैल, १९३८

जीवन और काव्य-प्रकृति—प्रिसिपल लक्ष्मीनारायण सिह, सुधाशु, एम्० ए०, वीणा, मई, १९३८

डाक्टर अकबाल की काव्य-कला—श्री यदुनदन मिश्र, एम्० ए०, वीणा, अप्रैल, १९३८

तिब्बत में भारतीय कला—श्री मणीद्रमोहन के लेख के आधार पर, विशाल-भारत, जून, १९३८

तुलसीदास और दर्शन—श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०; सम्मेलन-पत्रिका, भाग २५, ७–८

तेलुगु का नाटक साहित्य—श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, दक्षिण भारत, अप्रैल, १९३८

द्वंद्ववृत्ति और फ्रायड—श्री प्राणजीवन पाठक, एम० ए०, विशाल-भारत, मई, १९३८

महाराजाधिराज शशांक—श्री कृष्णकुमार, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

रानी एलिज़बेथ और धार्मिक अत्याचार—माननीय पंडित रविशंकर शुक्ल; उत्थान, मार्च, १९३८

राष्ट्र-भाषा का लाभ—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

राष्ट्र-भाषा का निर्णय—श्री चंद्रबली पांडेय, एम्० ए०, वीणा, अप्रैल, १९३८

राष्ट्रलिपि की समस्या—श्री रामनाथ 'सुमन', जीवन-सुधा, अप्रैल, १९३८

रूप और साधना—श्री हरिहरनाथ हुक्कू, एम्० ए०, कल्याण, मई, १९३८

रोमन बनाम देवनागरी—श्री कमलाकान्त वर्मा, बी० ए०, बी० एल्०, विशाल-भारत; अप्रैल, १९३८

वर्तमान काव्य की विविध धाराएं और उन का भविष्य—श्री वासुदेव सिंह, साहित्यरत्न, माधुरी, मई, १९३८

वर्तमान हिंदी काव्य की विशिष्ट प्रवृत्तियां—श्री रामखेलावन; विशाल-भारत, जून, १९३८

विवेचना की आवश्यकता—श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', सुधा, अप्रैल, १९३८

वैभवशाली हिंदू राष्ट्र—श्री विनायक-दामोदर सावरकर, बैरिस्टर-एट्-ला, सुधा, मई, १९३८

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय—श्री राजनाथ राय, एम्० ए०, सरस्वती, मई, १९३८

श्री रामचरितमानस में उकार तथा अनुस्वार—श्री विजयानंद त्रिपाठी, विशाल-भारत, मई, १९३८

स-ध्रुव मालेक्यूल—श्री जगद्बिहारी सेठ, एम्० ए०, (केंब्रिज) आई० ई० एस्०, सरस्वती, मई, १९३८

सह-शिक्षा की उपयोगिता—प्रिंसिपल कालूलाल श्रीमाली, एम्० ए०, बी० टी०, वीणा; मई, १९३८

साहित्य का राष्ट्र पर प्रभाव—श्री शुकदेव प्रसाद, साहित्य, भाग २—२

साहित्य में सत्य—श्री देवराज उपाध्याय, विशाल-भारत, अप्रैल, १९३८

साहित्य से वर्तमान मांग—श्री रामचंद्र तिवारी हंस जून १९३८

सूरदास की रचना में काव्य-शास्त्र का प्रस्फुटन—श्री बलभद्र प्रसाद मिश्र, एम्० ए०; सम्मेलन-पत्रिका; भाग २५, ७—८

स्वप्न-तत्व, भारतीय दृष्टिकोण से—श्री रामदत्त भारद्वाज, एम्० ए०; विशाल-भारत, जून, १९३८

स्वर्गवासी राय बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय बहादुर—उत्थान; मार्च, १९३८

स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र—श्री गोपालराम गहमरी; सरस्वती; जून, १९३८

स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त—श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, उत्थान, मार्च, १९३८

हमारी जन-संख्या समस्या—श्री सत्येंद्र; विश्वमित्र, जून, १९३८

हमीर-हठ—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०; विशाल-भारत, मई, १९३८

हिंदी एवं द्राविड भाषाओं का व्यावहारिक साम्य और उन का हिंदी पर संभावित प्रभाव—श्री ना० नागप्पा, एम्० ए०; नागरी-प्रचारिणी पत्रिका; भाग १८, ४

हिंदी कविता और दर्शन—श्री कृष्णशंकर तिवारी; वीणा, अप्रैल, १९३८

हिंदी गीति-काव्य—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी; हंस; जून, १९३८

हिंदी नाटकों की भूमिका—श्री सत्येंद्र, एम्० ए०, वीणा; अप्रैल, १९३८

हिंदी भाषा और साहित्य—श्री किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, माधुरी, मई, १९३८

हिंदी भाषा में अनुस्वार और चंद्रबिंदु—श्री गोपाललाल खन्ना, एम्० ए०, वीणा, जून, १९३८

हिंदी साहित्य और समालोचना—श्री पद्मानंद चतुर्वेदी; माधुरी, जून, १९३८

हिंदी साहित्य के संभाव्य संस्कार—श्री सत्यप्रसाद थपलियाल, चाँद, मार्च-अप्रैल, १९३८

हिंदुस्तानी में 'ने' का प्रयोग—श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, साहित्य; भाग २, २

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम० ए०। सचित्र मूल्य ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमी जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय [रो]चक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे [लोग] तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना [समाप्त] किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I [have] seen, lacking in precision. * * I congratulate you on [this] excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय लॉ जर्नल प्रेस

हिंदुस्तानी एकेडेमी

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अक्तूबर, १९३८

संपादक—रामचंद्र टंडन

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ८ } अक्तूबर, १९३८ { अंक ४

आधुनिक हिंदी नाटकों का अभिनय

[लेखक—श्रीयुत सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०]

देश-विदेश के प्राय. सभी विद्वान् और कलाविज्ञ इस बात को स्वीकार करते है कि भारतवर्ष मे नाट्यकला का प्रादुर्भाव बहुत प्राचीन काल मे हुआ था और अब से लगभग ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व इस देश में नाट्यकला इतनी विकसित हो चुकी थी कि वह लोकप्रिय हो सके। शिलालिन् और कृशाश्व के समय मे नाटक-कला उन्नति की चरम सीमा को पहुँच चुकी थी, और पाणिनि के सूत्रो तथा पतजलि के 'महाभाष्य' मे भी भारतीय रगशालाओं का उल्लेख मिलता है। 'हरिवंशपुराण' में विवरण मिलता है कि वज्रनाभ नगर मे 'कौबेररंभाभिसार' नाटक खेला गया था, जिस की रगभूमि मे कैलाश का दृश्य दिखलाया गया था। मध्यकालीन सस्कृत नाटकों की उत्तम रचना, उन के लोकप्रचलन और कलात्मक बारीकियों को देख कर यही कहना पड़ता है कि भारतीय नाटक अन्यान्य विज्ञान और कलाओं की भाँति भारतवर्ष की ससार को बहुत प्राचीन देन है। भास, कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, भट्टनारायण, विशाखदत्त, राजशेखर आदि सस्कृत नाटक के अमर कलाकार हैं। मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानेल आदि पाश्चात्य विद्वानों का सुनिश्चित मत है कि नाटकों का आरंभ सब से पहले म ही हुआ यहाँ नहीं

भारतीय नाटक की प्राचीनता

दृश्य-काव्य और अभिनय-कला की रूपरेखा को सुनिश्चित शास्त्रीय स्वरूप देने के लिए इस देश में बहुत प्राचीन काल में नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने सर्वांग-संपूर्ण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन सहित लक्षण-ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' लिखा। इतनी भारी प्रतिष्ठा का पात्र बन कर नाट्यशास्त्र पंचम वेद की तरह माना जाने लगा। इस के बाद के आचार्यों ने भी नाट्यकला पर अनेक लक्षण-ग्रंथ लिखे, जिन में रंगमंच, अभिनय-सौष्ठव, पात्र-संगठन, वेशभूषा, देश, काल, शैली आदि के विषय में सूक्ष्म विवेचन उपलब्ध होते हैं। दसवीं शताब्दी के लगभग लिखा हुआ धनंजय का 'दशरूपक' उस विकास-शृंखला का अंतिम प्रौढ़ पुष्प है। प्रेक्षागृह (स्टेज या थियेटर) के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि कुछ वर्ष पूर्व सिरगुजा राज्य के अंतर्गत रामगढ़ के इलाके में दो पहाड़ी गुफाओं में भारतीय और यूनानी शैली के मिश्रित प्रेक्षागृहों का अनुसंधान हुआ था। उन्हीं में अशोक-कालीन लिपि में शिलालेख भी खुदे मिले थे। पुरातत्व-वेत्ताओं के अनुमान से ये शिलालेख और प्रेक्षागृह ईसा से कम से कम ३०० वर्ष पूर्व बने होंगे। इस से यह भी प्रमाणित होता है कि उस काल तक न केवल भारतीय नाट्यकला ने ही पूर्ण उन्नति कर ली थी, वरन् उस में यूनानी नाट्यकला के सम्मिश्रण के चिह्न भी दिखाई देने लगे थे। यह सब कुछ लिखने से हमारा अभिप्राय है कि नाट्यकला भारत की बहुत प्राचीन निधि है, और समय-समय पर उस में संशोधन होते रहे हैं। इस उज्ज्वल अतीत को ध्यान में रख कर हमें केवल गर्व में फूल ही न जाना चाहिए, वरन् उसे वर्तमान अधःपतन के गर्त से निकालने के लिए प्राणपन से प्रयत्नशील भी होना चाहिए।

हिंदी का नाटक-साहित्य

अन्यान्य देश-भाषाओं की तरह हिंदी में भी नाटक लिखने का उपक्रम संस्कृत के अनुकरण से लगभग १०० वर्ष पूर्व हुआ। वैसे देखा जाय तो कहने को हिंदी में काफी संख्या में नाटक हैं। कुछ अच्छे और मौलिक नाटक भी हैं, परंतु अनुवाद अधिक हैं। हिंदी में नाट्य-साहित्य के जन्मदाता और उन्नायक भारतेंदु हरिश्चंद्र समझे जाते हैं। उन के बाद भी हिंदी में अनेक अनूदित नाटक बने, और अब भी मौलिक और अनूदित नाटक बनते चले जा रहे हैं, परंतु राष्ट्र-भाषा के गौरव के अनुकूल हिंदी में नाटक-साहित्य नहीं है, ऐसा कहा जाय तो अनुचित न होगा भारतेंदु बाबू की संस्कृत मिश्रित शैली [illegible]

गय की प्रधानत पाश्चात्य शैली तथा 'प्रसाद' जी की नूतन ऐतिहासिक शैलियों के रूप-विकास की एक पतली सी धारा अवश्य झिलमिलाती दिखाई देती है, परतु समयानुकूल मौलिकता के उद्भास की इन सब में न्यूनता ही पाई जाती है। यह कहना न होगा, कि अपने परमोज्ज्वल अतीत की तुलना में हिंदी का नाट्य-साहित्य समय की गति से हजारों वर्ष पिछड़ा हुआ है। पीछे से आरम्भ करने वाले अन्यान्य सभ्य देशों की नाट्य-कला के विकास के समक्ष यह ठहर नहीं सकता। हमारे इस वक्तव्य का उद्देश्य केवल अपनी न्यूनताओं पर आँसू बहाने का ही नहीं है, वरन् अपनी वर्तमान दशा का दिग्दर्शन कराते हुए नाट्यकला में समयोचित सुधार करने की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का है। विशेषतः पिछड़े हुए रगमञ्च और अभिनयकला का सुधार परमावश्यक है, यह वक्तव्य है।

यह कहना अयुक्त न होगा कि पारसी स्टेज के अर्वाचीन इन्द्रजाल ने हिंदी नाटककारों, अभिनेताओं और रगमञ्च-अध्यक्षों को लक्ष्यभ्रष्ट और संस्कारभ्रष्ट कर दिया।

हिंदी का रंगमंच

परतु सारा दोष केवल पारसी थियेटर के सिर ही नहीं मढ़ा जा सकता, हमारी किंकर्तव्य-विमूढ़ता और दयनीय मानसिक दरिद्रता भी बहुत कुछ उत्तरदायी है। हिंदी नाटकों का कोई अपना रगमच नहीं है, यह कहते-कहते हिंदी के सर्वोत्तम कलाकार 'प्रसाद' जी का अवसान हो गया, और अब भी हमारे कानों पर जू तक नहीं रेंगती। हमारी घोरतम अस्वाभाविकता से परिपूर्ण रगमंच-रचना, निरुद्देश्य अभिनय चेष्टाओं, कृत्रिम भाषा और निरर्थक वेशभूषा की तुलना में मदारी का खेल और नटों की कलाबाजियाँ कहीं अधिक स्वाभाविक और मनोरजक होती है। रगमच, अभिनय, वेशभूषा, भाषा आदि बाह्य उपकरणों की दृष्टि से हिंदी नाटक का अधःपतन जितना वर्तमान काल में हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ होगा। बंगला, गुजराती, मराठी आदि देशभाषाओं ने अब से बहुत पहले अपने पैर सँभाल लिए, जिस का परिणाम यह है कि उन भाषाओं के नाटक-साहित्य में बहुत कुछ समयोचित सुधार हो चुके है, पर हिंदी की नींद अभी तक टूटी नहीं है।

अभिनय-कला के पाश्चात्य आदर्श

१७ वीं शताब्दी में फ्रांस के एक प्रसिद्ध कला-आलोचक बूयलो ने नाटक-कला के संबंध में कहा है —

'दर्शक के समक्ष [illegible] य प्रदर्शन कदापि न करना चाहिए कभी

कभी सत्य भी ऐसा रूप धारण कर लेता है, जिस मे वह सत्य नही जान पडता। विवेकशून्य चमत्कार आकर्षण की वस्तु नहीं है। मन पर ऐसी बातो का प्रभाव कभी नही पडता, जिन मे वह विश्वास न कर सके।"

जिन लोगो ने शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक 'हैमलेट' को पढा है, उन्हे याद होगा कि उस का नायक, हैमलेट, अपनी नाटक-मडली को अभिनय के पूर्व चेतावनी देता हुआ, नाट्यकला के मूल सिद्धात—स्वाभाविकता—के विषय मे दीक्षा देता है—

"तुम्हे ऐसी उदार सहिष्णुता का उपार्जन करना चाहिए, जिस मे तुम्हारे भावो मे कोमलता का समावेश हो। मेरी आत्मा को सताप होता है, जब कि मै किसी अल्हड, अकुशल अभिनेता को किसी भाव का इस प्रकार प्रदर्शन करते देखना-सुनता हू कि जिस मे भाव का ही सर्वनाश हो जाता है। ..

ऐसा अकुशल पात्र दड का भागी है क्योकि वह अनावश्यक बदमिजाजी का प्रदर्शन करता हुआ, चरम कोटि की भद्दी भडैती का नाट्य करता है। इस का त्यागना ही अच्छा है।"

भाव-प्रदर्शन और अभिनय-कला के विषय मे हैमलेट यह आशय प्रकट करता है—

"पात्रों का भाव-प्रदर्शन लचर भी नही होना चाहिए, बल्कि उन्हे विवेकपूर्ण आत्मशासन रखना चाहिए। अभिनेता का व्यापार शब्दानुकूल और शब्द व्यापारानुकूल हो। उसे खास कर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह स्वाभाविकता के नियमो से दूर न पड़ जाय, क्योकि अभिनय की दृष्टि मे इस प्रकार का व्यतिक्रम अक्षम्य है। अभिनय का लक्ष्य सदा-सर्वदा प्रकृति के रूप का हूबहू प्रतिफलित चित्र उतारना है। कुशल अभिनेता सदाशयो के समक्ष उन के सद्गुणो की विशेषता और दुराशयो के समक्ष उन के दुर्गुणों का नगा चित्र रखता हुआ तत्कालीन युग और समय के सामने उस की सच्ची आकृति और प्रेरणाओ को हूबहू ला रखता है।"

जिस प्रकार के अकुशल अभिनय की आलोचना शेक्सपियर ने अपने नायक के मुख से की है, उसी प्रकार की दशा हमारे अभिनय की भी है और उस कवि के शब्दो मे यह कहना ठीक होगा कि—

"वे मानवता का कैसा भद्दा अनुकरण करते है।"

मानवीय अवस्थाओ का स्वाभाविक अनुकरण करना नाट्यकला का आधार-तत्व है। इसी लिए इस का शास्त्रीय नाम रूपक पडा। पूर्वघटित अथवा काल्पनिक अवस्थाओं का जैसा का तैसा स्वाभाविक अनुकरण-रूप खडा करके, आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अनुकरण द्वारा देखने अथवा सुनने वाले के मन में नक़ल के द्वारा असल का भ्रम पैदा कर देना ही नाटक अथवा रूपक का लक्ष्य है। ऐसा करने से रस की उत्पत्ति और आस्वादन होता है। अतएव रूपक को काव्य का भेद भी कहा है।

रूपक

अभिनय-कला का भारतीय आदर्श

नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी और नाट्यधर्मी अभिनयों में भेद किया गया है।

स्वभावो लोकधर्मी तु नाट्यधर्मी विकारतः।

अर्थात् स्वाभाविक अनुकरण लोकधर्मी अभिनय का आधार होता है, और कृत्रिम उपकरणो से नाट्यधर्मी अभिनय सजते है। इन दोनों उपकरणो के सामजस्य से ही उत्तम अभिनय की उत्पत्ति होती है। परन्तु हम देखते यह है कि हमारे अभिनयो में लोकधर्म की न्यूनता और नाट्यधर्म की वृद्धि होती जा रही है। इसे रोकने की आवश्यकता है।

अब देखना यह है कि हिंदी नाटको मे किन-किन दिशाओं मे समयोचित सुधार हो कि वे लोकधर्मी अभिनय बन सकें। अभिनय के शास्त्रानुसार चार भाग है—(१) आंगिक, (२) वाचिक, (३) आहार्य और (४) सात्विक। अंगों द्वारा चलने-फिरने, उठने-बैठने, दौडने आदि की क्रियाओ को स्वाभाविक ढग से प्रकट किए जाते देखने के विपरीत दाम्भिक क्रियाओं और झूठी शान का प्रदर्शन ही हम स्टेज पर देखते है। वाचिक अभिनय के अन्तर्गत भाषा का स्वाभाविक रूप होना चाहिए। भाषा के साहित्योचित गौरव के विरोधी हम कदापि नहीं है, पर यह भी कहा का न्याय है कि भाषा या तो इतनी जटिल बना दी जाय कि कोष की सहायता के बिना उसे समझ न सके, अथवा उसे भद्दी तुक-बंदी का ऐसा जामा पहना दिया जाय कि वह एक विचित्र लोक की-सी भाषा जान पड़े। हमारे दैनिक बोलचाल की सरल भाषा में क्या वह शक्ति नही है कि वह भावों का स्वाभाविक प्रदर्शन कर सके? इस ओर हिंदी के नाटककारो का अब ध्यान जाने लगा है, यह शुभ लक्षण है।

आहार्य अभिनय के अन्तर्गत वेशभूषा, आकृति, देश, काल, शैली, आचार, व्यवहार

आदि बाह्य उपकरण है। इन के यथोचित अभिनय की ओर भी हमारी नाटक-मंडलियों का अधिक ध्यान जाना चाहिए। देखा ऐसा जाता है कि अभिनय करने वाले पात्र इस बात का ध्यान नहीं रखते कि किस देश और काल के पात्र को कैसी वेशभूषा और आचरण प्रदर्शित करना चाहिए। वही वेशभूषा, आकृति और आचरण राजपूत काल के पात्र का होता है और वही महाभारत काल, गुप्त काल अथवा मुगल काल के पात्रों का। इस से रसास्वादन से व्याघात उपस्थित होता है। सच तो यह है कि वेशभूषा और आचरण की स्वाभाविकता की ओर हमारे रंगमंच के अध्यक्षों का ध्यान उतना नहीं जाता, जितना टीम-टाम, ऊपरी तड़क-भड़क और व्यर्थ के दिखावे की ओर, चाहे फिर वह दिखावा किसी प्रकार के कृत्रिम साधनों से उपलब्ध हो सके।

सात्विक अभिनय में उन मनोवेगों और सात्विक अनुभवों का प्रदर्शन किया जाता है, जो अभिनय में 'रस'-तत्व का परिपोषण करते हैं, यथा—करुणा, दया, हास्य, क्रोध, ग्लानि, ईर्ष्या, प्रमाद आदि। इन्हीं की सकुशल और यथार्थ व्यंजना पर अभिनय की सफलता बहुत कुछ आश्रित रहती है। पर हम देखते क्या हैं कि स्टेज पर पात्र रोते भी हैं तो ताल, स्वर और आलाप के साथ और हँसते तथा हाव-भाव, चेष्टादि का तो कोई नियम ही नहीं है। साराश यह है कि अभिनय-कला के चारों अंगों में जब तक विवेकपूर्ण स्वाभाविकता का समावेश न किया जायगा, तब तक हिंदी के अभिनय इसी प्रकार लचर और ढीले बने रहेंगे। नाटक-लेखक का तो प्रथम कर्तव्य है कि वह पात्र का चरित्र-चित्रण ही इतना स्वाभाविक बनावे, परंतु इस से भी अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है रंगमंच के अध्यक्ष का, जो इन बातों पर अभिनय की दृष्टि से विशेष ध्यान रक्खेगा। प्रत्येक साहित्यिक नाटक किसी हद तक दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य, दोनों सम्मिलित रूपों में प्रकट होता है। उस का दृश्य-रूप तब तक पूर्णतः प्रकट नहीं होता, जब तक वह अभिनय के रूप में सामने नहीं आता। यूरोप के देशों में बहुत प्राचीन समय से प्रथा रही है, कि नाटककार द्वारा लिखित अथवा मुद्रित प्रति तब तक अभिनय के योग्य नहीं समझी जाती, जब तक रंगमंच का मैनेजर अभिनय-कला की दृष्टि से उस में उचित काट-छाँट और संशोधन नहीं कर देता। ऐसी दशा में एक ही नाटक की पठनीय और अभिनेतव्य प्रतियों में कभी-कभी बड़ा अंतर हो जाता है। पाश्चात्य नाटकों का स्टेज मैनेजर (सूत्रधार) उतना ही स्वतंत्र और प्रतिष्ठित समझा जाता है जितना कि स्वयं मौलिक नाटक का लेखक

हिंदी में भी कोई ऐसा ही मार्ग निकालना होगा। उदाहरणत 'प्रसाद' जी के ऐतिहासिक नाटक साहित्य की दृष्टि से सर्वोत्तम संपत्ति है, परंतु अभिनयोचित काट-छाँट और संशोधन के बिना उन का स्टेज पर प्रदर्शन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। दूसरी ओर राधेश्याम 'कविरत्न', नारायण प्रसाद 'बेताब', हरिकृष्ण 'जौहर' और किशनचंद 'ज़ेबा' के थियेट्रिकल नाटक अभिनय के अधिक उपयुक्त है, परंतु साहित्य में उन का विशेष स्थायी स्थान नहीं है। इन दोनों के बीच के मध्यम मार्ग का अवलंबन करने में ही हिंदी अभिनय का उद्धार हो सकता है। न तो 'प्रसाद' जी की ही अति जटिल और दार्शनिक भाषा अभिनयोपयुक्त है, और न उन थियेट्रिकल नाटकों की कृत्रिम, तुकांत, भद्दी भाषा। 'प्रसाद' जी की साहित्यिक भाषा एक संकुचित समुदाय की भाषा है, परंतु 'कविरत्न और बेताब' की भाषा अप्राकृतिक है। थोड़े से अभिनयोचित सुधार के बाद 'प्रसाद' जी के नाटक हिंदी-रंगमंच के शृंगार बन सकते हैं। पर थियेट्रिकल नाटकों में जो कुछ अच्छा है वह केवल उन के उच्चाशय पात्रों का नाम तथा उन की आदर्श कथा-गाथा है।

नाटक की आत्मा उस का व्यापार है, जो अभिनय द्वारा कर के दिखाया जाता है। यदि किसी नाटक का पात्र स्थान-स्थान पर कविता और संगीत का आश्रय ले कर अपनी निष्क्रियता प्रदर्शित करे, तो प्रेक्षकों पर उस का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। कविता और संगीत अच्छी कलाएं हैं, परंतु देखने वाले कार्य देखने को उत्सुक हैं, संगीत सुनने और कविता का भाव समझने को नहीं। यों तो नाटक के क्रम-विकास में नृत्य और संगीत का महत्वपूर्ण हाथ है। परंतु अभिनय व्यापार की दृष्टि में ये दोनों ही नाटक में प्रायः निरभिप्राय से हैं। हां, पात्र की मानसिक दशा को किसी विशेष परिस्थिति में जागृत और उत्तेजित करने में संगीत और कविता सहायता देते हैं, परंतु यथार्थ तो यह है कि इन साधनों का जितना कम उपयोग होगा, उतना ही नाटक के अभिनय-गुणों का उपकार होगा। हिंदी के थियेट्रिकल नाटकों में प्रथारूप से एक पद्धति का पालन दीख पड़ता है। प्रायः प्रत्येक पात्र दो-एक वाक्य बोल कर उन के बाद अनिवार्यतः दो चार पद्य पंक्तियों में उस साधारण सिद्धांत का वर्णन करता है जिस से उस की गद्योक्ति की परिपुष्टि हो जाय। यह क्रम अंत तक चला जाता है। कैसा बनावटी और बेढंगा होता है इस प्रकार का कथोपकथन! इसी प्रकार अवसर-अनवसर का कुछ भी ध्यान न रख कर कोई पात्र स्टेज पर धारा

कविता और संगीत

प्रवाह ढंग से कविता पाठ करने लग जाता है और दूसरे पात्र तथा प्रेक्षक तन्द्रापूर्ण आंखों और कानों से मंत्रमुग्ध की तरह उसे देखते-सुनते रहते हैं। संगीत की तो यहां तक दुर्दशा है कि पात्र को सर्प ने काट खाया है अथवा किसी भारी आपत्ति का सामना करना पड़ा है, और वह ताल-स्वर के साथ सुमधुर गान की तान अलापता है। कितना अस्वाभाविक है! हमारे कहने का यह आशय नहीं है कि हिंदी के सभी नाटकों में ऐसा होता है, परन्तु अधिकांश में ऐसे व्यतिक्रम देखे जाते हैं। 'प्रसाद' जी के अधिकांश पात्र समयानुकूल अतः स्थिति-परिचायक गान गाते हैं, परन्तु साथ ही उन के कई पात्र लंबी-लंबी स्वगतोक्तियों, दार्शनिक कविताओं और वक्तृताओं के ब्रह्मपाश में फंसे रहते हैं। यह भी अस्वाभाविक है। इसी लिए कुछ लोगों ने उन की भाषा शैली को पथरीली कहा है।

इधर पिछली एक-डेढ़ शताब्दी से पाश्चात्य, खास कर अंग्रेजी, नाटकों के संपर्क से दुःखांत और सुखांत ('ट्रेजेडी' और 'कामेडी') की विवादपूर्ण भावना हिंदी नाटक-जगत में भी उत्पन्न हो गई है। हमें उस से यहां पर कोई बहस नहीं है। सिद्धांत रूप में हम तो यह देखते हैं कि जीवन में दुःख और सुख का जोड़ा है, एक दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते। यदि नाटक का उद्देश्य जीवन की घटनाओं का स्वाभाविक प्रतिफलन उपस्थित करना है, तो हम अपने नाटकों में दोनों का मिलाजुला जीवित रूप प्रदर्शित करेंगे, कारण, ये जीवन में घुले-मिले मिलते हैं।

प्रहसन

कुछ लोगों का कहना है कि गंभीर प्रसंगों का अनुशीलन करते-करते प्रेक्षक के चित्त में थकावट आ जाती है, इस लिए उसे विश्रांति देने के लिए नाटक में प्रहसन का लगा देना आवश्यक होता है। यह दलील ही विरोधाभास है। यदि अभिनय रोचक है तो वह चाहे कितना ही करुण, गंभीर और भयानक हो उस से थकावट नहीं हो सकती। और यदि वह अरोचक है तो चाहे कितने ही चित्ताकर्षक प्रहसन जोड़ दिये जायें, उन से मूल अभिनय में रोचकता आ नहीं सकती, और न क्लांत चित्तवृत्ति का उपराम ही हो सकता है। अतएव ऊपर से जोड़े हुए, नाटक की आधिकरणिक और प्रासंगिक कथा-वस्तु से सर्वथा असंबद्ध प्रहसनों से अभिनय अथवा प्रेक्षकों का कोई उपकार नहीं हो सकता। पर हिंदी के अधिकांश नाटकों में यह मिलते हैं। इस अनावश्यक विडंबना को त्यागना है। प्रसंगतः यह ध्यान देने की बात है कि संस्कृत नाटकों में भी हास्य और

प्रहसन कथावस्तु का आवश्यक अंग बना रहता है। विदूषक राजा का अंतरंग मित्र—अतएव कथावस्तु का आवश्यक पात्र—गिना जाता है। संभवत इसी विदूषक के अनुकरण मे यूरोप वालो ने अपने मध्यकालीन नाटको के 'क्लाउन', 'बफूनो' का निर्माण किया।

दृश्य, सजावट, आदि

दृश्य, सजावट, रंगमंच आदि अभिनय-संबंधी बाह्य सामग्री मे भी स्वाभाविकता और युक्तिसंगतता अपेक्षित होती है। ये बाह्य उपकरण नाटक के कार्य को प्रभावान्वित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। और दूसरा प्रयोजन इन मे सिद्ध नही होता। परदो का प्रयोग अच्छा है, और इन से रंगमंच की रोचकता बढती है, परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि घटना का स्थान राजस्थान की रेतीली भूमि हो तो उस दृश्य के पृष्ठ-पट पर उर्वर कछार, नदी-कूल और नदी अंकित न हो, और पर्वत श्रेणी हो तो पथरीली और कटीली हो, न कि सघन वन-मंडित। सजावट और अन्य बाह्य साधनो के विषय मे इन्ही बातो का ध्यान रखने मे अभिनय की स्वाभाविकता बढ़ सकती है।

सिनेमा और टॉकी

लोग कहते है, और कुछ अंश मे ठीक ही कहते है, कि अब नाटकों का जमाना गया; चित्रपटो ('सिनेमा') और बोलपटों ('टाकीज') का जमाना आ गया। विज्ञान के धाराप्रवाह में पड़ कर मानव-जीवन बडी तीव्रता के साथ सभ्यता की मंजिलो की ओर उत्तरोत्तर बढता जा रहा है। उसे रोकना न तो उचित ही है और न संभव ही। यह तो ठीक ही है। परंतु चित्रपट, बोलपट, अथवा अन्य कोई उन्नत वैज्ञानिक साधन भी नाटक के बीज-तत्व को लुप्त कर सकेगा, यह कल्पना मे नहीं आता। न यह विज्ञान का प्रयास ही है। विज्ञान तो साधन मात्र है, जो विद्युत् की शक्ति मे दृश्यकाव्य को पट पर चित्र के रूप में दिखाता है, और अब चित्रपट के साथ ध्वनि का सामंजस्य भी संभव हो गया है। इन सब वैज्ञानिक सुविधाओं से नाटक के विकास का अवरोध नही होता, बल्कि उन्नति ही संभाव्य है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नाटक स्थायी साहित्य-संपत्ति है और सिनेमा-टॉकी अस्थायी प्रदर्शन मात्र। जो अंतर दैनिक समाचार-पत्र और साहित्य ग्रंथ मे होता है, वही इन दोनो मे समझना चाहिए। परंतु फिर भी ये दोनो एक ही वाङ्मय के अन्योन्याश्रित अंग हैं।

अभिनय-कला के हितैषियो ने सिनेमा और टाकी के नवीन आयोजनो मे बहुत

सहायता मिल सकती है। इस मे सदेह नहीं है कि बाह्य साधनो के जुटाने मे सिनेमा कंप-नियो ने बहुत परिश्रम किया है। वातावरण, वेशभूषा, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, देश-काल और शैलियो के विषय मे बहुत सी उपयोगी सामग्री हमे सिनेमा और टॉकी से मिल सकती है। उस का उपयोग हमे अपने साहित्यिक नाटको मे यथोचित ढग से करना चाहिए। परंतु साथ ही इन के दुर्गुणो ओर असभव कल्पनाओ से भी बचना चाहिए। हमारे कहने का यह तात्पर्य नही है कि सिनेमा और टॉकी मे जो कुछ होता है वह ठीक ही होता है। यह एक स्वतत्र विषय है, प्रसगत यहा उल्लेख मात्र कर दिया गया है।

अंत मे हमे यह कहना है कि स्वाभाविकता से हमारा अभिप्राय नग्न वास्तविकता अथवा उस यथार्थवाद से नही है, जिसे पाश्चात्य नाटको मे इब्सेनिज्म कहा गया है। कल्पना

निवेदन

का भी नाटक में उचित स्थान है और रहेगा। नाटक की दृश्यकाव्यता और श्रव्यकाव्यता नष्ट होने से भी हमारा उप-कार न होगा। हमें पाश्चात्यो का अधानुकरण करना भी शोभा नही देता। अपने प्राचीन भारतीय आदर्शों और साहित्यिक संस्कारो को अक्षुण्ण रखते हुए अभिनय की दृष्टि से हमे नाटको मे समयोचित सुधार करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए, जिस से हमारे अभि-नय सामाजिक वास्तविकताओ से तटस्थ न रह कर लोक-रुचि का अत्यधिक आकर्षण कर सके। ऐसी ही दशा मे वे समाज का कुछ उपकार कर सकते हैं।

तुलसीदास का हस्त-लेख

[लेखक—श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

इस तरह के सात नमूने हस्तलेखों के है जो अलग अलग तुलसीदास के कहे जाते है। इन का संक्षिप्त परिचय मनोरंजक और आवश्यक होगा।

अ एक पचायतनामा स० १६६९ का लिखा हुआ है। इस के द्वारा एक टोडर की जायदाद का बँटवारा उन के देहान्त के पीछे उन के दो उत्तराधिकारियो के बीच किया गया है—इन उत्तराधिकारियो मे से एक उन का लडका है और दूसरा उन के एक मृत लडके का लडका है। यह पचायतनामा अब महाराज बनारस के निजी संग्रह मे है। इस की केवल पहली छः पक्तिया ही तुलसीदास की लिखी कही जाती है।

इस की प्राप्ति का स्थान विश्वसनीय है। यह सैकडों वर्षो तक टोडर के उत्तराधिकारियो के पास था—केवल थोडे ही वर्ष हुए जब यह वर्तमान महाराज बनारस के एक पूर्वज के अधिकार मे आया। इस के बदले मे प्राप्तकर्ता महाराज ने कुछ वार्षिक सहायता देने का वचन दिया था, जो अभी तक चौधरी लाल बहादुर सिंह को राज्य से मिला करता है। चौधरी लाल बहादुर सिंह ही अब उपर्युक्त टोडर के एकमात्र उत्तराधिकारी है। टोडर का घर बनारस में असी घाट के निकट ही था, और वह अब भी चौधरी लाल बहादुर सिंह के अधिकार मे है। लाल बहादुर सिंह प्रत्येक वर्ष श्रावण की श्यामा तीज को तुलसीदास के नाम पर उन की निधन-तिथि के उपलक्ष्य मे सीधा दिया करते है। उन का कहना है कि इसी तिथि पर उन्हो ने अपने पिता को भी तुलसीदास के नाम पर सीधा देते हुए देखा था, और उन से यह सुना भी था कि यह चलन उन के घराने मे पहले ही से चली आ रही है। इस साक्ष्य से यह भली भाँति जान पडता है कि टोडर और तुलसीदास का संबध बहुत कुछ घरेलू ढंग का रहा होगा। फलतः यह सभव है कि कवि ने उन के उत्तराधिकारियो के बटवारे म कुछ हाथ बटाया हो और की प्रथम छ पक्तिया लिख दी हो

है। यह अत्यंत घिसी हुई है, और इस को उलटने पुलटने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। और, जान पड़ता है कि कभी इस के पन्नों पर से धूल हटाने के उद्देश्य से मोटा कपड़ा या और कोई ऐसी ही चीज रगड़ दी गई थी जिस से पृष्ठों के अक्षरों की स्याही थोड़ी बहुत निकल गई। इस संशोधन को नीचे के विवेचन में हम 'फ' कहेंगे।

ज 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड की एक प्रति राजापुर में एक पंडित मुन्नीलाल उपाध्याय के पास है। इन का मकान तुलसीदास के मंदिर के पास है। कहा जाता है कि पहले प्रति इसी मंदिर में रक्खी रहती थी, बाद को चोरों के डर से उपाध्याय जी उसे अपने घर में रखने लगे। प्रति में कोई पुष्पिका नहीं है, इस लिए निश्चय के साथ इस के लेखक और लेखन-काल के संबंध में कहना असंभव है। जनश्रुति यह है कि इस के लेखक तुलसीदास ही थे। किंतु इस जनश्रुति का समर्थन और किसी प्रकार से नहीं होता।

प्रति हाथ के बने सफेद कागज पर है, जो पुराना होने के कारण कुछ भूरा पड़ गया है। स्याही काली है। यह साधारणतः अच्छी हालत में है, केवल कागज के किनारों पर पानी से भीगने के दाग बने हुए हैं। नीचे के विवेचन में इस प्रति का उल्लेख 'ज' नाम से किया जायगा।

इस लेख के साथ जो चित्र दिए जा रहे हैं, वे सभी मूल के फोटोग्राफ हैं, केवल 'ज' मूल के एक छपे हुए 'ब्लाक'[१] का बढ़ाया हुआ फोटोग्राफ है। इस के मूल का फोटोग्राफ इस के अधिकारियों के अनेक प्रयत्न करने पर भी देने से इन्कार कर दिया।

हस्तलेखों का मिलान करने के कुछ प्रसिद्ध नियम हैं, उन्हीं को ध्यान में रखते हुए नीचे इन नमूनों का हम विश्लेषण करेंगे।

हस्तलेखों के मिलान में पहली बात जो देखी जाती है वह है उन का 'साधारण स्वरूप' अथवा 'स्टाइल'। 'साधारणस्वरूप' अथवा 'स्टाइल' से तात्पर्य है उस मानसिक चित्र से जो कोई भी हस्तलेख उस के विश्लेषक के मस्तिष्क में निर्मित करता है। अस्तु, 'स्टाइल' की दृष्टि से जब हम अ से ले कर ज तक के हस्तलेखों की तुलना करते हैं तो, यह ज्ञात होता है कि ब तथा ज सब से अधिक नियमित हैं और एक ढंग पर लिखे गए हैं। अ का स्थान इस दृष्टि से ब तथा ज के बाद आता है, क्योंकि उन की अपेक्षा यह कम

---

[१] 'बीयन काग्रेस' १८८६ पृ० २११

नियमित ढग पर लिखा गया जान पडता है। स, द और य की 'स्टाइल' इन तीनो की अपेक्षा कम नियमित और कम एक-सी जँचती है, और फ तो इस दृष्टि से सब में पिछडा हुआ ज्ञात होता है।

हस्तलेखों के विश्लेषण का एक और तरीका उन की 'गति' (मूवमेंट) की जाँच का है, अर्थात् यह देखने का है कि विभिन्न हस्तलेखों में उन के लेखकों ने अपेक्षाकृत द्रुत या मंद 'गति' से लिखा है। इस दृष्टि से जब हम अ से ले कर ज तक के लेखों को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि अ सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य सब की अपेक्षा इस में गतिविधि स्वच्छंद और द्रुत ज्ञात होती है। फ, स, द और य क्रमशः ठीक इस के पीछे आते हैं, क्योंकि इन में 'गति' कुछ बाधित और अपेक्षाकृत मंद है। ब और ज इस दृष्टि से सब से पीछे हैं, क्योंकि वे सब से अधिक सावधानी और इसी लिए मंद 'गति' से लिखे ज्ञात होते हैं। ब और ज में भी ब की गति ज की अपेक्षा मंद ज्ञात होती है।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और तरीका उन में व्यवहृत अक्षरो के 'खतो' और 'मोड़ो' ('स्ट्रोक्स' और 'कर्व्स')की जॉच करने का है। नमूनो को जब हम इस दृष्टि से देखते हैं तो जान पडता है कि ब और ज के 'खत' अन्य हस्तलेखो के खतो की अपेक्षा कहीं अधिक भरपूर हैं। और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि ब तथा ज अन्य सभी नमूनो की अपेक्षा अधिक सावधानी से लिखे गए हैं। स द और य के खत ब और ज से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इन के पीछे का स्थान, इस दृष्टि से, फ का है, और अ सभी से इस दृष्टि से गया-बीता जान पडता है।

इन नमूनों को 'खत' की दृष्टि से तुलना करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये सभी लेख बहुत पुराने हैं, और इसी लिए खतो की स्याही पर समय का प्रभाव यथेष्ट पडा है। ये नमूने, अलग अलग, अभी तक जिस प्रकार सुरक्षित रक्खे गए होंगे उस का भी प्रभाव कम न पडा होगा। फिर, वह कागज जिस पर अ लिखा गया है, असावधानी के साथ प्रयोग में आने के कारण हाशिए पर और सिरे पर कई जगह फट गया है; इस की मरम्मत जैसा अधिकतर होता है, पूरे पत्र को एक दूसरे कागज पर चिपका कर की गई है इस को चिपकाने में कौन सी गोंद का प्रयोग हुआ है यह भी अज्ञात है। इस लिए यह कहना कठिन है कि अ का 'खत' दूसरे कागज पर उसे चिपकाने के कारण कहा तक विकृत हुआ है

एक और भी तरीका हस्तलेखो के विश्लेषण का उन के अक्षरो के आकार (साइज) की तुलना का है। यह अनुभव करने से कदाचित् देर न लगेगी कि इस बात में ब और ज सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनो में अक्षरो का आकार अन्य नमूनो की अपेक्षा अधिक एक-सा है। इन के बाद स्थान स तथा द का है, जिन के अक्षरो का आकार ब ज की अपेक्षा कम एक-सा है। अ का इस दृष्टि से और भी नीचा स्थान है और य तथा फ विशेषत फ का स्थान सभी से नीचा है। पुन: । यह ध्यान देने योग्य है कि अ ब तथा स के अक्षरो का आकार कुछ-कुछ वर्ग का सा है, और द ज य तथा फ के अक्षरो का आकार अपेक्षाकृत समकोण-समद्विबाहु-चतुर्भुज (रेक्टेंगल) का-सा है। य तथा फ मे कुछ अक्षरों का आकार तो ऐसा है कि उन की लबाई और चौडाई का अनुपात दो और एक का है।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और भी अन्य तरीका अक्षरो के बीच का फ़ासला देखने का है। यह स्वत स्पष्ट है कि अ के अक्षरो के बीच सब से अधिक अतर रक्खा गया है, किंतु, साथ ही हमे यह न भूलना चाहिए कि अ मे लिखने के लिए स्थान भी अपेक्षाकृत सब से अधिक था। अ के बाद स्थान स और द का आता है। इन में यह फासला अ की अपेक्षा कम है। ब और ज में यह फासला और भी कम रक्खा गया है; और य तथा फ मे तो बहुत ही कम है। य तथा फ में अक्षर एक दूसरे से जितने सटा सटा कर लिखे गए हैं उतने किसी भी अन्य नमूने मे वे नही लिखे गए हैं।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और भी तरीका यह देखने का है कि उन की पक्तियो की गति कागज के दूसरे किनारे तक पहुँचते पहुँचते कैसी रहती है। इस सबंध मे अ विशेष ध्यान देने योग्य है। उस की पक्तिया दूसरे छोर तक पहुँचने पहुँचते नीचे की तरफ कुछ झुक जाती है। किंतु, पत्र के फट जाने और पुन: एक दूसरे कागज पर उस के चिपकाए जाने, और चिपकाने मे भी असावधानी होने के कारण—जो पक्तियों के दाहिनी छोर पर अक्षरो और शब्दो की विकृति से अत्यत स्पष्ट है—यह झुकाव सभवत जितना होना चाहिए था उस से कुछ अधिक ज्ञात होता है। इस लिए यह झुकाव कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। और, अन्य नमूनों मे तो यह झुकाव ज्ञात ही नही होता। फिर भी, ब और ज की पक्तियों मे जो सीधापन है वह भी महत्त्व नही रखता, क्योकि दोनो मे पहली पक्ति के लिए रेखा खीच लेने के बाद लिखना आरभ किया गया है। और स द य तथा फ पूरा पत्र लिखे जाने पर लिखे गए है इस लिए लेखक को लिखी हुई पक्तियो से पर लिखन मे

अ- सं० १६६१ वि० का पंचायतनामा
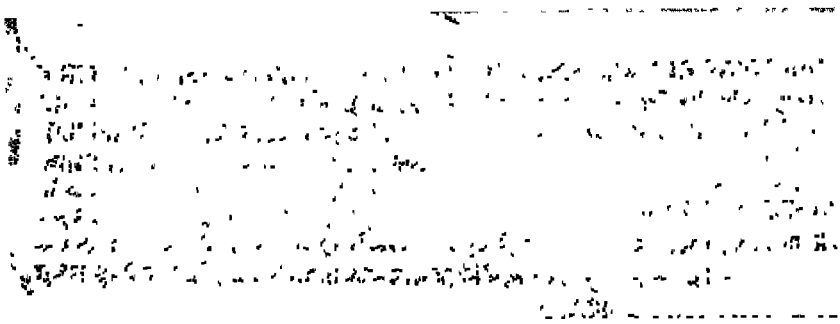
ब. सं० १६४१ वि० की लिखी हुई वाल्मीकि-रामायण का अंतिम पृष्ठ

स० १६६६ की लिखी 'राम-गीतावली' की हस्तलिखित प्रति का एक

ज. राजापुर के 'रामचरितमानस' की प्रति का एक पृष्ठ

लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' (१)

A	B	C	D	E	F	G

त में वर्णित अ से ज तक की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का च चार्ट २)

लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का क्रमागत 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' (२

लेख में वर्णित (अ से ज तक) की हस्तलिखित प्रतियों के विविध अक्षरों का अक्स्टापोस्ड चार्ट (४

सहायता अवश्य मिली होगी। यह ध्यान देने योग्य है कि अ के लेखक को इन में से एक भी सुविधा नही थी।

एक और महत्त्वपूर्ण बात इस सबध मे ध्यान देने योग्य है, यदि अ के प्रत्येक अक्षर का सम्यक् निरीक्षण किया जाय तो यह विदित होगा कि प्रत्येक अक्षर अपने पूर्ववर्ती अक्षर की अपेक्षा कुछ नीचे से लिखा जाने लगता है, और इसी लिए पूरी पंक्ति एक सीढियो की पंक्ति सी दिखाई पडती है। यह 'सीढीनुमा' पंक्ति-विन्यास अन्य किसी नमूने मे नही मिलता।

हस्तलेखो के विश्लेषण का एक और भी तरीका यह देखने का है कि लेखक शिरो-रेखा के साथ अक्षरों का शेष भाग साधारणत कितने अंश के कोण पर रखता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा मे 'स्लैन्ट' कहते हैं। इस सबध मे यह प्रकट है कि अ तथा फ मे यह कोण समकोण है, अर्थात् यदि शिरोरेखा से समानांतर पर कोई रेखा खीची जाय तो इन के अक्षर ९०° का कोण बनावेगे। अन्य नमूनो अर्थात् ब, स, द, य, तथा ज मे यद्यपि यह 'स्लेंट' समकोण प्रतीत होता है, किंतु ध्यानपूर्वक देखने पर विदित होगा कि अनेक स्थलो पर वस्तुत वह पूरा समकोण नही है।

अत मे, हस्तलेखो के विश्लेषण का सब से अधिक प्रचलित और मान्य तरीका नमूनों मे से ऐसे शब्दो और अक्षरो को काट-काट कर एकत्र आमने सामने चिपकाने का है, जिसे वैज्ञानिक भाषा मे 'जक्स्टापोज़्ड चार्ट' तैयार करना कहते है। इस के निर्माण से अक्षरो की बनावट का अतर आसानी से स्पष्ट हो जाता है। इन नमूनो का 'जक्स्टापोज्ड चार्ट' देखने से यह भली भाँति विदित होगा कि अक्षरो की बनावट मे ये नमूने एक दूसरे से बहुत भिन्न है। यह अंतर कुछ अक्षरो के सबध मे तो अत्यत स्पष्ट है, जैसे ज, ध, न, नृ, ब, भ, म, ल, व, स और ह लगभग प्रत्येक नमूने में प्रत्येक दूसरे नमूने से बनावट में बहुत भिन्न है। यही बात इ, ई, उ तथा ओ की मात्राओं के विषय में भी कही जा सकती है। न केवल इन मात्राओ की बनावट नमूनो मे एक दूसरे से भिन्न है, बल्कि वर्णो के साथ जिस ढग से इन्हे जोडा गया है उस मे भी ध्यान देने योग्य अतर है।

इस प्रकार, हम देखते है कि ऊपर के सात नमूनों मे से कोई दो भी ऐसे नही है जो कसौटी पर ठीक ठीक एक-से उतरते हों, फलत यह स्पष्ट है कि कोई दो भी एक ही व्यक्ति के हस्तलेख नही हो सकते और सातो के एक ही व्यक्ति के हस्तलेख होने की बात ही दूर

है। और यदि हम सात में से किसी को किन्हीं तुलसीदास का लिखा हुआ मानें तो अन्य छ को उन्हीं तुलसीदास का लिखा हुआ नहीं माना जा सकता। और यह पहले ही देखा जा चुका है कि केवल अ अर्थात् 'पचायतनामा' ही के संबंध में का साक्ष्य ऐसा है कि उसे महाकवि तुलसीदास का लिखा हुआ माना जाना चाहिए; इस लिए, 'पचायतनामा' के अतिरिक्त जो छ. नमूने हैं उन्हें महाकवि तुलसीदास का हस्तलेख नहीं माना जा सकता।[1]

---

[1] इस लेख से संबद्ध चित्रों के ब्लाक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर महोदय के अनुग्रह से प्राप्त हुए हैं संपादक

'असर' और उन की कविता

[लेखक—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा]

खान बहादुर मिरज़ा जाफ़र अली खा, बी० ए० सिविल सर्विस के योग्य सदस्य और जिला अफसर के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर है। वह एक सुसस्कृत महानुभाव है, अग्रेजी साहित्य मे उन की अच्छी गति है, और यूरोपीय कविता मे भी अभिरुचि रखते है। अपने पद के कर्तव्यो मे व्यस्त रहते हुए भी उन्हो ने अपना साहित्य-प्रेम जागृत रखा है और पुराने तथा नए साहित्य का अनुशीलन मात्र ही नही करते वरन् उर्दू साहित्य मे उन्हो ने मूल्यवान् रचनात्मक कार्य भी किया है। समकालीन आलोचको मे उन का महत्वपूर्ण स्थान है। उन के विवेचन तथा आलोचनाए उन के प्रौढ मनन, सुरुचि और निष्पक्षता का निदर्शन करते है। साहित्य मे क्या वस्तुत मूल्यवान् है और क्या मूल्य-विहीन, क्या चिरतन और क्या क्षणिक—इस की उन्हे अच्छी परख है। उन की गद्य-शैली सहज, सरल, होते हुए भी मनोरम है। उस मे बातचीत का सा प्रवाह मिलता है। उस में हमे फारसी और अग्रेजी की प्रतिध्वनिया मिलेगी, फिर भी पाडित्य-प्रदर्शन का प्रयास उस मे नही मिलेगा। यो वह विशेष बातचीत नही करते, परतु जब अनुकूल सग मिल गया तो उन की बातचीत बडी ही हृदयग्राही होती है। कारण यह है कि जो कुछ वह कहते है गभीर मनन और अनुशीलन का परिणाम होता है, वह अपना विशेष दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं और जो कुछ वह कहते है वह दूसरों के विचारो की पुनरुक्ति मात्र नही होती।

आलोचना के क्षेत्र मे 'असर' का नाम बहुत समय तक लिया जायगा क्योकि उर्दू मे अच्छी आलोचना की बहुत कमी है। साथ ही वह अपनी पीढी के प्रमुख कवियो मे भी गिने जायँगे। उन्हो ने ग़ज़लें, रुबाइया, नज्मे लिखी हैं, नाटको के तर्जुमे किए है, दाते को उर्दू पद्य में उतारा है और मर्सियो की रचना की है। इन विविध पद्यों की रचना

मे उन्हे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। उन्हो ने कुछ अच्छी लबी पद्य-रचनाए भी प्रस्तुत की है। उन की अपनी विशिष्ट शैली है, और वह किसी साहित्यिक-वर्ग के अनुयायी नही है। लखनऊ में जन्म पा कर और वहा की परम्परा से निकट सपर्क रखते हुए भी वह 'मीर' तथा दिल्ली के अन्य कवियो की शैली के निकट हैं। उन की रचना मे दिल्ली के कवियो जैसी सादगी और लखनऊ शैली के कवियो का विन्यास-परिपाक मिलेगा। दोनो ही शैलियों के गुण उन की कविता मे मिलते हैं और यह बात विशेप रूप से उल्लेखनीय है कि उन के प्रिय कवि 'मीर' है। वास्तव मे 'मीर', 'आतश' और 'गालिब' तीन महा-कवियों ने उन पर गहरा प्रभाव डाला, जान पड़ता है।

मिरजा जाफर अली खा का जन्म लखनऊ मे, जूलाई सन् १८८५ मे हुआ था। उन्हो ने जुबली हाई स्कूल मे शिक्षा पाई। सन् १९०२ मे वहा से निकल कर यह कैनिग कालिज मे भरती हुए। डाक्टर वाइट की परंपरा वहा इस समय भी काम कर रही थी। सन् १९०६ मे इन्हो ने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा पास की। सन् १९०९ मे वह प्रातीय सिविल सर्विस मे प्रविष्ट हुए, और आज वह उसी सर्विस के एक ऊँचे पदाधिकारी है। जिले के प्रबध-कार्यो, फौजदारी के मुक़दमो और वकीलो की बहसो के सुनने मे व्यस्त रहते हुए भी उन्हो ने साहित्य और कविता में जो अनुराग बनाए रक्खा है वह प्रशसनीय है। उन का कविता-प्रेम केवल क्षणिक समय-यापन के निमित्त नही हैं वरन् कविता का अभ्यास उन्हो ने कला के रूप में किया है। उन्हो ने आमोद-प्रमोद त्याग कर इस दिशा मे परिश्रम किया है। पुराने उस्तादो की कृतियों का अच्छा मनन किया है और उन का ज्ञान बहुत विस्तृत है। कविता के क्षेत्र मे मिरजा जाफर अली खा ने कौशल प्राप्त करने का प्रयत्न किया है और एक कला-कार की भाँति वह अपनी रचनाओ के प्रति उचित गर्व रखते है। सुदर वाक्य-विन्यास, नए प्रयोगो के लिए उत्साह, छंदो के चुनाव मे सुरुचि, और अपनी कविता को रोचक बनाने का उन का सतत प्रयास यह सिद्ध करते है कि वह एक उच्च कोटि के कलाकार है। उन की कविता मे हमे युवकोचित उल्लास और सजावट मिलती है, परतु वह मनन और पवित्रता से भी पूर्ण है।

मिरजा साहब की प्रकाशित कृतिया अधिक नहीं है। मेरा अनुमान है कि दो पुस्तकोसे अधिक उन्हों ने नही प्रकाशित किया है उन का दीवान सन १९२४

मे प्रकाशित हुआ था और उस पर एक विस्तृत भूमिका स्वर्गीय मौलाना अजीज ने लिखी थी। उन की दूसरी कृति 'लेडी अज्योर' नामक नाटक का अनुवाद है और यह भी सन् १९३० मे निकल चुका है। मै उन की किसी अन्य कृति से परिचित नही हू। परन्तु मै उन की कविताए बराबर पत्र-पत्रिकाओ मे पढता रहा हू और मुझे कुछ कविताओ को मुशायरो मे सुनने का भी अवसर प्राप्त हुआ है। उन की कविताओ के एक नए सग्रह की बडी आवश्यकता है और मै आशा करता हूं कि इस के लिए लबी प्रतीक्षा न करनी पडेगी। उन की कविता के सबध मे निश्चित मत तो उसी समय बनाया जा सकता है जब कि उन की समस्त रचनाए पढ़ ली जायॅ, परतु जो कुछ प्राप्त है उस के आधार पर भी विचार करना अनुपयुक्त न होगा। अभी कवि वृद्ध नही हुआ है और उस के सामने रचनात्मक कार्य के लिए अनेक वर्ष है। समग्र रूप से उस की रचनाओ पर विचार सभव नही क्योकि उस का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है।

मै ने बताया है कि मिरज़ा साहब के प्रमुख प्रभावको मे कवि 'मीर' है। यह बात किंचित् आश्चर्य-जनक है। इस काल मे भी 'असर' भाषा की वह सादगी और सीधापन प्रस्तुत करने में समर्थ हुए है, जिन गुणो के लिए 'मीर' विशेष रूप से विख्यात है। यह देख कर भी बहुत सतोष होता है कि वह बहुत से हिंदी शब्दो और पर्याय का निस्संकोच प्रयोग करते है। मदभरी ऑखे, रोग, पापी, रतनारी, उदासी, अमृत, ध्यान, चितवन, मेल, जोगी, जटा, आसन, रसिया, आदि कितने ही शब्द है जिन के प्रयोग बराबर हुए है। यह बडी अच्छी प्रवृत्ति के सूचक है और यदि अन्य उर्दू कवि भी इस से उदाहरण ग्रहण करे तो बहुत ही अच्छा हो। भाषा की सादगी और सीधेपन के लिए 'असर' की प्रशसा होनी चाहिए। समालोचको के यहां यह एक प्रचलित कथन है कि शैली की सहजता और स्वभावोक्ति के गुण बड़े कलाकारो में ही मिलते है और कठिन, अप्रचलित शब्द और आडंबरपूर्ण शब्द-विन्यास नौसिखियो की चीजे है ---

(१) दिल इश्क़ की मै से छलक रहा है;
इक फूल है जो महक रहा है।
ऑखें कब की बरस चुकी हैं;
कौंदा अब तक लपक रहा है।

अब आए बहार या न आए;
आँखों से लहू टपक रहा है।
किस ने रहुमिए असर को छेड़ा ?
दीवार से सर पटक रहा है।

(२) न सुनना था जिस को आज उस को—
माजराए आलम सुना बैठे।
ध्यान किस से लगा हुआ है 'असर' ?
सोचते रहते हो यह क्या बैठे ?

(३) कोई दिल पर हाथ रख कर उठ गया;
हाथ अब दिल से उठाऊँ किस तरह ?
मेरे कहने में नहीं है दिल 'असर'
इस को समझाऊँ बुझाऊं किस तरह ?

(४) इधर देख लेना, उधर देख लेना;
फिर उन की तरफ इक नजर देख लेना।
वह मेरा न कहने में कह जाना सब कुछ;
वह उन का अचानक इधर देख लेना।

(५) जब सुना, यों ही सुना, तुम ने कि गोया न सुना,
फिर ग़लत क्या है कभी हाल हमारा न सुना !

(६) फेरता हू जो उधर से दिल को;
दिल उधर और चला जाता है।

(७) लहराता और लहरा गाता,
झरने का वह रसिया पानी।
मटका थिरका और गत नाचा,
अलबेला मतवाला पानी।
पेट को पकड़े मारे हँसी के,
घठा उट्ठा लोटा पानी।

डाली, डाली, पाती, पाती,
खूब ही झूला झूला पानी।

प्रकृति-वर्णन और दृश्यों का चित्रण कई उर्दू कवियो की रचनाओं में मिलता है। परतु इस प्रकार का विषय-चित्रण गजल छोड़ कर अन्य शैली के पद्यो में हुआ है। गज़ल का विषय मुख्यतया प्रेम माना जाता है जो उचित ही है। परतु फ़ारसी—और उर्दू—परंपरा ने प्रकृति से इतने सकेत और प्रतिमाएं ग्रहण कर लिए है कि गज़ल मे प्रकृति-चित्रण का होना परंपरा पर कुछ विशेष बड़ा आघात नहीं प्रतीत होता। सितारो की स्थिरता तथा अनुद्विग्नता, पतग की रति; बुलबुल का हृदय टूटना; बिजली का कहर; बहार की हवा द्वारा नवीन प्राण-संचार—यह तथा अन्य प्राकृतिक घटनाए प्रेम-काव्य मे बराबर दुहराई जाती रही है। परन्तु वह केवल उदाहरण के रूप मे, और उपदेश के अभिप्राय से वर्णित हुई है। प्रकृति के प्रति सहज उल्लास, उस के दर्शन मात्र से संतोष, स्वयं प्रकृति के लिए उत्साह—यह ग़जल मे मिलना दुस्तर है। 'असर' अपनी ग़जलों मे और गज़लो के द्वारा प्रकृति-चित्रण मे सफल हुए है। हमे बार बार प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण मिलेगे।

(१) भरी बरसात और यह घुप अँधेरा!
अँधेरा आप सर टकरा रहा है।

(२) सुहागिन रात का ढलता है काजल।

(३) वह जो न आए, बादल छाए,
गरजे, बरसे, खुल भी गए;
इस के सिवा हम हिज्र के मारे,
क्या जानें बरसातों को?

(४) सुन के पयाम सबा का, ग़ुंचे लरज़ लरज़ गए।
जब हो यह हाल नाज़ुकी, हाथ कोई लगाए क्यों?

(५) नाख़ुदा ने जब सुनाया मिज़दए साहिल मुझे।
बढ़ के हिम्मत ने कहा आग़ोशे तूफ़ा चाहिए

(६) है शाम का वक्त दम बखुद है साहिल;
कुहसार है छाया, है सकूते कामिल।
फितरत की खामोशियों में गोयायी है;
महफिल को है इंतिजार-ए-मीरे महफिल।

(७) परदे में रात के मुसकराती आई;
आगोश में गुल के लहलहाती आई।
अँगडाइयां लेती हुई जागी हर शाख़;
अलबेली बहार गुनगुनाती आई।

(८) हौल फिर ऐसी दिल में समाई,
गिरता पड़ता भागा पानी।
भूल के पीछे मुड़ के न देखा,
इस दरजा था सहमा पानी।
रफ़्ता रफ़्ता फिर था खिलँदरा,
नद्दी से छीटें खेला पानी।
सूझी समंदर से जो ठठोल,
ऐसा डूबा न उभरा पानी।

'असर' की कविता के विचारों पर ध्यान देने से पूर्व उन की सुंदर उपमाओं का रसास्वादन कदाचित् अनुपयुक्त न होगा।

(१) हसरतें दिल से यूं चलीं जैसे;
गोल उदासी फ़क़ीरों का जाए।

(२) हसरते अर्ज़ तमन्ना में जो लज़्ज़त है, न कुछ;
साज में इतने भरे नग़में की खामोश हुआ।

(३) यह शौक़ दीद में आँखों का रंग है जैसे;
अचानक आईने में आफ़ताब देख लिया।

(४) मस्त आँखों पर ग़नी पलकों का साया यूं था;
कि हो मखान पर घनघोर घटा छाई हुई

(५) झपकी जरा जो आँख, जवानी गुजर गई;
बदली की छाँव थी, इधर आई उधर गई।

इन उपमाओ की मौलिकता, नवीनता और उपयुक्तता प्रशसनीय है।

'असर' की कविता पढ़ने वाले के लिए यह स्वाभाविक है कि वह उन पक्तियो पर ध्यान दे जिन मे शराब और पाप के परिचित विषय लिए गए है। यत्र-तत्र ऐसे वर्णन मिलते है जिन में कवि ने कवि-धर्म की ओर सकेत किया है। फिर जीवन और उस की समस्याओ तथा मृत्यु के सबध में विचार मिलेंगे। उन के प्रेम-संबधी पद्यो का अतिम प्रभाव अबाध रूप से स्वस्थकर है। उन के दार्शनिक विचारो के विषय मे भी निवेदन करूँगा।

शायर है तो इस तरह तमाशाई हो;
फ़ितरत तेरे अंदाज की शैदाई हो।
आयात-व-इशरत का मर्कज़ हो दिल;
हर शै में नज़र, नज़र में गोयाई हो।

एक 'मकता' यह है—

जामे ख़ाली को छलकते कभी देखा है 'असर'?
शेर में जोश कहाँ, दिल में अगर जोश नहीं?

विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि वह मचाई, भावना की यथार्थता, को इतना महत्व देते है। उन की कविता मे कही बनावट या स्वाँग नही। ऊँची ध्वनि के शब्दो मात्र से कविता नही बनती, उस मे आत्मा का उद्गार होने की भी आवश्यकता है। सच्ची भावना से सहज उद्गार भी प्राप्त होता है। कवि की भावना तत्काल आनद या सुख में डूबी हो चाहे वेदना और उदासी मे, उस की सत्यता, उस का खरापन स्पष्ट है। वह केवल अपने मस्तिष्क से काव्य-रचना नही करता, इस कार्य में उस का हृदय, उस की संपूर्ण आत्मा सहयोग देती है। अपनी कला मे तन्मयता 'असर' की कविता का एक विशेष गुण है।

'वायज़' या उपदेशक ससार की अनित्यता की ओर सकेत करता है, ऐसे देश का वर्णन करता है जहा का गुलाब नहीं के दिन का चित्र खीचता है

जब कि पापियों का चीत्कार मात्र सुनाई देगा और न्यायकर्ता उन पर तीव्र दृष्टि डालता होगा। परंतु यौवन का प्रेम इन की चिंता नहीं करता। शराब का एक जाम सभी कातरता और भय को दूर करता है, और स्वर्ग के स्वप्नों से अच्छा है। पापी और पुण्यात्मा समान रूप से ईश्वर के प्राणी है और पाप भी ईश्वर की सृष्टि के भीतर की ही वस्तु है।

(१) जाते कहाँ खुदाई के बाहर गुनाहगार ?
तेरी ज़मीं न थी कि तेरा आस्मां न था ?

(२) ज़ाहिद ! ज़ाहिद ! ऐसे जशल मालूम ?
क्या मुझ को नहीं रंगे तबीयत मालूम ?
लुत्फ़ क्यों शाहिद से जो बे बहा हो,
मुँह उस को लगाएं हूरें, हज़रत, मालूम !

वे लोग जो पृथ्वी के सुखों का त्याग करते हैं, वह आने वाले सुख की लालसा से आकर्षित रहते हैं। जब कि हमारे चारों ओर इतना आनंद, सूर्य का प्रकाश और संगीत फैले हुए है, तब हमारे पक्ष में यह कितनी बड़ी कृतघ्नता होगी कि इन सब को छोड़ कर हम किन्ही नीरस, प्रेरणा-विहीन उपदेशों को ज्ञान-पट पर, बादल के अंधकार की छाया डालने दें !

(१) हमीं महरूम हैं इक जाम से अल्लाह ! अल्लाह !
दौर पर दौर तेरी बज़्म में चलते देखा।

(२) मेरी तौबा से तौबा है, पिला साक़ी, पिला साक़ी !
करूँगा खुम के खुम खाली दमे मैख़ाना आराई।

(३) शब की बेदारियां, अरे तौबा !
छुप के मैख्वारियां, अरे तौबा !
दौर उस नरगिसे खुमारी का,
अपनी सरशारियां अरे तौबा !

(४) तेरे होंठों का तबस्सुम, तेरी आँखों का खुमार।
उन को भी साक़ी शरीके जाम होना चाहिए।

(५) कुछ नाम पर उन के भी मैं आज लुटा साक़ी।
इक जाम की हसरत में जो उठ गए दुनिया से।

(६) ऐसी तौबा से तो मैख़ार ही रहना था, असर!
दिल पर इक हाथ है, इक हाथ में साग़र टूटा।

(७) उस पै भी छा रही है, मस्ती है।
मैकदे को जो राह जाती है।

(८) आमादा नहीं दिल मेरा तौबा शिकनी पर।
साक़ी अभी ज़िक्रे मये गुलफ़ाम किए जा।

(९) लाख नीयत की मगर वायज़ इसे क्या कीजिए?
जब ख़याले तौबा आया सामने जाम आ गया।

(१०) होने दो, अगर वा दरे मैख़ाना हुआ है।
साक़ी का तसव्वुर ही मये होशरुबा है।

(११) मुझे तो होश नहीं तू ही कुछ बता साक़ी।
करिश्मए निगहे मस्त है कि पैमाना?
न लड़खड़ाए क़दम हुक्म है यह साक़ी का;
शराब शौक से लबरेज़ दे के पैमाना।

उर्दू कविता में विशेष कर गजल में, हमें अधिकांश भाग्यवादिता मिलेगी, बेबसी, लाचारी, निरुपायिता की भावना दिखाई देगी। या तो मौन-रूप से सहन का भाव है, या निराशा का चीत्कार। कयामत के दिन भी क्षतिपूर्ति की कोई उम्मीद नही; अधिक से अधिक इस बात की आशा है कि माशूक कब्र पर आएगा। रोना और कलपना है। उमंग, आनंद, आशावादिता का अभाव है। जो नियति ने लिख दिया, लिख दिया। दर्द है, आहे है, माशूक को देख कर विस्मय है; वह माशूक भी कैसा, जिस पर धन, यौवन, बुद्धि तक सब कुछ निछावर है। ग़ज़ल का प्रभाव पढ़ने वालो पर कुछ इस प्रकार का पड़ता है। यह बात नही कि सूक्ष्म विभिन्नताएं न हों। कभी कभी हल्का सा मज़ाक मिल सकता है, माशूक के प्रति ईश्वरीय न्याय की धमकी और सफल प्रमी पर घात भी लेकिन सब कुछ मिला कर प्रभाव स्वस्थ सबल-

पूर्ण नही। यह भी सत्य है कि टिप्पणीकार जो कुछ भी कहे यह प्रेम वासनापूर्ण है और नीची सतह पर है, ईश्वरीय, पवित्र प्रेम नही। उर्दू की अधिकाश कविता छिछलापन और बनावटीपन के आरोप से नही बच सकती। परतु 'असर' की कविता में प्रेम मानवी होते हुए भी पवित्र है, ऊर्ध्वगामी और परमार्थिक तक है। उस में उत्कठा है, परतु ऐसी नही जो वासना की तृप्ति चाहे। तृप्ति तो नाश की ओर ले जाने वाली है। प्रेमी ओर प्रियतम के बीच का एक परदा उन्हे सदा अलग रक्खेगा :

हया शेवए हुस्न, अदब शर्ते उल्फ़त;
मिले भी तो आपस में परदा रहेगा।

कुछ और पक्तिया 'असर' की लीजिए —

(१) इश्क साकी, इश्क़ मुतरिब, इश्क़ मस्ती, इश्क मै;
इश्क ही पैमानए मैख़्वार होना चाहिए।

(२) दिल मुझे सम्हाले था, दिल को मै सम्हाले था।
नागहां हवा आई जानिबे गुलिस्तां से।
कोई तो शफक समझा कोई गर्द रंग आलूद।
दूर 'असर' बहार इतनी गुज़री अह्ले ज़िदां से।

(३) आगाह नहीं इश्क़ के आगाज़ से कोई।
क्या राज़ है वाक़िफ नही इस राज़ से कोई।
दुज़दीदा निगह, लब पै हँसी, आँखो में शोख़ी।
फिर देख ले मुझ को उसी अंदाज़ से कोई।

(४) मुझ को जवाब साफ न दे इल्तिमास का,
आबाद रहने दे चमन उम्मीदो यास का।

(५) हुआ तो हश्र के दिन उन का सामना लेकिन।
हुजूमे आम में क्या अर्ज़े मुद्दआ करते?

(६) पूछने वाले! तूने पूछा, लुत्फ़ करम, इहसान किया।
लब पर आए हर्फ़े तमन्ना, इश्क के यह आदाब नहीं।

(७) न घबराओ असीरो फिर चमन में आशियां होगा।
गुल अपना बाग़ अपना और अपना बाग़बां होगा

(८) तासीर दर्दे दिल में यारब कहां की भर दी;
उस ने भी आज आखिर चुपके से आह कर दी।

(९) मजाके इश्क़ हो कामिल तो सूरते शबनम;
किनार गुल में रहे और पाकबाज़ रहे।

(१०) अपनी वफा न उन की जफ़ाओं का होश था।
क्या दिन थे जब कि दिल में मुहब्बत का जोश था।

(११) वही उन से कह रहा हूं कि जो उन का मुद्दआ है।
नहीं मिस्ले दिल ज़बां पर भी अब अख्तियार अपना।

(१२) बैठा हूं रहगुज़र में लिए जिन्से आशिक़ी;
इस से ग़रज़ नही कि ख़रीदार कौन है।

(१३) हिज्र में राहत ही राहत है नसीब;
दर्द दिल में लब पै तेरा नाम है।

(१४) मैं आग में अपनी जलता हूं, मैं आप ही अपना शैदा हूं।
परवाने अपने होश में रह, क्या मुझ को इश्क सिखाता है।

(१५) कौन असर की नज़र में समाए;
देखी है उस ने तुम्हारी आँखें!

(१६) कुछ भी न नज़र आए, यों महवे तमाशा हो।
फिर देख असर, तुझ को, क्या क्या नज़र आता है।

(१७) मैं क्या सुनाऊं दर्दे मुहब्बत का माजरा;
हद हो गई कि तुम से शिकायत नही रही।

(१८) कभी सुन ले कि दिलकश दास्तां है।
ज़बां मेरी है और तेरा बयां है।

(१९) हाल पूछा था तो इस तरह न पूछा होता;
रह गई अर्जे तमन्ना की तमन्ना मुझ को।

(२०) यहीं सब को फिर-फिर के आना पड़ेगा।
मुहब्बत को मरकज़ बनाना पड़ेगा

(२१) उन को समझाता है आते हैं जो समझाने को;
कौन दीवाना कहेगा तेरे दीवाने को ?

(२२) मैं तसल्ली से तेरी बाज आया;
सब कुछ और चला जाता है।

(२३) वस्ल हासिल नही तो मुमकिन है;
जो भी दिन है वह ईद का दिन है।

'असर' की रचना मे ऐसे अनेक स्थल मिलेगे जहा उन्हो ने जीवन की समस्याओ पर विचार किया है और जिन से हमे कवि की दृढ आशावादिता का पता चलता है। कवि के अनुसार कर्तृत्व, परिवर्तन, प्रगति, यही जीवन है। वह अपने मतव्यो को हठधर्मी की भाँति नही वरन् प्रिय, मोहक शब्दो मे प्रस्तुत करते है। वह, अपने पाडित्य का प्रदर्शन नहीं करते। उन के स्फुट शब्दो और वाक्यो मे भी शक्ति और मोहनी है और मुझे ऐसा जान पडता है कि उन के विचार अतत अदिस्टिपस द्वारा सचालित 'सीरिनेक' मत के निकट है, जिस के सबध मे फेरियर ने यह सक्षिप्त विवेचन किया था। "मानवता का सच्चा महाकाव्य, वह महाकाव्य जो कि समय के आदि से अत तक निरतर विकास पा रहा है, वह महाकाव्य जो कि नित्य समस्त मानवो के हृदय से बाहर आ रहा है---कभी आनद की तानो मे मिला हुआ, लेकिन बहुधा दु.ख के चीत्कार में, आँसुओं मे और मिटी हुई आशाओ के रूप मे---यही तो वह स्वर्ग है जिस की खोज होनी है ?" जीवन के अनतर जीवन मे अथवा मृत्यु के अनतर जीवन मे क्या रक्खा है ? हमारे पास का कण-कण जीवन की मदिरा से चमक रहा है —

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए ?
जिंदगी का जिंदगी पैग़ाम होना चाहिए।

यहां कुछ पक्तिया उद्धृत की जाती है जिन मे यह विचार स्पष्ट किए गए है। कुछ पद्य तो उक्तियो के रूप मे ऐसे है मानो जीवन के पाषाण से गढ कर बने हो।

(१) खुद लिपटी रही दुनिया उस से;
जिस से दुनिया को कोई काम न था

(२) पूछिए किस से कि मंज़िल दूर या नज़दीक है ?
कारवां मिलता है, मीरे कारवां मिलता नहीं।

(३) रात अंधेरी, सख़्त मंज़िल, रास्ता दूरोदराज़।
ऐ मेरे अल्लाह थोड़ी रोशनी मेरे लिए।

(४) बहुत दैरो हरम की खाक उड़ाई;
अब अपना ही परस्तिशख़ाना बन जा।
हर एक मंज़िल को ठुकराता हुआ चल;
पयामे हिम्मते मरदाना बन जा।

(५) सहर होने को आई जाग अब भी ख़्वाबे ग़फ़लत से।
रहेगा मुंतज़िर तेरा अमीरे कारवां कब तक ?

(६) हम किनार बहार हो कर मौज तूफ़ां-ख़ेज़ हो;
पस्त हिम्मत के लिए आग़ोश साहिल चाहिए।

(७) समझ में कुछ नहीं आता तिलिस्मे बूद ओ नाबूद;
न था तो क्या था, 'असर' और हूं तो क्या हूं ?

(८) फ़रयाद का शेवा कोई नहीं;
बेकस का सहारा कोई नहीं।
कुछ देख लिया इस दुनिया में;
कुछ हश्र में देखा जायगा।

(९) दिल में हिम्मत है अगर छोड़ दे साहिल का ख़याल।

(१०) तमाम नशा था अब सर-बसर ख़ुमार हूं मैं;
ख़िज़ां न मुझ को समझ हासिले बहार हूं मैं।

(११) कुछ न कुछ हो ही रहेगा हिम्मते दिल बरकरार;
मौज है, गिरदाब है, क्या ग़म अगर साहिल नहीं।

(१२) ज़माने को इक रंग पर किस ने देखा ?
बदलता रहा है, बदलता रहेगा।

(१३) ख़ून के आँसू जो न रुलाए;
एसी कोई उम्मीद न होगी।

(१४) शल न हो पाए तलब, टूटे न हिम्मत ऐ दिल;
और दो गाम ! सदा देती है मंजिल मुझको ।

(१५) ना खुदा ने जब सुनाया मिज़दए साहिल मुझे;
बढ़ के हिम्मत ने कहा, आगोशे तूफां चाहिए ।

(१६) तेरे होने की इक दलील हूं मैं ।

(१७) जो राह चले हम वही तकदीर चली ।

(१८) बेकार है फिक्र उम्रे फानी क्या है;
क्या शै है गम और शादमानी क्या है ।
इस बज़्म में तिश्नाकाम रह कर उठ जा;
खुल जायगा राज़ जिंदगानी क्या है ।

एक और उद्धरण 'असर' के जीवन के प्रति दृष्टिकोण को सूचित करने के लिए पर्याप्त होगा।

हिजाबाते तऐउन दरमियां से उठते जाते हैं;
अदम पर छूट पड़ती है शुआए जिंदगानी की ।
शिकस्ते रंग हस्ती से नुमायां रंग हस्ती है;
फ़ना तालीम है दरसे हयाते जावेदानी की ।

जैसा इन पक्तियो से स्पष्ट है 'असर' इस जीवन मे और अपर जीवन मे कोई भेद नही स्वीकार करते। ऊपर के आवरण को हटा कर देखिए। वास्तविकता एक है। अनन्त जीवन को प्राप्त करने का साधन फना है, अर्थात् निष्काम कर्म। ऐसे दृढ़ और सबल विश्वासो को धारण करते हुए 'असर' वास्तव में ससार के प्रति एक दार्शनिक का दृष्टिकोण रखते है।

हिंदी कविता की प्रगति

[लेखक—श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी]

(१)

उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध—'हरिश्चंद्र-युग'।

हमारे साहित्य मे हरिश्चद्र-युग रीति-काल का अतिम युग है। साथ ही, वर्तमान हिंदी-साहित्य के पृष्ठभाग का प्रथम स्तर भी वही है। वह प्राचीन और नवीन के समन्वय का युग है। वह हमारे साहित्य का पूर्ण प्रभात नही बल्कि उष काल है, जहा रीति-युग की साहित्यिक सध्या की अंतिम परिणति और नवीन युग के राष्ट्रीय प्रभात की पूर्व-सूचना है। हरिश्चद्र-युग ने रीति-काल की काव्य-कला को पूर्वजो के थाती-स्वरूप अपनाया, साथ ही नवीन सपत्ति के अर्जन-स्वरूप उस ने उन्नीसवी शताब्दी की सामाजिक और राजनीतिक चेतना से साहित्य के लिए नए उपकरण भी लिए। चूँकि नवीनता के लिए वह प्रथम प्रयास था इस लिए उस युग मे साहित्य के नए उपकरण विशेष नही, पुराने उपकरण ही अधिक है—भारतेदु तथा उन के युग के अन्यान्य साहित्यिको की गद्य-कृतियो मे।

राजनीतिक चेतना ने सभा-सोसाइटियो को जन्म दे कर गद्य को प्रधान बना दिया था, फलत हरिश्चद्र-युग ने भी गद्य को अपना लिया। वह साहित्यिक रूढ़िवादी होने के कारण कविता मे परिवर्तन करने को विशेष तैयार न था, किन्तु एक अतिथि के रूप मे गद्य को अपना लेने मे उसे सकोच न हुआ। साहित्य मे बकिम का उदाहरण उस के सामने था, अतएव नवीन पुकार सुनाने के लिए उसे भी कुछ सबल मिल गया। अपने काव्य से वह सतुष्ट था, निदान नवीन कला के लिए उस ने नाटकों और कहानियों के रूप मे कथा-साहित्य को ही चुन लिया।

इस के बाद बीसवी शताब्दी का आरभ होता है, यहा साहित्य मे प्राचीन और नवीन की सधि टूटने-सी लगती है—देश मे केवल नवीन युग का प्रभात चमकने लगता

है। साहित्य मे, समाज मे, देश मे, केवल नवीनता ही नवीनता की पुकार गूंज उठती है, प्राचीनता के प्रति असतोष हो जाता है। फलत रीति-काल की कविता और ब्रजभाषा दोनो को विदाई दी जाने लगी। किंतु ब्रजभाषा के चले जाने पर हिंदी-कविता सूनी पड रही थी, नवयुवको का भावुक हृदय काव्य-विहीन कैसे रहता? इधर गद्य मे खडीबोली सशक्त हो रही थी, नवयुवको ने कविता मे उसे ही स्थान दे दिया। यही द्विवेदी-युग है, वर्तमान खडीबोली की कविता उसी की देन है।

मध्यकाल के इतिहास की समाप्ति के साथ ब्रजभाषा की कविता के पतझड मे खडीबोली का जो नवीन वसत पल्लवित हुआ, उस ने शृगार के शयन-कक्ष की ओर नही देखा। वह नवीन अभिमन्यु सीधे राष्ट्रीय सग्राम मे चला गया। जाने से पूर्व उस ने अपनी सस्कृति के अनुसार प्रभु-स्तवन किया, पूर्वजो के आदर्शो का स्वस्ति-वचन श्रवण किया, और इस बार उस ने अग्निबाण ले कर नही, मानव-परित्राण का व्रत ले कर राष्ट्र तथा साहित्य मे प्रवेश किया।

हा तो, खडीबोली की कविता पहले भक्ति और राष्ट्रीयता को ले कर उद्गत हुई। हमारे काव्य मे पहले सूर और तुलसी जगे, फिर तिलक, गोखले और गाधी भी। भक्ति और राष्ट्रीयता ने शृगार-मलिन नेत्रो को स्वच्छ करने मे 'बोरिक-एसिड' का काम किया। नवीन दृष्टि प्राप्त होने पर हमारे समाज ने अपने आदर्शो के अनुसार अपना नवीन आत्म-विस्तार किया। भक्ति और राष्ट्रीयता की दिशा मे हमारे सार्वजनिक अभाव बोलते रहे, नवीन आत्म-विस्तार मे हमारे भाव भी बोलने लगे। काव्य का कठ भक्ति और राष्ट्रीयता तक ही सीमित न रह कर दैनिक जीवन के प्रसार की भाँति मुक्त हो गया। गुप्त जी के उत्तरकालीन काव्य तथा छायावाद की रचनाए इसी नवोत्कर्ष के उदाहरण है।

द्विवेदी-युग में भी कुछ वयोवृद्ध कवि हरिश्चंद्र-युग के अवशिष्ट प्रतिनिधि-स्वरूप रहे, जिन मे उपाध्याय जी, रत्नाकर जी, और श्रीधर पाठक जी गण्यमान्य है। उपाध्याय जी और पाठक जी हरिश्चंद्र-युग और द्विवेदी-युग के बीच के है, गुप्त जी द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के बीच के। उपाध्याय जी ने 'प्रिय-प्रवास' द्वारा खडीबोली का साथ दिया। 'रस-कलश' द्वारा ब्रजभाषा का। रत्नाकर जी आजन्म ब्रजभाषा के हामी रहे। अपने अतिम साहित्यिक-जीवन में उन्हों ने खडीबोली के भी दो चार पद्य लिखे किंतु कौतूहल

वश। पाठक जी ने अपनी काव्य-कृतियों द्वारा ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों का एक तत्कालीन परिधि की सुरुचि मे साथ दिया।

(२)

सर्वश्री स्वर्गीय श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह जयशंकर 'प्रसाद', माखनलाल चतुर्वेदी, एक भारतीय आत्मा', रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर पाडेय द्विवेदी-युग के आदरणीय कवि हैं। इस युग मे दो प्रवृत्तियो का दर्शन मिलता है—एक मे पौराणिक सस्कृति और मध्यकालीन काव्य-कला का विकासोन्मुख प्रकाशन है, दूसरी मे केवल हार्दिक भावो का नवीन कला-प्रस्फुटन। पहली के अतर्गत पाठक जी, उपाध्याय जी, गुप्त जी और ठाकुर साहब है, दूसरी के अंतर्गत 'प्रसाद' जी, चतुर्वेदी जी, सियाराम जी, त्रिपाठी जी और मुकुटधर। इन दोनो प्रवृत्तियो मे कुछ साम्य भी है—प्रथम विभाग के सभी कवियो ने स्वतत्र हार्दिक भावो को भी अपनाया, द्वितीय विभाग के कवियो ने यत्किंचित् सामयिक राष्ट्रीय भावो को भी विशेषत चतुर्वेदी जी, त्रिपाठी जी, सियाराम जी ने। कारण, काव्य-प्रेरक गुप्त जी हैं। कविता और राष्ट्रीयता दोनो के प्रतिनिधित्व का श्रेय वर्तमान खड़ीबोली मे उन्ही को है। प्रथम विभाग के कवियों मे यदि गुप्त जी अग्रणी हैं तो द्वितीय विभाग मे प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी। गुप्त जी ने खड़ीबोली की स्वाभाविकता को जगाया, प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी ने उस की भावुकता को। प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी के बाद जो नवयुवक भावुक कवि उत्पन्न हुए, उन्हो ने भी खड़ीबोली का अनुराग गुप्त जी की रचनाओ से पाया, क्योंकि प्रसाद जी और चतुर्वेदी जी की भावुकता को धरातल पर आने के लिए प्रथम-प्रथम गुप्त जी का काव्य-साहचर्य आवश्यक था और सच तो यह कि खड़ीबोली की कविता का व्याकरण उन्ही की रचनाओं में था, बिना उन्हे जाने कोई आगे जा ही नही सकता था।

(३)

द्विवेदी-युग मे खड़ीबोली की कविता के सीनियर कवि पाठक जी, उपाध्याय जी, और गुप्त जी है।

वर्तमान-हिंदी-कविता मे नवीनता का श्रीगणेश करने का प्रयत्न पाठक जी ने किया अग्रेजी के साहचर्य से गुप्त जी ने बगला के साहचर्य से किंतु पाठक जी ने

स्वतंत्र रचनाएं उतनी नहीं दी जितनी कि गोल्डस्मिथ की अनूदित रचनाएं। गुप्त जी ने स्वतंत्र रचनाएं भी अधिक दीं, और माइकेल के प्रचुर काव्यानुवाद भी। पाठक जी खड़ी-बोली को निखार न सके, ब्रजभाषा के मोह ने उन की खड़ीबोली को एक मिश्रित भाषा का रूप दे दिया। उन का ब्रजभाषा-मोह देख कर ज्ञात होता है कि नवीनता के नाम पर वे ब्रज-भाषा में अंग्रेजी के क्लासिकल स्कूल की कला के एक प्रतिनिधि थे। अंग्रेजी शासन आज की अपेक्षा यदि मध्ययुग में ही आ गया होता तो ब्रजभाषा के काव्य का जो अप-टू-डेट रूप होता, वही पाठक जी की कविता में है।

गुप्त जी ने खड़ीबोली को खड़ीबोली के रूप में ही साजा। उन्हों ने खड़ीबोली को विशुद्ध, सुंदर और प्रवाहपूर्ण बनाया। गुप्त जी ने खड़ीबोली को ओज दिया, ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने माधुर्य। गुप्त जी ने ओज के साथ ही भावों और छंदों को भी यथा-संभव विविधता और विपुलता दी। ठाकुर साहब ने मध्य-काल की मर्यादा के भीतर एक नवीनता 'माधवी' में उत्पन्न की। 'माधवी' की कला इस अर्थ में नवीन है कि उस में खड़ी-बोली की भाषा और खड़ीबोली के अनुरूप एक कोमल भावना है, किंतु छंद (कवित्त और सवैया) तथा आलंबन अधिकांशत मध्यकालीन हैं। ब्रजभाषा के ये परिचित छंद और आलंबन खड़ीबोली में भी कितना संगठित हो सकते हैं, इस का निदर्शन पहले-पहल 'माधवी' द्वारा ही हुआ, यह मानो रत्नाकर जी के लिए खड़ीबोली का निमंत्रण था। कतिपय ब्रज-भाषा प्रेमी किंतु खड़ीबोली के नवयुवक कवियों द्वारा 'माधवी' का अनुसरण भी हुआ। गुप्त जी द्वारा खड़ीबोली के मंज जाने पर ठाकुर साहब का सर्वाधिक सराहनीय प्रयत्न भाषा को सरल-कोमल बनाने का रहा। वृंदावन का एक मध्यकालीन भक्त बीसवीं शताब्दी के द्वार पर आकर जब अपना कंठ प्रस्फुटित करेगा तो उस की भाषा वह होगी जो ठाकुर साहब की खड़ीबोली में है।

द्विवेदी-युग में आवश्यकता इस बात की भी थी कि जिस प्रकार ओज को ले कर गुप्त जी ने काव्य-कला के अंतरंग और बहिरंग को नवीनता और विस्तीर्णता दी, उसी प्रकार माधुर्य को लेकर भी कोई कवि अग्रसर होता। इस आवश्यकता की पूर्ति आगे चल कर छायावाद-स्कूल ने की। छायावाद स्कूल में पंत जी उसी प्रकार लोकप्रिय हुए, जिस प्रकार द्विवेदी-युग में गुप्त जी। इस पर्वतीय कवि ने ही खड़ीबोली में पहाड़ों की स्वर्गिक

सुषमा भर दी, अपने हृदय के मधु से उसे मधुमय कर दिया, खड़ीबोली में रूप-रस-गंध भर दिया। यह कहने को नहीं रहा कि खड़ीबोली तो खुरदुरी है।

(८)

उपाध्याय जी का काव्यादर्श चिर प्राचीन रहा। हरिश्चन्द्र-युग में गद्य में, जो जाग्रत सामाजिक आदर्श तथा काव्य में ब्रजभाषा का मध्यकालीन माधुर्य भाव था, उन्हीं दोनों की एकता से उन्हों ने 'प्रिय-प्रवास' की रचना की। उपाध्याय जी सुव्यक्त भावना के कवि हैं, आँसुओं की भाँति सजल-कोमल। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी का अंत और बीसवीं शताब्दी का प्रारंभ चिंतना से हुआ। उपाध्याय जी जिस कोमल-कांत भावना के कवि हो कर चले, उस समय उस माधुर्य-भाव के लिए खड़ीबोली की भाषा मँज न सकी थी। यही कारण है कि 'प्रिय-प्रवास' की भाषा और श्रीधर पाठक की रचनाओं की भाषा में खड़ीबोली की पूर्ण स्वच्छता नहीं है। चिंतना के लिए खड़ीबोली गद्य में मँज चली थी। गुप्त जी चिंतना के पथ पर चले, फलतः वे विशेष कृतकार्य हुए।

उपाध्याय जी करुणा के कवि हैं। वस्तु-जगत के कवि नहीं, बल्कि भाव-जगत में प्रकृति-पुरुष के बीच व्याप्त विरह (ट्रेजेडी) के कवि हैं- मानो सूक्ष्मतम सजलता के कवि हों।

'प्रिय-प्रवास' के बाद, उस की भूमिका में 'वैदेही-वनवास' लिखे जाने की सूचना उन की इसी कोमल रुचि की सूचक थी। उन का 'प्रिय-प्रवास' 'विरहिणी-ब्रजांगना' ही होने लायक था, क्योंकि इस काव्य में पंचदश सर्ग ही अन्य सर्गों की अपेक्षा अधिक मर्मव्यंजक है। अन्य सर्ग या प्रसंग तो इस में आलबाल मात्र हैं। उपाध्याय जी की करुण-वृत्ति 'प्रिय-प्रवास' जैसे महाकाव्य के बजाय एक मार्मिक खंडकाव्य की अपेक्षा रखती थी।

उपाध्याय जी ने व्यावहारिक आदर्श के लिए 'प्रिय-प्रवास' में यथार्थवाद का चित्रपट ग्रहण किया है। कृष्ण-चरित्र के अंकन में वे देश-सेवा के सामयिक आंदोलनों से प्रेरित थे। किंतु जिस काल (उन्नीसवीं शताब्दी के अंत) की देश-सेवा से वे प्रेरित थे, उस काल का क्षेत्र परिमित था, उसी के अनुरूप उन्हों ने प्रभु कृष्ण का मानव-पक्ष दिखलाया। उस समय हमारे सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाएँ नहीं आई थीं। स्त्री-शिक्षा का आंदोलन शुरू हो चुका था, फिर भी पुरुष की भाँति नारी भी कर्म-क्षेत्र में अग्रसर हो, यह दूर का स्वप्न था। इसी लिए 'प्रिय प्रवास' में हम राधा का कोई नवीन विशद चरित्रांकण

नही पाते उस म राधा का सवा भाव माधुय भाव का रक्षा के लिए ह उम युग की नारी इस से अधिक और क्या करती ? यदि उपाध्याय जी आज 'प्रिय-प्रवास' लिखते तो उस का कुछ और ही स्वरूप हो जाता।

करुणा की शांति लोक-सेवा मे है, इसी लिए 'प्रिय-प्रवास' मे कृष्ण कर्मठ रूप मे दिखाए गए हैं। राम के जीवन मे जो लोक-मगल का भाव है, वही 'प्रिय-प्रवास' मे भी दिखाने का प्रयत्न किया गया। किंतु कृष्ण की उपासना हमारे यहा माधुर्य-भाव मे ही की गई, अतएव उपाध्याय जी भी विप्रलभ शृगार मे ही मार्मिक रहे। कृष्ण के लिए लोक-सग्रह-जैसे सार्वजनिक पथ पर चलने का सौकर्य उन्हे पूर्ववर्ती कवियो से प्राप्त नही था, इसी लिए वे कृष्ण के लोक-चरित्र को अकुरित ही कर सके, विकसित नही।

गुप्त जी को राम के लोक-चरित्र-चित्रण के लिए अपने पूर्ववर्ती कवियो से भी साधन प्राप्त था। इस के अतिरिक्त, 'साकेत', 'द्वापर', 'अनघ', 'यशोधरा', 'त्रिपथगा', 'स्वदेश-सगीत' उन्हो ने उस युग मे लिखा, जब गाधी का भारत चतुर्दिक जग चुका था, मनुष्यता के विकास के आयोजन सचेष्ट हो गए थे; अतएव उन्हो ने अपने पौराणिक काव्यो मे नव-प्रबुद्ध भारत का पूर्ण उपयोग किया। उन्हो ने प्राचीनता मे नवीनता ला दी। वे साहित्य और सस्कृति दोनो ही दृष्टि से हिंदी के राष्ट्रीय प्रतिनिधि हुए। जिस नए चिंतित युग को 'प्रिय-प्रवास' द्वारा उपाध्याय जी ने छूना चाहा, वह गुप्त जी का ही आलबन था। उपाध्याय जी केवल कवि है, गुप्त जी वैतालिक भी।

उपाध्याय जी की भाँति श्रीधर पाठक जी भी कोमल रस के कवि थे। पाठक जी की तरह ही यदि उपाध्याय जी भी अपने एक मात्र रस मे रमे रहते तो आज उन के रचना-प्रसूनो का कुछ और ही मधु-गध होता। पाठक जी भी भावना के कवि थे, उन्हो ने जहा चिंतना को ग्रहण करने का प्रयत्न किया वही कविता विडबना मे पड गई, किंतु अपने जीवन का अधिकाश उन्हो ने भावना की ओर ही लगाया। किसी कवि के लिए सब से बडी बात यह है कि वह आत्म-निरीक्षण करके अपने साध्य पथ का सधान कर ले। प्रत्येक कवि की अपनी अपनी विशेष साधना होती है, उसी विशेष साधना को सफल करना ही कवि के काव्य की सफलता है।

(५)

खडीबोली का प्रथम यौवन नतत्व ले कर आया था गुप्त जी उस के नता थ

मस्तिष्क थे, द्विवेदी जी प्रोत्साहक और आशीर्वादक। उस समय खड़ीबोली को शक्ति देने के लिए मस्तिष्क की ही आवश्यकता थी। किंतु इस बीसवीं शताब्दी का एक दूसरा यौवन भी जागरूक रहा, यह केवल हृदय का यौवन था। इस का बाल्यकाल उपाध्याय जी के 'प्रिय-प्रवास' में है, और पाठक जी और ठाकुर साहब की रचनाओं में भी। प्रसाद और माखनलाल इसी यौवन के नवोदित अगुआ थे। मस्तिष्क-पक्ष द्वारा खड़ीबोली को सुरक्षा मिल जाने पर ही यह दूसरा यौवन गतिशील हुआ।

प्रसाद जी और माखनलाल जी की रचनाओं ने खड़ीबोली के उस कल्पवृक्ष में जिसे द्विवेदी-युग के कवियों ने लगाया था, छायावाद की दो शाखाएं बनाई। प्रसाद जी कालिदास की कला लेकर चले, माखनलाल जी मध्यकाल का माधुर्य-भाव। देश-काल की साहित्यिक-प्रगति से दोनों की अभिव्यक्तियों ने नवीनता ली।

प्रसाद जी की कला आधुनिक पश्चिमीय काव्य-कला के सहयोग में है; माखनलाल जी की अभिव्यक्ति उर्दू के तर्ज़-बयां में कुछ मध्यकालीन। एक की भाषा सांस्कृतिक हिंदी है, दूसरे की भाषा अंशतः हिंदुस्तानी। एक में भाव-विदग्धता है, दूसरे में वाग्विदग्धता। प्रसाद जी, अधिकांशतः भावना के कवि हैं, चतुर्वेदी जी चिंतना के। चिंतना को उन्हों ने एक मुक्तक-परिमाण में गुप्त जी की अपेक्षा कुछ और कवित्व दिया।

प्रसाद जी ने जिस छायावाद का प्रवर्तन किया, उसे अपनी अपनी रसात्मकता में विविध रूप से सिंचित-पुष्पित करने वाले कवि हैं सर्वश्री—मुकुटधर पांडेय, गोविंदवल्लभ पंत, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा इत्यादि। चतुर्वेदी जी की काव्य-धारा के अंतर्गत—सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, गोकुलचंद्र शर्मा, जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद', गुरुभक्त सिंह, गोपालसिंह नैपाली 'शाखाल', 'बच्चन' इत्यादि। 'नवीन', 'मिलिंद', नैपाली, बच्चन' तथा सी० पी० स्कूल के तरुण कवियों ने यथास्थान दोनों स्कूलों के बीच संयोजन भी किया है, विशेषकर पंत अथवा महादेवी की कला के साथ। छायावाद के सद्य. नवयुवक-कवियों में से कोई कभी चतुर्वेदी जी की शाखा के किसी कवि के साथ, कभी प्रसाद शाखा के किसी कवि के साथ अपने मन का रंग मिला कर चित्र लिखते हैं। इस से कला तो दूसरे कवि की प्रधान रहती है, भाव अपना रहता है, अर्थात् भिन्न शरीर में निजी हृदय। एक अन्य प्रकार के वे कवि हैं जिन्होंने प्रसाद और चतुर्वेदी-शाखा के किसी एक या एकाधिक कवि की कला को मिश्रित

कर ऐसी स्वतत्र पदावली बना ली है जो मिश्रित होकर भी अमिश्रित-सी है। मिश्रण और अमिश्रण के अतिरिक्त ऐसे भी नवयुवक कवि हैं जिन्हों ने प्रसाद ग्रुप के किसी एक मनोनुकूल कवि की ही कला को ले कर अपना हृदय प्रवाहित किया है, प्रधानत प्रसाद, पत, या महादेवी मे से किसी एक की कला को। इस प्रकार के कवियो पर सब मे पहले पत का प्रभाव अधिक पडा इस के बाद गीति-काव्य के क्षेत्र मे महादेवी का।

प्रसाद और माखनलाल की काव्य-धाराओं का अतर भावना तथा चिनना का है। जिन्हो ने दोनों कूलों से सहयोग किया उन्हो ने भावना और चिनना का सम्मिश्रण किया। किंतु द्विवेदी-युग से ही भावना और चिनना का एक मिश्रण सास्कृतिक स्वरूप मे गुप्त जी की कविताओ द्वारा चला आ रहा था।

अतएव, गुप्त जी के बाद, एक कवि-समूह वह है जो प्रसाद और माखनलाल-स्कूल की कला के सयोजन मे नही, बल्कि अपनी स्वतंत्र मनोधारा से भावना और चिंतना को स्वरूप देता आया है। ऐसे कवियो मे सर्वश्री रामनरेश त्रिपाटी, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' और इलाचद्र जोशी है। जिस प्रकार खडीबोली को गुप्त जी ने ओज और पत जी ने माधुर्य दिया, उसी प्रकार इस मनोधारा मे निराला जी ने ओज और जोशी जी ने ठेठ लालित्य का परिचय दिया।

भावना और चिनना के संमिश्रण की आवश्यकता भाव-जगत और वस्तु-जगत के एकीकरण के लिए पड़ती है। यह एकीकरण निराला जी ने गुप्त जी की भाँति वैष्णव सस्कृति के माध्यम से भी किया और 'युगात' मे पत जी ने, तथा 'कामायनी' में प्रसाद जी ने भी अपने-अपने ढग से। प्रसाद जी ने उन मनोवृत्तियो का पौराणिक रूपक ग्रहण किया जो विश्व-जीवन के सचालन मे सुदर सहायक है, पत ने उन भावनाओ को जो युग की शिराओ में सद्यः सजग हैं।

(६)

द्विवेदी-युग और छायावाद-युग की कविता मे कुछ भाव-साहचर्य होते हुए भी कला की व्यजकता मे अतर था—

निशात में तू प्रिय-स्वीय कांत से

पुन: सदा है मिलती प्रफुल्ल हो

परंतु होगी न व्यतीत ऐ प्रिये,
भवीय घोरा-रजनी-वियोग की।

—हरिऔध

विजन निशा में किंतु गले तुम
लगती हो फिर तरुवर के,
आनंदित होती हो सखि! नित
उस की पद-सेवा करके।

और हाय, मैं रोती फिरती
रहती हूं निशिदिन वन-वन,
नहीं सुनाई देती फिर भी
वह वंशी-ध्वनि मनमोहन!

—पंत

तरुशिखा पर थी अवराजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

—हरिऔध

तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग[1]
उड़ गया, खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा-नीड़ में रे किस मग!

—पंत

पूरा-पूरा परम प्रिय का मर्म मैं जानती हूं;
है जो वाञ्छा विशद उर में जानती भी उसे हूं।

—हरिऔध

---

[1] प्रकाश

मौन है, पर पतन में—उत्थान में,
वेणु-वर-वादन-निरत विभु गान में।
है छिपा जो मर्म उस का समझले
किंतु फिर भी है उसी के ध्यान में।

—निराला

अपने सुख में मस्त जगत को
कर न तनिक भी कभी दुखी;
दुखिया का दुख वह क्या जाने
जो रहता है सदा सुखी।

—गोपालशरण सिंह

खाली न सुनहली सन्ध्या
मानिक मदिरा से जिन की,
वे कब सुनने वाले हैं
दुख की घड़ियाँ भी दिन की।

—प्रसाद

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी-युग का पद्योन्मुख गद्य भी काव्य की ललित संज्ञा (रसात्मकता) ग्रहण करने में संलग्न रहा। उस युग का काव्योत्कर्ष छायावाद युग मे गुप्त जी के 'साकेत', 'यशोधरा' इत्यादि काव्यो तथा ठाकुर साहब की 'कादंबिनी' और सियारामशरण जी की कविता-पुस्तको में प्रकट हुआ, इन कवियो ने द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के कला-पार्थक्य को यथासंभव ऐक्य दिया।

(७)

द्विवेदी-युग के कवि द्विवेदी-युग की प्रगति से ही चले। द्विवेदी-युग की प्रगति अतर्प्रांतीय साहित्यो के सहयोग मे थी, जिन मे उन्नतिशील बँगला साहित्य नवीनता के लिए अपनी ओर विशेष आकर्षण रखता था। चूँकि खडीबोली का आरंभ ताजा था, उस के सामने रीति-काल की कविता की परपरा का तक़ाज़ा भी चला आ रहा था इस लिए

साहित्य-क्षेत्र में द्विवेदी-युग एक विशेष प्रकार की संस्कृति और कला के बंधन से बंधा हुआ धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा था। उस की प्रगति एक वयोवृद्ध सुधारक की-सी थी, न कि एक नवोद्बुद्ध उद्योगी की-सी, इसी लिए उस की मंथर गति माइकेल-काल की-सी बंगीय साहित्यिक नवीनता की ओर बढ़ रही थी। माइकेल ने अपने समय में जो कलात्मक नवोद्बुद्धता दिखलाई वह मध्यकालीन पूर्वीय और पश्चिमीय काव्य-साहित्य के आधार पर निर्मित नवीनता थी।

माइकेल के बाद बंगीय काव्य में नव-प्रवर्तन का श्रेय रवींद्रनाथ ठाकुर को है। रवि बाबू ने भी 'भानुसिंह पदावली' द्वारा मध्यकालीन परंपरा के आधार पर ही नवीनता उत्पन्न करने का प्रारंभिक प्रयत्न किया, परंतु उन्हें इस से संतोष न हुआ। उन्हों ने विश्व-साहित्य के साहचर्य से आमूल परिवर्तन का महोत्सव किया। उन्हों ने काव्य की आत्मा (संस्कृति, अंशत. संतो की संस्कृति) तो सूक्ष्म-रूप से भारतीय ही रक्खी, किंतु उस का कला-शरीर (व्यंजना और शैली) रोमांटिक युग के अंग्रेजी काव्य से ग्रहण किया। हिंदी-कविता में द्विवेदी-युग के बाद जो नवजाग्रत नवयुवक दल उदित हुआ, उस ने खड़ी बोली का संस्कार तो द्विवेदी-युग से लिया, कला की प्रेरणा रवींद्रनाथ से पाई, इस के बाद उस के लिए भी सप्त-सिंधु-पर्यंत विश्व-साहित्य खुला हुआ था। इस प्रकार उस ने भारतीय प्रेरणाओ से पश्चिमीय साहित्य-कला का संचयन किया।

द्विवेदी-युग की प्रगति द्विवेदी-युग के लेखकों और कवियो तक सीमित रह गई। वह युग अनुदार नही था, वह भी आधुनिक था, किंतु उस की आधुनिकता क्लासिकल थी। साहित्य मे इस काल की बड़ी विशेषता यह है कि उस से एकदेशीय संस्कृति को विशेष संरक्षण मिलता आया है। द्विवेदी-युग के कवियो ने पौराणिक भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रक्खा। नवीन युग का साहित्य जब कि पूर्व और पश्चिम का एकीकरण कर रहा है, द्विवेदी युग का साहित्य पूर्वीय ही अधिक है। जिन्हें अपनी जातीयता से प्रेम है वे द्विवेदी-युग के कवियों से विशेष रस ग्रहण करेंगे, परंतु जिन के साहित्याध्ययन की प्रमुख प्रेरणा जातीयता नहीं, केवल कला-विदग्धता है, वे दोनो ही युगो की रचनाओ से रस लेंगे।

निर्देश किया जा चुका है कि वर्तमान हिंदी-कविता में हिंदी से भिन्न साहित्यों की भी कला-प्रेरणा है। किंतु इस प्रेरणा के मूल में अपनी भारतीयता (अपना अस्तित्व) अक्षुण्ण है

के क्षेत्र में खड़ीबोली की कविता मुख्यत संस्कृत काव्य-साहित्य से

है, और अंशत. मध्य-काल की हिंदी-कविता से। द्विवेदी-युग के कवियो मे यह भारतीयता बहुत स्पष्ट है और नवीन युग के कवियों मे सूक्ष्मतर। मध्यकाल की काव्य-धारा हमारी शिराओ मे संस्कृति होकर बह रही थी। द्विवेदी-युग के कवियो मे वह देशकाल के भीतर थी। उस ने नवीन कवियों मे देशकाल से पृथक् स्थान भी पाया। यदि भारतीयता का यह सूक्ष्म सूत्र न होता तो द्विवेदी युग के कवियों मे गुप्त जी तथा ठाकुर साहब को नवीन काव्य-कला रुचिकर न होती, नवीन युग की कविता ओर ये दो युग आपस मे एक दूसरे से अपरिचित ही रह जाते। सौभाग्य-वश ही द्विवेदी-युग ने नवीन युग से आ कर एक पूर्वज की भाँति यहा का कुशल-क्षेम ले लिया।

अब तक की बाह्य और अंत. प्रगतियो का साराश है यह---भारतेंदु-युग मे प्रथम-प्रथम साहित्य को सार्वजनिक जागृति मिली, द्विवेदी-युग मे हिंदी-कविता ब्रजभाषा से खडीबोली मे आई, छायावाद-युग मे उसे कला-विकास मिला, तात्कालिक राजनीतिक युग में कुछ नवीन रोमांटिक-विचार भी।

भारतेंदु-युग की सार्वजनिकता को गुप्त जी ने आगे बढाया। उधर उपाध्याय जी, पाठक जी, ठाकुर साहब, मध्ययुग के जिस अवशेष कोमल आभिजात्य को ले कर चले आ रहे थे, उसे प्रसाद ने छायावाद का अंत प्रकाश दिया: पंत ने 'पल्लव' मे मनोहर प्रशस्त विकास; महादेवी ने अनादि नारी-हृदय की संगीत-साधना। इन सब से भिन्न माखन-लाल ने मध्ययुग की हिंदू-मुस्लिम-मयी भावुकता का एकत्रीकरण दिया।

खड़ीबोली की कविता में निराला जी ने एक मुक्त-क्रांति की, किंतु पंत ने 'पल्लव' की कोमलता मे शांति-पूर्वक ही उसे नवीन काव्य-युग से मिला दिया। निराला और पंत के छंदों मे जितना अंतर है, उतना ही दोनो की कलात्मक-नवीनता के व्यक्तित्व में।

सामयिक राजनीतिक उथल-पुथल मे गुप्त जी और निराला जी मध्ययुग की सांस्कृतिक भूमि पर है; कला मे नव-प्रवर्तक होते हुए भी संस्कृति में क्लासिकल है। उधर पंत जी समाजवादी चेतना की सतह पर संस्कृति मे रोमांटिक है। मानव-संवेदना, तीनो की कविताओ मे है। किंतु गुप्त जी और निराला जी की कविताओ मे करुणा नहीं, दया-दाक्षिण्य है। दोनो की भिक्षुक-संबंधी कविताओ की संस्कृति एक है। यह उस युग का दया-दाक्षिण्य है, जहां राजा दीन प्रजा को इनायत की दृष्टि से देखता है। पंत की संस्कृति में वह संवेदना है जहा मनुष्य दया-दाक्षिण्य पर निर्भर नहीं बल्कि जन्मसिद्ध मान-

वता का अधिकारी है। अवश्य ही गुप्त जी की संस्कृति राष्ट्रीयता से भी ओत-प्रोत है, महात्मा जी के पथ-निर्देश में; जिस से गुप्त जी की अवसर-ग्राहिता सूचित होती है। इस के विपरीत निराला जी की संस्कृति हिंदुत्व-प्रधान है। 'जागो फिर एक बार', और 'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविताएं इस के लिए द्रष्टव्य हैं।

संस्कृति के प्रचार-क्षेत्र में आकर हिंदी-कविता अनिवार्यत: गद्य भी बन गई है, गुप्त जी, निराला जी और पंत जी, तीनों की कविताओं में इस के उदाहरण हैं। ऐसे समय में जब कि निश्चित संस्कृति अभी भविष्याधीन है, हिंदी-कविता के कंठ में वह काव्य भी बनाए रखना होगा जिस के द्वारा भावी युग अपना स्वागत संगीत में ही पा सके। महादेवी जी इस ओर प्रयत्नशील हैं।

(८)

भारतेंदु-युग की भूमिका पर खड़ीबोली जब अपने प्रारंभिक प्रयास से खड़ी हुई, तब उस की दशा दयनीय थी। उस के प्रयास में शैशव था। बीसवीं शताब्दी का विश्व-दोलित युग भारत की चेतना में नवीन जागृति, नवीन स्फूर्ति, नवीन आकांक्षाओं का सृजन कर रहा था। खड़ीबोली को इसी युग के राष्ट्र और साहित्य का सजीव प्रतिनिधित्व करना था। उस के दुर्बल कंधों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था। हरिश्चंद्र-युग ने इस भार को कुछ हलका कर दिया था। किंतु खड़ीबोली के सामने एक शताब्दी के जीवन का ही प्रश्न नहीं, बल्कि ब्रजभाषा की भाँति ही उस के सामने भी अनेक शताब्दियां हैं। फलत: उसे अपने शैशव के प्रयासों से ही एक सुदृढ़ अस्तित्व ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत होना पड़ा।

खड़ीबोली की कविता किस बाल्यकाल से वर्तमान काल तक पहुँची है, इस का परिचय उस समय की उन कविताओं से मिलता है, जिन्हें लक्ष्य कर सन् १९१६ की 'सरस्वती' में पं० कामताप्रसाद गुरु ने लिखा था—

"वे लोग (कविगण) तन और धन की सुंदरता का वर्णन करते हैं, पर मन की सुंदरता का नाम नहीं लेते। राजभक्ति सिखाते हैं, पर देशभक्ति नहीं सिखाते। रण की कटाकट का वर्णन घर बैठे करते हैं, परंतु शूरता और साहस का उपदेश नहीं देते। शाब्दालंकारों को छोड़, उन्हें अर्थालंकार सूझता ही नहीं।.......... कोई-कोई कुनैन, मच्छड़ और खटमलों को ही कविता के योग्य विषय मानते हैं

खड़ीबोली की कविता की यह प्रारंभिक प्रगति हास्यपूर्ण अवश्य है, परंतु उस की वर्तमान उन्नति देख कर उस के प्रति अवज्ञा नही होती। उस समय के उन्ही झाड़-झखाड़ो ने आज के कुसुमित काव्य-कानन के लिए खाद्य (खाद) का काम दिया था।

उस समय के कवियो की विफलता का कारण यह नही कि वे "रण की कटाकट का वर्णन घर-बैठे करते हैं, परतु वे शूरता और साहस का उपदेश नही देते।" यदि वे उपदेश देते तो उन की कविताओं का हद से हद हमें वह रूप मिलता जो आगे चल कर राष्ट्रीय कविताओं मे प्रकट हुआ। वे राष्ट्रीय कविताएं साहित्य और देश के इतिहास की वस्तु अवश्य हैं, उन का एक विशेष सामयिक मूल्य है, किंतु वे काव्य की स्थायी सपत्ति नही है। इतिहास कभी स्थायी नही होना, पुराण (परिपक्व-इतिहास) स्थायी होता है। इतिहास ही पुराण बनता है, परतु कब, जब उस मे सास्कृतिक बल रहता है। जिन राष्ट्रीय कविताओ में सामयिकता ही नही, बल्कि चिरंतन संस्कृति (शाश्वत अनुभूति) है, वे साहित्य की अचल सपत्ति हो सकती है। सामयिक कविताओं की विफलता का कारण उन मे उन स्थायी भावो का अभाव है, जो अपने विभाव-अनुभाव द्वारा रस-पुष्ट हो कर मन को गति देते हैं। मनोगति से ही कवि कही भी नि शरीर भी उपस्थित रह सकता है। यह संभव नही कि कवि सशरीर ही सर्वत्र उपस्थित रह सके, किंतु अपनी मनोगति से वह हृदयत. अपने अभीष्ट रसलोक मे उपस्थित रह सकता है, क्योकि वह विश्व-लीला का असाधारण दर्शक है, इसी लिए कहा गया है—'जहा न जाय रवि, वहा जाय कवि।' साधारण जन जब खुली आँखों से ही विश्व को देख सकते हैं, तब इस के विपरीत कवि सूरदास हो कर भी वह झॉकी पाता है जो लोक-दुर्लभ है। कवि कल्पक है, उस का सत्य केवल प्रत्यक्ष (वर्तमान) तक ही केंद्रित नही, बल्कि वह त्रिकालदर्शी है, अपने मानसिक नेत्रो द्वारा। इसी लिए उस कल्पक की कृति कल्पात तक अमर रहती है, काव्य मे जब ध्येय गौण रहता है, माध्यम प्रधान, तब कविता मे वस्तु-जगत के उपकरणो का प्राधान्य हो जाता है, काव्य अखबारी दुनिया के समीप आ जाता है—उस मे कवित्वशून्य इतिवृत्त अधिक रहता है। द्विवेदी-युग की प्रारंभिक कविता में इतिवृत्त के लिए लौकिक उपकरणो का इतना अकाल पड़ गया था कि कुनैन, मच्छड़ और खटमल भी अभाव की पूर्ति करने को प्रस्तुत थे। सच तो यह है कि खड़ीबोली की कविता अपने शिशु-पाठ से ही छायावाद की कविता की ओर अग्रसर हो सकी है उस में शन-शनै ही गभीरता और

मार्मिकता आई है। खड़ीबोली के उस आरंभिक काल में लौकिक उपकरणों के माध्यम की विपुलता से हिंदी-काव्य को अपनी सुदृढ़ता के लिए पुष्ट ज़मीन मिली, उसी ज़मीन पर हिंदी कविता खिली है। यदि वह पृष्ठभाग न मिलता तो आज की कला कली ही रह जाती। द्विवेदी-युग की कविता ने जिस प्रकार वाह्य विषय लिए, उसी प्रकार उस ने कला के वाह्य अंगों, शब्द, छंद, अभिव्यक्ति, इत्यादि को सुडौल बनाने में भी अपने अनुरूप सत्प्रयत्न किया। खड़ीबोली की कविता में प्रारंभिक कार्य तो शरीर-निर्माण का हुआ, जब इस ओर से कुछ निश्चितता प्राप्त हुई तो उस युग के विशिष्ट कवियों ने इस की प्राण-प्रतिष्ठा की ओर भी सजग दृष्टिपात किया। उन के मनोहर प्रयासों से खड़ीबोली जी गई, आज के नव-नव कवि उसी जीवित खड़ीबोली में अपनी नई-नई साँस फूँक रहे हैं।

छायावाद की कविता द्वारा हम उन की इन साँसों से परिचित हुए हैं: किंतु इस के आगे एक और संसार है, जो है तो राजनीतिक किंतु वह हमारे साहित्य में उसी प्रकार प्रभाव डालेगा, जिस प्रकार राष्ट्रीय चेतना ने हमारी कविता पर अपना प्रभाव छोड़ कर उसे राष्ट्रीय भी बना दिया था। वह संसार भविष्य के गर्भ में है।

लार्ड हार्डिंज का प्रांतीय स्वराज्य संबंधी ख़रीता

[लेखक—डाक्टर विश्वेश्वर प्रसाद, एम० ए०, डी० लिट्०]

प्रातीय स्वराज्य-शासनविधान के विकास मे लार्ड हार्डिंज के २५ अगस्त, १६११ वाले खरीते (डिस्पैच) का विशेष महत्व है। यह इस लिए नहीं कि लार्ड हार्डिज ने उस पत्र मे भारत-सचिव से स्वराज्य देने की प्रार्थना की हो या अन्यथा किसी महान् सुधार का प्रण किया हो, किंतु इस कारण कि उस पत्र के फलस्वरूप भारतीय जन-सम्मति ने उस समय से एक निश्चयरूप ग्रहण किया और तब से उत्तरोत्तर राजनैतिक उन्नति की प्रगति उसी ओर है। उस पत्र का सामयिक सरकारी नीति पर तो कोई असर नही हुआ लेकिन उस दिन से हमारे देश की राजनैतिक सस्थाओ और नेताओ ने प्रातीय स्वराज्य (प्राविशियल आटोनोमी) को अपना ध्येय बनाया। सरकार ने तो साफ साफ कह दिया कि जनता ने वायसराय महोदय के शब्दो का गलत अर्थ लगाया है और असभव को सभव करना चाहती है। परंतु इस समझाने का भी अधिक प्रभाव न हुआ। जन-सम्मति उसी बात पर अड़ी रही और आज पचीस वर्ष पश्चात् उस ने अपने अर्थ की सत्यता प्रमाणित कर दी।

गदर के बाद भारतीय शासनविधान की प्रगति दो दिशाओं में थी—प्रथम, व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना और उन के द्वारा शासन की देख-रेख; द्वितीय, भारत-सरकार के नियत्रण मे प्रातीय शासन का धीरे धीरे स्वतत्र होना। इस शताब्दी के आरभ मे यद्यपि केंद्र मे व्यवस्थापिका सभा काम कर रही थी और पाँच प्रांतो मे भी ऐसी सभाए चल रही थी तथापि शासन का रूप बहुत न बदला था। इन सभाओ को न तो बजट पर ही अधिकार प्राप्त था न उन के प्रस्तावों का ही अवश्यभावी प्रभाव था। शासन मनमाना था और पूर्णतः भारत-सचिव तथा पार्लियामेट के अधीन था। प्रांतीय शासन की तो विशेष दुर्दशा थी। १८७० ई० से प्रातों को कुछ विशेष महकमो के खर्च मे थोड़ी स्वतन्त्रता मिल गई थी, परंतु अब भी प्रांतीय सरकार का बजट भारत-सरकार स्वीकृत करती थी, और

उस के बनाए नियमो को अनुमति देती थी। प्रातीय व्यवस्थापिका सभाए किसी कानून पर उस समय तक बहस न कर सकती थी, जब तक भारत-सरकार ने उस के लिए पहले से अनुमति न दे दी हो। इस प्रकार प्रातीय शासन पूर्णत भारत-सरकार के ही इशारे पर चलता था। प्रातो की उन्नति मे इस कारण बाधा पड़ती थी और देश मे सर्वत्र असतोष बढ रहा था। इधर बगाल प्रांत के दो टुकडे होने से विरोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बगभग आंदोलन की प्रतिध्वनि सारे देश मे हुई। काग्रेस ने स्वराज्य प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया। गर्मदल ने विदेशीवस्त्र बहिष्कार अस्त्र का प्रयोग किया। क्रातिकारियो ने हिंसात्मक विरोध का बीड़ा उठाया। जन-सम्मति के इस विकराल रूप को देख कर सरकार को विरोध शात करने के अनेक उपाय करने पडे। एक ओर तो दमन नीति से आतक छाया। दूसरी ओर सरकार ने राजनैतिक सुधार की एक और किस्त दे कर उदार-दल को संतुष्ट करना चाहा। फलस्वरूप, १९०९ ई० मे मार्ले-मिटो सुधारो की आयोजना हुई। इस नए प्रबध मे व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो की संख्या बढ़ा दी गई, प्रातों मे गैर-सरकारी सदस्यो की बहुसख्या हुई और इन सभाओ को बजट पर बहस करने का अधिकार प्राप्त हुआ। सुधार की इस मात्रा से कुछ तो उन्नति अवश्य हुई परतु जब तक प्रांतीय शासन पर से केद्रीय सरकार के अन्य अधिकार कम नही होते थे तब तक नई व्यवस्थापिका सभाए प्रात की आर्थिक नीति को ठीक न कर सकती थी और शासन पर अच्छी देख-रेख भी न रख सकती थी। आवश्यक था कि प्रातीय शासन को कुछ स्वतत्रता मिले। इस के लिए १९०८ ई० में निष्केद्रीकरण समिति (डिसेंट्रलाइजेशन कमीशन) की नियुक्ति हुई थी और उस की रिपोर्ट मे अनेक छोटे मामलों मे प्रातीय सरकार को स्वतंत्रता देने की सिफारिश थी। यह रिपोर्ट उस समय लिखी गई थी जब राजनैतिक सुधार मिले न थे। इस कारण ये सिफारिशे अधूरी थी। मार्ले-मिटो सुधार से जो आशा लगी हुई थी वह पूर्ण न हो सकी, और जन-सम्मति असन्तुष्ट रही। भारत सरकार किसी प्रकार शाति स्थापित करना चाहती थी। १९१० ई० मे जार्ज पंचम सिंहासन पर आए और उन्हो ने निश्चय किया कि वे अपना राजतिलक इस देश मे आ कर करेगे। यह उचित था कि सम्राट् के आने पर देश मे शाति हो और सभी दल मिल कर उन का आदर करे। इस के लिए आवश्यक था कि प्रजा की मॉगों पर ध्यान दिया जाए और उस की कठिनाइयों को दूर किया जाए इस सबध में २५ अगस्त १९११ को लार्ड हार्डिज की न भारत-सचिव

को एक पत्र लिखा जिस में कई समस्याओं के संबंध में भारत-सरकार की राय थी और जन-सम्मति को शांत करने के लिए कई उपायों का उल्लेख था। यह डिस्पैच दरबार के दिन गज़ट में प्रकाशित हुआ।

भारत-सरकार ने लिखा कि राजधानी कलकत्ता से हटा कर दिल्ली में कर दी जाए और बंगभंग का विच्छेद कर के, बिहार-उडीसा का एक नया प्रांत बनाया जाए। इस के पश्चात् यह भी लिखा कि "भारत में ब्रिटिश शासन के लिए आवश्यक है कि गवर्नर-जनरल और कौंसिल का पूर्ण आधिपत्य बना रहे। १९०९ के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट से सिद्ध होता है कि भारतीय व्यवस्थापिका सभा (इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) के गैरसरकारी सदस्यों की बहुसंख्या को महत्वपूर्ण प्रश्नों को निश्चय करने की आज्ञा देना असंभव है। फिर भी, यह निश्चय है कि कुछ समय में भारतवासियों की न्याय-युक्त माँग को, कि वे शासन में अधिकाधिक भाग ले सकें, पूरा करना ही होगा। तब यह प्रश्न उठेगा कि बिना गवर्नर-जनरल और कौंसिल के आधिपत्य को कम किए हुए यह अधिकार-निक्षेपण (डिवोल्यूशन अव् पावर) कैसे संभव हो। यह कठिनाई एक ही प्रकार हल हो सकती है कि धीरे धीरे प्रांतों को अधिकाधिक स्वराज्य दिया जाए जिस से अंत में भारतवर्ष में अनेक प्रांतीय शासनों की स्थापना हो जाए, जो सभी प्रांतीय मामलों में स्वयंशासित (आटॉनमस) हों, और उन सब के ऊपर भारत-सरकार हो, जिस को अधिकार हो कि असम्यक् शासन में दखल दे सके, परंतु सामान्यतः केवल अखिल भारतीय (इंपीरियल) कार्यों में ही लगी रहे।"[1]

इस पत्र में उन्हीं बातों का उल्लेख है जिन के द्वारा देश में राजनैतिक आंदोलन शांत किया जा सकता था। इस के अतिरिक्त न तो निष्केंद्रीकरण समिति की सिफारशों का उल्लेख है और न शासन-नियम (इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट) में ही निकट भविष्य में किसी परिवर्तन का विचार है। इस से आश्चर्य होता है कि ऊपर लिखी हुई महत्वपूर्ण घोषणा क्यों की गई। यह समझना भ्रमपूर्ण है कि यह बात यूँही कह दी गई, या यह कथन बिना समझे-बूझे किया गया था। यह पत्र छपने के लिए था। इस का तात्पर्य था कि किसी

---

[1] **भारतीय सरकार का २५ अगस्त १९११ का खरीता सेक्रेटरी अव स्टेट फ़र इंडिया के नाम पैरा ३ १२ दिसंबर सन् १९११ के विशेष गज़ट में प्रकाशित**

प्रकार देश मे शांति हो। फिर भला यह कैसे माना जा सकता है कि इन शब्दो के द्वारा सरकार ने अपनी भावी नीति का दिग्दर्शन नही कराया ?

भारतीय नेताओं ने डिस्पैच के इस भाग का स्वाभाविक अर्थ लगाया। उन का विचार था कि इन वाक्यो द्वारा सरकार ने भारतवर्ष मे प्रातीय स्वराज्य-शासन स्थापित करने की अपनी नीति घोषित की है। साधारणत यही अर्थ हो भी सकता था। इन वाक्यो से यह स्पष्ट है कि केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा के गैरसरकारी सदस्यों को शासन पर अधिकार नही दिया जा सकता है परतु भारतवासियो की माँग को भी पूरा करना अभीष्ट है। अत उन को प्रांतीय शासन मे ही अधिकार दिया जा सकता है। प्रातीय शासन पर से भारत-सरकार का अकुश हटाए बिना यह संभव नहीं हो सकता है, और यह अकुश केवल साधारण व्यय-संबंधी नियमों मे थोडा परिवर्तन करने से नही हो सकता है। अत प्रातीय शासन को स्वतत्रता देने का केवल अर्थ यही हो सकता है कि प्रातीय शासन स्थानीय व्यवस्थापिका सभाओ के अधीन कर दिया जाए। प्रांतीय स्वराज्य (प्राविशल आटॉनोमी) का आशय, इस लिए, यही हो सकता है कि प्रातीय शासन उत्तरदायित्व-पूर्ण हो। इस प्रकार भारतीय जन-सम्मति ने सोचा, और सभी जगह इस डिस्पैच के छपने से खुशी मनाई गई।

परंतु शीघ्र ही भारत-सचिव लार्ड क्रू ने इस सुख-स्वप्न को भग कर दिया। उन्हो ने अपनी एक वक्तृता मे कहा कि "स्वतत्र शासित प्रानो" (आटॉनोमस प्राविसेज) वाक्य का आशय केवल इतना ही है कि प्रातीय शासन पर से भारत सरकार का अकुश हटा लिया जाए और प्रातीय सरकार को व्यय करने तथा शासन-सबंधी अन्य कार्यो मे अधिक स्वतत्रता दे दी जाए। उन्हो ने कहा कि सरकार की यह मशा नही है कि प्रातीय शासन को जनता के अधीन कर दिया जाय, अर्थात् शासन उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवस्थापिका सभाओ की इच्छानुसार हो। उन के कहने का तात्पर्य यह था कि इस घोषणा में अधिक निष्केंद्रीकरण (डिसेंट्रलाइजेशन) पर जोर दिया गया है न कि अधिकार-निक्षेपण (डिवोल्यूशन अव् पावर्स) पर। लार्ड क्रू के इस कथन का भारतवर्ष मे विरोध किया गया। इगलैंड मे उन के सहायक मिस्टर माटेगू ने कैंब्रिज मे एक वक्तृता दी जिस मे कहा कि "अब हमारे लिए नीति निर्धारित करना और उस की घोषणा करना आवश्यक हो गया है . और अतत परतु शीघ्र नहीं ने हिम्मत कर के भारतवर्ष के प्रति ब्रिटिश नीति

की व्याख्या कर दी है। हम को इसी मार्ग पर चलना है।" उस समय से भारतीय शासन-विधान की प्रगति ने माटेगू के कथन की सत्यता प्रमाणित कर दी है।

भारतीय राजनैतिक विचारधारा अपनी टेक पर अड़ी रही। "प्रातीय स्वराज्य" उस का ध्येय हो गया और क्रू के मना करते हुए भी उस समय से भारतीय नेताओ ने इस को पाने का ही प्रयत्न किया। उन का कहना बहुत अश मे ठीक था। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने यह दलील दी कि "सम्राट् जार्ज के दरबार के उपलक्ष मे जिस डिस्पैच मे भारतवासियो को अनेक "वर" (बून्स) देने की प्रार्थना थी, उस डिस्पैच के इस वाक्य का कोई क्षुद्र अर्थ करना अवसर की महत्ता को कम कर देगा। अतः यह मानना पड़ेगा कि वायसराय ने इन शब्दों द्वारा ब्रिटिश नीति को ही लक्ष्य किया है।" दूसरे लोगो का कहना था कि भारतसरकार का यह आशय कदापि न होगा कि केवल आय-व्यय सबधी नियमो मे हेर-फेर कर के प्रातीय शासन को स्वतत्र कर दिया जाए, क्योंकि इस के पूर्व भी १८७० ई० के पश्चात् इस प्रकार के अनेक सुधारो से भी प्रातीय शासन स्वतंत्र न हो सका था। केवल कोशजात निष्केंद्रीकरण (फाइनैंशल डिसेंट्रलाइज़ेशन) प्रातीय स्वराज्य नही ला सकता है। १६१२ मे कांग्रेस के सभापति मिस्टर मुधोलकर ने बहुत ही ज़ोरदार शब्दो से यह स्पष्ट कर दिया कि लार्ड क्रू के मतानुसार सुधार होने से उत्तरदायित्वहीन प्रातीय शासकों को अधिकार मिल जाएगा और उन के ऊपर भारत-सरकार का अंकुश न होने से हित के स्थान पर अहित ही होगा, क्योंकि भारत-सरकार का नियत्रण हट जाने से देश भर मे स्थान स्थान पर निष्केंद्रित स्वेच्छाचारिता (आटोक्रेसी) की स्थापना हो जाएगी। भारतीय राजनीतिज्ञो ने सदा ही प्रातीय शासन को स्वतत्र करने का विरोध किया था जब तक कि उस के ऊपर व्यवस्थापिका सभाओ द्वारा नियत्रण न हो जाए। उन की धारणा थी कि भारतसरकार प्रातीय शासको की स्वेच्छाचारिता को रोकती है अन्यथा शासन बहुत ही दुःखपूर्ण और प्रजा के लिए अहितकर हो जाए। अब अगर लार्ड हार्डिज के इन वाक्यो का प्रभाव यही होना है कि प्रांतीय गवर्नर मनमानी कर सकें तो वे ऐसे सुधार को न चाहते थे। उन की कल्पना ठीक भी थी; इसी कारण उन का विश्वास था कि हार्डिज की सरकार का आशय उत्तरदायित्वपूर्ण प्रांतीय स्वराज्य शासन देना था जिस से भारत-सरकार द्वारा किया गया अधिकार प्रातीय व्यवस्थापिका सभाओं के हाथ मे आ जाए

इस म सदेह नहीं ह कि भारतीय नेताओ न जो अथ लगाया था वह ठीक था

भारतसरकार ने पहले कई बार कहा था कि प्रांतीय शासन को उस समय तक ऊपर के नियन्त्रण से स्वतन्त्रता नही दी जा सकती है, जब तक वह शासन प्रजा के प्रतिनिधियों के प्रति ज़िम्मेदार न हो। लार्ड डल्हौज़ी के समय से कर्ज़न के समय तक कई बार वायसरायों और अन्य सदस्यो को प्रातीय शासको का ध्यान इस कठोर सत्य की ओर आकर्षित करना पडा था। प्रातीय शासक भारतसरकार के दखल को नापसंद करते थे परतु उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति मे उन के लिए दूसरा मार्ग न था। जब तक नीचे से जनता का नियन्त्रण सभव न था, पार्लिमेंट और उस के प्रतिनिधि भारतसचिव तथा गवर्नर-जनरल और कौंसिल का अधिकार अवश्यभावी था। दूसरे, यह मानना बुद्धिविरुद्ध है कि जिस समय चारो ओर से औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग हो रही थी और कांग्रेस स्वराज्य को ध्येय मान चुकी थी, भारतसरकार हमारी राजनैतिक उन्नति का अत केवल "सरकारी प्रांतीय स्वराज्य" (आफ़िशल प्राविंशल आटॉनोमी) बताती। अगर यह मान लिया जाए, और इस मे सशय नही है, कि इस डिस्पैच मे सरकार की भावी नीति का सकेत था, तो उन वाक्यो का एक ही अर्थ हो सकता है कि उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना का आरंभ प्रातीय क्षेत्र मे ही हो सकता है। राजनैतिक उन्नति का आधार यही था और उसी पर १९१९ की योजना का निर्माण हुआ। इस प्रकार यह डिस्पैच उतना ही अथवा उस से अधिक महत्वपूर्ण है जितना लार्ड रिपन का स्थानीय स्वराज्य प्रस्ताव (लोकल सेल्फ गवर्नमेंट रिज़ोल्यूशन, १८८२)। पहले के द्वारा स्थानीय शासन पर जनाधिकार हुआ और अब दूसरे के द्वारा प्रातीय शासन पर प्रजा के अधिकार होने की सभावना थी।

इस डिस्पैच का कोई अन्य प्रभाव हुआ हो या नही इतना तो निश्चय है कि जन-सम्मति ने इस समय से प्रातीय स्वराज्य को अपना उद्देश्य माना और उस के लिए निरतर प्रयत्न आरंभ किया। १९१९ मे उस को आंशिक सफलता मिली और १९३५ में प्रातीय स्वराज्य के आधार पर ही पूरा शासन-विधान खडा किया गया है। आगे की राजनैतिक उन्नति देख कर यही मानना पड़ेगा कि लार्ड क्रू गलत थे और भारतीय नेता सही।

पंजाबी बहन गाती है

एक लोकगीत-अध्ययन

[लेखक—श्रीयुत देवेंद्र सत्यार्थी]

पंजाबी भाषा में 'भ्रा' और 'भापा' भाई के अर्थ में आते हैं, पर लोकप्रियता की कसौटी पर तो एक तीसरा ही शब्द पूरा उतरा है, और वह है 'वीर'। लोकगीत की भाषा इस से धन्य हुई है। इतिहास के एक-एक परदे के पीछे कौन झाँके ? कैसे गुजरी दास्तानों की कड़ियाँ टटोली जायँ ? न जाने कितनी बार बहन ने अपने भाई को आत्म-सम्मान और वीरता की तकड़ी पर तोला होगा ! अब भी जब पंजाब की बेटी 'वीर' कह कर अपने भाई को बुलाती है, ऐसा लगता है कि अंदर से इस शब्द की आत्मा नाच उठी है। पुराने समय आँखों के रूबरू आते दीखते हैं। न जाने कितनी बार भाई ने बहन की खातिर जान लड़ाई होगी ! और जब बहन ने देखा कि भाई जान पर खेल गया है, और अभी उस की निस्सहाय अवस्था शेष नहीं हुई, तो 'वीर' शब्द ने स्वयं ही अपना अंचल फैला दिया। अपरिचित और परिचित किसी भी युवक को बहन अपनी सहायता के लिए पुकार सकती थी।

मुझे खूब याद है, बहन का गीत मैं ने पहले-पहल चंदी से सुना था। "जीवे मेरा वीर-प्यार !" (भाई के लिए मेरा प्यार सदा जीता रहे)—यह चंदी के गीत की अस्थाई थी। तब हम बच्चे थे। 'वीर-प्यार' चंदी के हृदय में उसी तरह उग रहा था, जैसे खेत में गेहूं उगता है। 'वीर' शब्द मुझे प्रिय लगता था; इस की आत्मा से मेरा पूर्ण परिचय अभी न हुआ था। पर इस से क्या ? चंदी मुझे 'वीर' समझती थी, और मैं उसे सहोदरा से कहीं अधिक मानता था। चंदी का अपना भाई, चन्नण, उस के गीत की ओर इतना आकर्षित न हुआ था। "काली डाँग मेरे वीर दी, जिदथे वज्जदी वद्दल वाँगू गज्जदी" (मेरे भाई की काली डाँग—बड़ी लाठी—जहां भी पड़ती है, बादल सी गरजती है !)—

यह गीत चन्नण को भी पसंद था। यह उस की 'डॉग' का शब्द-चित्र था। और वह कहता था, गरज में उस की डाँग निरी बादल की बहन है। मेरे पास कोई 'डॉग' न थी, पर मैं चाहता था, मैं भी कभी चन्नण के घर से एक डॉग ले लूं। चदी ने कई गान सीख लिए थे। मैं सदा 'वीर-प्यार' के गान पर मुग्ध रहा।

अब बचपन के वे भोले दिन कभी के बीत गए। अठारह-उन्नीस वर्ष का लंबा समय बीच से गुजर गया है। चदी का विवाह हुए नौ साल हो चुके हैं। उमर के साथ ही चदी की गीति-काव्य की दुनिया, जहा 'वीर-प्यार' सदा सुरक्षित रहेगा, और भी पवित्र होती जा रही है।

चदी स्वय गीत-रचना मे कुशल नही है। पर मैंने यह देखा है कि वह अपनी मा से सीखे हुए गीतो को इस शौक से गाती है, जिस से शायद कोई कवि अपनी नई रचना का गान भी न कर सकता हो। उस नारी की भाँति जो अपनी पड़ोसिन के शिशु को अपनी गोदी के लाल से कही अधिक प्यार करती हो, चदी इन गीतो को अपने हृदय मे स्थान देते समय यही समझती है कि ये गीत बने ही उस के लिए है। गीत तो उस ने और भी बहुत सीख रक्खे है, पर 'वीर-प्यार' के गान मे तो हमारे गॉव की एक भी लड़की उस से होड नही ले सकती।

चदी के गीतो में बहन का खुला दिल देख कर मुझे कई बार चार्ल्स लैंब के वे शब्द याद आ गए है, जो उस ने 'मेरी' के रेखा-चित्र मे प्रयोग किए थे : "ससार में जितने मनुष्यो से मै परिचित हू, सभी स्वार्थी है, पर मेरी में स्वार्थ का एकदम अभाव है। मैं स्वर्ग मे रहू या नरक मे, मेरी मेरा साथ देगी। ऐसा लगता है, कि बहन बनने के लिए ही उस का जन्म हुआ है।" और जिस ने पहली बार यह कहा था कि नारी द्वारा ही प्रकृति पुरुष के हृदय पर अपना सदेश लिखती है, बहन के व्यक्तित्व को भी जरूर परख लिया होगा।

पिता को लोकगीत मे 'धर्मी बावल' कहा गया है; 'लखिया' या 'लख-दाता' एक दूसरा शब्द है, जिसे अमीर-गरीब की पुत्रियों ने एक ही रूप मे अपनाया है। मा वह पसद की गई है, जो बेटी का दु ख-सुख सुन सके, और जिस से बिना किसी संकोच के हर बात कही जा सके। ऐसे माता-पिता की उपस्थिति में भी मा-जाये भाई के बिना, एक 'वीर' के बिना, पजाब की लडकी अपनी दुनिया को सूनी ही समझती है। यह ठीक है कि वह 'तारों में चाँद' सरीखा वर चाहती है, और शताब्दियों से गाती आई है 'जियो तारेयाँ चो

चन्न, चन्नों चो कान्ह कन्हैया वर लोड़िये" (पिता, जैसे तारो मे चंद्रमा है, चद्रमाओ मे जैसे कृष्ण है, ऐसा वर मुझे चाहिए), पर मा के चाँद की, 'वीर' की, प्रतीक्षा तो वह ससुराल मे भी करती रही है। ससुराल का जीवन सदा सुख-पूर्ण ही मिलेगा, इस का हिसाब भी तो सदा ठीक नहीं बैठता। गीत मे तो कन्या यही गाती आई है "बाबल, देईं अयुद्धचा दा राज, झरोखे बैठी हुकम करॉं!" (पिता, मुझे अयोध्या का राज्य देना, जहा मै झरोखे मे बैठ कर हुक्म चलाऊं!), पर किस-किस को आदर्श ससुराल मिल सकती है? जो हो, कन्या सदा मा-बाप के यहां नहीं रह सकती, 'चिड़िया' की भाँति उसे उड़ ही जाना चाहिए, ऐसा ही प्रकृति का विधान है। गीत ने इस की साक्षी दी है "साडा चिडियॉं दा चवा वे, बाबल, असाँ उड्ड जाणा, साडी लम्मी उडारी वे, बाबल, केहड़े देस जाणा?" (पिता, हम तो चिड़ियों की टोली है, हमे उड जाना है, बहुत लंबी है हमारी उडान, पिता, बताओ तो हमें किस देस को जाना है?) और जब वधू की डोली ससुराल के लिए चलती है ओर विवाह-गान के सम्मिलित स्वर करुण हो उठने है, आँसुओ से भीग-भीग कर, वर भी इस करुणा मे भाग लिए बिना नहीं रहता। आँसुओ के बीच मे डोली आगे बढती चली जाती है, सहेलिया लज्जाशीला वधू के मूक हृदय को गीत मे उतार लेती है. "असी तॉं कुडिया, चबेदियाँ चिड़ियॉं वे लखी बाबल मेरे, उड्डीए वारो वार, वे लखी बाबल मेरे!" (हम बालिकाएं तो एक ही टोली की चिड़िया है। लख-दाता पिता, हम बारी-बारी से उड जाती है!) वधू के हृदय मे एक कसक सी उठती है, 'वीर' को संबोधन करती है: "मैनूं रख्ख लै रख्ख लै वीरा वे इक्को अज्ज दी रात उधारी!" (रख लो, रख लो मुझे, मेरे 'वीर', आज की रात भर मुझे उधार मे रख लो) पर डोली आगे ही आगे बढती जाती है। भाई मूक बना, आँखों में आँसू भर कर, देखता रह जाता है। चदी जब ये सब गीत गाती है, उसे अपने विवाह का समय याद रहता है।

यों तो ससार भर मे बहन का हृदय लोकगीत की चीज बना है, प्रत्येक भाषा मे बहन-भाई की स्निग्ध, शात स्नेह-धारा, ग्राम के पास बहती नदी की-सी, देखी जा सकती है, पर भारत की धरती इस कविता के लिए बहुत उपजाऊ सिद्ध हुई है। प्रात-प्रात मे बहन ने न जाने कितना गाया है! प्रात-प्रांत मे कन्या ने अपनी तुलना चिडिया से की है। गीत-शैली भी एक-समान है। गजरात, युक्त-प्रात और राजस्थान का गीत पंजाबी गीत से गले मिला है अन्य प्रात भी दूर नहीं रहे यह मानव की एक-समता की हृष

ध्वनि है। भारतीय लोकगीत के सुविस्तृत कुटुंब-कबीले की एक-स्वरता भारतीयता और राष्ट्रीय एकता की अमर विभूति है।

सम्मिलित परिवार की परिपाटी पुरानी चीज है। सुख के सुप्रभात मे इस से अवश्य लाभ हुआ होगा, दोपहरी के घाम मे यह कितना कठिन हो उठा! सास-ननद के अत्याचार ने जब भयानक रूप धारण किया, पंजाब की लड़की करुण स्वरों में गा उठी "मुण्डे आपणी थाईं रैहँदे, नी धीयाँ क्यों बनाइयाँ रब्ब ने ?" (लडके तो सदा अपने जन्म-स्थानो मे ही रहते है। हाय, भगवान ने बेटियो की रचना क्यो की ?) जिठानी अलग रोब जमाती है। नव-वधू रो कर रह जाती है। दुःख की बदली रोज उमड़ती है, रोज बरसती है। तब भी वह देखती है, कि उस की हिमायत मे पति के मुंह से एक भी शब्द नही निकलता।

दुःख मे कन्या की आँखे नैहर की ओर लग जाती है। भला हो हरियाली तीज का जो प्रति वर्ष आती है, भला हो सावन के इस त्योहार पर लडकी को ससुराल से नैहर मे बुला लेने के पुराने रवाज का, वरना दुःख का समय, अविराम और अचूक वेदनाओं का सिलसिला, 'हरे बाग की कोयल' को ससुराल की भट्ठी मे जल्द ही भून डालता। प्रति वर्ष ज्यो ज्यों तीज का त्योहार समीप आता है, कन्या को वह प्रश्न याद आता है, जो विवाह के पश्चात्, डोली-विदा पर, उस से किया गया था "बोल नी हरियाँ बागाँ दी कोयल, मापे छोड किथ्थे चल्लीएं ?" (ओ री हरे बागो की कोयल, बोल तो सही कि नैहर छोड कर तू कहा चली है ?), और उसे उस उत्तर की भी याद आती है, जो गीत की अगली पंक्तियो मे सजीव आशावाद का संकेत बना था "बाबल मेरे ने बचन जो कीते, बचनाँ दी बद्धी मैं चल्लीयाँ; वीरे मेरे ने बचन जो कीते बचनाँ दी बद्धी मैं चल्लीयाँ; माँ सुपुत्तडी ने दाज रंगाया, दाज पुचावन मैं चल्लीयाँ।" (मेरे पिता वचन दे बैठे है, वचन-बद्ध हो कर मैं चली हू। मेरे 'वीर' ने वचन दे दिया है, उसी वचन मे बँध कर मैं चली हूं। सुपुत्रवती मेरी मा ने दहेज के वस्त्र रँगवाए, इस दहेज को—ससुराल मे—जरा पहुँचाने चली हू)।

चित्र का एक रुख और भी है। खुल्लम-खुल्ला शायद कुल-वधू अत्याचार का उत्तर नही दे सकती, पर गीत मे कही कही विद्रोह की अग्नि भडक उठती है "नुगदी, ने सस्से पैर लग्ग लैण दे, तेरी गुत्त गलियाँ विच्च रुलदी!" "(नुगदी की मिठाई है। मरे पैर जरा जम जाने दो सास फिर देखना तुम्हारी वेणी गलियो में रोती फिरगी

सास उसे भाई की गाली देती है, तो कुल-वधू का सताया हुआ दिल बोल उठता है : "गाल भरावाँ दी, मुड़ देई न, कुपत्तिए सस्से !" (हे कुपत्ती—लड़ाकी—सास ! देखना अब फिर मुझे भाई की गाली न देना !) पर इतना साहस कुल-वधू मे बहुत शीघ्र नही आ पाता। फिर वह ननद की शिकायत करती हे : "मेरा भन्नता चक्की दा हथडा, नणद बछेरी ने।" (बछेड़ी-सी चचल ननद ने मेरी चक्की का हथ्था तोड़ दिया है !) मानव-स्वभाव भी बडा विचित्र है। भाई से इतना प्रेम रखने वाली बहन ननद के रूप में भावज से इतना द्वेष क्यो रखती है ! और वही खुद कुल-वधू बन कर फिर अपनी ननद की शिकायत करेगी, इस से उसे कुछ शिक्षा क्यो नही मिलती ? और कुल-वधू जो सास के अत्याचार से तग रहती है, खुद सास बनती है, तो अपनी पुत्रवधू से क्यो अच्छा सलूक नही रखती ! 'तीयाँ' (तीज) के त्योहार मे बहन को लिवा जाने मे जरा देर हो जाय, तो सास-ननद ताने देती है "तैनूँ तीयाँ नूँ लैण न आये, बहुतेयाँ भ्रावाँ वालिये !" (अरी ओ बहुत भाइयो वाली, देखा वे तुझे तीज मे भी लेने न आए !) कुल-वधू की विद्रोही आत्मा सम्मिलित कुटुब से अलग हो जाने पर उतारू हो जाती है : "मैनूँ कल्ली नूँ चुबारा पा दे, रोही वाला जड वढ्ढ के !" (मुझे अलग चौबारा बनवा दो; निर्जन मैदान के जड (शमी) वृक्ष को काट कर शहतीर बनवा लो) कौन जाने उस के पति पर इस आवाज का कुछ असर भी होता है या नही ! पर जब बहन अलग होने की बात सोचती है, उस के सामने यह ख्याल भी रहता है कि उस सूरत मे वह भाई के आगमन पर स्वतन्त्रता-पूर्वक आतिथ्य कर सकेगी।

उडते काग के हाथ बहन सदेश भेजती है —

उड्डदा ते जाईं कावाँ वैहँदा जाईं, वैहँदा जाईं मेरे पिओकड़े।
इक्क नाँ दस्सीं मेरी माँ राणी नूँ, रोऊगी अड़िया मेरीयाँ गुड्डियाँ फोलके, मैं वारी।
इक्क नाँ दस्सीं मेरी भैण प्यारी नूँ, रोऊगी अड़िया भरिया त्रिंजन वेख के, मैं वारी !
इक्क नाँ दस्सीं मेरी भाबी नूँ, खिड़ खिड़ हस्सूगी अड़िया पेकडे जा के, मैं वारी !
इक्क नाँ दस्सीं मेरे धरमी बाबल नूँ, रोऊगा अड़िया भरीयो कचहरी छोड़के, मैं वारी !
दस्सीं, वे कावाँ, मेरे वीर प्यारे नूँ, आऊगा अड़िया नीला घोड़ा बीड़ के, मैं वारी !

काग उडते-बठते जाना मेर नहर में पहुँच जाना

एक तो मेरी बात मा से न कहना, मै तुम पर क़ुरबान जाऊ, वह मेरी गुड़िया उठा-उठा कर आँसू गिराएगी!

मेरी प्यारी बहन से भी न कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह सखियो सहित चरखा कातती होगी, बीच मे मुझे न पा कर रो देगी!

मेरी भावज से भी न कहना, अपने नैहर जा कर वह व्यग्य-पूर्ण हँसी उडायेगी!

धर्मी पिता से भी न कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह भरी कचहरी से बाहर आ कर रो देगा।

काग, मेरे भाई से---'वीर' से---कहना, मैं तुम पर कुरबान जाऊ, वह नीले घोडे पर सवार हो कर आएगा।

काग सुने न सुने, मानव-भाषा मे कही हुई बात समझे न समझे, उसे सबोधन करना तो अनिवार्य ठहरा। बहन का मर्मी गान क्या यो ही उड कर, पख पसार कर, रह जाता होगा! मनुष्य से काग का क्या कुछ भी सबंध नहीं? तब फिर वह कोठे से 'का-का-कां' पुकार उठता है, तो बहन यह सकेत कैसे पा लेती है, कि शीघ्र ही कोई अतिथि आया चाहता है?

फिर बहन अपने नैहर की ओर जाते पथिक से कहती है कि वह उस का सदेश ले जाय; सदेश पा कर भाई आता है। समस्त नाटच-दृश्य गीत की वस्तु बन गया है —

> 'भाइया राहीया! जाँदिया, जानाएँ तूँ केहड़े देस, मैं वारी?'
> 'जानाएँ, बीबी, तेरे पिओकड़े, वे सुनेहाँ लै जावाँ, मैं वारी!'
> 'जा आखनाँ मेरी माँ राणी नूँ, धीयाँ क्योँ दित्तीयाँ दूर, मैं वारी?'
> 'मैं नाँ दित्तीयाँ दूर, किद्धरे दित्तीयाँ उन्हाँ दे वीर, मैं वारी!'
> 'सुनीँ, वे वीरा राजिया, भैणाँ क्योँ दित्तीयाँ दूर, मैं वारी!'
> 'मैं नाँ दित्तीयाँ दूर, किद्धरे दित्तीयाँ उन्हाँ दे लेख, मैं वारी!
> अज्ज बनावाँ पिन्नीयाँ, भलके सूहियाँ चुन्नीयाँ, परसों भैणां दे देस, मैं वारी!
> जाँदा बेहड़े जा वड़िया, डुलह पये भैणां दे नैन, मैं वारी!
> सिर दा चीरा पाड़ के पूँजाँ भैणाँ दे नैण, मैं वारी!'
> 'सस्स पिहावे चक्कीयाँ सौहरा कुटावे भंग मैं वारी!

सस्स ने लाह् लइयाँ चँदोड़ियाँ, सौहरे ने लाह् लये बन्द , मैं वारी !'
'नीला घोड़ा बेच के, बनादेयाँ भैणाँ नूँ बन्द, मैं वारी !
गल दा कण्ठा बेच के, बनादेयाँ भैणाँ नूँ चन्द, मैं वारी !'

'राह-चलते पथिक, किस देस को जा रहे हो ? मैं तुम पर बलिहारी ।'
'बीबी, मैं तेरे नैहर जा रहा हू, कुछ सदेश हो तो ले जाऊ, मैं बलिहारी ।'
'मेरी रानी मा से कहना, मैं बलिहारी, बेटी को दूर क्यों व्याह दिया ?'
'मैं ने बेटी दूर नही व्याही, मैं बलिहारी', मा ने पथिक को उत्तर दिया, 'उस के भाई ने ऐसा किया ।'

'अजी ओ राजा भाई, सुनो तो, मैं बलिहारी,' पथिक ने पूछा, 'बहन को दूर क्यो व्याह दिया ?'

'मैं ने बहन दूर नही व्याही, मैं बलिहारी, उस के भाग्य मे ही ऐसा वदा था ।
आज मैं पिन्निया (एक मिष्टान्न) बनवाऊँगा, मैं बलिहारी ।
कल को मै बहन के लिए सूही चुनरिया रँगवाऊँगा, परसो बहन के देस पहुँचूँगा ।
चलता-चलता मैं बहन के आँगन मे पहुँचा, मैं बलिहारी ।
बहन की आँखो मे आँसू उमड आए । सर का चीरा फाड कर, वस्त्र से, मैं बहन की आँखें पोछ रहा हू ।'

'सास चक्की पिसवाती है,' बहन बोली, 'ससुर मुझ से भग घुटवाता है, सास ने मेरी चढोड़ीयाँ उतरवा ली, ससुर ने एक दूसरा आभूषण, चंद, ले लिया !'

'अपना नीला घोडा बेच कर, मैं बलिहारी, बहन के लिए बंद गढ़वा दूँगा, अपना कठा आभूषण बेच कर, बहन के लिए चद बनवा दूँगा ।'

कल्पना का रुपहला छोर लोकगीत को कितना छू-छू जाता है। भाई की प्रतीक्षा मे खड़ी बहन क्षितिज की ओर निहारती थकती नही; लोचन भर-भर आते है; जीवन की डाल-डाल हिलती है, डोलती है। बहन की भी कितनी महान आत्मा है ! ससुराल के वदी जीवन की शिकायत वह भाई के सिवा और किस से करे ? अतीत का यह अमर पृष्ठ, बहन का हृदय, वृक्ष से झरते पत्ते की भाँति काँप उठता है, तब कहीं जा कर भाई का नीला घोड़ा नज़र पड़ता है

यों तो कल्पना के ससार मे बहन अनेक बार भाई से मिलती है। बटलोही में खीर पकने चली है। और बहन इस बटलोही को पुकार कर कहती है :—

उब्बल उब्बल, बलटोहिये नी, लप्प चौलाँ दी पावाँ!
जे वीर डिठ्ठा आयोंदा, लप्प होर वी पावाँ!
जे वीर आया रोड़े, रोडे हूँज सटावाँ!
जे वीर आया गलियाँ, पट्ट दरियाइयाँ विछावाँ!
जे वीर आया वेहड़े, रत्ता पलँघ डहावाँ!
जे वीर मंगे पानी, बूरी मज्झ चुयावाँ!
जे वीर मंगे रोटी, गिरी छुहारे खुआवाँ!
जे वीर बैठा चौके, भाँडियाँ रिशमाँ छड्डियाँ!
जे वीर अन्दर वड़िया, दीवा लट लट बलिया!
जे वीर चढिया कोठे, बाला चन्द वी चढ़िया!

उबल, बटलोही, उबल, ले अभी मै तुझ मे मुट्ठी भर चावल डालूँगी।
'वीर' के आने की खबर सुनूंगी, तो मुट्ठी भर चावल ओर डाल दूँगी।
'वीर' गाँव के मैदान मे पहुँचेगा, तो पथ के ककर उठवा फेकूँगी।
'वीर' गली मे पहुँचेगा, तो पथ में रेशम और दरियाई के वस्त्र बिछवा दूँगी।
'वीर' आँगन मे पहुँचेगा, तो लाल पलँग डलवा दूँगी।
'वीर' जल माँगेगा, तो उसे तत्काल दुहा हुआ भूरी भैंस का दूध पिलाऊँगी।
'वीर' रोटी माँगेगा, तो उसे बादाम की गिरिया और छुहारे खिलाऊँगी।
'वीर' रसोई मे बैठेगा, तो भोजन-पात्र किरने छोडेगे (चमकेंगे)।
'वीर' भीतर आयेगा, तो दीपक और भी प्रज्वलित हो उठेगा।
'वीर' छत पर चढेगा, तो आकाश पर दूज का चाँद निकल आएगा।

बटलोही मे कोई मानव-हृदय ढूँढा गया है। उबलते दूध को सुना-सुना कर सब बात कही गई है, और दूध मे पकते चावल का एक-एक दाना आत्मीयता के धागे मे पिरोया है। आतिथ्य का आदर्श बाँधा है। केवल बहन से ही किरने नही निकलेगी- रसोई के पात्र भी दुगनी-तिगनी चमक ले उठेंगे जैसे व बहन के भाई का स्वागत करना अपना

धर्म मानते हो। दीपक भी दिल रखता है, बहन के भाई को पहचानता है, और वह जानता है कि भाई के भीतर आने पर उसे अधिक प्रकाश करना चाहिए। और वह आकाश का चाँद भी तो बहन-भाई के मिलन के नाटच-दृश्य में भाग लेने से नहीं चूकता, वह केवल आदमी की दुनिया पर चमकता ही नही, लोकगीत के परिवार से खूब परिचित भी है।

भाई की प्रतीक्षा मे बहन ससुराल को छू कर बहती रावी के तीर पर एक नई कुटिया बनाने पर तत्पर होती है :—

असीं रावी ते घर पाइए, सस्सू जी, जे कोई आवे साडे देस दा !
सौ आवे सठ्ठ जावे, सस्सू जी, इक्क न आवे अम्मा जायड़ा !
जी मैं चढ़ चुबारे कत्तदी, वीर निल-घोडी असवार, मै वारी !
जी मै छड्ड पूणी गल लग्गदी, वीरा, वर्‌हियाँ दे विच्छड़े मिलपये, मै वारी !
भैण ने दुक्ख सुख फोलिया, वीरे दे डुल्हडे नैन, मै वारी !
वीरा, वे नैन डुल्हेदिया, तेरी वे रोवे बला, मै वारी !
तूँ घोड़े मै पालकी, चल्लांगे हंसां दी चाल, मैं वारी !

'सास जी, कोई मेरे देश का पुरुष यहां आए तो मैं उस के लिए रावी पर नया घर बनवा दू।

सौ आते हैं, साठ जाते है, एक मेरा मा-जाया ही नही आता।

चौबारे मे बैठी मै सूत कात रही हूं, नीली घोडी पर सवार 'वीर' आ रहा है, मै बलिहारी !

बचती पूनी चरखे पर ही छोड कर, मैं 'वीर' के गले लगूँगी, मै बलिहारी !

बहन ने दु ख-सुख खोल कर सामने रख दिया, तो 'वीर' के नयन उमड़ पड़े।

ओ जी उमडे नयनो वाले 'वीर', तुम्हारी बला रोवे, मैं बलिहारी।

तुम घोड़े पर सवार होगे, मै पालकी मे बैठूँगी; हस चाल से हम चलेगे।'

जैसे यह गीत गाँव के पास से गुजरती रावी को सुना कर गाया गया हो। रावी के किनारे बैठ कर कितनी बहनो के आँसू उमडे होगे ! रावी की लहरो मे कितने आँसुओ न शरण ली होगी इतन शोकाश्रु रावी कहा ल जा रही ह ? बहते जल को तो आग

बढना होता है, कोई इस मे आंसू मिलाए या मुस्कान की सुनहली किरन, पर क्या बहता जल कभी भी पीछे मुड कर नही देखता ?

सखियो के बीच सूत कातती बहन, चरखे के एक-एक फेर मे, एक-एक तार मे, भाई की बाट ही तो जोहती है। यो तो एक-एक कर के अनेक दिन गुजर जाते है, भाई नही आता; फिर एक शाम ऐसी भी तो आती है, जब भाई को आ ही जाना चाहिए, और जब तारो की झिलमिल मिलन के पृष्ठचित्र को सजीव बना देती है —

> **संझ पई तरकाला पइयाँ, झिम्मीं उत्ते बूँदाँ पइयाँ !**
> **चारे चरखे चुक्को सहेलियो, तारेयाँ झिरमल लाया !**
> **'उठ्ठ कुड़े तूँ केहड़ी कुड़े वीर तेरा नी आया !**
> **आवँदडा चढ़ पँलघे बैहँदा लस्सी कच्ची दा तरहाया !'**
> **'लस्सी कच्ची मेरी वरती जाँदी, कढ़दा दुद्ध पिआया !**
> **पीलै पीलै अम्माँ-जाया लप्प कु मिठ्ठा पाया !**
> **हेठाँ गड़वा उत्ते कटोरा पी लै वे अम्माँ-जाया !'**
> **आँढनाँ गुयाँढनाँ पुच्छन लग्गीयाँ वीरा की कुज्झ लिआया !**
> **झुग्गा चुन्नी मैंहदी मौली सिर नूँ फुल्ल लिआया !**

शाम हो आई। अँधेरा छा गया। 'झिम्मी'[१] पर वर्षा की बूंदे पड़ गई।

चलो अब चारो चरखे उठा कर रख दे, सखियो, तारो ने कैसी झिलमिल लगा दी है !

'उठ कर खडी हो जा, बहन, मै—तेरा 'वीर'—तेरे घर आया हू। आते ही मै पलग पर आ बैठा हू, मुझे प्यास लगी है, कच्ची लस्सी पिला।'

'कच्ची लस्सी तो शेप हो गई,' बहन बोली, 'मै तुझे कढता दूध पिलाती हू। लो पीलो, मा-जाये, मुट्ठी भर मीठा डाल कर लाई हू। नीचे गड़वा भरा है, ऊपर कटोरा, जी भर दूध पीओ।'

पडोसिने पूछ रही है—भाई क्या क्या लाया ?

---

[१] रथ पर का उलार

ये कमीज, चुनरी, मेहदी, 'मौली' और सर के लिए फूल, भाई ही तो लाया है !

और जब भाई के आतिथ्य मे बहन को स्वतंत्रता नही मिलती, सास नाक निकोडती है, बहन के हृदय से एक आह निकल कर रह जाती है "सस्से, तेरी खण्ड मुक्कगी, जद वीर मेरे घर आया !" (हाय, सास, जब भाई मेरे घर आया, तो तुम्हारी खॉड खतम हो गई !), या जब सास घी की कजूसी करती है तो क्रोध मे बहन का शाप बेचारी भैंस पर जा कर पडता है . "सस्से, तेरी बूरी मरजे, मेरे वीर नू सुक्की खण्ड पाई !" (तुम्हारी भूरी भैंस मर जाय, सास, मेरे भाई की थाली में तुम ने सूखी खाड रख दी है !)

एक गीत में भाई को मित्रो महित बहन के ससुराल से गुजरते दिखाया गया है। भाई आए और बहन से मिले बिना, या उसे लिए बिना, पास से गुजर जाय, बहन यह न सह सकी। भाई ने बहाने किए, बहन ने शांति से अचूक उत्तर दिए :—

'वीरा, घर घर धेकॉ फुल्लियॉ; चन्दा, घर घर धेकॉ फुल्लियॉ,
एहवॉ धेकॉ दी ठण्डड़ी छांयों, वीरा वे तूँ आ घरे;
लै चल्ल मॉं-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे !'
'किक्कुण आवाँ भैणे भोलीए; किक्कुण आवाँ बीबी भोलीए,
मेरे साथी तॉं लंघ जॉदे दूर, भैणे नीं तूँ रह घरे;
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह घरे !'
'तेरे साथीयाँ नूँ घियो खिचड़ी; चन्दा, साथीयाँ नूँ घियो खिचडी,
आपणे वीरे नूँ गिरीयो छुहारे, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल मॉं-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे।'
'भैणें, अग्गे तॉं नदियॉं डूँघीयॉं; बीबी, अग्गे तॉं नदीयॉं डूँघीयॉं,
इक्क डोब लग्गे मर जॉयें, भैणें नीं तूँ रह घरे;
रह घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह घरे !'
'वीरा, नमीयाँ बनावॉं मैं बेड़ीयॉं; चन्दा, नमीयॉं बनावॉं मैं बेड़ीयॉं,
आपणे वीरे नूँ पार लंघावॉं, वीरा वे तूँ आ घरे;
लै चल्ल माँ पियो दे देश वे वीरा आ घर

'भैणें, अग्गे तॉं धुप्पाँ करडीयाँ; बीबी अग्गे तॉं धुप्पाँ करड़ीयाँ,
इक्क धुप्प लग्गे मर जॉय, भैणें नीं तूँ रह् घरे;
रह् घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणें रह् घरे !'
'वीरा, नमीयाँ बनावाँ मैं छतरीयाँ; चन्दा नमीयाँ बनावाँ मैं छतरीयाँ,
आपणे वीरे नूँ छायों करॉं, वीरा वे तू आ घरे;
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे !'
'भैणे, अग्गे तॉं सूलाँ त्रिखियाँ, बीबी, अग्गे तॉं सूलाँ त्रिखियाँ,
इक्क सूल चुभे मर जायें, भैणें नी तू रह् घरे !
रह् घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणें रह् घरे !'
'वीरा, नमीयाँ सुआवाँ जुत्तीयाँ; चन्दा, नमीयाँ सुआवाँ जुत्तीयाँ,
मैं ताँ ठम्म-ठम्म करदी जावाँ, वीरा वे तूँ आ घरे;
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे !'
'भैणे, अग्गे तॉं कुत्ते भौंकदे; बीबी अग्गे ताँ कुत्ते भौंकदे,
इक्क दन्द लग्गे मर जायें, भैणें नी तूँ रह् घरे;
रह् घर सस्सू जी दे कोल नी भैणे रह् घरे !'
'वीरा, मिट्ठीयाँ पकावाँ रोटीयाँ; चन्दा मिट्ठीयाँ पकावाँ रोटीयाँ,
मैं तॉं टुक्क टुक्क पौदी जावाँ, वीरा वे तूँ आ घरे,
लै चल्ल माँ-पियो दे देस वे, वीरा आ घरे !'
'भैणे, अग्गे ताँ भाबो लड़ाकड़ी; बीबी अग्गे ताँ भाबो लड़ाकड़ी,
इक्क बोल लग्गे मर जायें, भैणे नी तूँ रह् घरे,
रह् घर सस्सू जी दे कोल नी, भैणे रह् घरे !'
'वीरा, कुच्छड़ लवाँगी गीगड़ा; चन्दा गोदी लवाँगी भतीजड़ा,
लोरी गावाँ ते चोहल कराँ, वीरा वे तूँ आ घरे;
लै चल्ल माँ पियो दे देस वे, वीरा आ घरे !'

'भाई, घर घर अनेक वृक्षों की बहार है। देखो तो, चाँद भाई, घर घर की बहार है

'कितनी शीतल है इन अनेक वृक्षों की छाया! मेरे घर आओ न, प्यारे भाई, मा-बाप के देस को ले चलो मुझे!'

'ओ भोली बहन, बीबी बहन, तुम्हारे घर कैसे आऊं? मेरे साथी तो बहुत दूर निकले जा रहे है। यहां अपने घर में रहो, सास के पास अपने घर में रहो।'

'तुम्हारे साथियो को घी-खिचडी खिलाऊँगी। अपने चॉद भाई को बादाम की गिरिया और छुहारे खाने को दूँगी। मेरे घर आओ ना प्यारे भाई, मा-बाप के देस को ले चलो मुझे।'

'बीबी बहन, देस के मार्ग मे तो गहरी नदिया बहती है। तुम एक भी गोता खा गई तो मर जाओगी! यहा अपने घर मे रहो, सास के पास अपने घर मे रहो।'

'चॉद भाई, मै नई-नई किश्तियां बनाऊंगी। इन किश्तियो पर मै अपने भाई को पार करूँगी। मेरे घर आओ न प्यारे भाई, मा-बाप के देश को ले चलो मुझे।'

'बीबी बहन, आगे देस के मार्ग मे सख्त धूप पडती है। एक ही बार घाम लगने से तुम मर जाओगी। यहां अपने घर में रहो, सास के पास यही रहो।'

'चॉद भाई, मै नई-नई छतरिया बनाऊँगी। अपने भाई पर मैं छाया करूँगी। मेरे घर आ जाओ न प्यारे भाई, मा-बाप के देस को ले चलो मुझे।'

'बीबी बहन, आगे देस का मार्ग तीखे कॉंटो से भरा है। तुम्हारे पैर में एक भी कॉटा लग गया तो तुम मर जाओगी। यहां अपने घर में रहो, सास के पास यही रहो।'

'चॉद भाई, मै नई जूती सिलवाऊँगी। इसे पहन कर मै ठुमुक-ठुमुक कर चलूँगी। मेरे घर आ जाओ न प्यारे भाई, मा-बाप के देस को ले चलो मुझे।'

'बीबी बहन, आगे देस के मार्ग मे कुत्ते भौकते है। तुम्हे एक भी दॉत लग गया तो तुम मर जाओगी। यहां अपने घर मे रहो, सास के पास यही रहो।'

'चॉद भाई, मै मीठी रोटियां पकाऊँगी। रोटी के टुकडे कुत्तों के आगे डालती चलूँगी। मेरे घर आ जाओ न प्यारे भाई, मा-बाप के देस को ले चलो मुझे।'

'बीबी बहन, देस मे तुम्हारी भावज बहुत झगडालू है। उस का एक भी बोल तुम्हे चुभ गया तो तुम मर जाओगी। यहा अपने घर मे रहो, यही सास के पास रहो!'

'चॉद भाई मैं अपने नन्हे भतीजे को गोद मे लूगी लोरी गाऊँगी और मचल

मचल कर उस से खेलूँगी। मेरे घर आ जाओ न प्यारे भाई, मुझे मा-बाप के देस को ले चलो।'

नारी प्यार के लिए ही उत्पन्न हुई है। मा के रूप में वह अपनी संतान से पिता से कहीं अधिक स्नेह करती है, पत्नी के रूप में भी वह पुरुष से कहीं ऊपर उठी रहती है, बहन के रूप में वह भाई से बाजी ले जाती है। भाई ने सोचा था कि उस का आखिरी बहाना काम कर जायगा, पर बहन मानव-स्वभाव से परिचित थी। उस ने कहा मैं भावज को सहज ही मोह लूँगी, उस के शिशु को लोरी दे कर। भाड़ी में फुदकती गोरैयों-सा यह गीत पहले-पहल कब गाया गया था? कितनी बार उस ने भाषा का लिबास बदला होगा!

कल्पना-लोक में कितना प्रश्नोत्तर हुआ है? प्रत्येक गीत का अपना व्यक्तित्व है। और सब गीत मिल कर एक पूरा गीत-नाट्य बना डालते हैं—बहन का हृदय कितना गा सकता है! और जब बहन भाई का आवाहन करती गाती है "वीरा मेरेया सवेरे दिया तारेया, तीयाँ नूँ मैनूँ लैजी आन के!" (अजी ओ भोर के तारे, मेरे भाई, तीज पर मुझे लिवा ले जाना!) क्या बहन की आवाज आकाश पर के भोर के तारे की समझ में भी आ जाती है?

बहन की उँगली पर घाव हो गया। भाई के आने की बात सुन कर उसे पीड़ा की सुध बिसर गई। तब चला आतिथ्य का नाट्य-दृश्य:

> मेरी उँगली चीरी नी, कोई दस्सो दारु?
> वीरा, आयोंदा जो सुणियाँ, उंगली हच्छी होई!
> वीरा, कनक मँगाऊँणीया, सठ्ठ मग!
> वीरा, पीहण कराऊँणीयाँ, मोतीयाँ वरगा!
> वीरा, आटा पिहाऊणीयाँ, सुरमे वरगा!
> वीरा, आटा गुंन्होंऊँणीयाँ, मलाई वरगा!
> वीरा, पेड़े कराऊँणीयाँ, आडुयाँ जेडे!
> वीरा, लुच्ची तलावाँ, वे कोई थाल जेडी!
> सद्दो सहेलीयो नी, वीर रोटी खावे!
> वीर खाण आया नाल सठ्ठ जणें!

वीर खाय उठ्ठिया, 'कुज्झ मंग, भैणे!'
'वीरा सभ कुज्झ बथेरा वे विछोड़ा मन्दा!'

मेरी उँगली कट गई है, कोई दवा बताओ।

मै ने सुना, मेरा भाई आ रहा है, उँगली को आराम आ गया।

भाई, मै साठ मन गेहू मँगवा रही हू। भाई, इस गेहूं को मै मोतियो-सा साफ करवा रही हू।

भाई, मै सुरमे-सा बारीक आटा पिसवा रही हू। भाई, मै मलाई-सा नरम आटा गुँधवाती हूं।

भाई, मै आडुओ से छोटे पेडे करवा रही हू। भाई, मै थाल-सी बडी लुच्चियां तलवा रही हू।

सखियो, भाई को भोजन पाने के लिए बुलाओ।

भाई भोजन पाने आया, साथ मे साठ मित्र थे।

भाई ने भोजन पा लिया, वह उठ कर कहता है, 'बहन कुछ माँग'।

'मेरे घर सब कुछ है', बहन कह रही है, 'लम्बा वियोग ही बुरा है!'

कल्पना-लोक मे तो बहन जितना चाहे भाई का आतिथ्य कर ले, पर वास्तविक जीवन मे तो वह इतनी स्वतंत्र नही होती। यह भी हो सकता है कि वह सास की दी हुई कड़ी साँकल खोल कर भाई को अंदर बुलाने से झिझके, पर ऐसा सदा नही होता।

'महलाँ दे थल्लथल्ले जाँ दिया, वे मेरिया राजिया वीरा!
भैणां नूँ मिल घर जा, वे राम!
सभना भैणां दे वीर मिल मिल जाँदे, वे मेरिया राजिया वीरा!
मै परदेसन बैठी दूर, वे राम!'
'उठ्ठ के कुण्डड़ा खोल दे, नी मेरिए राणीएँ भैणे!
बाहर खड़ा तेरा वीरा, वे राम!'
'सस्सू दा दित्तड़ा न खुल्ले, वे मेरिया राजिया वीरा!
कन्ध टप्पे घर आयो- वे राम!'

कन्धा ता टप्पदे चोर नी मेरीए राणीएँ भैण !

मैं ता भैणा दा सका वीर, वे राम !'

'महल के नीचे नीचे जा रहे राजा भाई ! बहन से मिल कर जाना। सब बहनों के भाई मिल कर जाते है, राजा भाई, एक मै परदेसिन हू, देस से इस क़दर दूर बैठी हू !'

'उठ कर साकल खोलो, रानी बहन, बाहर तुम्हारा भाई खडा है।'

'सास की दी हुई साँकल मै नही खोल सकती, राजा भाई, दीवार फाद कर भीतर आ जाओ।'

'रानी बहन, दीवार तो चोर फादते है, मै तो बहन का सगा भाई हू !'

वास्तविकता की भूमि पर एक दूसरे गीत मे बहन-भाई की भेंट का चित्र खींचा गया है:

'आयो वे वीरा चढ़ीए उच्चड़ी माड़ी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरी मॉयों दे सुनेहड़े, राम !'
'माँ ताँ तेरी, भैणे, पँलघे बिठाई, पँलघों पीढ़े बिठाई,
हथ्थ अटेरन रंगली, राम !'
'आयो वे वीरा चढ़ीए उच्चड़ी माड़ी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरी भाबो दे सुनेहड़े, राम !'
'भाबो ताँ तेरी बीबी गीगड़ा जाया, भतीजड़ा जाया,
उठ्ठदी ताँ वैहँदी देंदी लोरीयाँ, राम !'
'आयो वे वीरा चढ़ीए उच्चडी माड़ी, मेरे कान्ह उसारी,
दे मेरीयाँ सइयाँ दे सुनेहड़े, राम !'
'सइयाँ ताँ तेरीयाँ भैणे छोपड़े पायें, वेहड़े चरखड़े डाहे,
तूँहीयों परदेसन बैठी दूर, नी राम !'
'चल्ल, वे वीरा, चल्लीए मांयों दे कोल, भाबो सइयाँ दे कोल,
चुक्क भतीजा लोरी गावाँगी, राम !'

'आओ, भाई, चलो ऊपर अटारी पर चले, यह अटारी मेरे प्रीतम ने बनवाई है अच्छा, मुझे मा का समाचार तो दो।'

'मा को तो मैंने पलंग पर बिठाया है, पलंग से उतर कर वह पीढ़े पर बैठती है, हाथ मे रंगीन अटेरन लिए वह सूत अटेरा करती है।'

'ऊपर अटारी पर चलो, भाई, प्रीतम की बनाई ऊँची अटारी पर। अच्छा, भावज का समाचार तो दो।'

'तेरी भावज के बालक जन्मा है—वह है तेरा नन्हा भतीजा। उठते-बैठते वह उसे लोरियां सुनाया करती है!'

'ऊपर अटारी पर चलो, भाई, प्रीतम की बनाई ऊँची अटारी पर। हां, तो मेरी सखियों का समाचार कहो।'

'तुम्हारी सखियां मिल कर सूत कातती है, आँगन मे चरखे जुटे है। अकेली तुम ही परदेस में बैठी हो।'

'चल भाई, मा के पास चले, भावज के पास, सखियों के पास। नन्हे भतीजे को उठा कर मैं लोरी गाऊँगी!'

सावन मे तो प्रत्येक बहन के भाई को आना ही चाहिए। बहन का दु:ख हलका करने के लिए, कुछ दिन के लिए उसे नैहर की हरियाली तीज दिखाने के लिए:

पंज सत्त पिन्नियाँ मा के माये मेरिए नी,
वीर मेरे नूं भेज, सावन आइया!
उच्चड़ा उच्चड़ा चौलड़ा ते सोहना मेरा वीर,
खली मैं उड़ीकाँ राह, सावन आइया!
रत्ते रत्ते पीढ़े तूं बैठी अम्माँ-जाइए नी,
केहा मैला तेरा भेस, सावन आइया?
किस दे दुक्खे तूं दुखी, मैंरिये भैणें नी?
कौन कहे वड्डे बोल, सावन आइया?
सस्सू दे दुक्खें मैं दुखी अम्माँ-जाया वे
नणद कहे वड्डे बोल, सावन आया!
रत्ते रत्ते डोले तूं बैठी अम्माँ-जाइए नी,
वीर घोड़ी असवार, सावन आइया!

'मा, पाँच-सात पिन्नियाँ (एक मिष्टान्न) उपहार मे दे कर, मेरे भाई को यहा भेज, सावन तो आ पहुँचा है !

ऊँचा-ऊँचा चबूतरा है, कितना सुंदर है मेरा भाई ! यहा खडी मे उसी की राह देख रही हू, सावन आ पहुँचा है ।'

'बहन, तू तो लाल पीढे पर बैठी है,' भाई ने पहुँचते ही कहा । 'पर तेरा भेस यो मैला क्यों है ? सावन तो आ पहुँचा है !'

'बहन, किस ने तुझे दुखी किया है ? बता तो । किस ने सरत-सुस्त बोल बोले ? सावन तो आ पहुँचा है ।'

'मा-जाये भाई, सास ने यो मुझे दुखी किया है । ननद ने कडवे बोल बोले, सावन तो आ पहुँचा है !'

'मा-जाई बहन, तू लाल डोली मे बैठेगी । स्वयं घोडी पर सवार हो कर मे तुझे ले चलूँगा, सावन तो आ पहुँचा है !'

और फिर कुल-वधू को नैहर जाने की आज्ञा मिल सकने की एक अलग समस्या आ खडी होती है; कई बार तो भाई की आँखो के सामने अपना अपमान देख कर बहन की संतोषी आत्मा विद्रोही होने पर आ जाती है । पर वह क्या कर सकती है ? शायद एकांत मे भाई के सम्मुख ननद, सास और ससुर का बुरा तक कर, दो चार जले-भुने शब्द कह कर, हृदय की अग्नि किसी कदर ठंडी करती है .

'सावन नीदाँ आइयाँ, सस्से, सानूँ पेइये पुचा !'
'मैं की जाणां नूँहें, कन्त नूँ पुच्छ के जावीं,
पुछा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'कन्ता कम्म करेंदेया, मै घर आया वीर, सोने दा तीर,—
लुँगी पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणां पेइए !'
'मैं की जाणां नारे, सौहरे नूँ पुच्छ के जावीं,
पुछा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'सौहरेया पँलघे बैठिया, मैं घर आया वीर, सोने दा तीर,
लुँगी पट्टदार जुत्ती तिल्लेदार—मैं जाणा पेइए

'मै की जाणां, धीए, जेठ नूँ पुच्छ के जावीं,
पुछा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'जेठा खूह ते बैठिया, मे घर आया बीर, सोने दा तीर,
लुंगी पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मै जाणां पेइए !'
''मे की जाणां कुड़ीए नणद नूँ पुच्छ के जावीं,
पुछा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'नणदे चरखा कतेंदीए, मे घर आया बीर, सोने दा तीर,
लुँगी पट्टदार, जुत्ती तिल्लेदार—मै जाणां पेइए !'
'भाबो, घर आई रूँ, पंजा के जावी, कता के जावीं,
वटा के जावीं, उणा के जावीं, धुया के जावी,
रखा के जावीं, झब्बे मुड़ आवीं !'
'वीरा, सुण वे मेरी नणद दा मर गया अब्बा,
मै बन विच्च दब्बाँ, धड़ा धड़ा पिट्टाँ, मै नहींयों जाणो पेइए—वीरा तूँ जावे !'

'अब तो मुझे सावन की नींदे आने लगी है ! सास जी, मुझे नैहर पहुँचवा दो !'

'बहू, मै क्या जानूं ? जा कर पति से पूछ ले, पुछवा ले, और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।'

'खेत मे काम करते कन्त, मेरे घर आया है मेरा 'वीर'—सोने के तीर सरीखा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूतीवाला, मै नैहर जाऊँगी।'

'नारी, मै क्या जानू ? जा कर जेठ से पूछ ले, पुछवा ले, और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।'

'कुएं पर बैठे जेठ जी, मेरे घर मेरा भाई आया है—सोने के तीर सरीखा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूतीवाला, मै नैहर जाऊँगी !'

'मै क्या जानू, लाड़ली, ननद की आज्ञा ले ले, पूछ-पुछवा ले और चली जा। पर बहुत शीघ्र लौटना।'

'चरखा कातती ननद, मेरे घर भाई आया है—सोने के तीर-सा, रेशमी लुंगी वाला, तिल्लेदार जूती वाला, मै नैहर जाऊँगी।'

'भावज अपने घर में रूई आई है पैंजवा कर जाना कतवा कर सत बटवा कर

जाना, बुनवा कर जाना, धुलवा कर जाना, ठीक से रखवा कर जाना, और बहुत शीघ्र लौटना।'

'ओजी मेरे 'वीर', बहन ने धैर्य छोड़ कर कहा, 'ननद का पिता मर गया है, मैं उसे जंगल में दफनाऊँगी, धड-धड पीटूंगी। मैं नैहर न जा पाऊँगी, तुम चलो।'

एक साथ ननद ने इतने काम बताए! और वह यह भी भूल गई कि गीत की तुक का स्वर और लय का गला घूटा जा रहा है, भारी भरकम शब्दो के बोझ से! स्वयं नारी ने नारी को कितना कष्ट पहुँचाया है! 'ननद मिट्टी की बनी मूर्ति भी क्यो न हो, भावज को वह चिढायेगी ही', पर यह सब क्यों? यहा कही कोई यह न समझ ले कि कुल-वधू नैहर नही जा पाती। "बक्करी दुद्ध ता दिन्दीआ, पर मीगना घोल के" (बकरी दूध तो देती है, पर मीगनी घोल कर), पजाब की यह लोकोक्ति शायद सम्मिलित कुटुब के आतरिक व्यथा-चित्र को अकित करने के लिए पनप उठी थी। बोल-बुलावा होता है, कडवी-कसैली आँखे लाल हो हो उठती है, कई-कई दिन तक मन-मुटाव चलता है। इस से क्या? एक दिन कुल-वधू नैहर जाती ही है। नैहर मे आ कर कन्या का हृदय फिर पहली सी स्वतन्त्रता का छोर छूता है, 'वीर' को सुना-सुना कर स्वर भरा जाता है:—

पेके किस धरमी बनाये, गलियाँ विच्च दुड़ंगे लाये!
पेके मोतीचूर दे लड्डू, जेहड़ा खाये सोई ललचाये!
सौहरे किस पापी बनाये, उड्डदे भौर पिञ्जरे पाये!
सौहरे बूर दे लड्डू, जेहड़ा खाये सोई पच्छताये!

किस धर्मी ने नैहर की रचना की थी? इस की गलियो मे खेली कूदी हूं। नैहर मानो मोतीचूर का लड्डू है, जो भी इसे खाता है, ललचाता रहता है। किस पापी ने ससुराल की रचना की थी? उडते भ्रमरो सी कन्याए पिजरे मे डाल दी गई है! ससुराल तो निरा लकड़ी के बूर का लड्डू है, जो भी इसे खाता है, पछताता है!

पंजाबी बहन के पास लोकगीत की मीरास मौजूद है। पुराने पजाब की आत्मा, जीवन की दुख-सुख से परिपूर्ण गंगाजमुनी कहानी, कल्पना और घटना का साँझा इतिहास, इन गीतो के एक एक शब्द मे व्यापक है।

पिछले वर्ष मैं अपने ग्राम मे गया तो चंदी वहा थी मैं यहा नैहर में आती हू

तो तुम न जाने कहा होते हो ?"—उस के ये शब्द बहन के हृदय मे निकले थे। और फिर उस से अनेक गीत सुनने को मिले थे, इधर कुछ वर्षो से उस के स्वभाव मे कुछ परिवर्तन भी हुआ है, पहले वह गीत सुना देती थी, इन का मूल्य न मांगती थी, अब वह कुछ गीत सुनाती है, तो कुछ सुनने की शर्त पहले ही लगा देती है।

जब भी चदी गाती है, सगीतज्ञो की भाँति वह गले से कुश्ती नही लडती। उस के गीतो की सादी ताने बहन-सुलभ भावनाओ को सजीव कर सकने की शक्ति रखती है। और न वह गीतों की आलोचना करती है। उसे आलोचना की आवश्यकता भी क्या पड सकती है ? वह केवल गा सकती है, लोकगीत उस का चिर-सखा है। आलोचक तो यही कहेगा कि हम इन गीतो में जो स्वय डाल सकें, वही फिर निकाल सकते हैं। पर चदी बहन है, और बहन के नाते इन गीतो का आलोचक से कही अधिक रस ले सकती है। मैं ने भी उस के सम्मुख कभी आलोचनात्मक चर्चा छेडने से प्राय परहेज किया है; हा, थोडी थोडी सरस टीका-टिप्पणी को मैंने आवश्यक समझा है. और वह इस पर झल्ला उठती है। गीत शाति से सुने जाने चाहिए। इसे वह शायद एक नियम के रूप मे पेश करती है। ज्यादा बातें बनाना, बात की और चुप्प हो रहे, यह न कर के बात की खाल उतारना, या उस के अपने शब्दों में 'गीतो की अँतड़िया' टटोल-टटोल कर बाहर निकालना, यह सब उसे नापसद है। समझने समझाने से कही अधिक तो रस मे डूबने की महत्ता है, यही शायद उस का प्रिय दृष्टिकोण है।

उस का भाई, चन्नण, उस के गीतों की ओर अब भी कोई खास आकर्षण नही पाता, यह वह जानती है। अब वह चन्नण की शिकायत नही करती। चन्नण उसे नैहर ले आता है, वही उसे ससुराल मे मिल भी आता है, और यह क्या कम बात है ? जब चंदी गाती है "सरवन वीर कुड़ियो, बोते चारेंद भैणा नूँ मिल औंदे !" (सखियो, 'वीर' हों तो सरवन-से, जो बाहर ऊँट चराने जाते है तो भावावेश मे बहनो से मिल कर ही शाम को घर लौटते है !), उस का सकेत बहुत कुछ चन्नण की ओर रहता है; कई बार चन्नण ने ऐसा किया भी तो है, ऊँट चराते-चराते उसे चदी के ससुराल जाने की सूझी, और वह शाम को, चंदी से मिल कर, घर लौटा तो कोई जान भी न पाया कि वह दिन भर ऊँट चराता रहा या सफर करता रहा। चन्नण के ऊँट को चंदी बहुत प्रिय समझती है कितने ही नन्हें गान ऊँट की प्रशसा में बन गए हैं और चदी को इन से स्नेह है

तेरे बीर दा बागड़ी बोता, उठ्ठ के मुहार फड़ लै !

तुम्हारे 'वीर' का ऊँट खास बागड़ की पैदायश का है साधारण नही, उठ कर इस की मुहार पकड़ लो न !

लण्डे उठ्ठ नू शराब पियावे, भैण बरूतौरे दी !

दुम-कटे ऊँट को बरूतौरे की बहन शराब पिला रही है।

बोता एयो लशके, जिवें कालीयाँ घटाँ विच्च बगला !

ऊँट कितना चमकता है, जैसे वह काली घटाओं का बगुला हो !

जेहड़ा डण्डीयाँ हिल्लण न देवे, बोता ल्याई ओह बीरना !

जिस पर सवार हो कर चलते समय मेरे कान की बालियां न हिलें, अजी ओ बीरन, ऐसा ऊँट मेरे लिये लाना !

बोता वीर दा नजर न आवे, उड्डदी धूड़ दिस्से !

'वीर' का ऊँट कही नजर नही आता, खाली धूल उड़ती देख रही हू !

किते नाईयाँ दा टट्टू न लियाई,
बोता लियाँई सत्त सौ दा !

देखना कही मेरे लिए नाइयो का टट्टू न ले आना। मुझे लिवाने आए, तो पूरे सात-सौ रुपये के मोल वाला ऊँट लाना !

जदो वेख ल्या वीर दा बोता,
मल्ल वाँगू पैर चुक्कदी !'

उस ने 'वीर' का ऊँट आता देख लिया है, तभी वह पहलवान-सी चाल से पैर उठाती है !

बग्गा बोता ते कन्नाँ तों काला,
बीही दे विच्च आवे बुक्कदा !

सफेद ऊँट है, उस के कान काले है, 'बुक्कता' हुआ—गरजता हुआ वह गली में आ रहा है

खालै वे वीर दिया बोतेआ !

तारा मीरा पा'ता वड्ढ के !

हे मेरे 'वीर' के ऊँट, लो खालो, तुम्हारे सम्मुख मैंने 'तारा-मीरा' काट कर डाल दिया है !

मेरे सज्जरे बन्हाये कन्न दुख दे,

हौली हौली तुर बोतिया !

मैंने इन्हीं दिनों कान बिधाए है, उन में पहनी बालियां हिलती है तो पीड़ा होती है, अजी ओ ऊँट, जरा धीर गति से चलो न !

'बोते तेरे निज्ज नूँ चढी, जुत्ती डिग्गपी सतारेयाँ वाली !'

'डिग्गपी ताँ डिग्ग पैण दे, पिण्ड जा के समा दूँ चली !'

'तुम्हारे ऊँट पर मैं न बैठती तो अच्छा होता। हाय पथ में कहीं मेरी सतारों-जड़ित जूती गिर गई !' 'गिर गई तो बला से, परवाह न करो, ग्राम में चल कर मैं, एक क्या, चालीस जूतियां बनवा दूंगा !'

उठ्ठ आपणी जबानों बोल्ले, न डर भैणें मेरिए !

ऊँट खुद अपनी ज़बान से कह रहा है—'बहन, चढ़ते समय डरो मत।'

तेरे बोते दी मुहार बन जावाँ, स्योने दे तबीताँ वालिया !

जी चाहता कि मैं तेरे ऊँट की मुहार बन जाऊँ ! अजी ओ सोने के 'तबीत' पहनने वाले !

ऐतकीं फसल दे दाणे, लादी वीरा बग्गो उठ्ठले !

इस फसल से जितना रुपया मिले, उस से एक सफेद ऊँट खरीद लेना, भाई !

पँजां दी ल्यिाई लोगडी, मैं उठ्ठ लई हार बनावाँ !

पाँच रुपये की 'लोगड़ी' ले आना, मैं ऊँट के लिए हार बनाऊँगी !

और जब चदी ये सब गान गाती है, चन्नण का ऊँट उस के हृदय [illegible] बसता है। चन्नण तो उसे बहन मा-जाई [illegible] ही है उस का ऊँट भी तो उसे ब[illegible]न कह कर

पकारता ह—वह कहता ह डरो मत प्रम मे मझ पर सवार हो लो न बहन

अरब की एक लोक-कथा मे यह बताया गया है कि एक कबीले के सब लोग खुदा से गुमराह हो गए थे, और इसी जुर्म मे वे सब के सब आदमी की जून से ऊँट की जून मे परिणत कर दिए गए थे। पंजाब के जन-साधारण तक अभी यह कथा नही पहुँची।

चंदी को शायद यह मालूम नही कि उस के ये गान जीवन मे सदियो तक नही टिकने के, यों किताबो मे भले ही बद हो जायँ। जमाना बदल रहा है, चीजो की कीमते बदल रही हैं। खुद जन-साधारण मे भी अपने त्योहारो और गान-नृत्य आदि मे पहली-सी श्रद्धा और आस्था नही रही, गाते वे अब भी है, पर वह पहली बेफिकरिया, वह अवकाश की शात घड़िया, अब कहा है?

हमारा साहित्य क्या बहन का गीत न सुनेगा? लोकगीत के प्रति यह उपेक्षा का भाव कब तक बना रहेगा? कब हमारे देश मे कोई पुश्किन जन्म लेगा, कोई रौबर्ट बर्न्स, कोई येट्स! बहन का गीत किसी अमर साहित्यसेवी के पारस-स्पर्श की प्रतीक्षा मे मेरे घर के पास की नीम के पत्तो की तरह क्या यो ही झर जायगा?

अनागारिक गोविंद और उन की चित्रकला

[लेखक—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

अनागारिक ब्रह्मचारी गोविंद एक कुशल चित्रकार हैं। वह बौद्ध दर्शन तथा पुरातत्व के एक श्रमशील विद्यार्थी भी हैं। यह प्राचीन बौद्ध भिक्षुओं के आदर्शों से प्रभावित हो कर कला और धर्म के बीच सामंजस्य स्थापित करने के कार्य को अपने जीवन का मुख्य ध्येय मानते हैं।

अनागारिक गोविंद का पहला नाम अन्स्टं हाफमैन था। इन का जन्म जर्मनी के सैक्सनी प्रांत में मई १८९८ ई० में हुआ था। इस प्रकार इन की अवस्था इस समय प्राय ४१ वर्ष की है। बाल्यावस्था से ही यह धार्मिक प्रवृत्ति के थे, और जब से इन्हों ने स्वतंत्र-रूप से विचार करना आरंभ किया, तभी से यह विभिन्न-धर्मों तथा दर्शनों के अध्ययन में लगे। इन्हों ने सभी धर्मों में सुंदर और सच्चे विचार पाए, फिर भी इन्हें अपनी साधना के लिए कोई निश्चित मार्ग न मिला। अंत में इन्हों ने अपने विचारों को स्थिर करने के उद्देश्य से संसार के तीन महान् धर्मों, अर्थात् बौद्धधर्म, ईसाई धर्म, तथा इस्लाम का तुलनात्मक अनुशीलन आरंभ किया। आरंभ में उन का ऐसा विचार था कि ईसाई धर्म अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठतर सिद्ध होगा, परंतु ज्यों-ज्यों वह अपने विषय में पैठे त्यों-त्यों उन्हें बौद्धधर्म ने अधिक आकृष्ट किया, और यह केवल इसी धर्म का अध्ययन करते रहे। यहां तक कि आपने अपनी भाषा, जर्मन में, बौद्धधर्म पर एक ग्रंथ लिख कर प्रस्तुत कर दिया। जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ उस समय लेखक की अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। इस पुस्तक का प्रचार जर्मनी में तो हुआ ही, दूसरे देशों में भी, बौद्धों में इस की माँग हुई, और इस का एक अनुवाद जापानी भाषा में हुआ जिसे तोकियो की इंपीरियल यूनिवर्सिटी ने प्रकाशित किया।

अनागारिक गोविंद ने फ्रीबर्ग की यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र में शिक्षा पाई ओर फिर इटली में पुरातत्व का अध्ययन करते रहे। विगत महायुद्ध के बाद से यह इटली में,

नेपल्स के निकट केप्री नामक टापू में बस गए थे। केप्री समस्त यूरोप के विचारकों के मिलने जुलने की जगह और कला तथा साहित्य का एक अंतर्जातीय केंद्र-सा है। यहां पर यह अंतर्जातीय ख्याति के कलाकारों और कवियों तथा लेखकों के संपर्क में आए। मुझे यह जान कर किंचित कौतूहल हुआ कि यह प्रसिद्ध रूसी साहित्यिक गोर्की के पड़ोसी रहे हैं। इन के घर पर कभी-कभी कलाकार तथा कविगण एकत्र हुआ करते थे और उन्हीं के प्रोत्साहन से यह चित्रकार के रूप में जनता के सामने आए। इन की चित्रकला की पहली प्रदर्शनी, यहीं पर, केप्री में, हुई थी।

अनागारिक गोविंद तीन महाद्वीपों में खूब घूमे-फिरे हैं। विभिन्न बौद्ध संगठनों के संबंध में इन्हों ने समस्त यूरोप की यात्रा की है। जर्मन सरकार के शिक्षा-विभाग से वजीफा पाकर यह समस्त उत्तरी अफ्रीका में अटलांटिक महासागर से ले कर ईजिप्ट (मिश्र) तक पुरातत्व-संबंधी खोज का कार्य करते रहे हैं। जिस समय यह सन् १९२८ के अंत में लंका में आए उस समय यह जर्मनी की, बौद्ध-साहित्य की सब से बड़ी प्रकाशन-संस्था म्यूनिक की 'बनारस-वरलाग' के साहित्यिक मंत्री तथा उस संस्था की पत्रिका के संपादक थे। लंका में ही, सन् १९२९ में यह बौद्ध भिक्षु हो गए और संन्यास ले कर 'अनागारिक' वर्ग में दीक्षित हुए। तब से यह बर्मा, तिब्बत और हिंदुस्तान में भ्रमण करते रहे हैं और बौद्ध तीर्थों के दर्शन तथा बौद्ध-साहित्य और पुरातत्व के अनुशीलन में समय व्यतीत कर रहे हैं। इन के उपर्युक्त दूर देशों के भ्रमण के परिणाम-स्वरूप हमारे सामने वे विविध चित्र-पट हैं जो कि चित्रकार ने इटली, अफ्रीका, तिब्बत, लंका, बर्मा और हिंदुस्तान में तैयार किए हैं। यह चित्रपट इन विभिन्न देशों के प्राकृतिक दृश्यों तथा स्थापत्य के विशाल नमूनों को अंकित करते हैं।

हिंदुस्तान में अनागारिक गोविंद की चित्रकला का पहला प्रदर्शन सन् १९३४ में, कलकत्ता में, इंडियन सोसाइटी अव् ओरियंटल आर्ट के तत्वावधान में हुआ था। वहां के कला के केंद्रों में इन चित्रों ने बहुत मनोरंजन उत्पन्न किया था और इन की चित्रांकण-संबंधी प्रतिभा बहुमत से स्वीकृत हुई थी। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने इन के विषय में लिखा था—"यद्यपि यह बौद्ध-पुरातत्व के गंभीर विद्यार्थी है, फिर भी अपने चारों ओर के सौंदर्य को ग्रहण करने के निमित्त यह सदा जागृत रहते है, और इन के कुछ चित्र इस बात के प्रमाण हैं कि इन्हों ने प्रकृति से अंतरंग परिचय प्राप्त किया है। इन की शैली में बड़ा बल
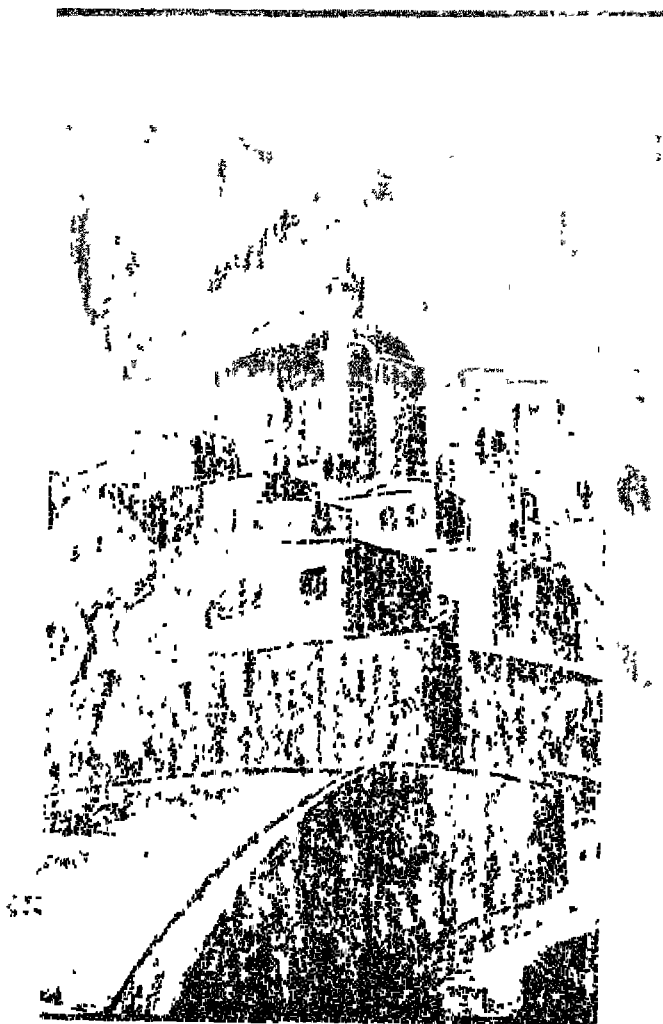
पोसिटानो (इटली)

हिमालय मे हिंदू मदिर
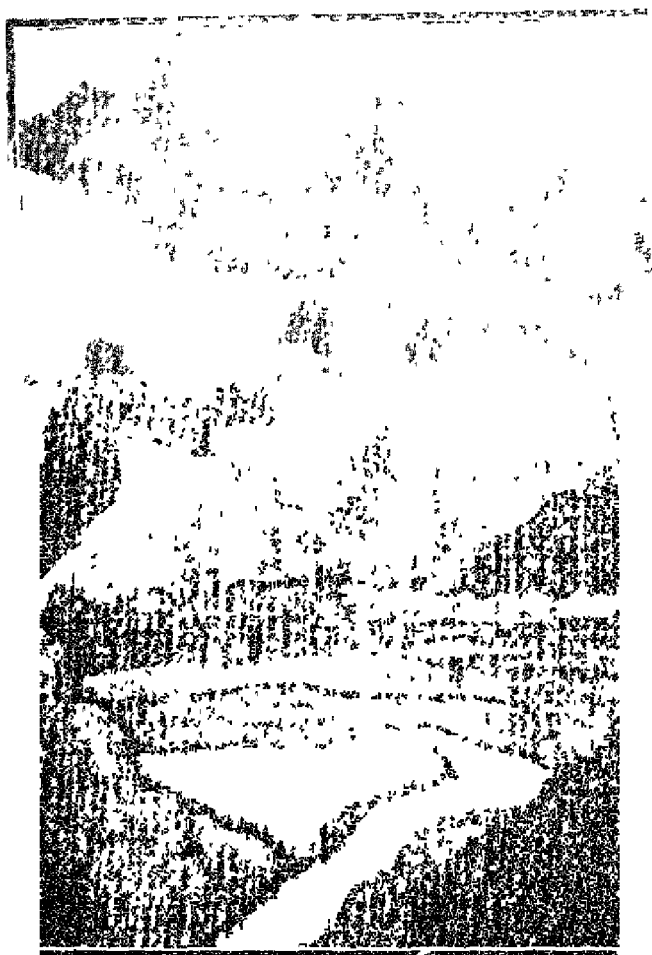
तिब्बत का एक पर्वतीय दृश्य

अलागला पर्वत (लंका)
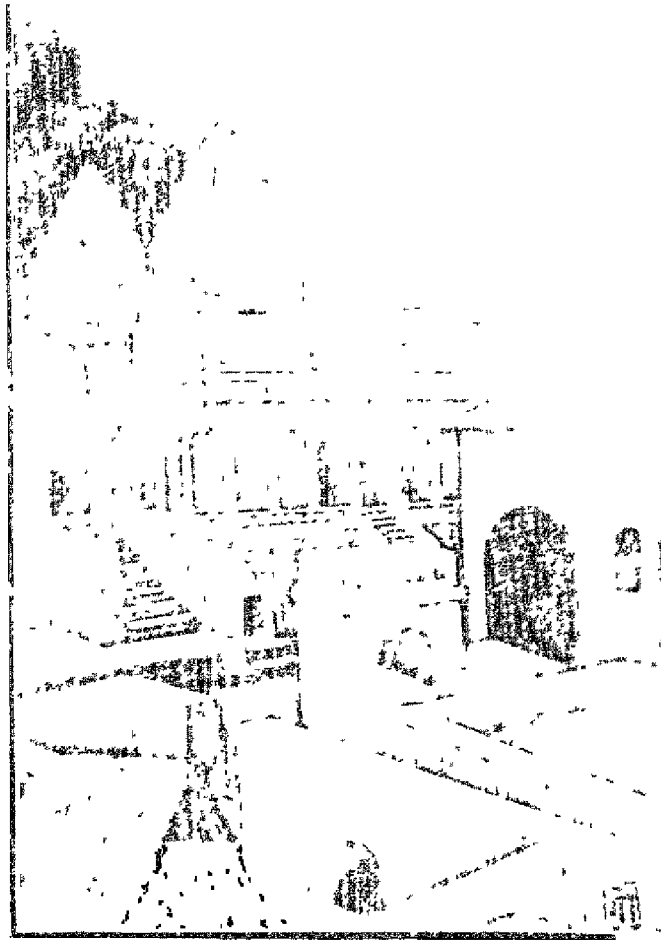
ब्रह्मकुंड, राजगिर

संत मिलारेपा

स्तूपासीन बुद्ध

मेरु पर्वत

है और इन की कल्पना भी शक्तिशालिनी है।" श्री नंदलाल बोस, जो स्वय एक बडे कलाकार है इन के विषय मे लिखते है —"इन के चित्रों मे एक सादगी और शाति का वातावरण है, यद्यपि ये चित्र गति तथा रंग से परिपूर्ण हैं। यह नक्काशी की भाति सुस्पष्ट ओर शिल्पकला की श्रेष्ठ कृतियो की भाँति सुव्यवस्थित है।"

सन् १९३६ के आरभ मे अनागारिक गोविद के चित्रो के प्रदर्शन इलाहाबाद मे रोरिक सेटर अव् आर्ट ऐड कल्चर के तत्वावधान में और लखनऊ मे गवर्नमेट स्कूल अव् आर्टस् ऐड क्राफ़्ट्स मे हुए। इन दोनों प्रदर्शनो ने कला मर्मज्ञों-का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया और इस बात का अनुभव किया जाने लगा कि यह ऐसे कलाकार है जिन की कृतियो की उपेक्षा नही हो सकती, जिन की रंग-व्यवस्था अपनी विशेषता ओर अनोखापन रखती है, और जो गहन भावो को उपयुक्त ढग से प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील है। सन् १९३६–३७ की संयुक्त-प्रातीय बडी प्रदर्शनी मे भी आप के चित्र लखनऊ मे प्रदर्शित हुए थे।

अनागारिक गोविद के चित्रपट, जिन की संख्या लगभग २५० के है, पॉच वर्गो मे विभक्त है। इन मे से चार वर्ग तो चार भिन्न भूभागो से संबद्ध है, अर्थात् इटली, उत्तरी अफ्रीका, हिंदुस्तान (जिस में लका और बर्मा सम्मिलित हैं) और तिब्बत। पाँचवे वर्ग के चित्र लाक्षणिक या साकेतिक है। यह सभी चित्र अधिकाश पैस्टल (रंगीन खरिया) से काले कागज की भूमि पर अथवा चारकोल (कोयला) से सफेद कागज की भूमि पर अकित हैं। केवल रगीन खरिया के सहारे चित्रकार आश्चर्य-जनक प्रभाव उत्पन्न कर सका है, यह इन चित्रों का प्रत्येक देखने वाला स्वीकार किए बिना नही रह सकता। कुछ चित्र चित्रकार ने वाटर-कलर (पानी के घोल के रगो) मे भी चित्रित किए हैं।

साधारणत. चित्रकार की प्रतिभा ऐसी उच्चकोटि की है कि इन मे से केवल थोडे से चित्रो को चुन लेना कदाचित् औरो के साथ अन्याय करना होगा। स्थानाभाव से केवल कुछ चित्रो का निर्देश यहां पर हो सकता है। इटली के चित्रो के वर्ग मे कदाचित् "केप्री—माउट सोलेरो" शीर्षक चित्र सब से प्रभावशाली हुआ है। चित्र ग्रीष्म-कालीन सूर्याभा मे डूबा हुआ जान पड़ता है। नीले रंग के समुद्र के भीतर से उठता हुआ गेरुआ और हरे रगो से भरा हुआ सोलेरो का पहाड़ अत्यंत रम्य दीखता है। 'केप्री में चॉदनी रात' उन स्थलो को चित्रित करता है जहा चित्रकार ने अपने के अनेक

वर्ष व्यतीत किए है। चित्र मे चाँदनी का प्रदर्शन बहुत सुदर ढग से हुआ है। इस वर्ग के दो कोयले से अकित चित्र भी विशेषरूप से वर्णनीय है। "गुफाए" शीर्षक चित्र यद्यपि वास्तविक स्थल चित्रित करता है, फिर भी एक लाक्षणिक चित्र-सा जान पड़ता है। इन गुफाओं मे चित्रकार ने कई वर्षो तक एकात-सेवन तथा ध्यान किया है। "भयावह घाटी" दक्षिणी इटली में एक ऐसी घाटी है जहा पर किसी समय डाकुओ के अड्डे थे। अब वह घर सुनसान खाली पड़े हुए है। इन्ही मे से एक मे चित्रकार ने एक मित्र के साथ रात बिताई थी। इस विचित्र अनुभव के स्मृति-रूप यह चित्र अकित किया गया है।

अफ्रीका-सबधी चित्रो मे दो चित्र सर्वथा विलक्षण है। एक तो वह है जिस का शीर्षक चित्रकार ने "अरबी पवित्र-गेह" रक्खा है। कितना सादा और प्रशांत चित्र है। एक नीलिम-हरित वातावरण मे एक छोटे-से पूजागृह का साध्य चित्रण किया गया है। पृष्ठ-भूमि मे अधकार ताल-वृक्षो का स्पर्श कर चुका है। इस चित्र मे मानो इस्लाम की प्रशात आत्मा प्रतिबिंबित होती है। दूसरा चित्र "अवसन्न ज्वालामुखी पर्वत" का है। समुद्र-तट पर स्थित इस लालिम पर्वत के सामने के झोपडो मे एक विचित्र निर्जनता है। अफ्रीका के चित्रो मे अधिकाश इमारतो या मसजिदो के है। चित्रकार इन इमारतो के साथ-साथ उस देश के वातावरण को बडी सफलता के साथ उपस्थित कर सका है। अनागारिक गोविंद स्वय स्थापत्यकला के विद्यार्थी है और उन का कहना है कि "मेरी समझ मे मानवी सभ्यता का यथार्थ उद्गार स्थापत्य-कला मे मिलेगा। स्थापत्य-कला द्वारा ही किसी देश, धर्म, या सभ्यता की आत्मा प्रतिबिंबित हो उठती है।" "कैरुआ की सध्या" और "छत ओर मीनार" शीर्षक चित्रो में उत्तरी अफ़्रीका के स्थापत्य और नगर-निर्माण का अध्ययन किया गया है। दोनो ही चित्र सुदर बन पड़े है। हिंदुस्तान के चित्रो मे "ब्रह्मकुड, राजगिर" प्रमुख है। चित्रकार ने इमारतों से घिरे हुए मदिर द्वारा यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि हिंदुस्तान मे धार्मिक जीवन एक प्रकार से जनता की आवश्यकताओ का अंग है, इसी लिए मदिर को निवासो से दूर बनाने का प्रयास नही किया गया है वरन् मंदिर ही की मानो छत्रछाया मे निवास-गृह निर्मित हुए है। "शातिनिकेतन - बगाली गाँव" मे चित्रकार ने बंगाली गाँवो की बस्ती का नमूना प्रस्तुत किया है। तमाल-वृक्षों से घिरी हुई झोपडियों का चित्र अत्यत सजीव है। इसी प्रकार 'हिमालय का हिंदू मदिर' भी बड़ा विलक्षण है यह पर्वतीय दृश्य

का एक सहज अंग ज्ञात होता है। और इस में भी वातावरण सफल रूप में प्रस्तुत हुआ है।

तिब्बत-संबंधी चित्रों में विषयों की बड़ी विभिन्नता है। हमें न केवल प्राकृतिक दृश्यों और वास्तुकला का चित्रण मिलता है वरन् देवी-देवताओं का भी। पश्चिमी तिब्बत में कलाकार ने खूब भ्रमण किया है। इस प्रदेश में उस ने मनुष्य और प्रकृति का ध्यान से अध्ययन किया है। उस का कहना है कि "यह रहस्यमय देश संसार के सभी भूभागों से नितांत भिन्न है---क्या धरातल की ऊँचाई, क्या वायु की पवित्रता, क्या प्रकृति के स्वच्छ रंगों का खेल, क्या आकाश की गहनतम नीलिमा---सभी बातों में अनोखा है, यहां की संपूर्ण चेतना ही भिन्न है।" अपने इस अनुभव को चित्रकार ने रेखाओं और रंगों में बाँधने का प्रयत्न किया है।

"झील और हरित भूमि" में तिब्बती प्राकृतिक दृश्य का हमें एक सुंदर उदाहरण मिलता है। पृष्ठ-भूमि में अनुर्वर पहाड़ों की सपाट चट्टानें हैं, मध्य में गहरे नीले जल की विशाल प्रशांत झील, सामने एक छोटा रम्य हरित स्थल है। यह चित्र समुद्रतल से १४००० फीट ऊँचाई के एक विस्तृत निर्जन स्थल का है जहां प्रकृति की नग्न सुंदरता का चित्रकार ने परिचय प्राप्त किया था। चित्रकार के अधिकांश अन्य चित्रों की भाँति यह भी गहरे रंगों में अंकित है। "लामायूरू मठ" तिब्बत के धार्मिक जीवन का एक जागृत केंद्र है इस चित्र द्वारा हमें उस विशाल निर्जन परंतु रंजित प्रदेश के वातावरण का आभास मिलता है जिस के द्वारा वहां का धार्मिक जीवन प्रभावित होता रहता है। तिब्बती वास्तुकला का अत्युत्कृष्ट उदाहरण हमें "लाहुल के राजमहल" में मिलता है, जो कि ल्हासा के दलाई लामा के राजमहल से मुकाबला करता है। "स्तूपासीन बुद्ध" की कल्पना एक विशिष्ट कल्पना है। एक छोटे स्तूप के सामने विनत होते हुए आराधक के मन में जिस बुद्ध की मूर्ति प्रकट होती है वही स्तूप में से छाया-सी प्रतिबिंबित हो रही है। बुद्ध के तेजोमंडल के ऊपर एक दूसरी बोधिसत्व की प्रतिमा है जो कि आराधक को आशीर्वाद दे रही है। तात्पर्य यह है कि आराधक की आराधना आशीर्वाद का रूप ग्रहण कर के उस के प्रति वापस आती है। यह चित्र भी तिब्बती चित्रों के वर्ग में है। इस वर्ग का एक और चित्र विशेष रूप से वर्णनीय है और वह है "कुरुकुल्ला"। यह बोधिसत्व का रौद्र-रसात्मक नारी-रूप है और तिब्बत की शैली में अंकित है और यह सूचित करता है कि चित्रकार ने

तिब्बत में निवास करते हुए कितने ध्यान से वहा की धार्मिक परपरा के अनुशीलन का प्रयत्न किया है। इस देवी की समता बहुत कुछ हमारी काली के रूप से है—वही विकराल भाव-भगी इस मे भी है, और गले मे मुडमाल देख कर भी काली का धोखा होता है।

चित्रकार के अतिम वर्ग के चित्र साकेतिक है। अपने अन्य चित्रो मे वह बाह्य रूपो, रगो तथा आकारो का आश्रय ग्रहण करता तथा उन का अनुकरण करता रहा है। उन में चित्रकार के अपने विचार, अपनी भावनाए अधिकरण के रूप मे आ पाई है। इन साकेतिक चिह्नो मे वह अपने आन्तरिक भावनाओ तथा चितन को, जो रूप, रग, आकार से मुक्त है इन सीमाओ में लाने का प्रयत्न करता है।

इन चित्रो में उन की बाह्य रूप-रेखा उतनी ही आकस्मिक है जितना कि अन्य चित्रो में रचयिता की निजी भावनाओ का पुट था। इन चित्रो मे सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभवो को रेखाओ और रगों द्वारा व्यक्त करने का एक दुरूह कार्य चित्रकार ने सपादित करने का प्रयत्न किया है। इन मे उसे कितनी सफलता मिली है, बतलाना कठिन है। यह चित्र ऐसे है भी नही जिन की विशेष व्याख्या की जा सके। यह चित्रकार के निजी आध्यात्मिक अनुभवो को व्यक्त करते है। इस वर्ग की मुख्य रचनाए वह है जो ध्यान की विविध अवस्थाए तथा विकास के विविध क्रम चित्रित करती है। इस वर्ग का एक चित्र 'मेरु पर्वत' है। यह हमारे लिए विशेष दिलचस्पी की वस्तु है, क्योकि इस के द्वारा हमें इस बात का परिचय मिलता है कि किस प्रकार एक पाश्चात्य विचारक—जिस ने हमारे देश को अपना घर बना लिया है—हमारी रूढियो से प्रभावित होता है और उन के द्वारा विचारो का नव-सचार प्राप्त करता है।

साधारणत: जो प्रभाव इन चित्रो का पडता है वह यह है कि इन मे कलाकार गहन प्रेरणा से प्रेरित है। वह कला को कौतूहल की वस्तु नही समझता। अधिकाश चित्र प्राकृतिक दृश्यो तथा इमारतो के है, फिर भी उन मे हमे चित्रकार के मनन के गुण का आभास मिलता है। अथवा जैसा कि कलाकार नदलाल बोस ने बताया है "वह रग और आकार प्रदर्शित करते है अवश्य, परतु यह वह रग और आकार है जिसे कि कलाकार ने अपने ध्यान और प्रकृति के अन्यतम निरीक्षण द्वारा प्राप्त किया है।"

अनागारिक गोविंद कवि भी है। उन्हो ने जर्मन भाषा मे दो छोटी कविता-पुस्तके प्रस्तुत की है इन के शीषक है रिपश पद्यमय सूक्तिया १९२७

और "जेदाकन ऊँद जेसिचे" ("विचार और कल्पनाए") (१९२८)। इन पुस्तको मे हमे कलाकार के गहन विचारो और उस की कोमल कल्पनाओ का परिचय मिलेगा। अनागारिक गोविद ने बौद्ध दर्शन, और मनोविज्ञान पर एक सग्रह ग्रथ भी प्रकाशित किया है जो पाली-अभिधम्म पर आश्रित है। यह ग्रथ सन् १९३१ मे प्रकाशित हुआ था और जर्मनी मे सरकारी सहायता से प्रकाशित हुआ था। कलाकार श्री रवीद्रनाथ ठाकुर के विश्व-विख्यात शातिनिकेतन मे, 'विश्वभारती' मे कई वर्ष तक शिक्षक भी रहा है। अनागारिक गोविद ने अन्य भारतीय युनिवर्सिटियो मे भी बौद्ध विषयो पर अनेक व्याख्यान दिए है। अभी हाल मे पटना यूनिवर्सिटी ने इन्हे "प्राचीन बौद्ध दर्शन" पर व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया था और शीघ्र ही उन के व्याख्यान पुस्तक-रूप मे प्रकाशित होगे। बौद्ध-पुरातत्त्व पर आप के कई व्याख्यान जो शातिनिकेतन मे दिए गए थे अब क्रमश प्रकाशित हो रहे है। स्तूपो के लाक्षणिक सकेतो के कुछ पहलुओ के विषय पर दो खड १९३५ और १९३६ मे प्रकाशित हो भी चुके है। इन्हे इटर्नेशनल बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटी असोसिएशन ने प्रकाशित किया है। अनागारिक गोविद इस सस्था के स्वय जेनरल सेक्रेटरी भी है। सन् १९३७ मे बिहार ऐंड उडीसा रिसर्च सोसाइटी के तत्वावधानमे भी अनागारिक गोविद स्तूप निर्माण-कला पर सारगर्भित व्याख्यान दे चुके है। उन की एक और कृति भी विशेष रूप से उल्लेख्य है। वह है "आर्ट ऐंड मेडिटेशन" जिस मे कला और साधना पर लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभूतियो के आधार पर सूक्ष्म विवेचन किया है। यह विषय भी पहले व्याख्यान के रूप मे इलाहाबाद के रोरिक सेटर अव् आर्ट ऐंड कल्चर के तत्वावधान मे जनता के सामने आ चुका था।

तिब्बत मे रह कर भी अनागारिक गोविद ने एक महत्वपूर्ण और मनोरजक विषय का अनुशीलन किया था। वह विषय है ८४ सिद्धो का इतिहास तथा उन की प्रतिमाए। पश्चिमी तिब्बत मे परिभ्रमण करते हुए इस विषय पर उन्हे कुछ ऐसी मौलिक सामग्री प्राप्त हुई है जो अभी तक प्रकाशित नही हुई। सातवी से ग्यारहवी सदी तक हुए इन तात्रिक बौद्ध महात्माओ के सबध का साहित्य भारतीय इतिहास के एक ऐसे समय की सस्कृति पर प्रकाश डालता है जिस के चिह्न मुसलमानो के आक्रमणो के कारण लुप्तप्राय है। सिद्धो को एक प्रकार से हिंदी साहित्य का स्रष्टा कह सकते है क्योकि सब से प्रथम यही व्यक्ति थे जिन्हो ने जनता की भाषा का हिंदी कविता मे प्रयोग किया है तिब्बत मे न केवल इन

महात्माओ के जीवन-वृत्त तथा प्रवचन संगृहित हुए हैं वरन् इन के चित्र भी अनागारिक गोविंद इन की नकलें लाए हैं। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित होगी, उस समय, ऐसी आशा है कि यह भारतीय इतिहास के कुछ धुंधले पृष्ठों को प्रकाशित करेगी।

विगत फरवरी में अनागारिक गोविंद के नाम पर इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्यूजियम में राय राजेश्वर बली महोदय के हाथों एक 'हाल' का उद्घाटन हुआ जिस में कि कलाकार की अनेक मौलिक कृतियां सुरक्षित और एकत्रित हुई हैं। इन के आधार पर गोविंद की कला का समुचित अध्ययन किया जा सकता है।

कलाकार, कवि, यात्री और व्याख्याता—इन सभी रूपों में अनागारिक गोविंद अपनी प्राथमिक प्रेरणा को—कला और धर्म के बीच के सामंजस्य को प्रस्थापित करने के कार्य को—अग्रसर कर रहे हैं। उन्हों ने एक स्थल पर कहा था कि "मैं नई पीढ़ी का इसे एक कर्तव्य मानता हूं कि वह बोधिसत्व की भावना से प्रेरित ऐसे धार्मिक मनुष्यों को उत्पन्न करे जो कि संसार से मुख न मोड़ कर, उसे सत्य और समत्व के प्रकाश से उज्ज्वल करें। भिक्खु को संसार का त्यागी न बन कर उस पर निछावर हो जाने वाला व्यक्ति बनना चाहिए। उसे ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अपने घर को छोड़ कर संसार को अपना घर बनाता है, जो निजी कुटुंब का त्याग कर के विश्व को अपना कुटुंब बनाता है। सारांश यह कि त्याग में नकारात्मक भावना को स्थान न दे कर ऐसी भावना को स्थान देना उचित है जो बंधनों को तोड़ कर उस मुक्ति की ओर अभिमुखी होती है जो समस्त धर्मों का, और निश्चय रूप से कला का भी, ध्येय है।" इस आदर्श से प्रेरित हो कर अनागारिक गोविंद लोक-संग्रह के कार्य में दत्त-चित्त हुए हैं और उन के विचारों का किंचित् परिपाक उन के जीवन, उन की पुस्तकों, और उन के बनाए चित्रों में हमें मिलता है[1]।

---

[1] **इस लेख से संबद्ध चित्रों के ब्लाक इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स के स्वामी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।**

समालोचना

नवीन भारतीय शासन-विधान—लेखक, श्री रामनारायण "यादवेंदु", बी० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, नवयुग-साहित्य-निकेतन, आगरा। पृष्ठ-सख्या, २७०+१४+२। मूल्य २)

मध्यप्रांत के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर डा० नारायण भास्कर खरे ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है और युक्तप्रात के न्याय-मत्री डा० कैलाशनाथ काटजू ने प्रस्तावना लिखी है। दोनो ने मुक्तकठ से पुस्तक का स्वागत किया है और खुशी जाहिर की है कि हिंदी मे ऐसी पुस्तके निकलने लगी है। इस मे कोई सदेह नही कि लेखक ने सन् १९३५ ई० के नए-नए शासन-कानून का बड़ी मेहनत से अध्ययन किया है और उस के गुण-दोषो को समझने की चेष्टा की है। इस के अलावा पहले अध्याय मे उन्हो ने देश के अर्वाचीन राजनैतिक इतिहास का सिंहावलोकन भी किया है और राजनैतिक विधान के सिद्धातो को भी स्पष्ट किया है। पुस्तक के दो भाग है—एक मे तो प्रातीय स्वराज्य की चर्चा है और दूसरे मे सघशासन की। दोनो ही भागो मे १९३५ के विधान का विश्लेषण बहुत योग्यता-पूर्वक किया है। जहा तहा प्रसिद्ध राजनीतिज्ञो की सम्मतिया भी दी है। हिंदी के लेखको को और पाठको को इस से बहुत सहायता मिलेगी।

खेद है कि हिंदी के अन्य ग्रथो की तरह इस मे भी छापे की कुछ गलतिया रह गई है। आशा है कि भविष्य सस्करणो में यह दूर कर दी जायँगी।

बेनीप्रसाद

*   *   *

साहित्य का सुबोध इतिहास—लेखक, श्री गुलाबराय, एम्० ए०। प्रकाशक, साहित्य-भंडार, आगरा। मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री गुलाबराय के नाम से हिंदी-ससार सुपरिचित है।

ठोस गठीली भाषा और सुसंस्कृत विचारों की अभिव्यक्ति, उन की विशेषता है। साथ ही, एक परिपक्व भावुक हृदय उन की समालोचनाओं में उन के साथ रहता है, जिस के कारण उन की कृतियाँ रूखी-सूखी न हो कर सरस रहती हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के साथ उन्हों ने इस साहित्यिक इतिहास को भी लिखा है। साहित्यिक इतिहासों की आवश्यकता है, और वे इधर कुछ दिनों से हमारे साहित्य में निकलने भी लगे हैं। किंतु इतिहास-लेखन जितना गुरुतर कार्य है, उतना ही उत्तरदायित्व भी चाहता है। श्री गुलाबराय की यह पुस्तक उत्तरदायित्व-पूर्ण है, और संक्षिप्त इतिहास-लेखन के लिए एक आदर्श है। इस में हिंदी के आदिकाल से ले कर आधुनिक काल तक की समस्त धाराओं का सुबोध अवगाहन है। नवयुवक विद्यार्थियों के लिए यह एक उपयोगी वस्तु है। इसे पढ़ कर वे बड़े इतिहासों को ग्रहण करने लायक संस्कार पा जाएँगे।

शां० द्वि०

* * *

सुमित्रानंदन पंत—लेखक, प्रो० नगेंद्र, एम्० ए०। प्रकाशक, साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा। मूल्य १)

यह हिंदी के कोमल-कांत कवि श्री सुमित्रानंदन पंत की समस्त काव्य-कृतियों पर लिखी गई एक समीक्षा पुस्तक है। अपने थोड़े वर्षों की द्रुतगामी प्रगति में हमारा साहित्य इतना आगे बढ़ आया है कि न केवल उस के इतिहास की, बल्कि, वर्तमान साहित्य के विशेष-विशेष निर्म्मायक स्तंभों पर स्वतंत्र समीक्षात्मक पुस्तकों की भी आवश्यकता है। साथ ही, इतिहास-लेखन के लिए जैसे बहुत सधी हुई कलम की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार ऐसे ग्रंथों के लिए भी। कुछ अंशों में यह कार्य इतिहास-लेखन से भी गुरुतर है। इतिहास-लेखक तो विशेष-विशेष परिणत धाराओं को शृंखला-बद्ध पिरो लेता है, किंतु इतिहास की धारा में सूक्ष्म वीचियाँ उठाने वाले कलाकारों की बारीक अनुभूतियों पर कुछ कहने के लिए लेखक को बहुत ही आत्मविदग्ध होना पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसके लेखक पंत जी पर लिखने के सुयोग्य अधिकारी हैं। उन्हों ने बड़ी ही सहृदय दृष्टि से कवि पंत को जाना-समझा है और एक कलाकार पर एक कलात्मक दृष्टिकोण से ही स्वच्छ प्रकाश डाला है। हिंदी-समालोचना की शैली कितनी बदल गई है, यह इस पुस्तक से स्पष्ट ज्ञात होता है जिस तेजी से हमारे साहित्य और कला की व्यंजनाएं

बदल रही है उसी तेजी से समालोचना की तर्ज-अदा भी बदल रही है। पुरानी रुचि का जो साहित्यिक समाज वर्तमान साहित्य के स्पर्श मे नही है, वह नई समालोचना-शैली को देख कर, एक बदले हुए ससार का अनुभव करेगा। लेकिन नई पीढ़ी, नए ससार और नए साहित्य को बड़े मनोयोग से ग्रहण कर लेती है। फलत: यह पुस्तक भी नई पीढ़ी के पाठको के लिए उन की अपनी चीज़ है।

अंग्रेजी शैली की समालोचना के अनुरागी पाठको के लिए पुस्तक सुरुचिपूर्ण और संग्राह्य है। कवि पंत को जानने के लिए भी इसे प्रथम पुस्तक समझना चाहिए।

शां० द्वि०

* * *

मधूलिका––रचयिता, 'अचल'। प्रकाशक, साधना-मदिर, प्रयाग। मूल्य २)

श्री 'अचल' हिंदी के सद्य-नवयुवक कवियो मे है। उन्हो ने बहुत सी कविताए लिखी हैं, जिन मे से कुछ का सग्रह इस पुस्तक मे है। अपनी कविताओ मे कवि ने रूप की ज्वलित तृष्णा ले कर उस के पीछे एक परवाने की तरह अपने को न्यौछावर किया है, इसी लिए इन कविताओ मे एक मोहिनी ज्वाला है। यह नहीं कि कवि इन कविताओ मे जल कर भस्म हो गया है, बल्कि दग्ध हो कर उस ने ट्रेजडी की तप्त-कचन-मूर्ति पाई है।

कवि अपने उद्‌गारो मे सच्चा है, उस ने बिना किसी बचाव-छिपाव के अपने तृष्णावेग को स्वाभाविक रूप मे रख दिया है। इस की अनेक पक्तिया फुरसत के समय गुनगुनाने की चीज़ है।

कोमल-प्रखर विभिन्न कवियो के विभिन्न भाव भी इस कविता-पुस्तक मे गृहीत है, किंतु कवि का अपना व्यक्तित्व सुरक्षित है। हम आशा कर सकते है कि 'मधूलिका' के कवि का यौवन प्रौढ़ता भी प्राप्त करेगा।

शां० द्वि०

* * *

कहानी-कला––लेखक, श्री विनोदशंकर व्यास और श्री ज्ञानचंद जैन। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-कुटीर, बनारस। मूल्य ॥।=)

यह कहानी-कला के संबध मे एक गाइड-बुक है।

पुस्तक के परिचय में कहा गया है कि जो लोग कहानी लिखना सीखना

चाहते है, उन के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।" यहा यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या कहानी किसी कहानी-शास्त्र से सीखी जा सकती है ? इसे मानना ऐसा ही होगा जैसे रीति-शास्त्र पढ कर कविता लिखना। कला के शास्त्रीय टेकनीक तो रचनाकारो के आधार पर निर्धारित किए जाते है। एक युग तक कला जिन कलाकारो मे विकास पाती है वे कला की अतिम सीमा नही होते, अतएव उनकी परिधि मे ही कोई परिपूर्ण आदर्श नही उपस्थित किया जा सकता।

इस प्रकार की कृतियो का वास्तविक उपयोग तो यह होना है कि वैज्ञानिक वस्तुओ की तरह ही किसी कला के निर्माण के आभ्यतरिक रहस्यो से उस समाज को परिचित कराया जाय जो उस के प्रति अपने कुतूहल मे अबोध है। विज्ञान की किसी वस्तु के आभ्यतरिक रहस्यो को जान कर जनसाधारण वैज्ञानिक के मानसिक तलुओं की क्रिया-प्रक्रिया के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सामाजिक सौहार्द्र प्रदान करता है, इसी प्रकार कवि और कहानी-लेखक के प्रति भी। अतएव, ऐसी पुस्तको की उपयोगिता सर्वसाधारण के लिए विशेप है, किंतु किसी आगतुक रचनाकार के लिए सिर्फ एक निर्देश मात्र है। रचनाकार इस से लाभ उठा भी सकता है और नही भी उठा सकता। उस के लिए यह निश्चित रूप मे अनिवार्य नही। यो, यह पुस्तक सुरुचि और गहराई के साथ लिखी गई है और लिखने के ढग मे रोचकता और नवीनता है।

शां० द्वि०

*　*　*

नवयुग-काव्य-विमर्श—लेखक, श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल'। प्रकाशक, गगा-ग्रथागार, लखनऊ। मूल्य, सादी २॥), सजिल्द ३)

यह हिंदी के 'छायावादी' कवियो की कविताओं का सग्रह है। प्रत्येक कवि की रचनाए देने के पहले, प्रारभ मे कवि का सक्षिप्त परिचय, इस के बाद विस्तृत भाव-परिचय दिया गया है। विशेष-विशेप कवियो के चित्र भी है। कवियो के चित्र और कवियो की कविताओ पर लेखक के अपने भाव-चित्र इस के बाद काव्य-सग्रह, इस क्रम को मिला कर यह पुस्तक एक सचित्र काव्य है। नवयुवको के मनोविनोद के लिए अच्छी है।

शां० द्वि०

*　*　*

संगीतांजलि---लेखक, पडित ओकारनाथ ठाकुर, सगीत महामहोदय, सगीत-मार्तंड आदि। प्रकाशक, श्री सगीत-निकेतन, खेतवाडी मेनरोड, बंबई, ४। पृष्ठ-सख्या १०७; मूल्य १।)

सगीत के विद्यार्थियों के उपयुक्त अच्छी पुस्तको की अभी बहुत कमी है। सिवा स्वर्गीय भातखाडे और विष्णु दिगबर की पुस्तकमालाओ के अभी तक प्रामाणिक लेखको और अपने विषय के विशेषज्ञों की लिखी हुई पुस्तके नही के बराबर है। मुश्किल यह है कि इस विद्या के नामी उस्ताद प्राय साहित्यिक नही होते और जो साहित्यिक होते है वह इस विद्या के पूरे जानकार नही हो पाते। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक भारत के एक अग्र-गण्य गायक और स्वर्गीय विष्णु दिगबर के प्रधान शिष्य है। आप इस विषय पर प्रामाणिक ग्रथ लिखने के सर्वथा अधिकारी है। इस पुस्तक को आप ने अपने दीर्घ अनुभव और गभीर ज्ञान के अनुसार प्रथम शिक्षार्थियो के लिए अत्यत उपादेय बनाया है इस मे कोई सदेह नही। नौसिखियो की कठिनाइयो का ध्यान रखते हुए आप ने एक नई नोटेशन-पद्धति और स्वर-साधन की प्रणाली सामने रक्खी है। आप ने पहले पॉच स्वरो के राग भूपाली, दुर्गा आदि से रागप्रवेश का मार्ग दिखाया है। साथ ही आप ने आरभ मे जो राग-परिचय और ताल-बद्ध अलकार और सरगमे दी है वह बडे ही वैज्ञानिक और उपादेय सिद्ध होगे, इस मे सदेह नही। अत मे आप ने पुस्तक मे दिए हुए प्रत्येक राग के कुछ सरल आलाप और तानें दी है, जिन के अभ्यास से विद्यार्थियो के गले मे दाने बैठ जायँगे। पर इन तानो को यदि ताल-बद्ध करने का थोडा सा परिश्रम और किया गया होता तो पुस्तक की उपादेयता कई गुनी बढ जाती। तिताल, झपताल, एकताल आदि मे बँधी हुई ताने अभी तक किसी पुस्तक मे देखने मे नही आई। कुछ लोगो ने तानें दी भी है तो तिताले या एकताले मे। झपताला, आड़ा चौताला आदि जरा टेढ़े तालों मे बँधी हुई तानो का नोटेशन कुछ मुश्किल काम है। आशा है अगले भागों मे प्रस्तुत पुस्तक के योग्य लेखक इस दिशा मे ध्यान देगे। सब बातो को देखते हुए पुस्तक विद्यार्थियो और शिक्षको दोनो के बड़े काम की है और आशा है सगीत-प्रेमी मात्र इस से लाभ उठावेगे।

ग० प्र० द्विवेदी

लेख-परिचय

[इस स्तंभ में हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में विगत तीन मास में प्रकाशित गंभीर लेखों के शीर्षक, लेखकों के नाम सहित अंकित किए गए हैं।]

अजंता की कला-लक्ष्मी—श्री रामस्वरूप व्यास, विश्वमित्र, अगस्त '३८

आइरिश हुतात्मा राबर्ट एमेट—श्री रामनाथ सुमन, माधुरी, सितंबर '३८

आकाश में पक्षी के समान उड़ने की चेष्टा—श्री विश्वनाथ सेठी; एम्० एस्-सी०; विश्वमित्र; अगस्त '३८

आधुनिक गुजराती साहित्य में नई धाराएं—श्री हीरालाल गोडीवाला; रूपाभ; जूलाई '३८

आधुनिकतम अंग्रेजी कविता की प्रगति—श्री भवानी शंकर, एम्० ए०; रूपाभ; जूलाई '३८

आधुनिक हिंदी कहानी—श्री जीवानंद; विशाल-भारत, अगस्त-सितंबर '३८

आर्यभाषा का प्रचारक—श्री "विष्णु", हंस, जूलाई '३८

इंगलिस्तानी या खिचड़ी बोली—डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०; सुधा; अगस्त '३८

उर्दू गजल साहित्य में व्यक्तित्व की झलक—श्री रघुपति सहाय,एम्० ए०; रूपाभ; अगस्त '३८

एक प्रतिभाशाली उपन्यासकार—श्री सतीशचंद्र काला बी० ए०; माधुरी; जूलाई '३८

एक बहादुर हिंदू रानी—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०; विशाल-भारत, सितंबर '३८

कनु देसाई और उन की कला—श्री रामस्वरूप व्यास; विश्वमित्र; जूलाई '३८

कवि जटमल कृत प्रेमलता चउपई—श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०, वीणा, अगस्त '३८

क्या असहयोग उठा लेने का समय आ गया है ?—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्०, रूपाभ, जूलाई '३८

खड़ीबोली का स्थान—श्री रामजीलाल, एम्० ए०, 'साहित्यरत्न', वीणा; जूलाई '३८

गोस्वामी जी का काव्यसौंदर्य—रायबहादुर श्री श्यामसुंदरदास, बी० ए०, कल्याण, सितंबर '३८

चान्हुडेरो की खुदाई—श्री अमृतवगत, विशाल-भारत, जूलाई-अगस्त '३८

छंदोगति की रूपरेखा—श्री 'वचनेश' जी, सुधा, सितंबर '३८

जिगर और असगर—श्री नानकचंद श्रीवास्तव, विशाल-भारत, अगस्त '३८

ठाकुर जगमोहन सिंह जू देव का एक प्राचीन चित्र—श्री लोचनप्रसाद पांडेय, विशाल-भारत; सितंबर '३८

तुलसीदास का पुनर्युग और उस के गुण-दोष—श्री राजबहादुर लमगोड़ा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, सुधा, अगस्त-सितंबर '३८

दक्षिण के एक महाकवि पोतन्ना—श्री य० वेंकटेश्वर राव; हंस; जूलाई '३८

देवनागरी लिपि में सुधार—श्री यदुनंदन लाल, चाँद, जुलाई '३८

धरती माता की कहानी—श्री व्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम', विश्वमित्र, जूलाई '३८

पूज्यपाद गोस्वामी जी का अभिमत सिद्धांत—सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार, कल्याण, सितंबर '३८

फ़ायड और वर्तमान सभ्यता—श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, एम्० ए०, बी० एल्०; विश्वमित्र; अगस्त '३८

बीसवीं सदी के चतुर्थांश में हिंदी साहित्य की प्रगति—श्री कृष्णलाल, एम्० ए०, साहित्य-संदेश, सितंबर '३८

बौद्ध संप्रदाय के पवित्र स्थान—डाक्टर हीरानंद शास्त्री, एम्० ए०, डी० लिट्०, वीणा; जूलाई '३८

भक्तिमार्ग के गुण-दोष—श्री बलदेवप्रसाद मिश्र, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, सम्मेलन-पत्रिका; भाग २५–११–१२

भूपति की सतसई—श्री मिश्र एम० ए० सरस्वती जूलाई ३८

साधनाकार—श्री आत्मानद मिश्र, एम्० ए०, बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी०; सुधा, सितंबर '३८

सिंध देश का लोक-साहित्य—कुमारी कमला भम्भानी, बी० ए०; साहित्य-संदेश; सितंबर '३८

सृष्टि-रचना में प्रयोजन—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम्० ए०; सुधा, सितंबर '३८

सौ टाइप का मुद्रण यंत्र—श्री करणसिंह चुडासमा; विशाल-भारत, सितंबर '३८

स्वर्गीय अज़ीज़ लखनवी—श्री इकबाल वर्मा 'सेहर', माधुरी, जुलाई '३८

स्वर्गीय डाक्टर इक़बाल—प्रोफ़ेसर मुहम्मद मुजीब, विशाल-भारत, जुलाई '३८

स्वर्गीय सर सैयद रास मसूद—श्री लक्ष्मण अय्या, वीणा, जुलाई '३८

हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०, रूपाभ; जुलाई '३८

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का मोह—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), सरस्वती, जुलाई '३८

हिंदू संस्कृति—डाक्टर राममनोहर लोहिया; रूपाभ, सितंबर '३८

सूचना

इस अंक के अंत में दिए हुए चित्र 'असितकुमार हल्दार की चित्रकला' शीर्षक लेख से संबंध रखते हैं। यह लेख पिछले अंक में प्रकाशित हुआ था। चित्रों के ब्लॉक इंडियन प्रेस के स्वामी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।—संपादक।

ऋतुओं का रास-नृत्य

विश्वमातृका

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१९३८

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

संपादक—रामचंद्र टंडन

लेख—सूची

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था---लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति---लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य---लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध---लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता---लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत---लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास---लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़्थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक---संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत---लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट---संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार---लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास---लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी---संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री---संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य---लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज---लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १।); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्जा अबुलफ़ज़ल। मूल्य १।)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ।)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १।)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १।)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फिल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट् (पेरिस) मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।